दो शब्द

'गरुड-पुराण' की विशेषताओं पर इसकी भूमिका और उपसंहार में आवश्यक विवेचना की जा चुकी है। एक सामान्य हिन्दू-धर्म अनुयायी की दृष्टि में मरणोत्तर कर्मकाण्ड का महत्व बहुत अधिक है—इतना अधिक है कि उसका आयोजन पूर्ण नियमानुकूल और परम्परा के अनुसार करने के लिए वह प्रायः अपने लिए बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ पैदा कर लेता है। अनेक स्थानों में और अनेक जातियों में दाह-संस्कार, तीजा, एकादशा, त्रयोदशा (तेरहवीं) आदि के नाम पर और महाब्राह्मण को शैयादानादि करने के रूप में, और फिर समस्त जाति-भाइयों को भोज देने की प्रथा का पालन करके इतना व्यय-भार उठाना पड़ता है कि अनेक गरीबों की उससे कमर ही टूट जाती है और उसका कुपरिणाम उनको बरसों तक भोगना पड़ता है। पाठकों ने ऐसे ऐसे मृतक भोजों का भी वर्णन सुना होगा जिनमें ५-५ हजार तक लोग भोजन करते हैं। मगर इससे चौथाई भी भार किसी साधारण आर्थिक अवस्था वाले पर पड़ जाय तो उसको कैसी सांघातिक चोट लगेगी इसे भुक्तभोगी सहज ही में जान सकते हैं।

जन-साधारण की दृष्टि में 'गरुड-पुराण' का महत्व इसी कारण अधिक है क्योंकि इसमें और्ध्वदैहिक कर्मों का विवेचन किया गया है और लोग उसे श्रद्धापूर्वक सुनते और मानते हैं। इस समय यद्यपि देश-काल के प्रभाव से लोगों के विचारों में अनेक नवीन परिवर्तन हो रहे हैं, तो भी हिन्दू-समाज में, विशेषतया ग्रामीण-जनता में ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलेंगे जो इन प्रथाओं का उल्लंघन करने का साहस कर सकें। इस कारण सब लोग अपनी शक्ति और परिस्थिति के अनुसार उन कर्मकाण्डों की पूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं, जिनका निर्देश 'गरुड पुराण' में किया गया है।

हिन्दू धर्म में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का बड़े अटल और निश्चयात्मक रूप से प्रतिपादन किया गया है और सच पूछा जाय तो वर्तमान समय में धर्म का जो रूप हमारे देश के विद्वानों और उच्च श्रेणी के व्यक्तियों में भी प्रचलित है उसका आधार पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही है। उसी के प्रभाव से हिन्दू जनता में यह भाव फैला हुआ है कि हम जैसा भला-बुरा काम करेंगे उसका वैसा ही

परिणाम हमको आगामी जन्म में भोगना पड़ेगा। यह प्रभाव चाहे विभिन्न व्यक्तियों में न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है फिर भी बहुसंख्यक लोग इसके कारण किसी दुष्कर्म को करते हुए कुछ सङ्कोच करते हैं इसमें सन्देह नहीं। यह तो स्वार्थी और मूढ़ लोगों ने मनमानी कल्पनायें और अतिरंजित बातें करके इसके स्वरूप को बिगाड़ रखा है, अन्यथा यह 'पुनर्जन्म तथा कर्मफल' का सिद्धान्त नैतिकता तथा सच्चरित्रता की रक्षा के लिए एक अमूल्य और अमोघ उपाय ही है।

पर हम यह कह देना भी आवश्यक समझते हैं कि इस विषय में अन्ध-श्रद्धा से काम लेना कभी कल्याणकारी नहीं हो सकता। यह समझ लेना कि 'गरुड़ पुराण' में जिन क्रिया कर्म के विषय में जो कुछ लिखा गया है उसको अक्षरशः सत्य मान कर पूर्ण रूप से तदनुकूल आचरण करने से ही सद्गति प्राप्त हो सकेगी, हानिकारक है। ऐसे प्रसङ्गों में जन-साधारण की श्रद्धा-भक्ति को बढ़ाने की दृष्टि से बहुत सी बातों को बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया जाता है और अधिकाधिक दान देने को भी विशेष रूप से प्रेरणा की जाती है। ऐसे विषय में देश-काल और अपनी परिस्थिति का ध्यान रखकर ही कार्य करना चाहिए। धर्म शास्त्रों में ही जगह जगह यह स्पष्ट रूप से कह दिया गया है कि वास्तविक फल शुद्ध भावना और सात्विक कर्मों का होता है। बाह्य क्रियाएँ और दान-दक्षिणा आदि सदैव अपनी सामर्थ्य और साधनों के अनुसार ही करना चाहिये जिससे बाद में किसी प्रकार की असुविधा सहन न करनी पड़े।

धर्म की गति सूक्ष्म कही गई है। जो लोग समझते हैं कि सत्-कर्म और परमार्थ के पथ पर चले बिना भी केवल कर्मकाण्डों के द्वारा परलोक में कल्याण हो सकता है, वे भूल करते हैं। अपनी श्रद्धा और परम्परा के अनुसार उपयोगी प्रथाओं का पालन करना उचित है पर उससे भी अधिक आवश्यक सत्कर्म, सदाचार, परोपकार आदि आत्म-कल्याण करने वाले गुणों की तरफ ध्यान देना है। 'गरुड़ पुराण' में यह कहा गया है कि 'ज्ञानी और सत्यव्रती व्यक्ति बिना और्ध्वदैहिक कर्मकाण्ड के भी परलोक में उच्चगति प्राप्त करते हैं।' इसलिये लौकिक प्रथाओं के साथ ही आत्मिक गुणों का धारण और पालन करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

श्री गरुड़पुराण (द्वितीय खण्ड) की

विषय—सूची





श्री गरुड़पुराण (उत्तरार्ध ,
(प्रेतकल्प)

मरणोपरान्त जीवन—पुनर्जन्म के प्रमाण—प्रेतों के स्वरूप और कार्य—कर्मों के संस्कार और प्रारब्ध।

श्रीगरुड महापुराणम्

(द्वितीय खण्ड)

६३—राजवंश वर्णन

शतानीको ह्यश्वमेधदत्तश्चाप्यधिसोमकः ।
कृष्णोऽनिरुद्धश्चाप्युष्णस्ततश्चित्ररथो नृपः ॥१
शुचिद्रथो वृष्णिमाश्च सुषेणश्च सुनीथकः ।
नृचक्षुश्च सुखावाणो मेधावी च नृपञ्जयः ॥२
पारिप्लवश्च सुनयो मेधावी च नृपञ्जयः ।
हरिस्तिग्मो बृहद्रथः शतानीकः सुदानकः ॥३
उदानोऽह्निनरश्चैव दण्डपाणिर्निमित्तकः ।
क्षेमकश्च ततः शूद्रः पिता पूर्वस्ततः सुतः ॥४
बृहद्बलास्तु वक्ष्यन्ते नृपास्त्वैक्ष्वाकुवंशजाः ।
बृहद्बलादुरुक्षयो वत्सव्यूहस्ततः परः ॥५
बृहदश्वो भानुरथः प्रतीव्यश्च प्रतीतकः ।
मनुदेवः सुनक्षत्रः किन्नरश्चान्तरिक्षकः ॥६
सुपर्णः कृतजिच्चैव बृहद्भ्राजश्च धार्मिकः ।
कृतञ्जयो धनञ्जयः सञ्जयः शाक्य एव च ॥७
शुद्धोदनो बाहुलश्च सेनजित्क्षुद्रकस्तथा ।
समित्रः कुड्वश्चात सुमित्रो मागधान् शृणु ॥८

श्री हरि ने कहा—शतानीक-अश्वमेध दत्त—अधिसोमक-कृष्ण-अनिरुद्ध-उष्ण और इसके पश्चात् चित्ररथ नृप हुए ॥१॥ शुचिद्रथ—वृष्णिमान्—सुषेण—सुनीथक—नृचक्षु—सुखावाण-मधावी-नृपञ्जय—पारिप्लव-सुनय—मेधावी-नृपञ्जय—हरि—तिग्म—वृहद्रथ-शतानीक-सुदानक-उदान- अहिनर दण्डपाणि—निमित्तक—क्षेमक—इसके अनन्तर शूद्र पिता पूर्व इसके उपरान्त सुत ये सब हुए थे ॥२।३।४॥ ये इक्ष्वाकु के वंश में जन्म लेने वाले नृप बृहद्बल कहे जाते हैं। बृहद्बल से उरुक्षय इससे वत्सव्यूह हुआ था ॥५॥ बृहदश्व-भानुरथ प्रतीच्य—प्रतीतक—मनुदेव—सुनक्षत्र—किन्नर—अन्तरिक्ष—सुपर्ण—कृतजित् और धर्मनिष्ठ बृहद्भाज-कृतञ्जय—धनञ्जय—सञ्जय—शाक्य—शुद्धोदन—बाहुल-सेनजित्—क्षुद्रक-समित्र-कुडव और इससे सुमित्र ये सब हुए थे। अब मागधों का श्रवण करो ॥६।७।८॥

जरासन्ध सहदेव सोमापिश्च श्रुतश्रवा ।
अयुतायुर्निरमित्र स्वक्षेत्रो बहुकर्मक ॥९

श्रुतञ्जय सेनजिच्च भूरिश्चैव शुचिस्तथा ।
क्षेम्यश्च सुव्रतो धर्म इमश्रुमो दृढसेनक ॥१०

सुमति सुबलो नीता सत्यजिद्विश्वजित्तथा ।
इपुञ्जयश्च इत्येते नृपा बार्हद्रथा स्मृता ॥११

अधर्मिष्ठाश्च शूद्राश्च भविष्यन्ति नृपास्तत ।
स्वर्गादिकृद्धि भगवान्साक्षान्नारायणोऽव्यय ॥१२

नैमित्तिक प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लय ।
याति भू प्रलयञ्चाप्सु आपस्तेजसि पावक ॥१३

वायौ वायुश्च वियति आकाश यात्यहङ्कृतौ ।
अहंबुद्धौ मतिर्जीवे जीवोऽव्यक्ते तदात्मनि ॥१४

आत्मा परेश्वरो विष्णुरेको नारायणो नर ।
अविनाश्यपर सर्वं जगत्सर्गादि नादि हि ॥१५

नृपादयो गता नाशमत पाप विवर्जयेत् ।
धर्मं कुर्य्यात्स्थिर येन पाप हित्वा हरिं व्रजेत् ॥१६

मगध देश मे होने वाले नृपतियों मे जरासन्ध—सहदेव—सोमापि—श्रुतश्रवा—अयुतायु—निरमित्र—सुक्षेत्र—बहुकर्मक—श्रुतञ्जय—सेनजित्—भूरि—शुचि—क्षेम्य—सुव्रत—धर्म—श्मश्रुम—दृढसेनक—सुमति—सुबल—नीत—सत्यजित्—विश्वजित्—इपुञ्जय—ये सब नृप बार्हद्रथ कहे गये है ॥९।१०।११॥ इसके उपरान्त सब अधार्मिष्ठ और शूद्र नृपति होंगे। स्वर्ग आदि के प्रदान करने वाले अव्यय साक्षात् भगवान् नारायण ही होते हैं ॥ १२ ॥ तीन प्रकार का लय होता है जिनके नाम नैमित्तिक—प्राकृतिक और आत्यन्तिक होते हैं। यह भूमि जल में लय को प्राप्त हो जाती है। जल तेज मे और वह तत्व तेज अर्थात् पावक वायु मे तथा वायु आकाश मे लय होता है। यह आकाश अहङ्कार मे, अहङ्कार बुद्धि मे, बुद्धि जीव मे, जीव अव्यक्त मे और यह अव्यक्त आत्मा मे लय होता है ॥१३॥१४॥ आत्मा ही पर ईश्वर विष्णु एक है—वह ही नारायण नर और विनाश रहित है। अन्य यह समस्त जगत् और सर्ग आदि नाशवान् है ॥ १५ ॥ जितने भी बड़े २ महान् नृप आदि इस मही मण्डल पर हो गये हैं वे सभी नाश को प्राप्त हो गये हैं और यहाँ स्थायी रूप से किसी की भी स्थिति नहीं हो सकी है। अतः सबका निष्कर्ष यही है कि पाप कर्मों से बचे रहो और धर्म के कर्म करो जिससे स्थिर होते हुए सम्पूर्ण पापो का नाश कर भगवान् श्री हरि के सान्निध्य मे पहुँच जाओ ॥१६॥

६४—रामायण-सार

रामायणमतो वक्ष्ये श्रुत पापविनाशनम् ।
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् ॥१
मरीचेः कश्यपस्तस्माद्रविस्तस्मान्मनुः स्मृतः ।
मनोरिक्ष्वाकुरस्याभूद्वंशे राजा रघुः स्मृतः ॥२
रघोरजस्ततो जातो राजा दशरथो बली ।
तस्य पुत्रास्तु चत्वारो महाबलपराक्रमाः ॥३
कौशल्यायामभूद्रामो भरतः कैकयीसुतः ।
सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायां बभूवतुः ॥४
रामो भक्तः पितुर्मातुर्विश्वामित्रादवाप्तवान् ।
अस्त्रग्रामं ततो यज्ञे ताड़का प्रजघान ह ॥५

विश्वामित्रस्य यज्ञे वै सुबाहु न्यवधीद्बली ।
जनकस्य क्रतु गत्वा उपयेमेऽथ जानकीम् ॥६
उर्मिला लक्ष्मणो वीरो भरतो माण्डवी सुताम् ।
शत्रुघ्नो वै कीर्त्तिमती कुशध्वजसुते उभे ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसलिये अब हम सम्पूर्ण पापो के विनाश करने वाली रामायण का वर्णन करते हैं। भगवान् विष्णु की नाभि के कमल से ब्रह्मा हुए थे और मरीचि इनके पुत्र हुए थे ॥१॥ मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। उससे रवि की उत्पत्ति हुई और रवि से मनु का जन्म हुआ था। मनु से इक्ष्वाकु पैदा हुए थे और फिर इसके वंश में रघु नाम वाला महान् प्रतापी राजा हुआ था ॥२॥ रघु से अज की उत्पत्ति हुई और फिर अज महाराज के दशरथ नाम वाले नृप ने जन्म ग्रहण किया था। यह बहुत ही बलवान् हुए थे। महाराज दशरथ के महान् बल और पराक्रम वाले चार पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥३॥ दशरथ महाराज की सबसे बड़ी पत्नी कौशल्या के उदर से श्रीराम का जन्म हुआ था और कैकेयी के पुत्र का नाम भरत था। लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन दो पुत्रों ने सुमित्रा ने जन्म लिया था ॥४॥ श्रीराम अपने माता-पिता के परम भक्त थे। श्रीराम ने महर्षि विश्वामित्र से सम्पूर्ण अस्त्रों की विद्या को प्राप्त किया था। यहाँ विश्वामित्र के आश्रम में ही यक्षी ताड़का का वध किया था ॥५॥ विश्वामित्र के यज्ञ में बलशाली श्रीराम ने सुबाहु का वध किया था। इसके पश्चात् महाराजा जनक की यज्ञशाला में पहुँच कर धनुर्भङ्ग करके जानकी के साथ विवाह किया था ॥६॥ वीरवर लक्ष्मण ने उर्मिला का—भरत ने सुता माण्डवी का—शत्रुघ्न ने कीर्तिमती का पाणि ग्रहण किया था। ये दोनों कुशध्वज की पुत्री थीं ॥७॥

पित्रादिभिरयोध्यायां गत्वा रामादयः स्थिता ।
सुधाजित मातुलश्च शत्रुघ्नभरतो गतो ॥८
गतमर्तृं नृपवर्योऽसौ राज्य दातु समुद्यत ।
रामाय तत्पुत्राय कैकेय्या प्रार्थित सदा ॥
चतुर्दश समा यामी वने रामस्य वाञ्छिता ॥९

रामः पितृहितार्थञ्च लक्ष्मणेन च सीतया ।
राज्यञ्च तृणवत्त्यक्त्वा शृङ्गवेरपुर गतः ॥१०
रथ त्यक्त्वा प्रयागञ्च चित्रकूटगिरिं गतः ।
रामस्य तु वियोगेन राजा स्वर्गं समाश्रितः ॥११
संस्कृत्य भरतश्चागाद्राममाह बलान्वितः ।
अयोध्या तु समागत्य राज्य कुरु महामते ॥१२
स नैच्छत्पादुके दत्त्वा राज्याय भरताय तु ।
विसर्जितोऽथ भरतो रामराज्यमपालयत् ॥१३
नन्दिग्रामे स्थितो भक्तो ह्ययोध्यां नाविशद् व्रती ।
रामोऽपि चित्रकूटाञ्च अत्रेराश्रममाययौ ॥१४

अयोध्या मे आकर श्रीराम आदि सब भाई अपने माता—पिता के साथ स्थित रहे थे । भरत और शत्रुघ्न अपने मामा युधाजित के पास चले गये थे ॥ ८ ॥ इन दोनो भाइयो के ननसाल चले जाने के बाद नृप श्रेष्ठ दशरथ ने श्रीराम को राज्याभिषिक्त करने का विचार किया था । उसके प्रति सत्पुत्र राम के लिए कैकेयी ने चौदह वर्ष पर्यन्त वन मे निवास कराने का वरदान राजा से माँग कर वचन ले लिया था ॥९॥ श्रीराम ने अपने पिता के हित के लिए अपनी पत्नी सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ अयोध्या के महान् विशाल राज्य वैभव को एक तिनके की भाँति त्याग कर वनवास को प्रस्थान कर दिया और शृङ्गवेर पुर में चले गये थे ॥ १० ॥ मार्ग मे रथ का त्याग कर वह प्रयाग और चित्रकूट गिरि पर चले गये थे । प्राणाधिक प्रिय श्रीराम जैसे पुत्र के वियोग से महाराज दशरथ ने पार्थिव शरीर का त्याग कर स्वर्ग का प्रस्थान कर दिया था ॥११॥ भरत ने ननसाल से आकर पिता का दाह-संस्कार आदि सम्पूर्ण कर्म किया और बल—दल सहित वन मे श्रीराम के समीप पहुँच कर उनसे प्रार्थना की कि आप वापिस अयोध्या चाकर अपना राज्य-शासन स्वीकार करे ॥ १२ ॥ श्रीराम ने पिता के वचनो का पूर्ण पालन करने के विचार से इस प्रार्थना को स्वीकृत नही किया था और राज्यासन पर रखने के लिए अपनी चरण—पादुकाएँ प्रदान कर भरत को विदा कर दिया था कि अपने प्रतिनिधि

के स्वरूप में तब तक वह राज्य का पालन करे ॥१३॥ भरत ने वनवास जैसा पूर्ण व्रत का पालन किया था। उसने अयोध्या मे प्रवेश नहीं किया था और नन्दि ग्राम मे स्थित होकर रहने लगे थे। श्रीराम भी इसके अनन्तर चित्रकूट से अत्रि मुनि के आश्रम मे पहुँच गये थे ॥१४॥

नत्वा सुतीक्ष्णं चागस्त्यं दण्डकारण्यमागतः ।
तत्र शूर्पणखा नाम राक्षसी चात्तुमागता ॥१५
निकृत्य कर्णौ नासे च रामेणायापराहिता ।
तत्प्रेरितः खरश्चागाद् दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥१६
चतुर्दशसहस्रेण रक्षसा तु बलेन च ।
रामोऽपि प्रेषयामास बाणैर्यमपुरञ्च तान् ॥१७
राक्षस्या प्रेरितोऽभ्यागाद्रावणो हरणाय हि ।
मृगरूप स मारीच कृत्वाग्रेऽथ त्रिदण्डधृक् ॥१८
सीतया प्रेरितो रामो मारीच निजघान ह ।
म्रियमाण. स च प्राह हा सीते लक्ष्मणेति च ॥१९
सीतोक्तो लक्ष्मणोऽप्यागाद्रामश्चानु ददर्श तम् ।
उवाच राक्षसी माया नून सीता हृतेति सा ॥२०
रावणोऽन्तरमासाद्य अङ्केनादाय जानकीम् ।
जटायुप विनिर्भिद्य ययौ लङ्का ततो बली ॥२१

वहाँ पर सुतीक्ष्ण और अगस्त्य मुनि को प्रणाम करके फिर दण्डकारण्य नामक वन मे आगये थे। वहा पर शूर्पणखा नाम वाली एक राक्षसी इनको खाने के लिए आ गई थी ॥१५॥ उसके दोनो कान और नाक काटकर भगवान् श्रीराम ने उसे अपराहित कर दिया था। उसने जाकर अपने दुःख और इस कुरूपता के अपमान का रोना भाई खर तथा दूषण के सामने किया तो उससे प्रेरित होकर वे खर–दूषण और त्रिशिरा चौदह हजार राक्षसो की सेना लेकर इनसे युद्ध करने को वहाँ आगये थे। श्रीराम ने अपने अमोघ बाणों से सभी को मार कर यमपुर भेज दिया था ॥१६।१७॥ फिर उस शूर्पणखा राक्षसी ने जगज्जननी जानकी की सुन्दरता बतलाते हुए अपने अपमानित होने की बात रावण

से जाकर कही थी और रावण ने सीता के हरण के लिए मारीच को मृग का रूप बनाकर आगे कर दिया और वह एक तीन दण्ड धारी सन्यासी का रूप धारण कर वहाँ आ गया था ।।१८।। सीता ने सोने के मृग की छाला प्राप्त करने को राम को प्रेरित कर उसे मारने को भेज दिया था और इधर राम ने मारीच का वध किया था। मरते समय मारीच ने "हा सीते ! हा लक्ष्मण !" ये शब्द मुँह से निकाले थे। इन शब्दों को सुनकर जानकी ने लक्ष्मण को भी राम को देखने के लिए पीछे से भेज दिया था। लक्ष्मण को पीछे से आया हुआ श्रीराम ने देखकर कहा—निश्चय ही राक्षसों की माया के द्वारा सीता का हरण होगया है ।। १९।२० ।। इसी अन्तर में रावण ने जानकी को गोद में उठाकर हरण किया था। मार्ग में वह बलवान् राक्षस रावण जटायु का भेदन कर जानकी को लङ्कापुरी में ले पहुँचा था ।।२१।।

अशोकवृक्षच्छायाया रक्षिता तामधारयत् ।
आगत्य रामः शून्याञ्च पर्णशालां ददर्श ह ।।२२
शोकं कृत्वा जानक्या मार्गणं कृतवान्प्रभुः ।
जटायुषञ्च सस्कृत्य तदुक्तो दक्षिणा दिशम् ।।२३
गत्वा सख्यं ततश्चक्रे सुग्रीवेण च राघवः ।
सप्त तालान्विनिर्भिद्य शरेणानतपर्वणा ।।२४
वालिनञ्च विनिर्भिद्य किष्किन्धाया हरीश्वरम् ।
सुग्रीवं कृतवान्राम ऋष्यमूके स्वयं स्थितः ।।२५
सुग्रीवः प्रेषयामास वानरान्पर्वतोपमान् ।
सीताया मार्गणं कर्तुं पूर्वाद्यैः सुमहाबलान् ।।२६
प्रतीचीमुत्तरां प्राचीं दिशं गत्वा समागताः ।
दक्षिणान्तु दिशं ये च मार्गयन्तोऽथ जानकीम् ।।२७
वनानि पर्वतान्द्वीपान्नदीनां पुलिनानि च ।
जानकीन्ते ह्यपश्यन्तो मरणे कृतनिश्चयाः ।।२८

यहाँ रावण ने अशोक वृक्ष की छाया में उसे रख दिया था। उधर श्रीराम ने देखा था कि पर्णशाला जानकी से रहित सूनी थी ।।२२।। श्रीराम ने

हृदय मे बहुत शोक किया और फिर जानकी की खोज करते हुए वे इधर–उधर वन मे भ्रमण करने लगे । जटायु को मृत प्राय देखा और उसके मर जाने पर उसका सत्कार किया था । जटायु ने दक्षिण दिशा मे जानकी को ले जाने की बात बताई थी ।।२३।। फिर श्रीराम ने ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर सुग्रीव के साथ मित्रता की थी । सुग्रीव को अपने बाणो की अमोघता सात तालो को भेदन कर दिखलाई थी और सुग्रीव के भाई बाली का मार कर सुग्रीव को किष्किन्धा पुरी का राजा बना दिया था । इसके अनन्तर स्वय राम ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करने लगे थे । सुग्रीव ने सीता की खोज करने के लिए बडे–बडे बलवान् वानरो को भेजा था । वे बलवान् बन्दर उत्तर आदि दिशाओ से तथा पूर्व और पश्चिम सभी दिशाओ से खोज करके वापस लौट आये थे । जो बन्दर सीता को ढूंढने के लिये दक्षिण दिशा मे गये थे उन्होने वन,नदियो के पुलिन,पर्वत और द्वीपो मे सर्वत्र जानकी की खोज की थी किन्तु उन्होने कही पर भी जानकी को नही पाया तो फिर उन सबने मरने का निश्चय किया था ।।२४ से २८।।

सम्पातिवचनाज्ज्ञात्वा हनूमान्कपिकुञ्जरः ।
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे मकरालयम् ।।२९
अपश्यज्जानकीं तत्र अशोकवनिकास्थिताम् ।
भर्त्सितां राक्षसीभिश्च रावणेन च रक्षसा ।।३०
भव भार्येति वदता चिन्तयन्तीञ्च राघवम् ।
अङ्गुरीयं कपिर्दत्त्वा सीतां कौशल्यमब्रवीत् ।।३१
रामस्य तस्य दूतोऽहं शोकं मा कुरु मैथिलि ।
स्वाभिज्ञानञ्च मे देहि येन रामः स्मरिष्यति ।।३२
तच्छ्रुत्वा प्रददौ सीता वेणीरत्नं हनूमते ।
यथा रामो नयेच्छीघ्रं तथा वाच्यं त्वया गते ।।३३
तथेत्युक्त्वा तु हनुमान्वनं दिव्यं बभञ्ज ह ।
हत्वाक्ष राक्षसांश्चान्यान्बन्धनं स्वयमागतः ।।३४
सर्वैरिन्द्रजितो बाणैर्दृष्ट्वा रावणमब्रवीत् ।
रामदूतोऽस्मि हनुमान्देहि रामाय मैथिलीम् ।।३५

जटायु के भाई सम्पाति गृद्ध के वचन से ज्ञान प्राप्त करके वानरों में परम शिरोमणि हनुमान् ने सौ योजन के विस्तार वाले समुद्र को लाँघ लिया था ॥२९॥ और फिर अशोक वाटिका के मध्य में संस्थित जानकी को लङ्कापुरी में हनुमान् ने पहुँच कर देखा था । वहाँ बहुत-सी राक्षसियाँ उनको भर्त्सना दे रहीं थीं और कभी-कभी रावण भी आकर भय-त्रस्त किया करता था ॥ ३० ॥ रावण बार-बार जानकी से मेरी भार्या बन जाओ—यही कहता था । सीता अहर्निश श्री राघवेन्द्र का चिन्तन किया करती थी । इसी बीच में हनुमान् ने श्रीराम की दी हुई अँगूठी देकर समस्त कुशलता उन्हें सुना दी थी ॥ ३१ ॥ हनुमान् ने कहा—हे मैथिली ! मैं श्रीराम का दूत हूं—अब आप कोई भी शोक न करिये । अब आप कोई अपनी पहिचान की वस्तु दे दीजिए जिसको देखकर राम स्मरण करेंगे ॥३२॥ यह हनुमान् की प्रार्थना का श्रवण करके सीता ने अपनी वेणी का रत्न निकाल कर हनुमान् को दे दिया था और हनुमान् से जानकी ने यह कहा कि श्रीराम से कहना कि मुझे शीघ्र ही निकाल कर लिवा ले जायें । हनुमान् ने कहा कि मैं ऐसा ही करूँगा । फिर हनुमान ने लङ्का के उद्यान को नष्ट कर दिया था जोकि बहुत ही अच्छा बना हुआ था । इस पर आये हुए अक्षय कुमार रावण के पुत्र का वध कर दिया और अन्य भी बहुत-से राक्षसों का वध कर दिया था और फिर स्वयं ही बन्धन में आ गये थे ॥३३-॥३४॥ मेघनाद ने हनुमान् को बाँधकर रावण के सामने पहुँचाया तो वहाँ हनुमान् ने कहा—हे रावण ! मैं राम का दूत हूँ—अब तुम्हें जानकी को श्रीराम की सेवा में भेज देना चाहिए—इसी में तुम्हारा कल्याण है ॥३५॥

एतच्छ्रुत्वा प्रकुपितो दीपयामास पुच्छकम् ।
कपिर्ज्वलितलाङ्गूलो लङ्का देहे महाबलः ॥२६
दग्ध्वा लङ्का समायातो रामपार्श्वे स वानरः ।
जघ्ना फलं मधुवने दृष्टा सीतेत्यवेदयत् ॥२७
वेगोत्थनश्च रामाय रामो लङ्कापुरीं ययौ ।
ससुग्रीवः सहनुमान्सानुदायः सलक्ष्मणः ॥२८
विभीषणोऽपि सम्प्राप्तः शरणं राघवं प्रति ।
लङ्कैश्वर्येऽभ्यषिञ्चत्तं रामस्तं रावणानुजम् ॥२९

रामो नलेन सेतुञ्च कृत्वाब्धौ चोत्ततार तम् ।
सुवेलावस्थितश्चैव पुरी लङ्का ददर्श ह ॥४०
अथ ते वानरा वीरा नीलाङ्गदनलादय ।
धूम्रधूम्राक्षवीरेन्द्रा जाम्ववत्प्रमुखास्तदा ॥४१
मैन्दद्विविदमुखास्ते पुरी लङ्का बभञ्जिरे ।
राक्षसाश्चमहाकायान्कालाञ्जनचयोपमान् ॥४२
रामः सलक्ष्मणो हत्वा सकपिः सर्वराक्षसान् ।
विद्य,ज्जिह्वञ्च धूम्राक्ष देवान्तकनरान्तकौ ॥४३
महोदरमहापार्श्वातिकाय महाबलम् ।
कुम्भ निकुम्भ मत्तञ्च मकराक्ष ह्यकम्पनम् ॥४४
प्रहस्त वीरमुन्मत्तं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥४५

हनुमान की ऐसी बात सुनकर रावण को बड़ा क्रोध आगया था और उसने हनुमान की पूँछ मे आग लगवादी थी । जब पूँछ मे आग की ज्वालाओं ने भीषण रूप धारण किया तो उस महान् बलवान् हनुमान् ने लङ्कापुरी को जला दिया था ॥३६॥ उस पूरी लङ्कापुरी को जलाकर वह वानर शिरोमणि हनुमान् वापिस श्रीराम के समीप मे आगया था, किष्किन्धा पुरी मे आकर वहाँ के उद्यान मे यथेष्ट रूप से फल खाकर अर्थात् मधुवन मे फल खाने के पश्चात् फिर हनुमान् ने जानकी के प्राप्त करने का समाचार श्रीराम को सुना दिया था ॥३७॥ इसके अनन्तर हनुमान् ने जानकी के द्वारा दिया हुआ वह वेणी का रत्न जो एक अभिज्ञान के रूप मे लाया था श्रीराम को दे दिया था । श्रीराम ने लक्ष्मण—सुग्रीव—अङ्गद प्रभृति सबके साथ लङ्कापुरी मे चढाई कर दी थी । फिर रावण का भाई विभीषण श्रीराम की शरणागति में आगया था । रावणादि के सम्पूर्ण राज्य का स्वामी विभीषण को बनाकर उसका पहिले ही अभिषेक कर दिया था । इसके उपरान्त नल नामक वानर के द्वारा समुद्र मे पुल बनाकर सागर को पार कर लङ्का के पास समुद्र के तट पर अपना पड़ाव श्रीराम ने डाल दिया था । वहाँ से ही लङ्कापुरी का भली भाँति निरीक्षण किया था ॥३८।३६।४०॥ इसके अनन्तर बड़े-बड़े वीर वानर जिनमे नील—अङ्गद—

नल–धूम–धूम्राक्ष–वीरेन्द्र—परम प्रमुख जाम्बवान्–मैन्द–द्विविद आदि सभी थे । इन सबने लङ्का को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया था बडे वीर काले पर्वत के समान विशालकाय सभी राक्षसों का हनन करके वानरों के और लक्ष्मण के सहित राम ने भयानक युद्ध किया था । धूम्राक्ष ने विद्युज्जिह्व को–देवान्तक–नरान्तक को–महोदर—महापार्श्व–अतिकाय—महाबल—कुम्भ—निकुम्भ—मत्त—मकराक्ष–अकम्पन–प्रहस्त का वध किया था । वीर—उन्मत्त–कुम्भकर्ण महाबली का हनन किया था ।।४१ से ४५।। *

रावणिं लक्ष्मणश्छित्त्वा ह्यस्त्रार्थं राघवो बली ।
निकृत्य बाहुचक्राणि रावणं तु व्यपातयत् ।।४६
सीतां शुद्धां गृहीत्वाथ विमाने पुष्पके स्थितः ।
सवानरः समायातो ह्ययोध्यां प्रवरां पुरीम् ।।४७
तत्र राज्यं चकाराथ पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ।
दशाश्वमेधानाहृत्य गयाशिरसि पातनम् ।।४८
पिण्डानां विधिवत्कृत्वा दत्त्वा दानानि राघवः ।
पुत्रौ कुशलवौ दृष्ट्वा तौ राज्येऽभ्यषेचयत् ।।४९
एकादशसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ।
शत्रुघ्नो लवणं जघ्ने शैलूषो भरतः स्थितः ।।५०
अगस्त्यादीन्मुनीन्नत्वा श्रुत्वोत्पत्तिश्च रक्षसाम् ।
स्वर्गं गतो जनैः सार्द्धमयोध्यास्थैः कृतार्थकः ।।५१

रावण के पुत्र इन्द्रजीत मेघनाद का वध लक्ष्मण ने किया था और अतुल बलशाली श्रीराम ने अपने अस्त्रों के द्वारा रावण की भुजाओं का छेदन कर उसका हनन रणभूमि में कर दिया था ।। ४६ ।। इसके अनन्तर सीता की शुद्धि करके अपने साथ में ले लिया और पुष्पक विमान पर समारूढ होकर प्रमुख परम भक्त वानरों के सहित श्रेष्ठतम अयोध्यापुरी में श्रीराम चले आये थे ।।४७।। यहाँ पर आकर अपनी समस्त प्रजा को पुत्र की तरह समझ कर प्रेम-पूर्वक उसका पालन किया और राज्य का शासन किया था । दश अश्वमेध यज्ञ किये तथा गया तीर्थ में विधि पूर्वक पितृगणों का पिण्डदान किया था तथा बहुत-से

दान भी दिये थे। श्रीराम ने अपने दो पुत्र कुश और लव को राज्यासन पर अभिषिक्त कर दिया था ॥४८॥ ग्यारह सहस्र वर्ष तक श्रीराम ने राज्य किया था। शत्रुघ्न ने लवण को मंदा किया था और भरत ने शैलूष को समुत्पन्न किया था। अगस्त्य आदि मुनियों को प्रणिपात करके और राक्षसों की उत्पत्ति का श्रवण करके पूर्णतया कृतार्थ होकर अयोध्या में स्थित सब मनुष्यों के साथ श्रीराम स्वर्ग में चले गये थे ॥४९।५०।५१॥

६५—हरिवंश सार

हरिवंशं प्रवक्ष्यामि कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम्।
वसुदेवात्तु देवक्यां वासुदेवो बलोऽभवत् ॥१
धर्मादिरक्षणार्थाय अधर्मादिविनष्टये।
कृष्णः पीत्वा स्तनौ गाढं पूतनामनयत्क्षयम् ॥२
शकटः परिवृत्तोऽथ भग्नौ च यमलार्जुनौ।
दमितः कालियो नागो धेनुको विनिपातितः ॥३
धृतो गोवर्द्धनः शैल इन्द्रेण परिपूजितः।
भारावतरणं चक्रे प्रतिज्ञां कृतवान्हरिः ॥४
रक्षणायार्जुनादेश्च अरिष्टादिर्निपातितः।
केशी विनिहतो दैत्यो गोपाख्याः परितापिताः ॥५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम हरिवंश का वर्णन करते हैं जिसमें परमोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य है। वसुदेव से देवकी भार्या में वासुदेव बल उत्पन्न हुए थे ॥१॥ वासुदेव की समुत्पत्ति धर्म आदि के संरक्षण करने के लिए तथा अधर्म प्रभृति के विनाश करने के लिए ही हुई थी। श्रीकृष्ण ने पूतना के खूब जोर से स्तनों को पीकर उसका क्षय कर दिया था ॥२॥ श्रीकृष्ण ने शकट को परिवृत्त कर दिया था और यमलार्जुनों को भग्न कर दिया था। कालिय नाग का दमन किया तथा धेनुकासुर का विनिपातन किया था ॥ ३ ॥ गोवर्द्धन पर्वत को कनिष्ठिका पर धारण कर समस्त व्रज की इन्द्र के कोप से रक्षा की थी और इन्द्र के द्वारा परिपूजित हुए थे। हरि भगवान् ने प्रतिज्ञा की थी और भूमि के भार का अवतरण कर दिया था ॥४॥ अर्जुन आदि की रक्षा

करने के लिये अरिष्ट आदि का निपातन किया था। केशी नाम वाले दैत्य का वध किया था तथा गोप आदि सबको परितुष्ट कर दिया था ॥५॥

चाणूरोमुष्टिको मल्लः कंसो मञ्चान्निपासितः।
रुक्मिणीसत्यभामाद्या अष्टौ पत्न्यो हरेः पराः ॥६
षोडशस्त्रीसहस्राणि अन्यान्यासन्महात्मनः।
तासां पुत्राश्च पौत्राद्या शतशोऽथ सहस्रशः ॥७
रुक्मिण्याञ्चैव प्रद्युम्नो न्यवधीच्छम्बरञ्च यः।
तस्य पुत्रोऽनिरुद्धोऽभूदुषावाणसुतापतिः ॥८
हरिशङ्करयोर्यत्र महायुद्धं बभूव ह।
बाणबाहुसहस्रञ्च छिन्नं बाहुद्वयो ह्यभूत् ॥९
नरको निहतो येन पारिजातं जहार यः।
बलश्च शिशुपालश्च हृतश्च द्विविदः कपिः ॥१०
अनिरुद्धादभूद्वज्रः स च राजा गते हरौ।
सान्दीपनि गुरुञ्चक्रे सपुत्रञ्च चकार सः ॥
मथुरायाञ्चोग्रसेन पालनञ्च दिवौकसाम् ॥११

मथुरा में पहुंच कर चाणूर और मुष्टिक नाम वाले मल्लों को मार गिराया था तथा राजा कंस को चुटी पकड़ कर मञ्च से नीचे गिरा कर हनन किया था। रुक्मिणी और सत्यभामा आदि श्रीकृष्ण की आठ प्रमुख पत्नियाँ हुई थीं ॥६॥ महान् आत्मा वाले श्रीकृष्ण की अन्य भी सोलह सहस्र पत्नियाँ थी। उनके पुत्र और पौत्र सैकड़ों एवं सहस्रों की संख्या मे हुए थे ॥ ७ ॥ रुक्मिणी से प्रद्युम्न पुत्र की उत्पत्ति हुई थी जिसने शम्बर का वध किया था। प्रद्युम्न के आत्मज का नाम अनिरुद्ध था जो बाण की पुत्री उषा के पति थे। ॥ ८ ॥ जहाँ पर हरि और शङ्कर इन दोनों का महान् युद्ध था। बाण की सहस्र बाहु छिन्न होगईं थी और दो बाहुओं वाला होगया था ॥ ९ ॥ जिसने नरकासुर का निहनन किया था जोकि पारिजात वृक्ष के हरण करने वाला था। बल और शिशुपाल हुए। द्विविद नामक कपि मारा गया था। अनिरुद्ध से वज्र नाम हुए। वह हरि के गत होने पर राजा हुआ था। श्रीकृष्ण ने सान्दीपनि

को अपना गुरु बनाया था अर्थात् समस्त विद्याओं का अध्ययन सान्दीपनि से किया था। गुरु दक्षिणा के रूप में उनके मृत पुत्र को लाकर दिया था जिससे पुन. पुत्र वाले होगये थे। मथुरा में उग्रसेन को राजा फिर से बनाया था और द्वों का पूर्णतया पालन किया था ॥१०।११॥

९६—महाभारत सार

भारतं सम्प्रवक्ष्यामि भारावतरणं भुवः ।
चक्रे कृष्णो युध्यमानः पाण्डवादिनिमित्ततः ॥१
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः ।
सोमस्ततो बुधस्तस्मादुर्वश्यांश्च पुरूरवा. ॥२
तस्यायुस्तस्य वंशेऽभूद्ययातिर्भरतः कुरुः ।
शन्तनुस्तस्य वंशेऽभूद् गङ्गायां शन्तनोः सुतः ॥३
भीष्मः सर्वगुणैर्युक्तो ब्रह्मवैवर्तपारगः ॥४
शन्तनोः सत्यवत्यां च द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ।
चित्राङ्गदं तु गन्धर्वः पुत्रं चित्राङ्गदोऽवधीत् ॥५
अन्या विचित्रवीर्योऽभूत्काशिराजसुतापतिः ।
विचित्रवीर्ये स्वर्याते व्यासात्तत्क्षेत्रतोऽभवत् ॥६
धृतराष्ट्रोऽम्बिकापुत्रः पाण्डुरम्बालिकासुतः ।
भुजिष्यायान्तु विदुरो गान्धार्यां धृतराष्ट्रतः ॥७
दुर्योधनप्रधानास्तु शतसंख्या महाबला. ।
पाण्डोः कुन्त्यां च माद्रयां च पञ्च पुत्रा प्रजज्ञिरे ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम महाभारत के विषय में वर्णन करेंगे जोकि इस भूमि पर एक अत्यन्त विशाल भार का अवतरण हुआ था। इसी मही मण्डल के भार को हटाने के लिये भारत युद्ध की पूरी भूमिका भगवान् श्रीकृष्ण ने ही की थी और अर्जुन आदि पाण्डवों का इसका एक निमित्त मात्र बना कर ही यह युद्ध किया गया था ।१॥ भगवान् आदि पुरुष विष्णु की नाभि से समुत्पन्न कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई फिर ब्रह्मा के पुत्र अत्रि मुनि हुए और अत्रि से सोम समुत्पन्न हुए। सोम से बुध और बुध से उर्वशी में पुरूरवा

ने जन्म ग्रहण किया था ॥ २ ॥ पुरूरवा का पुत्र आयु हुआ और उस वंश में ययाति—भरत और कुरु हुए थे। इनके उपरान्त राजा शन्तनु ने जन्म लिया। उस शन्तनु से गङ्गा में भीष्म (देव व्रत) नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी जो समस्त गुणगण युक्त और ब्रह्म वैवर्त्त के पारगामी थे ॥३।४॥ राजा शन्तनु की दूसरी पत्नी जो सत्यवती एक मल्लाह की पुत्री थी उसमें दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे। एक उन दोनों में चित्राङ्गद पुत्र था जिसको चित्राङ्गद गन्धर्व ने वध कर दिया था ॥५॥ दूसरा विचित्र वीर्य नाम वाला आत्मज हुआ था जिसका विवाह काशिराज की पुत्री के साथ हुआ था। विचित्र वीर्य के स्वर्ग गमन कर जाने पर महर्षि व्यासदेव से उसके क्षेत्र अर्थात् पत्नी में अम्बिका नाम की स्त्री से धृतराष्ट्र और अम्बालिका नामधारिणी स्त्री से पाण्डु का जन्म हुआ था। भुजिष्या नाम वाली एक दासी से विदुर की उत्पत्ति हुई थी। धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी थी उसमें सौ पुत्र हुए थे जो कौरव नाम से विख्यात हुए थे। इनमें दुर्योधन प्रधान था और ये सब महान् बल वाले हुए थे। पाण्डु में कुन्ती और माद्री नाम वाली दो पत्नियों में पाँच पुत्र समुत्पन्न हुए थे जो पाण्डव—इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ॥६।७।८॥

युधिष्ठिरो भीमसेनो ह्यर्जुनो नकुलस्तथा।
सहदेवश्च पञ्चैते महाबलपराक्रमाः ॥६
कुरुपाण्डवयोर्वैरं दैवयोगाद्बभूव ह।
दुर्य्योधनेनाधीरेण पाण्डवा समुपद्रुता ॥१०
दग्ध्वा जतुगृहे वीराग्नेर्मुक्ता स्वधियामम्नाः।
ततस्तदेकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशन ॥११
विप्रवेशा महात्मानो निहत्य बकराक्षसम् ॥१२
तत. पाञ्चालविषये द्रौपद्यान्ते स्वयंवरम्।
विज्ञाय वीर्य्यशुल्कान्ता पाण्डवा उपयेमिरे ॥१३
द्रोणभीष्मानुमत्या तु धृतराष्ट्र समानयत्।
अर्द्ध राज्य तत. प्राप्ता इन्द्रप्रस्थे पुरोत्तमे ॥१४

इन पाँचों पाण्डवों के नाम युधिष्ठिर—भीमसेन—अर्जुन—नकुल और सहदेव थे। ये पाँचों पुत्र महान् बल और पराक्रम से समन्वित हुए थे ॥६॥ कुरु दैव

पाण्डवानां शिखण्डी च तयोर्युद्धं बभूव ह ।
शस्त्राशस्त्रि महाघोरं दशरात्रं शराशरि ॥२६
शिखण्ड्यर्जुनवाणौघ भीष्मः शरशतैर्युतः ।
उत्तरायणमीक्षयाथ ध्यात्वा देवं गदाधरम् ॥२७
उक्त्वा धर्मान्बहुविधास्तर्पयित्वा पितृन्बहून् ।
आनन्दे तु पदे लीनो विमले मुक्तकिल्बिषे ॥२८

इस प्रकार से महान् प्राज्ञ इन पाँचों पाण्डवों ने द्रौपदी के सहित एक वर्ष तक अज्ञातवास वहीं पर गोगृहादि के पालन करते हुए किया था। इसके पश्चात् ज्ञात होते हुए आहत होकर अपने राष्ट्र प्राप्त करने की प्रार्थना की थी ॥ २२ ॥ इन्होंने पाँचो भाइयो के लिए केवल पाँच ही ग्राम अपने भाग राज्य से दुर्योधन से मांगे थे किन्तु उस प्रार्थना को भी दुर्योधन ने स्वीकार नहीं किया था। तब दल-बल से समन्वित होकर इन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध किया था जो महान् भारत युद्ध के नाम से प्रख्यात हुआ था ॥२३॥ पाण्डवो के पास केवल सात ही अक्षौहिणी सेना थी और दुर्योधन आदि कौरव ग्यारह अक्षौहिणी सेना से समन्वित थे। इस प्रकार से दोनो ओर की अठारह अक्षौहिणी सेना का युद्ध हुआ था ॥ २४ ॥ यह बड़ा संकुल युद्ध हुआ था। इस युद्ध को देवो और असुरो के समूह से होने वाले युद्ध के समान ही अति भीषण बताया गया है। आदि मे दुर्योधन की सेना मे भीष्म पितामह ने सेनापति के पद को सभाला था ॥२५॥ पाण्डवो के दल का सेनाध्यक्ष शिखण्डी हुआ था। इस तरह दोनो दलों का महान् घोर युद्ध शस्त्रो का शस्त्रो से तथा शरो का शरो के द्वारा दश रात्रि तक चलता रहा ॥२६॥ शिखण्डी को आगे कर अर्जुन के बाणो के द्वारा भीष्म सैकडो शरो से विद्ध कर दिये गये थे। जब भीष्म पितामह ने अपना अन्त समय समझ लिया तो प्राणत्याग के लिये उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा मे देव गदाधारी का ध्यान करने लगे थे ॥२७॥ उस समय मे भीष्म ने बहुत प्रकार के धर्मों का वर्णन किया—अपने पितृगण को तृप्त किया और फिर मुक्त किल्विष विमल आनन्दमय पद मे विलीन होगये थे ॥२८॥

ततो द्रोणो ययौ योद्धुं धृष्टद्युम्नेन वीर्यवान् ।
दिनानि पञ्च तद्युद्धमासीत्परमदारुणम् ॥२९

यत्र ते पृथिवीपाला हता. पार्थास्त्रसागरे ।
शोकसागरमासाद्य द्रोणोऽपि स्वर्गमाप्तवान् ॥३०
ततः कर्णो ययौ योद्धु मर्जुनेन महात्मना ।
दिनत्रयं महायुद्धं कृत्वा पार्थास्त्रसागरे ॥
निमग्न. सूर्य्यलोकन्तु ततः प्राप स वीर्य्यवान् ॥३१
तत. शल्यो ययौ योद्धुं धर्मराजेन धीमता ।
दिनार्द्धेन हतः शल्यो बाणैर्ज्वलनसन्निभै. ॥३२
दुर्य्योधनोऽथ वेगेन गदामादाय वीर्य्यवान् ।
अभ्यधावत वै भीम कालान्तकयमोपमः ॥३३
अथ भीमेन वीरेण गदया विनिपातितः ।
अश्वत्थामा गतो द्रौणिः सुप्तसैन्य ततो निशि ॥३४
जघान बाहुवीर्य्येण पितुर्वधमनुस्मरन् ।
धृष्टद्युम्न जघानाथ द्रौपदेयांश्च वीर्य्यवान् ॥३५

इसके अनन्तर महान् पराक्रमी आचार्य द्रोण धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध करने के लिए युद्ध क्षेत्र मे उपस्थित हुए थे। पाँच दिन तक यह युद्ध परम दारुण हुआ ॥२६॥ इस युद्ध मे अनेक नृपति पार्थास्त्र सागर मे निहत होगये थे। फिर अन्त मे द्रोणाचार्य भी शोक सागर मे प्राप्त होकर स्वर्गगामी होगये थे ॥३०॥ फिर कर्ण अर्जुन के साथ युद्ध करने के लिए आया। इसके साथ भी दो दिन पर्यन्त युद्ध होता रहा और यह भी पार्थ अर्जुन के अस्त्रो के सागर मे भीषण समर करता हुआ निमग्न होगया। यह महा पराक्रमी कर्ण मरकर सूर्य-लोक मे प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ फिर धीमान् धर्मराज युधिष्ठिर के साथ युद्ध करने के लिये शल्य उपस्थित हुआ। आधे ही दिन मे शल्य निहत होगया था क्योंकि अग्नि के समान बड़े तीक्ष्ण बाणों की वर्षा हुई ॥३२॥ इसके पश्चात् दुर्योधन, जो महान् वीर्य—पराक्रम से युक्त था, बडे ही वेग से गदा लेकर कालान्तक यमराज के समान भीम पर दौड कर आया ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर वीरवर भीम ने उस दुर्योधन को अपनी गदा के द्वारा निपातित कर दिया। इसके अनन्तर द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा रात्रि में सेना के सोने पर गया ॥३४॥ उसने

अपने पिता द्रोण के वध का स्मरण करते हुए बाहुओं के पराक्रम से धृष्टद्युम्न का हनन कर दिया और द्रौपदी के पुत्रों का भी हनन किया ॥३५॥

द्रौपद्या रुद्यमानायामश्वत्थाम्न शिरोमणिम् ।
ऐषिकास्त्रेण तु जित्वा जग्राहार्जुन उत्तम ॥३६
युधिष्ठिर समाश्वास्य स्त्रीजन शोकसङ्कुलम् ।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवांश्च पितृनथ पितामहान् ॥३७
आश्वासितोऽथ भीमेन राज्यञ्चैवाकरोन्महत् ।
विष्णुमीजेऽश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ॥३८
राज्ये परीक्षित स्थाप्य यादवाना विनाशनम् ।
श्रुत्वा तु मौशले राजा जप्त्वा नामसहस्रकम् ॥
विष्णो स्वर्गं जगामाथ भीमाद्यं र्भ्रातृभियुं त ॥३९
वासुदेव पुनर्बुद्ध स मोहाय सुरद्विषाम् ।
देवादीना रक्षणाय अधर्महरणाय च ॥४०
दुष्टानाञ्च वधार्थाय अवतार करोति च ।
यथा धन्वन्तरिर्विप्रो जात क्षीरोदमन्थने ॥४१
देवादीना जीवनाय आयुर्वेदमुवाच ह ।
विश्वामित्रसुतायैव सुश्रुताय महात्मने ॥
भारताश्चावताराश्च श्रुत्वा स्वर्गं व्रजेन्नर ॥४२

जब द्रौपदी के पुत्र की मृत्यु होगई और वह बहुत रुदन करने लगी तो अश्वत्थामा को निग्रहीत कर ऐषिकास्त्र के द्वारा अर्जुन ने उसको जीत लिया और उसकी शिरोमणि को ग्रहण कर लिया ॥ ३६ ॥ महाराज युधिष्ठिर को समाश्वासित करके परम शोक से सन्तप्त स्त्रीजनों का समझा-बुझाकर देवों तथा पितृगण को स्नान के पश्चात् सन्तृप्त किया ॥३७॥ भीम के द्वारा आश्वासित होकर युधिष्ठिर ने महान् राज्य का शासन किया और अश्वमेध यज्ञ के द्वारा भगवान् विष्णु का यजन किया, जिसमें विधि-विधान के साथ विपुल दक्षिणादि दी गई ॥ ३८ ॥ बहुत दिन पर्यन्त अपने भाइयों के सहित राज्य के सुखों का उपभोग करने के पश्चात् मौशल युद्ध में यादवों का पूर्ण विनाश सुनकर फिर

युधिष्ठिर ने राज्यासन पर परीक्षित को स्थापित कर दिया। भगवान् के सहस्र नाम का जाप करके भीमादि भाइयों के साथ विष्णु के स्वर्ग में गमन किया ॥ ३६ ॥ वासुदेव पुनः बुद्ध हुए। सुरों के द्वेषी लोगों के मोह के लिए और देवादि के रक्षण के वास्ते तथा अधम के हरण करने के निमित्त और दुष्टों के वध करने के अर्थ भगवान् अवतार ग्रहण किया करते हैं जिस प्रकार से क्षीर सागर के मन्थन के अवसर पर भगवान् धन्वन्तरि आविर्भूत हुए थे। उन्होंने देवादिकों के जीवन के लिए आयुर्वेद शास्त्र का उपदेश दिया और उस आयुर्वेद शास्त्र का अध्यापन विश्वामित्र महर्षि के पुत्र सुश्रुत को किया। सुश्रुत भी एक महान् आत्मा वाले महा पुरुष थे। इस तरह इन भारत अवतारों का जो मनुष्य श्रवण करता है वह स्वर्गलोक की प्राप्ति किया करता है ॥४०।४१।४२॥

६७—आयुर्वेद

सर्वरोगनिदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तत्त्वत ।
आत्रेयाद्यैर्मुनिवरैर्यथा पूर्वमुदीरितम् ॥१
रोग पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुष्टमामय ।
यक्ष्मातङ्कगदाबाधा शब्दा पर्य्यायवाचिन ॥२
निदान पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञान रोगाणा पञ्चधा स्मृतम् ॥३
निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।
निदानमाहु पर्य्यायै प्राग्रूप येन लक्ष्यते ॥४
उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठित ।
लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीना तद्यथायथम् ॥५
तदेव व्यक्तता जात रूपमित्यभिधीयते ।
संस्थान व्यञ्जन लिङ्ग लक्षण चिह्नमाकृति ॥६
हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्य्यस्तार्थकारिणाम् ।
औषधान्नविहाराणामुपयोग सुखावहम् ॥७
विद्यादुपशय व्याधे स हि सात्म्यमिति स्मृत ।
विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्येति सज्ञित ॥८

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत ! अब हम समस्त रोगों के निदान अर्थात् मूलकारण को तुमको बतलाते हैं जिसको तत्त्व पूर्वक आत्रेय आदि मुनि-श्रेष्ठों ने पहिले बतलाया था ॥१॥ यह रोग पाप होता है, ज्वर व्याधि है और किसी भी प्रकार का विकार का होना दुष्ट आमय होता है। इनके यक्ष्मा—आतङ्क—गदा—बाधा ये सभी शब्द पर्याय वाचक अर्थात् समानार्थक शब्द हुआ करते हैं ॥ २ ॥ निदान—पूर्वरूप—रूप अर्थात् रोग का स्वरूप—उपशय और सम्प्राप्ति इन पाँचों के द्वारा रोगों का विज्ञान अर्थात् विशेष रूप से भली भाँति ज्ञान प्राप्त करना होता है ऐसे यह पाँच प्रकार का निदान ही कहा जाता है क्योंकि इन्हीं से वास्तविक रोगों का ज्ञान होना है ॥३॥ केवल निदान के भी निमित्त—हेतु—आयतन—प्रत्यय उत्थान कारण इन पर्याय वाचक शब्दों के द्वारा कहा गया है जिससे कि रोगों का स्वरूप लक्षित हुआ करता है ॥ ४ ॥ उत्पन्न होने वाला आमय अर्थात् रोग किसी विशेष दोष से ही अधिष्ठित हुआ करता है। लिङ्ग अर्थात् व्याधियों का चिह्न अल्प होने से अव्यक्त प्रकाश में न आने वाला और ठीक प्रकार से न जानने के योग्य होता है ॥५॥ आरम्भ में वह कुछ छिपा हुआ-सा रहता है किन्तु शनैः२ अपना एक प्रकट स्पष्ट स्वरूप धारण कर लेता है तो उसी को उसका रूप कहा करते हैं। किसी दोष के होने से निदान हुआ। उसका फिर एक अव्यक्त स्वरूप बनकर पूर्व रूप हुआ और जब वह व्यक्त होकर सामने स्पष्ट होगया तो रूप होगया अर्थात् रोग सही स्वरूप आगया। इसको संस्थान—व्यञ्जन लक्षण—चिह्न और आकृति कहते हैं ॥ ६ ॥ हेतु—व्याधि से विपर्यस्त और विपर्यस्त अर्थ के करने वाले औषध—अन्न और विहारों का उपयोग सुखावह होता है उसको व्याधि का उपशय कहते हैं। इसी को सात्म्य नाम से भी कहा जाता है। इसके जो विपरीत हो अर्थात् औषध-अन्न और विहारों का उपयोग सुख देने वाला न हो वही अनुपशय कहा जाता है। इसी को व्याधि को असात्म्य यह संज्ञा दी गई है ॥७।८॥

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निवृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥९
संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।
सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥१०

द्रोपाणा समवेतानां विकल्पोऽशांशकल्पना ।
स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेःप्राधान्यमादिशेत् ॥११
हेत्वादिकात्स्नांवयवैर्बलावलविशेषणम् ।
नक्त दिनर्त्तु भुक्तांशैर्व्याधिकालो यथा मलम् ॥१२
इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते ।
सर्वेषामेव रोगाणां निदान कुपिता मलाः ॥१३
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ।
अहितस्त्रिविधो योगस्त्रयाणा प्रागुदाहृतः ॥१४

जिस प्रकार से दुष्ट दोप से और जैसे अनुविसर्पण करने वाले से रोग की निवृत्ति है यह सम्प्राप्ति होती है । इसका आगमन संख्या–विकल्प–प्रधानता बल और काल की विशेषता से होता है । इन्ही कारणों से इसके भेद भी होते हैं । अब यहाँ आठ प्रकार के ज्वर बतलाते हैं ॥ ६।१० ॥ समवेत अर्थात् एक साथ मिलकर उपस्थित हुए दोषो का विकल्प और उनके अशाश की कल्पना का होना स्वतन्त्रता से और पराधीनता से उनसे होने के अनुसार ही व्याधि के प्राधान्य को बतलाना चाहिए ॥ ११ ॥ हेतु आदि के पूर्ण अवयवो से बल और अबल की विशेषता होती है । दिन–रात और ऋतु मे भुक्त अशो से व्याधि का काल मल की भाँति होता है ॥१२॥ इस प्रकार से यह निदान का अर्थ ठीक–ठीक बता दिया गया है । व्यासदेव के द्वारा यह उपदिष्ट किया जाता है कि समस्त रोगो का आदिकारण निदान मलो का कुपित हो जाना ही होता है ॥१३॥ उसका प्रकोप अनेक प्रकार की अहित कर वस्तुओ का सेवन करने से होता है । अहित तीन प्रकार का होता है जोकि तीनो का योग है और पहिले बता दिया गया है ॥१४॥

तिक्तोपणकपायाम्लरूक्षाप्रमितभोजनैः ।
धावनोदीरणनिद्राजागरात्युच्चभाषणैः ॥१५
क्रियाभियोगभीशोकचिन्ताव्यायाममैथुनैः ।
ग्रीष्माहोरात्रभुक्तान्ते प्रकुप्यति समीरणः ॥१६
पित्त कट्वम्लतीक्ष्णोष्णकटुक्रोधविदाहिभिः ।
शरन्मध्याहरात्र्यर्द्ध विदाहसमयेषु च ॥१७

स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वभिष्यन्दिशीतलैः ।
आस्यास्वप्नसुखाजीर्णदिवास्वप्नादिबृंहणैः ॥१८
प्रच्छर्दनाद्ययोगेन भुक्तमात्रवसन्तयोः ।
पूर्वाह्णे पूर्वरात्रे च श्लेष्मा वक्ष्यामि सङ्करान् ॥१९

तीन प्रधान दोष हैं जिनके नाम वात—पित्त और कफ ये होते हैं इनमें भी सबसे प्रबल वायु को ही माना जाता है। अतः प्रथम वात के प्रकोप के कारणों पर प्रकाश डालते हैं—वित्त—वयण—कषाय—अम्ल—रूक्ष और अप्रमित भोजन से—दौड़ लगाना—उदीरण—निद्रा—जागरण—अधिक ऊँचे स्वर भाषण—क्रिया का अभियोग—भय—शोक—चिन्ता—शक्ति से अधिक व्यायाम—मैथुन से—ग्रीष्म में तथा अहोरात्र में भोजन से अन्त में वायु प्रकुपित हो जाया करता है। उपर्युक्त कार्य अधिक मात्रा में ही प्रकोप करने वाले होते हैं ॥१५।१६॥ अब पित्त को कुपित होने के कारणों को बतलाते हैं—कटु—अम्ल (खट्टा) तीक्ष्ण (तेज)—उष्ण (अधिक गर्म)—क्रोध और विशेष दाह करने वाले भोजन से—शरद् ऋतु के मध्य में—दिन—रात के अर्ध विदाह के समय में पित्त प्रकुपित होता है। अब कफ के प्रकोप के कारण और समय बतलाते हैं—स्वादु अम्ल—लवण—स्निग्ध—गुरु (भारी)—अभिस्यन्दन करने वाले—शीतल भोजन से आस्य—अस्वप्न (निद्रा न लेना)—सुख—अजीर्ण—दिन में सोना—बृंहण—अच्छर्द आदि के अयोग से—वसन्त ऋतु में—दिन के पूर्वाह्ण में (दुपहर के पूर्व में) और पूर्व रात्रि में कफ प्रकुपित होता है। अब इन तीनों दोषों के मिश्रण के विषय में बतलाते हैं ॥१७।१८।१९॥

मिश्रीभावात्समस्तानां सन्निपातस्तथा पुनः ।
सङ्कीर्णाजीर्णविषमविरुद्धाद्यशनादिभि. ॥२०
व्यापन्नमद्यपानीयशुष्कशाकाममूलकैः ।
पिण्याकमृत्यवसरपूतिशुष्ककृपामिषैः ॥२१
दोषत्रयकरैस्तैस्तैस्तथान्नपरिवर्ततः ।
धातोर्दुष्टात्पुरो वाताद्विग्रहावेशविप्लवात् ॥२२
दुष्टामान्नैरतिश्लेष्मग्रहैर्जन्मर्क्षपीडनात् ।

मिथ्यायोगाच्च विविधात्पापानाञ्च निषेवणात् ॥
स्त्रीणा प्रसववैषम्यात्तथा मिथ्योपचारत ॥२३
प्रतिरोगमिति क्रुद्धा रोगविध्यनुगामिनः ।
रसायन प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते ॥२४

वात–पित्त और कफ इन तीनो समस्तो के मिलावट से जो प्रकोप होता है उसे ही सन्निपात कहते हैं। यह सङ्कीर्ण भोजन—अजीर्ण—विषम भोजन अर्थात् ऐसे भोजन जो परस्पर में विषमता रखने वाले हैं जैसे क्षीर और दधि आदि—विरोधी भोजन से–व्यापन्नता–मद्य–पानीय–शुष्क शाकाम मूलक से–पिण्याक मृतवसर— दुर्गन्ध युक्त भोजन से–शुष्क दुष्ट आमिष से तीनो दोष प्रकुपित हो जाते हैं। ऋतु के परिवर्त्तन से—धातु के दोष से—पहिले वात से और विग्रह–आवेश एव विप्लव से—दुष्टामान्न से—अति श्लेष्मा से—ग्रहो से–जन्म नक्षत्र के पीडन से—मिथ्यायोग से और अनेक प्रकार के पापो के करने से—स्त्रियो के प्रसव के वैषम्य से तथा मिथ्रित उपचार से प्रत्येक रोग में रोग विधि के अनुगमन करने वाले तीनो दोष प्रकुपित हो जाते हैं। रसायन को प्राप्त कर ये दोष शीघ्र ही देह मे विकार किया करते हैं ॥२० से २४॥

१८—ज्वर निदान

वक्ष्ये ज्वरनिदान हि सर्वज्वरविशुद्धये ।
ज्वरो रोगपति पाप्मा मृत्युराजोऽशनोऽन्तकः ॥
क्रुद्दक्षाध्वरध्वसिरुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः ॥१
सरसन्तापो मोहमयः सन्तापात्मापचारजः ।
विविधैर्नामभि क्रूरो नानायोनिषु वर्त्तते ॥२
पाकलो गजेष्वभितापो वाजिष्वलर्कः कुक्कुरेषु ।
इन्द्रमदो जलदेष्वप्सु नीलिका ज्योतिरोषधीषु भूम्यामूषरो नाम
हुल्लासश्छर्दन कास· स्तम्भः शैत्य त्वगादिषु ।
अङ्गेषु च समुद्भूताः पीडकाश्च कफोद्भवे ॥३।४
काले यथास्त सर्वेषा प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा ।
निदानोक्तानुपशयो विपरीतो यथापि वा ॥५

अरुचिश्चाविपाकश्च स्तम्भमालस्यमेव च ।
हृद्दाहश्च विपाकश्च तन्द्रा चालस्यमेव च ॥
वस्तिविमर्दाविनया दोषाणामप्रवर्त्तनम् ॥६

लालाप्रसेको हृल्लासः क्षुन्नाशो रसद मुखम् ।
स्वच्छमुदरगुरुत्वञ्च गात्राणां बहुमूत्रता ॥
न विजीर्णं न च ग्लानिर्ज्वरस्यामस्य लक्षणम् ॥७

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—अब समस्त प्रकार के ज्वरों के ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्वर का निदान बतलाया जाता है। यह सब रोगों का स्वामी है—पाप स्वरूप है—मृत्युराज—अशन (भक्षण करने वाला) और अन्त कर देने वाला होता है। यह दक्ष प्रजापति पर क्रोध करने वाले और उसके यज्ञ को विध्वंस करने वाले भगवान् रुद्र के ऊपर के तीसरे नेत्र से उत्पन्न हुआ था ॥१॥ उस ज्वर का सन्ताप मोह से परिपूर्ण होता है। यह सन्तापात्मा और अपचार से समुत्पन्न होने वाला है। यह विविध नामों से युक्त एवं अत्यन्त क्रूर और नाना योनियों में होता है ॥२॥ हाथियों में जो ज्वर का अभिताप होता है उसका नाम 'पाकल' होता है। घोड़ों में होने वाले ताप को 'अलर्क' नाम से कहा जाता है। कूकरों में जो ज्वर होता है उसको 'इन्द्रामद' कहते हैं। जलदों में जल में इसका नाम 'नीलिका' है। औषधियों में इसी को 'ज्योति' कहा करते हैं। भूमि में इसको 'ऊषर' इस नाम से पुकारते हैं ॥३॥ हृदय में वेदना-हृद्देन अर्थात् जी की मतली—खांसी—स्तम्भ और त्वचा आदि में शीतलता अर्थात् शरीर का ठण्डा पड़ जाना—सम्पूर्ण अङ्गों में पीड़ा का उत्पन्न होना ये सब

होता है ॥६॥ लाला प्रसेक अर्थात् मुख से लारों का गिरना—हृल्लास—क्षुधा का न रहना—मुख मे पानी का आना—शरीर के अङ्गों मे स्वच्छता-शीतता और भारीपन रहना—पेशाब का अधिक आना—विशेष रूप से जीर्णता का न होना और ग्लानि का न होना ये सब पाप ज्वर के लक्षण हुआ करते हैं। जो खाये हुए पदार्थ का परिपाक होकर पूर्ण रस नही बनता है और कच्चा ही रह जाता है वह आम कहा जाता है जोकि मल के साथ चिकना-सा निकला करता है ॥७॥

क्षुत्क्षामता लघुत्वश्च गात्राणां ज्वरमार्दवम्।
दोषप्रवृत्तिरष्टाहान्निरामज्वरलक्षणम् ॥
यथा स्वलिङ्गं संसर्गे ज्वरसंसर्गजोऽपि वा ॥८
शिरोर्त्तिमूर्च्छावमिदेहदाहकण्ठास्यशोषारुचि पर्वभेदाः।
उन्निद्रता सम्भ्रमरोमहर्षा जृम्भातिवाक्त्वं पवनात्सपित्तात् ॥६
तापहान्यरुचिपर्वशिरोमरुक्षीणश्वासकासविवर्णाः।
शीतजाड्यतिमितभ्रमितन्द्राश्लेष्मवातजनितज्वरलिङ्गम् ॥१०
शीतस्तम्भस्वेददाहाव्यवस्थास्तृष्णा कासः श्लेष्मपित्तप्रवृत्तिः।
मोहस्तन्द्रा लिप्ततिक्तास्यता च ज्ञेयं रूपं श्लेष्मपित्तज्वरस्य ॥११
सर्वजो लक्षणैः सर्वैर्दाहोऽत्र च मुहुर्मुहुः।
तद्वच्छीतं तिमिरनिद्रा दिवा जागरणं निशि ॥१२
सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदो हि नैव वा।
गीतनर्त्तनहास्यादिः प्रकृतेहाप्रवर्त्तनम् ॥१३
साश्रुणी कलुषे रक्ते भुग्ने लुलितपक्ष्मणी।
अक्षिणी पिण्डिकापार्श्वशिरःपर्वास्थिरुग्भ्रमः ॥१४

क्षुधा से क्षामता का होना—गात्रों की लघुता अर्थात् हलकापन—ज्वर मार्दव-दोष की प्रवृत्ति आठ दिन में होती है—यह निराम ज्वर का लक्षण होता है। अपने चिह्न जैसे संसर्ग मे हैं अथवा ज्वर के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला भी यह होता है ॥८॥ शिर मे बड़ा दर्द—मूर्च्छा अर्थात् बेहोशी का होना वमि अर्थात् उल्टी का होना-शरीर मे दाह का होना—गले और मुख का शुष्क

अरुचिश्चाविपाकश्च स्तम्भमालस्यमेव च ।
हृद्दाहश्च विपाकश्च तन्द्रा चालस्यमेव च ॥
वस्तिविमर्दाविनया दोषाणामप्रवर्त्तनम् ॥६

लालाप्रसेको हृल्लासः क्षुन्नाशो रसद मुखम् ।
स्वच्छमस्रगुरुत्वञ्च गात्राणां बहुमूत्रता ॥
न विजीर्णं न च ग्लानिर्ज्वरस्यामस्य लक्षणम् ॥७

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—अब समस्त प्रकार के ज्वरों के ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्वर का निदान बतलाया जाता है। यह सब रोगों का स्वामी है—पाप स्वरूप है—मृत्युराज—अशन (भक्षण करने वाला) और अन्त कर देने वाला होता है। यह दक्ष प्रजापति पर क्रोध करने वाले और उसके यज्ञ को विध्वंस करने वाले भगवान् रुद्र के ऊपर के तीसरे नेत्र से उत्पन्न हुआ था ॥१॥ उस ज्वर का सन्ताप मोह से परिपूर्ण होता है। यह सन्तापात्मा और अपचार से समुत्पन्न होने वाला है। यह विविध नामों से युक्त एवं अत्यन्त क्रूर और नाना योनियों में होता है ॥२॥ हाथियों में जो ज्वर का अभितार होता है उसका नाम 'पाकल' होता है। घोड़ों में होने वाले ताप को 'अलर्क' नाम से कहा जाता है। कूकरों में जो ज्वर होता है उसको 'इन्द्रामद' कहते हैं। जलदों में जल में इसका नाम 'नीलिका' है। औषधियों में इसी को 'ज्योति' कहा करते हैं। भूमि में इसको 'ऊपर' इस नाम से पुकारते हैं ॥३॥ हृदय में वेदना-छर्दन अर्थात् जी की मतली—खासी—स्तम्भ और त्वचा आदि में शीतलता अर्थात् शरीर का ठण्डा पड़ जाना—सम्पूर्ण अङ्गों में पीड़ा का उत्पन्न होना ये सब कफ के दोष से उत्पन्न ज्वर में होते हैं ॥४॥ किसी काल में इन सबका शमन और किसी समय में प्रवृत्ति तथा बढ़ाव हुआ करता है। निदान में उक्त अनुपशम अथवा इनसे विपरीत होता है ॥ ५ ॥ अरुचि—अविपाक अर्थात् किसी भी पदार्थ की ओर रुचि का न होना और खाये हुए पदार्थ का परिपाक न होना—स्तम्भ मानों शरीर का ज्यों कि त्यों रह जाना—आलस्य (शरीर में सुस्ती का होना)—हृदय में दाह अर्थात् जलन का होना—विपाक—तन्द्रा (नींद जैसी खुमारी का रहना)—आलस्य—वस्ति—विमर्द इनसे दोषों का प्रवर्त्तन नहीं

होता है ॥६॥ लाला प्रसेक अर्थात् मुख से लारों का गिरना—हृल्लास—क्षुधा का न रहना—मुख में पानी का आना—शरीर के अङ्गों में स्वच्छता—उष्णता और भारीपन रहना—पेशाब का अधिक आना—विशेष रूप से जीर्णता का न होना और ग्लानि का न होना ये सब आम ज्वर के लक्षण हुआ करते हैं। जो खाये हुए पदार्थ का परिपाक होकर पूर्ण रस नहीं बनता है और कच्चा ही रह जाता है वह आम कहा जाता है जोकि मल के साथ चिकना-सा निकला करता है ॥७॥

> क्षुत्क्षामता लघुत्वञ्च गात्राणां ज्वरमार्दवम् ।
> दोषप्रवृत्तिरष्टाहान्निरामज्वरलक्षणम् ॥
> यथा स्वलिङ्गं संसर्गे ज्वरसंसर्गजोऽपि वा ॥८
> शिरोर्तिमूर्च्छावमिदेहदाहकण्ठास्यशोषावपि पर्वभेदा ।
> उन्निद्रता सम्भ्रमरोमहर्षा जृम्भातिवाक्त्वं पवनात्सपित्तात् ॥९
> तापहान्यरुचिपर्वशिरोरुक्श्लेष्मश्वासकासविवर्मा ।
> शीतजाड्यतिमितभ्रमिनन्द्राश्लेष्मवातजनितज्वरलिङ्गम् ॥१०
> शीतस्तम्भस्वेददाहाव्यवस्थास्तृष्णा कास श्लेष्मपित्तप्रवृत्ति ।
> मोहस्तन्द्रा लिप्ततिक्तास्यता च ज्ञेयं रूपं श्लेष्मपित्तज्वरस्य ॥११
> सर्वजो लक्षणैः सर्वैर्दाहोऽत्र च मुहुर्मुहुः ।
> तद्वच्छीत तिमिरनिद्रा दिवा जागरणं निशि ॥१२
> सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदो हि नैव वा ।
> गीतनर्तनहास्यादि प्रकृतेहाप्रवर्तनम् ॥१३
> साश्रुणी कलुषे रक्ते भुग्ने लुलितपक्ष्मणी ।
> अक्षिणी पिण्डिकापार्श्वशिरःपर्वास्थिकम्रम. ॥१४

क्षुधा से क्षामता का होना—गात्रों की लघुता अर्थात् हलकापन— ज्वर मार्दव-दोष की प्रवृत्ति आठ दिन में होती है—यह निराम ज्वर का लक्षण होता है। अपने चिह्न जैसे संसर्ग में हैं अथवा ज्वर के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला भी वह होता है ॥८॥ शिर में बड़ा दर्द—मूर्च्छा अर्थात् बेहोशी का होना वमि अर्थात् उल्टी का होना—शरीर में दाह का होना—गले और मुख का सूख

रहना—शरीर के जोड़ो मे भेदन का होना—नीद का न आना—सम्भ्रम अर्थात् घबकर आना—रोमाञ्चो का होना—जँभाइयो का अधिक आना और जरबक देना ये लक्षण पित्त के साथ वायु के दोष से हुआ करते हैं ॥ ९ ॥ ताप की कमी—अरुचि—गाँठो मे और माथे मे पीड़ा—श्वास का क्षीणता के साथ चलना—खामी का होना—विवर्णता—छीन का आना—जड़ता—आँखो के सामने अँधेरापन का होना—तन्द्रा का रहना ये सब कफ और वात मे मिश्रित होकर उत्पन्न होने वाले ज्वर का लक्षण होता है ॥१०॥ शीत-स्तम्भता-पसीने का आना—दाह का होना और इनकी कोई व्यवस्था का न रहना अर्थात् कभी पसीना आता है—दाह होता है और कभी-कभी ये नहीं होते हैं। प्यास का अधिक लगना—खासी का होना ये सब लक्षण हो तो समझ लेना चाहिए कि रोगी को कफ और पित्त से मिश्रित ज्वर है। जब कफ और पित्त दोनों ही दोष मिलकर कुपित होते हैं तब ऐसे ही रोगी के लक्षण हुआ करते हैं। इलेष्म (कफ) और पित्त से होने वाले ज्वर का यही स्वरूप होता है कि उसको मोह-तन्द्रा और मुख का लिप्त-सा होना तथा तिक्त स्वाद का रहना होता है ॥११॥ यदि ये सभी लक्षण दिखलाई देवें तो समझना चाहिए कि सभी दोषो से युत ज्वर है। इसमे बार-बार दाह होता है। इसी प्रकार से शीत-अँधेरा-निद्रा दिन मे होना और रात्रि मे जागरण होता है ॥१२॥ अथवा सदा ही निद्रा नहीं होती है या नीद ही रहा करती है। कभी-कभी बहुत अधिक पसीना आता है और कभी बिल्कुल भी नही होता है। (गीत-नृत्य और हास्य आदि प्रकृत चेष्टाओ की प्रवृत्ति होती है ॥ १३ ॥) नेत्रो मे आँसू होते हैं और आँखें कलुषित रक्त-भुग्न-झुकी हुई पलको वाली रहा करती हैं। पिंडलियाँ—पनवाडे—माथे और जोड़ो मे तथा हड्डियों मे वेदना होती है और भ्रम होता है ॥१४॥

सस्वनौ सरुजौ कर्णौ महाशीतो हि नैव वा ।
परिदग्धा खरा जिह्वा गुरुस्रस्ताङ्गसन्धिता ॥१५
ष्ठीवन रक्तपित्तस्य लोठन शिरसोऽतितृट् ।
कोठाना श्यावरक्ताना मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥१६
हृद्व्यथा मलससर्ग: प्रवृत्तिर्वाल्पशोऽति वा ।
स्निग्धास्यता बलभ्रंश: स्वरसाद प्रलापित: ॥१७

दोषपाकश्चिरं तन्द्रा प्रततं कण्ठकूजनम् ।
सन्निपातमभिन्यास तं ब्रूयाच्च हतौजसम् ॥१८
वायुना कण्ठरुद्धेन पित्तमन्त-सुपीडितम् ।
व्यवायित्वाच्च सौक्ष्याच्च बहिर्मार्गं प्रपद्यते ॥
तेन हारिद्रनेत्रत्वं सन्निपातोद्भवे ज्वरे ॥१९
दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥२०
अन्यत्र सन्निपातोत्थं यत्र पित्तं पृथक् स्थितम् ।
त्वचि कोष्ठे च वा दाह विदधाति पुरोऽनु वा ॥२१

कानो में भी पीड़ा होती है और भुन–भुनाहट–सी होती रहती है। कभी–कभी महान् शीत होता है और कभी नहीं होता है। जीभ परिदग्ध और खरखरी रहा करती है। अङ्गों की सन्धियों में गुरुता और स्रस्तता रहती है ॥१५॥ थूक में रक्त पित्त होता है। शिर में लोठन होता है और प्यास बहुत अधिक लगती है। कोष्ठ श्याव तथा रक्त वर्ण के होते हैं और मण्डलों का दर्शन भी होता है ॥१६॥ हृदय में व्यथा होती है। मल का समर्ग ऐसा होता है कि कभी तो बहुत अधिक जाता है और कभी अत्यन्त अल्प ही निकलता है। मुख का जायका स्निग्धता वाला होता है जैसे कोई लुआवसा घुल रहा हो। बल की क्षीणता हो जाती है। स्वर भी बिगड़ जाया करता है। कभी–कभी प्रलाप होता है ॥१७॥ चिरकाल में दोष का परिपाक होता है। तन्द्रा और कण्ठ में घरघराहट की आवाज होती है। जिसमें ओज का हनन हो जाता है ऐसा यह अभिन्यास सन्निपात कहते हैं ॥ १८ ॥ वायु के द्वारा कण्ठ के रुद्ध हो जाने से अन्दर पित्त सुपीडित होता है। वह व्यवायी और सौक्ष्य होने से बाहिर के मार्ग को प्राप्त होता है। सन्निपात से उत्पन्न होने वाले ज्वर में नेत्रों में हल्दी के समान नेत्रों का रङ्ग हो जाता है ॥१९॥ सब प्रकार से पूर्ण लक्षणों वाला रोग सन्निपात ज्वर एक असाध्य रोग हो जाता है अथवा साध्य भी होता है तो यह बहुत कठिनाई से अच्छा होता है। दोषों के बढ जाने पर अग्नि नष्ट हो जाया करती है ॥२०॥ अन्यत्र सन्निपात से उठा हुआ जब पित्त पृथक् स्थित होता है तो त्वचा में––कोष्ठ में पहिले या पीछे दाह किया करता है ॥२१॥

तद्वद्वातकफे शीत दाहादिर्दुस्तरस्तयो ।
शीतादौ तत्र पित्तेन कफे स्यन्दितशोषिते ॥२२
पित्ते शान्तेऽथ वं मूर्च्छा मदस्तृष्णा च जायते ।
दाहादौ पुनरन्तेषु तन्द्रालस्ये वमि क्रमात् ॥२३
आगन्तुरभिघाताभिषङ्गशापाभिचारत ।
चतुर्धा तु कृत स्वेदो दाहाद्यैरभिघातज ॥२४
श्रमाच्च तस्मिन्पवन प्रायो रक्त प्रदूषयन् ।
सव्यथाशोकवैवर्ण्यं सरुज कुरुते ज्वरम् ॥२५

इसी प्रकार से वात—कफ में शीत और दुस्तर दाह आदि उन दोनो में हुआ करते हैं। उस दशा मे शीत आदि मे पित्त के द्वारा कफ के स्पन्दित एव शोषित होने पर तथा पित्त के शान्त हो जाने पर मूर्च्छा—मद और तृष्णा हो जाते हैं। दाह के आदि मे और फिर अन्त में तन्द्रा—आलस्य और वमन क्रम से हुआ करते हैं ॥२२।२३॥ अभिघात—अभिषङ्ग—शाप और अभिचार इनसे आने वाला चार तरह से किया हुआ स्वेद (पसीना) होता है। दाहादि से अभिघातज होता है ॥ २४ ॥ क्रम से उसमें वायु बहुधा रक्त को दूषित करता हुआ व्यथा—शोक और विवर्णता के सहित ज्वर को सरुज किया करता है।२५।

६६—चिकित्सा के विभिन्न योग

एव धन्वन्तरिर्विष्णु सुश्रुतादीनुवाच ह ।
हरि पुनर्हरायाह नानायोगान्रुगर्दनान् ॥१
सर्वज्वरेषु प्रथम कार्यं शङ्कर लङ्घनम् ।
क्वथितोदकपानञ्च तथा निर्वातसेवनम् ॥२
अग्निस्वेदाज्ज्वरास्त्वेव नाशमायान्ति हीश्वर ।
वातज्वरहर क्वाथो गुडूच्या मुस्तकस्य च ॥३
दुरालभं कृत क्वाथ पित्तज्वर हर शृणु ।
शुण्ठीपर्पटमुस्तैश्च वालकोशीरचन्दनं ॥४
साज्य क्वाथ श्लेष्मजन्तु सशुण्ठि सदुरालभ. ।
सवालक. सर्वज्वर सशुण्ठि सहपर्पट. ॥५

क्वाथश्च तिक्तकैरण्डगुडूचीशुण्ठिमुस्तकैः ।
पित्तज्वरहरः स्याच्च शृण्वन्य योगमुत्तमम् ॥६
बालकोशीरपाठाभिः कण्टकारिकमुस्तकैः ।
ज्वरघ्नश्च कृतः क्वाथस्तथा वै ज्वरदारुणः ॥७

श्री रुद्र ने कहा—इस प्रकार से विष्णु के प्रवतर भगवान् धन्वन्तरि ने शङ्कर जी को रोग के मर्दन करने वाले अनेक योग बतल ये थे। श्री हरि ने कहा—हे शङ्कर ! सभी प्रकार के ज्वरों में सबसे प्रथम लङ्घन करना चाहिए अर्थात् भोजन बिल्कुल त्याग देना चाहिए। औटाया हुआ पानी का पान करना और किसी निर्वात स्थान में जहाँ कि हवा का सञ्चार न हो रहना ज्वर के रोगी को हितकर होता है ॥ १।२ ॥ हे ईश्वर ! इस प्रकार से अग्नि स्वेद से ज्वर नाश को प्राप्त हुआ करते हैं। यदि वात ज्वर हो अर्थात् वायु कुपित होकर ज्वर की उत्पत्ति हुई हो तो गिलोय और मुस्तक का क्वाथ (काढ़ा) देना चाहिए। इससे वात ज्वर का प्रशमन होता है ॥३॥ अब पित्त के दोष से आने वाले ज्वर का हरण करने वाले काढ़े का विवरण श्रवण करो। दुरालभ शुण्ठी (सोंठ)—पर्पट और मुस्त (मोथा) तथा बालकोशीर (नवीन खस) और चन्दन के द्वारा क्वाथ प्रस्तुत कर देवे ॥४।५॥ श्लेष्मा (कफ) के दोष से समुत्पन्न ज्वर का शमन करने के लिए पाठय और दुरालभ के सहित शुण्ठि से युक्त काढ़ा होता है। पर्पट और सोंठ से युक्त सबालक क्वाथ समस्त प्रकार के ज्वरों के शमन करने वाला होता है ॥६॥ तिक्तक—एरण्ड—गिलोय—सोंठ और मुस्तक इनके द्वारा तयार किया हुआ क्वाथ पित्त के दोष से होने वाले ज्वर का हरण किया करता है। इसके अतिरिक्त अन्य उत्तम योग का श्रवण करो ॥६॥ बालकोशीर पाठा—कण्टकारि—मुस्तक—इनसे प्रस्तुत किया हुआ क्वाथ ज्वर का नाशक होता है ॥७॥

धन्याकनिम्बमुस्तानां समधु स तु शङ्कर ।
पटोलपत्रयुक्तस्तु गुडूचीत्रिफलायुतः ॥
पीतोऽखिलज्वरहरः क्षुधाकृद्वातनुत्त्विदम् ॥८
हरीतकीपिप्पलीनामामलीचित्रकोद्भवम् ।
चूर्णं ज्वरश्च क्वथित धन्याकोशीरपर्पटैः ॥६

आमलक्या गुडूच्या च मधुयुक्तं सचन्दनम् ।
समस्तज्वरनुच्च स्यात्सन्निपातहरं शृणु ॥१०
हरिद्रानिम्बत्रिफलामुस्तकैर्देवदारुणा ।
कषायं कटुरोहिण्या सपटोलं सपत्रकम् ॥
त्रिदोषज्वरनुच्च स्यात्पीतन्तु क्वथितं जलम् ॥११
कण्टकार्य्या नागरस्य गुडूच्या पुष्करेण च ।
जग्ध्वा नागबलाचूर्णं श्वासकासादिनुद्भवेत् ॥१२

देवदारु–धन्याक–नीम और मुस्तक पटोल पत्र के सहित और गिलोय एवं त्रिफला से युक्त मधु से समन्वित क्वाथ हे शङ्कर ! पीने पर सब प्रकार के ज्वर का हरण करता है और इससे क्षुधा की भी वृद्धि होती है ॥ ८ ॥ हर्र–पीपल–आवला और चित्रक—इनका कूट–पीसकर बनाया हुआ चूर्ण भी ज्वर का नाशक होता है । धान्याक—उशीर और पर्पट के द्वारा औट या हुआ काढा आमलकी—गुडूची (गिलोय) के साथ जिसमें चन्दन भी ज्वर को नष्ट करने वाला होता है और सभी प्रकार के ज्वरों का उखाड़ फेंकता है । अब सन्निपात ज्वर के हरण करने वाले योग का श्रवण करो ॥ ९।१० ॥ हरिद्रा–निम्ब–त्रिफला–मुस्तक–देवदारु–कटुरोहिणी का कषाय जोकि पटोल पत्र के सहित हो इसका काढा बनाकर पिलाया जावे तो त्रिदोष के कुपित होने पर जो ज्वर होता है उसका हरण हो जाता है ॥११॥ कण्टकारि (कटेरी)—नागर–गिलोय और पुष्कर के साथ नाग बला का चूर्ण खाने पर श्वास और खाँसी आदि का नाश हो जाता है ॥१२॥

कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासिने ।
विश्वपर्पटकोशीरमुस्तचन्दनसाधितम् ॥१३
दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ।
बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे ॥१४
पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूचीविश्वभेषजम् ।
वातज्वरे त्वयं क्वाथो दत्तः शान्तिकरः परः ॥
पित्तज्वरनुत्समधुः क्वाथः पर्पटनिम्बयोः ॥१५

विधाने क्रियमाणेऽपि यस्य संज्ञा न जायते ।
पादयोस्तु ललाटे वा ददेल्लौहशलाकया ॥१६

तिक्ता पाठा पटोलश्च विशाला त्रिफला त्रिवृत् ।
सक्षीरो भेदनः क्वाथः सर्वज्वरविशोधनः ॥१७

कफ वात के ज्वर में पिपासु को सदा उष्ण जल ही पीने के लिए देना चाहिए। यह विश्व पर्पटक—उशीर—मुस्तक और चन्दन साधित किया होना चाहिए ॥१३॥ शीतल जल देने से तृषा—छर्दि—ज्वर और दाह का क्षय होता है। यदि वातिक ज्वर हो तो उसमे बिल्वादि पञ्चमूल का काढा देने से परम शान्ति होती है। पित्त ज्वर मे पर्पट और निम्ब का क्वाथ मधु के साथ पीने से ज्वर का उपशमन हो जाता है। वात ज्वर मे पिप्पलीमूल—गिलोय और विश्व भेज पाचन होते हैं और इनका क्वाथ वमन करने वाला होता है ॥१४।१५॥ इस प्रकार के विधान के करने पर भी यदि होश न होवे तो पैरो मे अथवा ललाट मे लोह की शलाका से दाह करना चाहिए ॥१६॥ तिक्ता—पाठा—पटोल—विशाला—त्रिफला—त्रिवृत् क्षीर के सहित किया हुआ क्वाथ भेदन तथा समस्त प्रकार के ज्वरो का विशेष रूप से शोधन करने वाला है ॥१७॥

१००—विविधौषधि (१)

सप्तरात्र्यात् प्रजायन्ते खल्वाटस्य कचाः शुभाः ।
दग्धहस्तिदन्तलेपात्साजाक्षीररसाञ्जनात् ॥१

भृङ्गराजरसेनैव चतुर्भागेन साधितम् ।
केशवृद्धिकरं तैलं गुञ्जाचूर्णान्वितेन च ॥२

एलामांसीकुष्ठमुरायुक्तमभ्युद्गत शिरः ।
गुञ्जाफलं समादेय लेपन चन्द्रलुप्तनुत् ॥३

आम्रास्थिचूर्णलेपाद् वै केशाः सूक्ष्मा भवन्ति च ।
करञ्जामलकलाः सलाक्षा लेपोऽरुणापहः ॥४

आम्रास्थिमज्जामलकलेपात्केशा भवन्ति च ।
बद्धमूला घना दीर्घाः स्निग्धाः स्युर्नोत्पतन्ति च ॥५

विडङ्गगन्धपाषाणसाधितं तैलमुत्तमम् ।
सचतुर्गुणगोमूत्र मनस. शिलमेव वा ॥
शिरोऽभ्यङ्गाच्छिरोजन्मयूकालिक्षा. क्षयं नयेत् ॥६
नवदग्ध शङ्खचूर्ण धृष्टसीसकलेपितम् ।
कचा श्लक्ष्णा महाकृष्णा भवन्ति वृषभध्वज ॥७

श्री भगवान् ने कहा—जिसका मस्तक खल्वाट होता है अर्थात् जिसकी चांद मे बाल न हों उस मनुष्य के माथे मे बहुत सुन्दर केश सात रात्रियो मे ही आजाया करते हैं यदि हाथी दांत को भस्म कर उसका लेप किया जावे और साजा के दूध रसाञ्जन से करे। भृङ्गराज के रस के साथ तैल चतुर्भाग मे साधित करके गुञ्जा के चूर्ण से युक्त स्तेमाल किया जावे तो यह केशों की वृद्धि करने वाला होता है ॥ १।२ ॥ एला–मांसी–कुष्ठ–मुरा इनका अभ्यङ्ग शिर मे करे *और गुञ्जा के फलो का लेपन करे तो चन्द्र का लोप होता है अर्थात् केशों का* अभाव दूर हो जाता है ॥ ३ ॥ आम्र की अस्थियो के चूर्ण का लेप करने केश सूक्ष्म हो जाया करते हैं। करञ्ज—आमलक—एला (इलायची) ये लाक्षा के साथ लेप करने से अरुणा का अपहरण होता है ॥ ४ ॥ आम्रास्थि मज्जा—आंवला इनके लेप से केश दृढमूल–घने–स्निग्ध होते हैं और उनका उत्पतन नहीं होता है। *यायविडङ्ग गन्ध पाषाण के द्वारा साधित तैल भी परम उत्तम* होता है। चौगुना गोमूत्र और मैनशिल इनका शिर अभ्यङ्ग करे तो केशो में जो भी जूआ लीक आदि उत्पन्न होकर पीडा देते हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं ॥५-॥६॥ हे वृषभध्वज ! नवीन तयार किया हुआ शङ्ख को भस्म का चूरण सीसे पर घिसकर लेप करे तो बाल श्लक्ष्ण (घने) और अत्यन्त काले होजाते हैं ॥७॥

भृङ्गराज लोहचूर्णं त्रिफला बीजपूरकम् ।
नीली च करवीरश्च गुडमेतैः समैः शृतम् ॥
पलितानीह कृष्णानि कुर्य्याल्लेपान्महौषधम् ॥८
आम्रास्थिमज्जा त्रिफला नीली च भृङ्गराजकम् ।
जीर्णं पक्वलोहचूर्णं काञ्जिक कृष्णकेशकृत् ॥९
चक्रमर्दकबीजानि कुष्ठमेरण्डमूलकम् ।
सारयुक्तानाञ्जिकः पिष्टा लेपान्मस्तकरोगनुत् ॥१०

सैन्धवञ्च वचा हिङ्गु कुष्ठं नागेश्वरं तथा ।
शतपुष्पा देवदारु एभिस्तैलं तु साधितम् ॥११
गोपुरीषरसेनैव चतुर्भागेन संयुतम् ।
तत्कर्णभरण दुग्रकर्णशूलं क्षयं नयेत् ॥१२
मेषमूत्रसैन्धवाभ्यां कर्णयोर्भरणाच्छिव ।
कर्णयोः पूतिनादः स्यात्कृमिस्रावादिकस्य च ॥१३
मालतीपुष्पदलयो रसेन भरणात्तथा ।
गोजलेनैव पूरेण पूयस्रावो विनश्यति ॥१४
कुष्ठमाषमरीचानि तगरं मधु पिप्पली ।
अपामार्गोऽश्वगन्धा च बृहती सितसर्षपाः ॥१५
यवास्तिलाः सैन्धवश्च लेपामुद्वर्त्तनं शुभम् ।
लिङ्गबाहुस्तम्भनाशं कर्णयोवृ द्धकृद्भवेत् ॥१६

भृङ्गराज (भँगरा–एक बूँटी का नाम)—लोहे का बुरादा–त्रिफला–बिजौरा—नील—करवीर—इन समस्त वस्तुओं के समान ही गुड़ डाले और शूर्ण करके फिर लेप करे तो जो केश पलित अर्थात् श्वेत होगये हैं वे पुनः काले हो जाया करते हैं। पलित के मिटाने की यह महौषधि है ॥८॥ आम्रास्थि—आम्र की मज्जा–त्रिफला (हर्र–बहेड़ा–आवला) नीली–भृङ्गराज इन सबको जीर्ण करे (पकावे) और उसमें लोहे का बुरादा कांजी डाले तो लेप करने पर केशों को कृष्ण (काला) करता है ॥ ९ ॥ चक्रमर्दक के बीज–कुष्ठ–एरण्ड (अरण्डुआ–एक वृक्ष का नाम) की जड़—इन सबको कांजी के साथ पीसकर गर्म करे और फिर लेप करे तो मस्तक के सम्पूर्ण रोगों का हरण होता है ॥१०॥ सैन्धव (सैंधा नमक)–वच–हींग–कुष्ठ–नागेश्वर–शत पुष्पा–देवदारु इन सबको समान भाग में लेकर तैल में पाक करे और तैल को साधित कर छान कर तयार करे। इससे भी शिर की समस्त पीड़ाऐं क्षीण होती हैं। इस तेल को गोबर के चतुर्भाग रस से युक्त कर कान में डाले तो कान का दर्द नष्ट हो जाता है ॥११।१२॥ मेष का मूत्र और सैन्धव इन दोनों को मिलाकर हे शिव! कान में डालने से कानों की दुर्गन्ध का नाश होता है और कान में कोई कृमि हो या

कान से स्राव होता हो अर्थात् कान बहता हो तो वह भी नष्ट होजाता है ।१३। मालती लता के पुष्प और उसके दलों का रस के डालने से अथवा गो-मूत्र के डालने से भी पूय का स्राव नष्ट हो जाता है ॥ १४ ॥ कुष्ठ—माष और मिर्च-तगार—मधु तथा पीपल—अपामार्ग (ओंघा—एक बूँटी का नाम)—अश्वगन्धा बृहती और सफेद सरसों—यव (जौ)—तिल और सैन्धव इनका उद्वर्त्तन (उबटना) बनाकर लगावे तो यह बहुत ही अच्छा होता है । इससे—बाहु के स्तम्भ का नाश होता है और कर्णों की वृद्धि करने वाला होता है ॥१५।१६॥

१०१—विविधौषधि (२)

शोभाञ्जनपत्ररसं मधुयुक्तं हि चक्षुषोः ।
भरणाद्रोगहरणं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥१
अशीतितिलपुष्पाणि जात्याश्च कुसुमानि च ।
उपनिम्बामलाशुण्ठीपिप्पलीतण्डुलीयकम् ॥२
छायाशुष्का वटी कुर्य्यात् पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
मधुना सह सा चाक्ष्णोरञ्जनात्तिमिरादिनुत् ॥३
विभीतकास्थिमज्जा तु शङ्खनाभिर्मनःशिलाः ।
निम्बपत्रमरीचानि अजामूत्रेण पेषयेत् ॥
पुष्पं रात्र्यन्धतां हन्ति तिमिरं पटलं तथा ॥४
चतुर्भागानि शङ्खस्य तदर्द्धेन मनःशिला ।
सैन्धवञ्च तदर्द्धेन एतत् पिष्टोदकेन तु ॥५
छायाशुष्का तु वटिका कृत्वा नयनमञ्जयेत् ।
तिमिरं पटलं हन्ति पिञ्जटस्य महौषधम् ॥६
त्रिकटु त्रिफला चैव करञ्जस्य फलानि च ।
सैन्धवं रजनी द्वे च भृङ्गराजरसेन हि ॥
पिष्ट्वा तदञ्जनादेव तिमिरादिविनाशनम् ॥७

श्री हरि ने कहा—शोभाञ्जन (सहजन—एक वृक्ष का नाम) के पत्ते का रस मधु के साथ मिश्रित करके नेत्रों में डाले तो नेत्रों के रोगों का हरण हो जाता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१॥ अशीति तिल के पुष्प और

जाती के पुष्प–उपनिम्ब–आवला–सौठ–पिप्पली—तण्डुलीयक—इन सबको पीस कर वटी बनावे और उन्हे छाया मे ही सुखा लेवे। तात्पर्य यह है कि चावलो के जल के साथ इनको पीसे। चावलो के पानी से तात्पर्य चावल भिगोकर मसल कर उस पानी के साथ घर्षण कर वटी निर्मित करे। इस वटी को घिस-कर शहद के साथ आँखो मे अञ्जन लगावे तो आँखो मे जो तिमिरान्धता होती है वह नष्ट हो जाती है ॥२।३॥ बिभी तक की अस्थि और उसकी मज्जा–शङ्ख नाभि–मैनशिल–नीम के पत्ते—कालीमिर्च इन सबको बकरी के मूत्र के साथ पेषण करे फिर इसका अञ्जन करे तो रात्र्यन्धता (रतोंध) का हनन होजाता है तथा आँखो के सामने जो अँधेरा-सा छा जाता है उसका नाश हो जाता है ॥४॥ चार भाग शङ्ख के और इसमें आधा भाग मैनशिल तथा मैनशिल का आधा भाग सैन्धव इन तीनो को जल के साथ पीसकर वटी बना लेवे और उन्हे छाया मैं शुष्क कर लेवे फिर उस वटी का नेत्रो मे अञ्जन करे तो तिमिर के पटल का क्षय हो जाता है। यह पिञ्जटक की महान् उत्तम औषध है ॥५॥ ॥६॥ त्रिकुटा (सौंठ–मिर्च–पीपल)–अथवा त्रिकुट त्रिफला और करञ्ज के फल सैन्धव और दोनो हल्दी इनको भँगरा के रस से पीस लेवे फिर अञ्जन करे तो तिमिर आदि का नाश हो जाता है ॥७॥

अटरूपकमूलं तु काञ्जिकापिष्टमेव तु।
तेनाक्ष्णोर्भू रिलेपाच्च चक्षु शूलं विनश्यति ॥८
शतद्रु बदरीमूलं पीतमक्षिव्यथा हरेत्।
सैन्धवं कटुतैलश्च अपामार्गस्य मूलकम् ॥९
क्षीरकाजिकसघृष्ट ताम्रपात्रे तु तेन च।
अञ्जनात् पिञ्जटस्यैव नाशो भवति शङ्कर ॥
ॐ दद्रु सर क्रो ह्री ठ ठ दद्रु सर ह्री ह्री ॐ उं ॐ सर क्री
क्री ठः ठः आद्या वशमायान्ति मन्त्रेणानेन चाञ्जनात् ॥१०
बिल्वक नीलिकामूल पिष्टमभ्यञ्जनेन च।
अनेनाञ्जितमात्रेण नश्यन्ति तिमिराणि हि ॥११
पिप्पलीतगरञ्चैव हरिद्रामलकं वचा।
खदिरैः पिष्टवर्तिश्च अञ्जनान्नेत्ररोगनुत् ॥१२

नीरपूर्णमुखो धौति जलक्षेपेण योऽक्षिणी ।
प्रभाते नेत्ररोगैश्च नित्य सर्वै. प्रमुच्यते ॥१३
शुल्कैरण्डस्य मूलेन पत्रेणापि प्रसाधितम् ।
छागदुग्धसेकयुक्ताच्चक्षुषोर्वातरोगनुत् ॥१४

मटरूषक की जड को काञ्जी से पीसकर इससे बहुत बार आँखो पर लेप करे तो इससे चक्षुओ का शूल नष्ट हो जाता है ॥८। शनद्रू और बदरी का मूल को घोटकर पीवे तो नेत्रो की व्यथा दूर होती है। सैन्धव—कडुआ तेल और अपामार्ग का (औंगाका) मूल को क्षीर काञ्जी मे ताम्र के पात्र मे घर्षण करे और फिर अञ्जन करे तो हे शङ्कर! पिल्लट का नाश हो जाता है। इस अञ्जन के करने मे मन्त्र का उच्चारण करना आवश्यक है। मन्त्र—"ॐ दद्रु सर श्रो ह्रीं ठ ठ दद्रु सर ह्रों ह्रीं ॐ च ऊ क्रौं क्रौं ठ"—इत्य दि मन्त्रों के द्वारा आँजने से माया वश मे आ जाते हैं ॥९-१०॥ हस्त—नीलिका का मूल को पीस कर अञ्जन करे तो इसके आँजने मात्र मे ही तिमिरो का नाश हो जाता है ॥११॥ पिप्पली (पीपर)—नगर—हरिद्रा (हल्दी)—आमलक—(आवला) वच और खदिर इनको पीसकर एक वर्ति (वत्ती) बना लेवे। इसमे अञ्जन करने से समस्त नेत्रों के रोग का हनन हो जाता है ॥१२। प्रात.काल अति भोर मे उठकर ठण्डे पानी को मुँह मे भर लेवे और फिर शीतल जल से नित्य-प्रति नेत्रो को छपके दे देकर धोवे तो वह मनुष्य सभी नेत्रों के रोगों से मुक्त होजाया करता है ॥१३। शुक्ल—अरण्ड के मूल और पत्र से भी प्रसाधित तथा छाग के दूध से युक्त सेक से नेत्रों मे वात दोष से समुत्पन्न रोग का नाश होता है ॥१४॥

चन्दन सैन्धव वृद्धपलाशश्च हरीतकी ।
पटल कुसुम नीली चक्रिका हरतेऽञ्जनात् ॥
गुञ्जामूल छागमूत्रे घृष्ट तिमिरबन्धनुत् ॥१५
रौप्यताम्रसुवर्णाना हस्तघृष्टशलाकया ।
घृष्टमुद्वर्त्तन रुद्र कामलाव्याधिनाशनम् ॥१६
घोपाफलमथाघ्रात पीत कामलनाशनम् ।
दूर्वा दाडिमपुष्प तु अलक्तकहरीतकी ॥
नासार्शवातरक्तनुत्स्याद्वै स्वरसेन हि ॥१७

सुपिष्ट जिङ्गिनीमूल तद्रसेन वृषध्वज ।
नस्यादानाद्विनश्येत नासार्शो नीललोहित. ॥१८

गव्य घृत सर्ज्जरस रुद्र धन्याकसैन्धवम् ।
धुस्तूरक गैरिकञ्च एतै साधितसिक्थकम् ॥
सतैल व्रणनुत् स्याच्च स्फुटितोच्चटिताधरे ॥१९

जातीपत्रञ्च चर्वित्वा विधृत मुखरोगनुत् ।
भक्षणात्केशरबीजस्य दन्ता स्युश्चलिता स्थिरा. ॥२०

मुस्तक कुष्ठमेला च माक्षिक मधुवालकम् ।
धन्याकमेतदशनान्मुखदुर्गन्धनुद्धर ॥२१

कषाय कटुक वापि तिक्तशाकस्य भक्षणात् ।
तैलयुक्तस्य नित्य स्यान्मुखदुर्गन्धताक्षय ॥
दन्तव्रणानि सर्वाणि क्षय गच्छन्त्यनेन तु ॥२२

चन्दन—सैन्धव—वृद्ध पलाश—हरीतकी (हर्र)–पटम कुसुम–नीली इनका अञ्जन करने से चक्रिका का हरण होता है । गुञ्जा की जड को बकरी के मूत्र मे घर्षण कर आँजने से तिमिर के बन्ध का हनन हो जाता है ॥१५॥ हे रुद्र ! चाँदी–ताम्र और सुवर्ण की शलाका (सलाई) ■ घर्षण किया उद्वर्तन कामला व्याधि का नाशक है ॥ १६ ॥ घोषा के फल सूघना और पीना भी कामला रोग को नष्ट किया करता है । दूर्वा (दूब)–दाडिम पुष्प (अनार का फूल)–अलक्तक—हरीतकी नाक के अर्श और वात रक्त का नाश करने वाला है । इसके स्वरस ■ जिङ्गिनी के मूल को भली भाँति पीसकर अथवा इसके रस से नस्य लेवे तो इससे नील लोहित नाक का अर्श नष्ट हो जाता है ॥१७॥ ॥१८॥ गौ का घृत–सर्ज रस–धन्याक–सैन्धव–धुस्तूरक और गैरिक (गेरू) इन सबके द्वारा बनाया हुआ सिक्थक तैल से युक्त व्रण का नाशक है जोकि स्फुटित और उच्चटित अधर मे होता है ॥ १९ ॥ जाती के पत्तो को चबाकर मुँह मे कुछ समय तक रक्खे तो मुख के रोग का नाश होता है । केशर के बीजों के चरने से जो दाँत हिलते हों तो वे भी स्थिर हो जाया करते है ॥२०॥ मुस्तक कुष्ठ–एला (इलायची)—माक्षिक—मधुवालक—धन्याक इनके अदन करने से

अर्थात् खाने से मुख मे जो दुर्गन्ध आती हो तो उसका नाश हो जाया करता है ॥२१॥ कषाय–कटु (कड़ुआ) और तिक्त शाक के भक्षण मे जोकि तैल से युक्त हो तो मुख की दुर्गन्धता का क्षय होता है। इससे सभी प्रकार के दांतो के व्रण भी नष्ट हो जाया करते हैं ॥२२॥

काञ्जिकस्य सतैलस्य गण्डूपकवलस्थितिः ।
ताम्बूलचूर्णं दग्धस्य मुखस्य व्याधिनुच्छित्र ॥२३
परित्यक्तिः श्लेष्मणश्च शुण्ठीचर्वणतो यथा ।
मातुलुङ्गवलान्येला यष्टीमधु च पिप्पली ॥२४
जातीपत्रमथैपाञ्च चूर्णं लीढं तथा कृतम् ।
शेफालिकाजटायाश्च चर्वणं गलशुण्ठिनुत् ॥२५
नासाशिरारक्तकर्णाग्निदयेच्छङ्कर जिह्विका ।
रस.शिरीषबीजाना हरिद्रायाश्चतुर्गुणः ॥२६
तैन पक्वेन भूतेश नस्यं मस्तकरोगनुत् ।
गलरोगा विनश्यन्ति नस्यमात्रेण तत्क्षणात् ॥२७
दन्तकीटविनाश. स्याद् गुञ्जामूलस्य चर्वणात् ।
काकजङ्घास्नुहीनीलीकषायो मधुयोजितः ॥
दन्ताक्रान्तं दन्तजाश्च क्रमीन्नाशयते शिव ॥२८
घृतं कर्कटपादेन दुग्धमिश्रेण साधितम् ।
तेन चार्म्यदिता दन्ताः कुर्य्युः कटकटां न हि ॥२९
लिप्त्वा कर्कटपादेन केवलेनाथवा शिव ।
त्रिसप्ताह वारिपिष्टा ज्योतिष्मत्याः फलानि हि ॥३०
शुक्नाभयामञ्जलेपाद्दन्तस्याङ्कलङ्कनुत् ।
लोध्रकुङ्कुममञ्जिष्ठालोहकालेयकानि च ॥३१
यवतण्डुलमेतैश्च यष्टीमधुसमन्वितैः ।
वारिपिष्टैर्वक्त्रलेपः स्त्रीणा शोभनवक्त्रकृत् ॥३२

हे शिव ! तैल युक्त काँजी से गण्डूष (कुल्लों) करे और मुँह मे भर कर कवल स्थिति करे। दग्ध मुख का व्याधि को ताम्बूल का चूर्ण नाश कर

देता है ।।२३।। जिस तरह शुण्ठी (सौंठ) के चर्वण करने से श्लेष्मा की परिव्यक्ति होती है अर्थात् कफ का विकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार से मातुलुङ्ग (नीबू) के फल—एला—यष्टि—मधु—पीपल और जाती पत्र इनका चूर्ण चाटा जावे या उसी तरह लेवे तो रोचालि का जरा का नाश होता है और चर्वण (चबाने) से गल शुण्डी का क्षय होता है ।।२४।२५।। हे शङ्कर ! नासा के शिरा के रक्त के कर्षण होने से नष्ट कर देता है । जिह्विका रस—शिरस के बीज और हरिद्रा का चतुर्गुण भाग हे भूतेश ! इससे पक्व कर बनाया हुआ नस्य माथे के रोगों का नाशक होता है । गले के तो सभी रोग नस्य के सूंघने मात्र से ही तुरन्त नष्ट हो जाया करते हैं ।।२६।२७।। गुञ्जा (चिरमिटी) की लता के मूल को लेकर चबावे तो दाँतों के कीडों का नाश हो जाया करता है । हे शिव ! काकजंघा (एक बूटी का नाम है जोकि क्षुप के रूप में प्रायः सर्वत्र प्राप्त होती है)—स्नुही (सैंहुड)—नीलोत्पल कषाय मधु से योजित करे । इससे दन्ताक्रान्त और दाँतों में समुत्पन्न कृमियों का नाश हो जाता है ।। २८ ।। दुग्ध से मिश्रित कर्कट पाद से प्रस्तुत किया हुआ घृत हो इससे अभ्यंजित दाँत कटकटाया नहीं करते हैं ।। २९ ।। हे शिव ! अथवा कर्कट पाद से लिप्त करे तो भी उक्त रोग का क्षय होता है । ज्योतिष्मती के फलों को तीन दफे तक जल से घर्षण करे । इससे तथा शुक्ल अभया (हर्रं) के मञ्जन से या लेप से दाँतों के ऊपर जो निशान हो जाते हैं उसके कलङ्क को दूर कर दिया जाता है । लोध—कुङ्कुम—मजीठ—लोह—का लेश—यव—तण्डुल—यष्टी और मधु इन सबको जल से पीसकर मुख पर लेपन करे तो स्त्रियों के मुख की शोभा बढ़ जाया करती है । यह एक प्रकार का मुख पर लगाने का उबटना है ।।३०।३१।३२।।

द्विभाग छागदुग्धेन तैलप्रस्थं तु साधितम् ।
रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालाक्षाणां कर्षकेण वा ।।
यष्टीमधुकुङ्कुमाभ्यां सप्ताहान्मुखकान्तिकृत् ।।३३
शुण्ठीश्च पिप्पलीचूर्णं गुडूची कण्टकारिका ।
एभिश्च क्वथितं वारि पीतं चाग्नि करोति वै ।।३४
वातमूत्रक्षयञ्चैव करोति प्रमथेश्वर ।
करञ्जकर्कटोशीर वृहती कटुरोहिणी ।।३५

गोक्षुरं क्वथितं त्वेभिर्वारि पीतं भ्रमापहम् ।
दाह पित्तज्वरं शोष मूर्च्छाञ्चैव क्षय नयेत् ॥३६

मध्वाज्यपिप्पलीचूर्णं क्वथित क्षीरसयुतम् ।
पीत हृद्रोगकासस्य विषमज्वरनुद्भवेत् ॥३७

क्वाथौषधीना सर्वासा कर्षाद्धं ग्राह्यमेव च ।
वयोऽनुरूपतो ज्ञेयो विशेषो वृषभध्वज ॥३८

दुग्ध पीत तु सयुक्तं गोपुरीषरसेन च ।
विषमज्वरनुत्स्याद्वै काकजङ्घारसस्तथा ॥३९

सशुण्ठीक्वथित क्षीर विषमज्वरनुद्भवेत् ।
यष्टीमधुकमुस्तञ्च सैन्धव बृहतीफलम् ॥४०

एतैर्नस्यप्रदानाद्वै निद्रा स्यात्पुरुषस्य च ।
मरीचमधुयुक्ताना नस्यान्निद्रा भवेच्छिव ॥४१

दो भाग छाग का दूध और एक प्रस्थ तैल साधित करे अथवा रक्त चन्दन—मजीठ और लाख एक कर्ष यष्टी—मधु और कुङ्कुम के साथ एक सप्ताह प्रयोग करे तो मुख की कान्ति बढ़ती है ॥ ३३॥ सोंठ—पीपल का चूर्ण गिलोय—कण्टकारी इनका क्वथित जल अर्थात् निर्माण किया हुआ काढ़ा पीया जावे तो अग्नि की वृद्धि करता है ॥ ३४ ॥ हे प्रमथेश्वर ! इससे वात मूल का क्षय होता है। करञ्ज—कर्कट—वशीर (खस)—बृहती—कटु रोहिणी—गोखरू—इन सबका पानी में क्वाथ पकाया जावे और उस काढ़े को पीवे तो भ्रम का अपहरण होता है। यह क्वाथ दाह—पित्त दोष के कुपित होने वाला पित्त ज्वर—शोष और मूर्च्छा— इन सबका भी क्षय किया करता है ॥३५।३६॥ मधु—आज्य (घृत) और पीपल का चूर्ण इनको क्वथित करके क्षीर से युक्त पीवे तो इससे हृद्रोग खाँसी और विषम ज्वर होता है ॥ ३७ ॥ समस्त क्वाथ करने की ओषधियों का आधा कर्ष ग्रहण करना चाहिए। हे वृषभ ध्वज ! विशेष अवस्था के अनुसार ही जानना चाहिए ॥ ३८ ॥ जो पारी से आने वाला विषम ज्वर होता है उसे निवारण करने के लिये गोमय के रस से सयुक्त कर पीया हुआ दूध ही पर्याप्त है। यष्टी—मधुक—मुस्त—सै-धव—बृहती फल—इन समस्त

वस्तुओं के द्वारा प्रस्तुत किया हुआ नस्य देने से पुरुष को निद्रा हो जाती है। हे शिव! कालीमिर्च मधु से युक्त करके नस्य देने से निद्रा होती है ॥३६ से ४१॥

मूलं तु काकजङ्घाया निद्राकृत्स्याच्छिरःस्थितम्।
सिद्धं तैलं काञ्जिकेन तथा सर्ज्जरसेन च ॥४२
शतोदकसमायुक्तं लेपात्सन्तापनाशनम्।
शोणितज्वरदाहेभ्यो जातसन्तापनुत्तथा ॥४३
शैलिशैवालाग्निमन्थः शुण्ठीपाषाणभेदकम्।
शोभाञ्जनं गोक्षुरं वा वरुणच्छन्नमेव च ॥४४
शोभाञ्जनस्य मूलञ्च एतैः क्वथितवारि च।
दत्वा हिङ्गुयवक्षारं पित्तवातविनाशनम् ॥४५
पिप्पली पिप्पलीमूलं तथा भल्लातकं शिव।
वार्येतैः क्वथितं पीतं शूलापस्मारनुद्भवेत् ॥४६
अश्वगन्धामूलकाभ्यां सिद्धा वल्मीकमृत्तिका।
एतया मर्दनाद्रुद्र ऊरुस्तम्भ प्रशाम्यति ॥४७
बृहतीकस्य वै मूलं संपिष्टमुदकेन च।
पीतं सञ्जातवातस्य विपाटनकृदेव च ॥४८
पीतं तक्रेण मूलञ्च आर्द्रस्य तगरस्य च।
हरेत झिञ्झिनीवातं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥४९
अस्थिसंहारमेकेन भक्तेन सह खादितम्।
पीतं मांसरसेनापि वातनुच्चास्थिभङ्गनुत् ॥५०

काक जंघा के मूल से भी निद्रा होती है। इससे सिद्ध किया हुआ तैल सिर में लगावे जो कि काञ्जिक तथा सर्जक रस से शतोदक से समायुक्त हो। इसके लेप से सन्ताप का नाश होता है। शोणित (रक्त) ज्वर और दाह से जो सन्ताप उत्पन्न होता है उसका नोदन करने वाला है ॥४२।४३॥ शैली–शैवाल–अग्निमन्थ–शुण्ठि–पाषाण भेदक–शोभाञ्जन–गोक्षुर अथवा वरुणच्छन्न और शोभाञ्जन का मूल इन सबका जल के साथ क्वाथ करें और देवे। हींग और यवाक्षार से पित्त और वात का विशेष रूप से नाश होता है।४४।४५। हे शिव!

कटिबद्धं निम्बूलमक्षिशूलहरं भवेत् ।
शणमूलं सताम्बूलं दग्धमिन्द्रियकल्पहृत् । ६३
अश्वस्विन्नहरिद्रा च श्वेतसर्षपमूलकम् ।
बीजानि मातुलुङ्गस्य एषामुद्वर्तनं समम् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण शुभदेहकरं भवेत् ॥६४
श्वेतापराजितापत्रं निम्बपत्ररसेन तु ।
नस्यदानाड्डाकिनीना पितॄणां ब्रह्मरक्षसाम् ॥
मोक्षः स्यान्मधुसारेण नस्याद्य वृषभध्वज ॥६५

आम के वृक्ष की जड के रस से ही शस्त्र के द्वारा होने वाला घाव भर जाया करता है । शस्त्र का घात क्षीयमान होता है और घृत से पूरित होता हुआ वह व्रण रहित हो जाया करता है ॥ ५८ ॥ शरपुंखा (लोक भाषा में सरपोंका)—लज्जालुका (लजवन्ती-छुईमुई)—पाठा (ग्वारपाठा) इनकी जड़ों को जल के साथ घोटकर शस्त्र से होने वाले घाव पर प्रलेप करे तो वह प्रशमित हो जाया करता है ॥५९॥ काक जंघा की जड से तीन रात्रि में ही शस्त्र घात का घाव शोषित हो जाया करता है और रोहित व्रण में पकाव आदि की वेदना का नाश कर दिया करती है ॥६०॥ जल के सहित तिल का तैल–अपामार्ग (औंगा) की जड इनके द्वारा दिये हुए सेक से प्रहार से उत्पन्न होने वाली वेदना का नाश हो जाता है ॥६१॥ अभया (हरीतकी)—सैन्धव (सैंधा नमक) शुण्ठी (सौंठ)—इनको जल के साथ पीस डाले और सेवन करे तो हे शङ्कर ! अजीर्ण का नाश होता है । अर्थात् भक्षित पदार्थ जो जीर्ण नहीं हो कर अपच करता है वह मिट जाया करती है ॥ ६२ ॥ नीम की जड को कमर में बाँध लेने से आँखों की शूल की पीडा का हरण हो जाता है । सन की जड ताम्बूल के सहित दग्ध किया हुआ इन्द्रिय कल्प का हरण करता है ॥६३॥ अश्व स्विन्न और हरिद्रा—श्वेत सर्षप (सफेद सरसों) का मूल—मातुलुङ्ग (नींबू) के बीज इन सबके समान भाग का उद्वर्त्तन (उबटना) बनावे । इस उद्वर्त्तन का सात रात्रि तक प्रयोग करे तो यह देह को शुभ करने वाला होता है ॥ ६४ ॥ श्वेत अपराजिता के पत्तों का नीम के पत्तों के रस के साथ नस्य प्रस्तुत कर देवे तो

डाकिनियों का—पितरों का और ब्रह्म राक्षसों का मोक्ष (छुटकारा) हो जाता है। मधुसार के द्वारा नस्य से भी हे वृषभध्वज ! उपर्युक्त बाधाओं से मुक्ति हो जाती है ॥६५॥

मूल श्वेतज्जयन्त्याश्च पुष्यर्क्षे तु समाहृतम् ।
श्वेतापराजितार्कस्य चित्रकस्य च मूलकम् ॥
कृत्वा तु वटिकां नारी तिलकेन वशीभवेत् ॥६६
पिप्पलीलोहचूर्णन्तु शुण्ठीश्चामलकानि च ।
समानि रुद्र जानीयात्सैन्धव मधुशर्करा ॥६७
उदुम्बरप्रमाणेन सप्ताहभक्षणात्समम् ।
पुमांश्च बलवान्स्यात्जीवेद्वर्षशतद्वयम् ॥
ॐ ठ ठ ठ इति सर्ववश्यप्रयोगपु प्रयुक्तः सर्वकामकृत् ॥६८
सगृह्य वृक्षात्काकस्य निलय प्रदहेच्च तत् ।
चिताग्नौ भस्म तच्छत्रोर्दत्तं शिरसि शङ्कर ॥६९
तमुच्चाटयते रुद्र शृणु तद्योगमुत्तमम् ।
निक्षिप्तश्च पुरीष यं वनमूषिकचर्मणि ॥७०
कटितन्तुनिबद्ध वै कुर्यान्मलनिरोधनम् ।
कृष्णकाकस्य रक्तेन यस्य नाम प्रलिख्यते ॥७१
मध्येमध्ये च्युतदले ततो निक्षिप्यते हर ।
स खाद्यते काकवृन्दैर्नारी पुरुष एव च ॥७२

पुष्य नक्षत्र मे श्वेत जयन्ती का मूल लावे—इसी प्रकार से श्वेत अपराजिता—अर्क और चित्रक का मूल लावे इन सबको जड़ो को पीस कर बटी बना लेवे और उस वटी से अपने मस्तक पर तिलक लगावे तो उस पुरुष को देखकर ही नारी वशीभूत हो जाती है ॥६६॥ पीपल लोह चूर्ण—आँवला सौंठ ये सब समभाग हे रुद्र ! जानने चाहिए सैन्धव—मधु और शर्करा इनके साथ गूलर के समान गोली बना कर बराबर एक सप्ताह तक भक्षण करने से वह पुरुष बहुत ही बलवान् हो जाता है और दो सौ वर्ष तक जीवित रहता है। "ॐ ठ ठ ठ" इस मन्त्र का समस्त वश्य के प्रयोगों में प्रयोग करने से सम्पूर्ण

काम वाला होता है ॥६७॥६८॥ वृक्ष से काक का घोंसला अर्थात् रहने का स्थान सग्रहीत करके उसे जला देवे। चिताग्नि मे जो भस्म हो उसे हे शङ्कर! शत्रु के शिर में डाल देवे तो हे रुद्र! उसका वह उच्चाटन कर देता है। अब उत्तम योग का श्रवण करो। वनैले चूहे के चर्म मे निक्षिप्त पुरीष को कमर मे तन्तु से निबद्ध कर देने से मल का निरोध हो जाता है। काले कौए के रक्त से जिसका नाम लिखा जाता है। हे हर! मध्य-मध्य मे च्युत दल मे इसके पश्चात् निक्षिप्त किया जाता है वह काक वृन्दों के द्वारा नाशी हो या पुरुष लाया जाता है ॥६९ से ७२॥

शर्करामध्वजाक्षीरं तिलगोक्षुरकं समम्।
स शत्रुं नाशयेद्रुद्र उच्चाटितमिद हर ॥७३
उलूककृष्णकाकस्य बिल्वस्याथ समिन्धनम्।
रुधिरेण समायुक्तं ययोर्नाम्ना तु हूयते ॥
तयोर्मध्ये महावैरं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥७४
भावित ऋक्षदुग्धेन मत्स्यस्य रोहितस्य च।
मास तत्साधित तैलं तदभ्यङ्गाच्च रोगनुत् ॥
चन्दनोदकनस्यात्तु रोमोत्थान भवेत्पुनः ॥७५
हस्ते लाङ्गलिकाकन्दं गृहीतं तेन लेपितम्।
शरीरं येन स पुमान्वृद्धेर्दर्पं व्यपोहति ॥७६
मयूररुधिरेणैव जीव संहरते शिव।
ज्वलतान्तु भुजङ्गानां बिलस्थानामपीश्वर ॥७७
देहश्रिताग्नौ दग्धश्च सर्पस्याजगरस्य हि।
तद् भस्म समुखे क्षिप्तं शत्रूणा भङ्गकृद् भवेत् ॥७८

शर्करा—मधु—बकरी का क्षीर—तिल—गोखरू ये सब समान भाग मे हों। हे रुद्र! यह उच्चाटन उस शत्रु का नाश करता है ॥७३॥ उलूक—कृष्ण काक के रक्त से संयुक्त बिल्व की सो सामिधा जिनके नाम से हवन की जाती है उन दोनों के बीच मे महान् वैर हो जाया करता है—इसमे कुछ भी संशय नही है ॥७४॥ मत्स्य रोहित का मास ऋक्ष के दुग्ध से भावित करे और उससे

फिर तैल को साधित करे तथा उस तेल से अभ्यङ्ग करे तो रोग का हरण होता है। चन्दनोदक के नस्य से पुनः रोमों का उत्थान हो जाता है ॥ ७५ ॥ हाथ में लाङ्गलिका के कन्द को ग्रहण कर के उस से शरीर को लेपित करे तो वह पुरुष वृद्धि के दर्प को नष्ट कर देता है ॥ ७६ ॥ हे शिव ! हे ईश्वर ! बिलों में स्थित भी भुजङ्गों के जीव को मयूर के रुधिर से ही संहरण करता है ॥७७॥ सर्प या अजगर का शरीर चिता की अग्नि में जलाया हुआ हो और उसका भस्म शत्रु के सामने डाल देने से उनके भङ्ग करने वाला होता है ॥ ७८ ॥

मन्त्रेणानेन तत्क्षिप्तं महाभङ्ग करं रिपोः ।
ॐ ठ ठ ठ चाहीहि चाहीहि स्वाहा ॥
ॐ उदर पाहिहि पाहिहि स्वाहा ॥७९
सुदर्शनाया मूल तु पुष्यर्क्षे च समाहृतम् ।
निक्षिप्तं गृहमध्ये तु भुजङ्गा वर्ज्जयन्ति तत् ॥८०
अर्कमूलेन रविणा अर्काग्निज्वलिता शिव ।
युक्ता सिद्धार्थतैलेन वत्तिर्मार्गाहिनाशिनी ॥८१
मार्जारपलल विष्ठा हरितालञ्च भावितम् ।
छागमूत्रेण तल्लिप्तो मूषिको मूषिकान्हरेत् ॥८२
मुक्तो हि मन्दिरे रुद्र नात्र कार्य्या विचारणा ।
त्रिफलार्जु नपुष्पाणि भल्लातकशिरीषकम् ॥८३
लाक्षा सर्जरसश्चैव विडङ्गश्चैव गुग्गुलः ।
एतद्धूपो मक्षिकाणां मशकानां विनाशनः ॥८४

यदि इस निम्नलिखित मन्त्र के द्वारा वह क्षिप्त की जावे तो शत्रु के महान् भङ्ग के करने वाला होता है। मन्त्र यह है—" ॐ ठ ठ ठ चा हाहि चाहीहि स्वाहा । ॐ उदर याहिहि स्वाहा " ॥७९॥ सुदर्शना का मूल जोकि पुष्य नक्षत्र में लाया गया हो। यदि इस घर के मध्य में निक्षिप्त कर दे तो उस घर को भुजङ्ग त्याग दिया करते हैं ॥ ८० ॥ हे शिव ! अर्क से मूल से रवि के द्वारा अर्काग्नि ज्वलित हुई सिद्धार्थ तैल से युक्त हुई वत्ति मार्ग के अहियों

के नाश करने वाली होती है ॥८१॥ मार्जार का पलल (मास)—विष्ठा और हरि ताल गाय के मूत्र से भावित हो उससे लिप्त होने वाला मूषिक अन्य मूषिकों का हरण किया करता है ॥८२॥ हे रुद्र ! यदि यह मन्दिर में मुक्त हो तो इस विषय में कोई भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। त्रिफला—अर्जुन वृक्ष को पुष्प—भल्लातक (भिलावा) और शिरस—लाक्षा (लाख)—सर्ज का रस—वायविडङ्ग और गूगल—इन समस्त वस्तुओं से बनाया हुआ धूप हो तो उसके देने से मक्षिकाओं और मशकों का विनाश होता है ॥८३॥८४॥

१०२—विविधौषधि (१)

हरिताल यवक्षार पत्राङ्ग रक्तचन्दनम् ।
जातिहिंगुलक लाक्षा पक्त्वा दन्तान्प्रलेपयेत् ॥१
हरीतकीकषायेण मृष्ट्वा दन्ताप्रलेपयेत् ।
दन्ता स्युर्लोहिता पु स श्वेता रुद्र न सशय ॥२
मूलक स्विद्य मन्दाग्नौ रस तस्य प्रपूरयेत् ।
कर्णयो पूरणात्तेन कर्णस्रावो विनश्यति ॥३
अर्कपत्र गृहीत्वा तु मन्दाग्नौ तापयेच्छनै ।
निष्पीड्य पूरयेत्कर्णौ कर्णशूल विनश्यति ॥४
प्रियगुमधुकायष्टिधातक्युत्पलपत्तिभि ।
मञ्जिष्ठालोध्रलाक्षाभि कपित्थस्वरसेन च ॥
पचेत्तैल तथा स्त्रीणा नश्येत्क्लेदः प्रपूरणात् ॥५

श्री हरि भगवान् ने कहा—हरिताल-यवक्षार-पत्राङ्ग-रक्त चन्दन-जाति हिंगुलक-लाक्षा इनको पका कर दांतो पर प्रलेप करे ॥ १ ॥ हरीतकी के कषाय से दांतों को मांजकर प्रलेप करना चाहिए। हे रुद्र ! लोहित भी दांत पुरुष के एकदम श्वेत हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी सदेह नहीं है ॥२॥ मन्द अग्नि में मूलक का स्वेदन कर उसके रस को कानों में डाल देने से कानों का बहना नष्ट हो जाया करता है ॥ ३ ॥ आक के पत्ते लाकर मन्द अग्नि में धीरे-धीरे उनको तपावे और फिर निष्पीडन कर कानों में डाल देवे तो कान का दर्द

वेनष्ट हो आया करता है ॥ ४ ॥ प्रियंगु—मधूका-यष्टी—धातकी—उत्पल पङ्क्ति—
ाजीठ—लोध—लाक्षा और कपित्थ के स्वरस से तैल का पाक करे। इसके
पूरण करने से स्त्रियों के क्लेद का नाश होता है ॥५॥

शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगु महौषधम् ।
शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारुशिग्रु रसायनम् । ६
सौवर्चलं यवक्षारं तथा सर्जकसैन्धवम् ।
तथा ग्रन्थि विडं मुस्त मधुयुक्तं चतुर्गुणम् ॥७
मातुलुङ्गरसस्तद्वत्कदल्याश्च रसो हि तैः ।
पक्वतैल हरेदाशु स्रावादीश्च न संशयः ॥८
कर्णयोः कृमिनाशः स्यात्कटुतैलस्य पूरणात् ।
हरिद्रानिम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरीचानि च ॥६
विडङ्गभद्रं मुस्तञ्च सप्तमं विश्वभेषजम् ।
गोमूत्रेण च पिष्टेवं कृत्वा च वटिका हर ॥
अजीर्णहृद्भवेच्चैक द्वयं विसूचिकापहम् ॥१०
पटोल मधुना हन्ति गोमूत्रेण तथार्बुदम् ।
एषा च शाङ्करी वर्तिः सर्वनेत्रामयापहा ॥११

शुष्क मूलक शुण्ठी का क्षार—हिंगु—महौषध—शत पुष्पा—वच—कुष्ठ—
दारु शिग्रु रसायन—सौवर्चल—यवक्षार—सर्जक सैन्धव—ग्रन्थि—विड—मुस्त और
मधु से युक्त चौगुना मातुलुङ्ग (नीबू) का रस तथा इसी की भाँति कदली का रस
से तैल का पाक करे। यह तैल स्राव आदि का बहुत ही शीघ्र हरण किया
करता है—इसमें तनिक भी संशय की बात नहीं है ॥ ६ ॥७॥ ८ ॥ कडुऐ तैल
के पूरण करने से कानों के कृमियों का नाश होता है। हल्दी—नीम के पत्ते—
पीपल और मिर्च काली—विडङ्गभद्र—मुस्त तथा सप्तम विश्व भेषज इन समस्त
वस्तुओं को गोमूत्र से पीस कर हे हर! वटिकाओं का निर्माण करे। एक के
सेवन से अजीर्ण का हरण होता है और दो के सेवन करने से विसूचिका
(हैजा) का अपहरण हो जाता है ॥६॥१०॥ मधु के साथ पटोल तथा गोमूत्र

के साथ अर्बुद का हनन होता है। यह शाङ्करी वर्त्ति (बत्ती) है जो सम्पूर्ण नेत्रों के भय का अपहरण करने वाली कही जाती है ॥११॥

१०३—विविधौषधि (२)

वचा मासी च विल्वञ्च तगरं पद्मकेशरम् ।
नागपुष्पं प्रियगुञ्च समभागानि चूर्णयेत् ॥
अनेन धूपितो मर्त्यः कामवद्विचरेन्महीम् ॥१
कर्पूरं देवदारुञ्च मधुना सह योजयेत् ।
लिङ्गलेपाच्च तेनैव वशीकुर्य्यात्स्त्रियं किल ॥२
मैथुनं पुरुषो गच्छेद्गृह्णीयात्स्वकमिन्द्रियम् ।
वामहस्तेन वामञ्च हस्तं यस्या स्त्रिया लिहेत् ॥
आलिप्ता स्त्री वशं याति नान्यं पुरुषमिच्छति ॥३
ॐ रक्तचामुण्डे अमुकं मे वशमानय आनय । ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रूं फट् ।
इमं जपत्वाऽयुतं मन्त्रं तिलकेन च शङ्कर ।
गोरोचनासयुतेन स्वरक्तेन वशी भवेत् ॥४
सैन्धवं कृष्णलवणं सौवीरं मत्स्यपित्तकम् ।
मधुसर्पि सितायुक्तं स्त्रीणां तद्भगलेपनम् ॥५
यं पुमान्मैथुनं गच्छेन्नान्या नारी गमिष्यति ।
शङ्खपुष्पी वचा मासी सोमराजी च फल्गुकम् ॥६
माहिषं नवनीतञ्च गुटीकरणमुत्तमम् ।
सनलानि च पक्षाणि क्षीरेणाज्येन पेपयेत् ॥७
गुटिका शोधिता कृत्वा नारीयोन्यां प्रवेशयेत् ।
दशवारं प्रसूतापि पुनः कन्या भविष्यति ॥८

श्रीहरि ने कहा—जटामासी—वच—बिल्व—तगर—पद्म केशर—नाग पुष्प—प्रियगु इन सबको समान भाग मे लेकर चूर्ण बना डाले। फिर इस की धूप देने से मनुष्य कामदेव की भाँति विचरण भूमि पर किया करता है ॥१॥ कपूर और देवदारु को शहद के साथ योजित करके जननेन्द्रिय पर प्रलेप करने से स्त्री-प्रसङ्ग मे स्त्री को वशीकृत कर लेता है ॥२॥ जब पुरुष मैथुन क्रिया

करे तो अपनी इन्द्रिय को बाँये हाथ से ग्रहण करे और बाँये हाथ को जिस भी स्त्री का चाटे तो वह आलिप्त स्त्री फिर अन्य पुरुष को नहीं चाहा करती है ।।३।। इस विषय का एक मन्त्र भी नीचे दिया जाता है—'ॐ रक्त चामुण्डे अमुक मे वश मानय मानय । ॐ ह्रीं ह्रौं हः फट्" यह मन्त्र है । इस मन्त्र का दशहजार जाप करे । हे शङ्कर ! गोरोचन से संयुक्त अपने रक्त से तिलक से वशी होता है ।।४।। सैन्धव—कृष्णलवण (काला नमक) सौवीर मछली का पित्त—मधु—घृत और मिश्री से युक्त करके स्त्रियों की जननेन्द्रिय का प्रलेप करे तो उस का ऐसा प्रभाव होता है कि जो पुरुष उसका गमन करेगा फिर किसी भी अन्य स्त्री की कभी इच्छा ही नहीं करेगा । शङ्ख पुष्पी (एक प्रसर बूंटी का नाम है जिसे शङ्खाहुली कहते हैं)—वच—जटामासी—सोम राजी—फल्गुक—भैंस के दूध का मक्खन—इन सबकी गुटिका बना लेवे । शतपत्र पक्षी की क्षीर और घृत से पेषण करे । इस तरह से शोधित गुटिका बना कर नारी की योनि में प्रविष्ट कर देवे । बहु बार प्रसूता भी हो फिर भी वन्ध्या ही होगी ।। ५ ।। ६ ।। ७ ।। ८ ।।

सर्षपाश्च वचा चैव मदनस्य फलानि च ।
मार्जारविष्ठाधुस्तूर स्त्रीकेशेन समन्वितः ।।९
चातुर्थकहरो धूपो डाकिनीज्वरनाशकः ।
अर्जुनस्य च पुष्पाणि भल्लातकविडङ्गके ।।१०
बाला चैव सर्जरस सौवीरसर्षपास्तथा ।
सर्पयूकामक्षिकाणां धूमो मशकनाशनः ।।११
भूलतायाश्च चूर्णेन स्तम्भ स्याद्योनिपूरणात् ।
तेन लेपनतो योनौ भगस्तम्भस्तु जायते ।।१२

सर्षप (सरसों)—वच—मदन के फल—मार्जार (बल्ली) की विष्ठा—धुस्तूर और नारी के केश इन सब वस्तुओं की धूप लगा देने से चौथे दिन आने वाला चौथैया ज्वर शान्त हो जाया करता है और इस धूप से डाकिनी ज्वर का भी प्रशमन हो जाता है । अर्जुन नाम वाले वृक्ष के पुष्प—भल्लातक (भिलावा)—वाय विडङ्ग—बाला—सर्ज रस—सौवीर—सर्षप इनका धूम सर्प

यूका (जूँआ), मक्खियाँ का और मशकर (मच्छर) का नाश कर देने वाला होता है ।।९।।१०।।११।। भ्रूलता के चूर्ण से पूरण कर देने पर अर्थात् भर देने से योनि मे स्तम्भता हो जाया करती है । इसका लेप कर देने से भी भगस्तम्भ होता है ।।१२।।

ताम्बूलश्च घृतं क्षौद्रं लवणं ताम्रभाजने ।
तथा पयः समायुक्तं चक्षुः शूलहरं परम् ।।१३
हरीतकी वचा कुष्ठं व्योषं हिङ्गु मनःशिला ।
कासे श्वासे च हिक्कायां लिह्यात्क्षौद्रं घृतप्लुतम् ।।१४
पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं मधुना लेहयेन्नरः ।
नश्यते पीनसः कासः श्वासश्च बलवत्तरः ।।१५
समूलचित्रकं भस्म पिप्पलीचूर्णकं लिहेत् ।
श्वासं कासञ्च हिक्कांश्च मधुमिश्रं वृषध्वज ।।१६
नीलोत्पलं शर्करा च मधुकं पद्मकं समम् ।
तण्डुलोदकसम्मिश्रं प्रशमेद्रक्तविक्रिया ।।१७

भगवान् श्री हरि ने कहा—ताम्बूल (पान), घृत, क्षौद्र (शहद), लवण तथा पय मे समन्वित ताम्र के पात्र मे रक्खे तो यह प्रयोग नेत्रों के शूल को दूर करने के लिये परमोत्तम औषधि है ।।१३।। हरीतकी (हर्रे), वचा (वच), कुष्ठ, व्योष, हिङ्गु (हींग), मनःशिला (मैनसिल) इन सब वस्तुओं को शहद और घृत मे प्लुत करके चाटे तो यह कास (खाँसी), श्वास (दमा) और हिक्का (हिचकी माना) में बहुत लाभदायक होता है ।।१४।। पीपल, त्रिफला (हर्र-बहेड़ा-आँवला) का चूर्ण इनको मनुष्य यदि शहद के साथ चाटे तो उसको पीनस का रोग (पीनस वह रोग है जिसमे नाक मे कृमि होकर एक प्रकार की महान् दुर्गन्धि उसमे उत्पन्न कर दिया करते हैं जो पास मे स्थित आदमी को असह्य हो जाया करती है), कास (खाँसी) और श्वास चाहे ये रोग कितने ही अधिक बलवान् क्यों न हों, शीघ्र नष्ट हो जाया करते हैं ।।१५।। जड के सहित चित्रक की भस्म और पीपल का चूर्ण चाटने मे हे वृषभध्वज ! शहद से मिश्रित करके इसको चाटा जावे तो इससे श्वास, खाँसी और हिचकियों के आने वाले रोग में आशातीत लाभ हो जाता है ।।१६।। नीलोत्पल, शक्कर, मधुक और

पश्चात् ये चारो वस्तुएँ समान भाग मे लेकर सबको एकरस कूट-पीस कर रख लेवे और फिर चावलों को मसल कर धोये हुए जल के साथ सेवन करे तो रक्त की विक्रिया का शमन हो जाता है ॥१७॥

शुण्ठी च शर्करा चैव तथा क्षौद्रेण संयुता ।
कोकिलस्वर एव स्याद् गुण्डिकाभुक्तिमानत ॥१८
हरिताल शङ्खचूर्णं कदलीदलभस्मना ।
एतद्द्रव्येण चोद्वर्त्य लोमशातनमुत्तमम् ॥१९
लवण हरितालञ्च तुम्बिन्याश्च फलानि च ।
लाक्षारससमायुक्त लोमशातनमुत्तमम् ॥२०
सुधा च हरितालञ्च शङ्खभस्म मन.शिला ।
सैन्धवेन सहैकत्र छागमूत्रेण पेपयेत् ।
तत्क्षणाद्वर्त्तनादेव लोमशातनमुत्तमम् ॥२१
शङ्खमामलक पत्र धातक्या कुसुमानि च ।
पिष्ट्वा तत्पयसा सार्द्धं सप्ताह् धारयेन्मुखे ।
स्निग्धा श्वेताश्च दन्ताश्च भवन्ति विमलप्रभा ॥२२

सोंठ, शर्करा (शक्कर) को शहद के साथ संयुक्त करके खाने से कोकिल के जैसा स्वर हो जाता है और गुण्डिका मात्र चाटने से ही स्वर मे माधुर्य आकर सुन्दरता समुत्पन्न हो जाया करती है। निस्वरता के निवारण करने के लिये इसका सेवन हितकर होता है ॥१८॥ हरिताल, शङ्ख का चूर्ण और कदली (केला) के पत्तो की भस्म इन तीनो का उद्वर्त्तन बना कर अर्थात् उबटन करने से लोमो का शातन बहुत अच्छी रीति से हो जाता [redacted] अर्थात् बाल उड जाया करते हैं ॥१९॥ अन्य लोमो के शातन (नाश) करने का प्रयोग यह है जो कि परम उत्तम है—लवण (नमक), हरिताल, तुम्बिनी के फल इन तीनो चीजों को लाक्षारस से समन्वित करके उपयोग मे लावे तो बालों का शातन होता है। ॥२०॥ तुरन्त ही लोमो का शातन करना हो तो सुधा, हरिताल, शङ्ख की भस्म मैनसिल इन चारो चीजो को सैन्धव अर्थात् सैंधे नमक के साथ मिलाकर बकरी के पेशाब क साथ घोटे। जब भली-भाँति घुटकर सब वस्तुएँ एकरस एव बारीक हो जावें तो इसका उबटना वहाँ पर लगावे जहाँ के रोमो का शातन

करना अभीष्ट हो तो उसी क्षण में अर्थात् लगाने के साथ ही लोमों का क्षय हो जाया करता है। यह सर्वोत्तम लोम शातन करने का नुस्खा है ॥२१॥ शङ्ख, आँवले के पत्र, धातकी के पुष्प इस जल के साथ पीसकर सात दिन तक मुख में धारण करे तो दाँत स्निग्ध, श्वेत और अत्यन्त विमल प्रभा से युक्त हो जाया करते हैं ॥२ ॥

१०४ शक्तिवर्धक योग

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम् ।
हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते ॥१
भुक्ते तु शर्करा पीता नवनीतेन बुद्धिकृत् ।
गुडस्य तु पुराणस्य पलमेकन्तु भक्षयेत् ।
स्त्रीसहस्रञ्च गच्छेच्च पुमान्बलयुतो हर ॥२
कुष्ठ सचूर्णित कृत्वा घृतमाक्षिकसयुतम् ।
भक्षयेत्स्वप्नवेलाया बलीपलितनाशनम् ॥३
अतसीमापगोधूमचूर्णं कृत्वा तु पिप्पलीम् ।
घृतेन लेपयेद्गात्रमेभिः सार्द्धं विचक्षण ।
कन्दर्पसदृशो मर्त्यो नित्य भवति शङ्कर ॥४
यवास्तिलाश्वगन्धा च मुपली सरला गुडम् ।
एभिश्च रचिता जग्ध्वा तरुणो बलवान्भवेत् ॥५
हिङ्गु सौवर्चल शुण्ठीं पीत्वा तु क्वथितोदके ।
परिणामाख्यशूलञ्च अजीर्णञ्चैव नश्यति ॥६
धातकीसोमराजीञ्च क्षीरेण सह पेपयेत् ।
दुर्बलश्च भवेत्स्थूलो नात्र कार्य्या विचारणा ॥७

श्री हरि भगवान् ने कहा—शरद, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में बहुधा दही गर्हित होता है। दधि का सेवन शिशिर, हेमन्त और वर्षा ऋतुओं में प्रशस्त माना जाता है ॥१॥ भोजन करने के पश्चात् नवनीत के साथ पी हुई शर्करा बुद्धि की वृद्धि करने वाली होती है। जो ताजा मट्ठा से मक्खन निकाला जाता है उसे ही नवनीत कहते हैं। भोजन करने के पीछे एक पल परिमाण का पुराना

गुड़ खाना चाहिये। इसके सेवन से पुरुष में अत्यधिक पुंस्त्व हो जाता है। इसके नियम से सेवन करने वाला पुरुष एक सहस्र नारियों के साथ अभिगमन करने का बल प्राप्त कर लिया करता है ॥२॥ कुष्ठ को भली-भाँति चूर्ण करके घृत और शहद के साथ मिश्रित करे और शयन करने के समय में इसका भक्षण किया करे तो बली और पलित का नाश हो जाता है अर्थात् वृद्धावस्था के कारण जो शरीर के अङ्गों में तथा चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और बालों में सफेदी आ जाती है, इन सबका निवारण हो जाया करता है ॥३॥ हे शङ्कर ! अतसी (अलसी), माष (उर्द), गोधूम (गेहूँ) इनका चूर्ण करके अर्थात् इन तीनों का चून और पीपल इन सबको घृत के साथ विचक्षण पुरुष शरीर पर लेप करे तो शरीर के अङ्गों में सौन्दर्य की छटा फूट निकलती है। नित्य-प्रति इस प्रकार से उपर्युक्त लेपन करने से मनुष्य कामदेव के समान हो जाया करता है ॥४॥ यव (जौ), तिल, अश्वगन्ध, मुषली, सरला, गुड़ इन सबको एकत्रित कर विरचित पदार्थ को खाने से मनुष्य तरुण एवं बलशाली हो जाया करता है ॥५॥ हींग, सौवर्चल, सोंठ इनका क्वाथ (काढा) करके पीने से परिणाम नाम वाला जो शूल होता है वह और भोजन का परिपाक न होने से अजीर्ण ये दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। भोजन के करने के कुछ ही पश्चात् जैसे ही उसका परिणाम अर्थात् परिपाक होना आरम्भ होता है वैसे ही एक प्रकार का शूल (दर्द) उदर में होना शुरू हो जाया करता है इसे ही परिणाम शूल कहा जाता है ॥६॥ धातकी और सोमराजी इन दोनों को क्षीर के साथ पीवे। इसके सेवन से जो बहुत दुर्बल और दुबला-पतला हो वह भी स्थूल अर्थात् मोटा ताजा, हृष्ट-पुष्ट हो जाया करता है—इसमें तनिक भी विचार नहीं करना चाहिए ॥७॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीत बली लिहेत् ।
क्षीराशी च क्षयी पुष्टि मेधाञ्चैवातुला लभेत् ॥८
कुलीरचूर्णं सक्षीरं पीतञ्च क्षयरोगनुत् ।
भल्लातकं विडङ्गञ्च यवक्षारञ्च सैन्धवम् ॥९
मनःशिलाशङ्खचूर्णं तैलपक्वं तथैव च ।
लोमानि शातयत्येव नात्र कार्य्या विचारणा ॥१०

मालूरस्य रसं गृह्य जलौकां तत्र पेषयेत् ।
हस्तौ संलेपयेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥११
शाल्मलीरसमादाय खरमूत्रे निधाय तम् ।
अग्न्यादौ विक्षिपेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥१२
वायस्या उदरं गृह्य मण्डूकवसया सह ।
गुटिकां कारयेत्तेन ततोऽग्नौ संक्षिपेत्सुधीः ।
एवमेतत्प्रयोगेण अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥१३
मुण्डीतकवचामस्तं मरिचं तगरं तथा ।
चर्वित्वा च इमं सद्यो जिह्वया ज्वलनं लिहेद् ॥१४

शर्करा और मधु (शहद) से समन्वित नवनीत को बली को चाटना चाहिए । क्षीर का अशन करे अर्थात् दूध का पान करे तो क्षय वाला पुष्टि को प्राप्त किया करता है और केवल पुष्टि ही नहीं, इसके साथ-साथ अतुल मेधा (बुद्धि) का भी लाभ प्राप्त किया करता है अर्थात् इससे अनुपम बुद्धि भी बढ़ती है ॥८॥ कुलीर का चूर्ण क्षीर के सहित पीवे तो क्षय रोग का नाश होता है । जिसकी शारीरिक धातुऐं असमय में क्षीण होने लगती हैं उस रोग का नाम क्षय रोग है । भल्लातक, वायविडङ्ग, यवक्षार, सैन्धव, मैनसिल, शङ्ख का चूर्ण इन सबको तैल में पक्व करके प्रस्तुत करे । इससे लोमों का लगाने पर निशातन हो जाता है—इसमें कोई भी विचारणा अर्थात् सन्देह नहीं करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि यह निश्चित एवं सफल प्रयोग है ॥१०॥ मालूर के रस को ग्रहण करके उसमें जलौका को पेषण करे अर्थात् पीस डाले, फिर उससे दोनों हाथों का लेपन करे । इसका यह प्रभाव होता है कि अग्नि-स्तम्भ हो जाता है और यह उत्तम अग्नि स्तम्भ है । अर्थात् फिर अग्नि से भी हाथ नहीं जला करते हैं ॥११॥ शाल्मली का रस लाकर उसे गधे के पेशाब में रख देवे और अग्नि आदि में विक्षिप्त कर देवे । इससे उत्तम अग्नि-स्तम्भ होता है ॥१२॥ वायसी का उदर लेकर मेंढक की वसा के साथ उसकी गुटिका बना लेवे । इसके पश्चात् उससे अग्नि में क्षिप्त कर देवे । सुधी पुरुष के इस प्रकार से करने पर इस प्रयोग से उत्तम अग्नि का स्तम्भन होता है ॥१३॥ मुण्डी तक वच

और मुरत—मरिच तथा तगर इन सबको लेकर खूब चर्वण करे और फिर तुरन्त ही जीभ से अग्नि का लेहन करे अर्थात् अग्नि को मुँह मे रख लेवे ॥१४॥

गोरोचना भृङ्गराज चूर्णीकृत्य घृतं समम् ।
दिव्याम्भसः स्तम्भन स्यान्मन्त्रेणानेन वै तथा ।
ॐ अग्निस्तम्भन कुरु कुरु ॥१५
ॐ नमो भगवते जल स्तम्भय स स स केक केक चर चर ।
जलस्तम्भनमन्त्रोऽयं जल स्तम्भयते शिव ॥१६
गृध्रास्थिश्च गवास्थिञ्च तथा निर्माल्यमेव च ।
अरेर्यो निखनेद्द्वारे पञ्चत्वमुपयाति सः ॥१७
पञ्चरक्तानि पुष्पाणि पृथग्जात्या. समालभेत् ।
कुंकुमेन समायुक्तमात्मरक्तसमन्वितम् ॥१८
पुष्पेण तु सम पिष्ट्वा रोचनाया पलंकत. ।
स्त्रिया पुंसा कृतो रुद्र तिलकोऽयं वशोकर ॥ १९
ब्रह्मदण्डी तु पुष्येण भक्ष्ये पाने वशीकर. ।
यष्टीमधुपलेकेन पक्वमुष्णोदक पिबेत् ॥२०
विष्टम्भिकाञ्च हृच्छूल हरत्येव महेश्वर ।
ॐ ह्रूं जः मन्त्रोऽयं हरते रुद्र सर्पवृश्चिकज विषम् ॥२१

गोरोचन और भृङ्गराज का चूर्ण करके इसके समान भाग घृत लेवे तो दिव्य अम्भ अर्थात् जल का स्तम्भन होता है । स्तम्भन के लिए निम्नाङ्कित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए । मन्त्र—'ॐ अग्नि स्तम्भनं कुरु कुरु ।" यह तो अग्नि के स्तम्भन की औषधि के साथ मन्त्र बोलते रहना चाहिए । अब जल के स्तम्भन का मन्त्र यह है—"ओम् नमो भगवते जल स्तम्भय स स स केक केक चर चर" यह जल के स्तम्भन का मन्त्र है शिव ! जल का स्तम्भन किया करता है ॥१५।१६॥ गृद्ध की अस्थि (हड्डी) और गौ की अस्थि तथा निर्माल्य को जो कोई अपने शत्रु के द्वार पर निखिल करदे अर्थात् डाल दे तो वह पञ्चत्व को (मृत्यु) को प्राप्त हो जाता है ॥१७॥ पाँच रक्त वर्ण के पुष्प अर्थात् विभिन्न पाँच लाल रङ्ग के फूल और जाती के पृथक् पुष्प समालब्ध करे, कुकुम से समायुक्त कर अपने रक्त से समन्वित करे फिर पुष्प के समान पीसकर रोचना

के मलेक से तिलक करे तो हे रुद्र ! स्त्री के द्वारा पुरुष और पुरुष के द्वारा स्त्री का यह तिलक वश्य करने वाला होता है ॥१६॥ ब्रह्मदण्डी (एक बूँटी का नाम है) को पुष्य नक्षत्र में लाकर खाने पर या पीने पर वशीकरण करने वाली होती है । यही मधु एक पल पकाकर उष्ण उदक (जल) का पान करे तो विष्टम्भिका हृदय शूल को हे हर ! यह हरण करता है । 'ॐ ह्रूं ज" यह मन्त्र हे रुद्र ! सर्प और बिच्छू के विष का हरण कर देता है ॥२१॥

पिप्पली नवनीतञ्च श्रृङ्गवेरञ्च सैन्धवम् ।
मरिच दधि कुष्ठञ्च नस्ये पाने विष हरेत् ॥२२
त्रिफलार्द्रं ककुष्ठञ्च चन्दन घृतसयुतम् ।
एतत्पलाच्च लेपाच्च विषनाशो भवेच्छिव ॥२३
पारावतस्य चाक्षीणि हरिताल मन शिला ।
एतद्योगाद्विष हन्ति वैनतेय इवोरगान् ॥२४
सैन्धव म्यूषण चूर्ण दधिमध्वाज्यसयुतम् ।
वृश्चिकस्य विष हन्ति लेपोऽथ वृषभध्वज ॥२५
ब्रह्मदण्डी तिलान्क्वाथ्य चूर्णं त्रिकटुक पिबेत् ।
नाशयेद्रुद्र गुल्मानि निरुद्ध रक्तमेव च ॥२६
पीत्वा क्षीर क्षौद्रयुत नाशयेदसृज श्रुतिम् ।
अटरूपकमूलेन भग नाभिञ्च लेपयेत् ।
सुख प्रसूयते नारी नात्र कार्य्या विचारणा ॥२७
शर्करा मधुसयुक्ता पीत्वा तण्डुलवारिणा ।
रक्तातिसारशमन भवतीति वृषध्वज ॥२८

पीपल, नवनीत, श्रृ गवेर, सैन्धव, काली मिर्च, दधि, कुष्ठ इनको नस्य तथा पान मे उपयुक्त करने से विष का हरण होता है ॥२२॥ हे शिव ! त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला), आर्द्रक (अदरख), कुष्ठ, चन्दन को घृत से सयुत करे । इसके लेप और पान से विष का नाश होता है ॥२३॥ पारावत (कबूतर) की आँखें, हरिताल, मनःशिला (मैनसिल) इन सब वस्तुओं के योग से विष का हनन गरुड के द्वारा सर्पों की हो जाता है ॥२४॥ सैन्धव (सेंधा नमक), त्र्यूषण चूर्ण, दधि, मधु और घृत से सयुत करके हे वृषभध्वज !

इसका प्रलेप बिच्छू के विष को मार दिया करता है ॥२५॥ बह्मदण्डी (एक रूखड़ी का नाम) और तिलों का क्वाथ (काढ़ा) करके त्रिकुटका चूर्ण के साथ पीवे तो हे रुद्र ! गुल्मों का नाश हो जाता है और निरुद्ध रक्त को भी नष्ट कर देता है ॥२६॥ क्षौद्र (शहद) से युक्त क्षीर पीकर रक्त की स्रुति का नाश किया जाता है । अटरूषक की जड़ को पीसकर नाभि और भग पर लेप करने से नारी सुख पूर्वक प्रसव किया करती है—इसमे कुछ भी विचारणा अर्थात् संशय करने की आवश्यकता नहीं है ॥२७॥ मधु (शहद) से संयुक्त शर्करा को तण्डुलों (चावलों) के पानी के साथ पान करने से हे वृषभध्वज ! रक्तातिसार अर्थात् खून के दस्तों में शमन हो जाता है ॥२८॥

॥ १०५—नारायण-भक्ति कथन ॥

मुक्तिहेतुमनाद्यन्तमजमव्ययमक्षयम् ।
यो नमेत् सर्वलोकस्य नमस्यो जायते नरः ॥१
विष्णुमानन्दमद्वैत विज्ञानं सर्वगं प्रभुम् ।
प्रणमामि सदा भक्त्या चेतसा हृदयालयम् ॥२
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम् ।
त सर्वसाक्षिणं विष्णुं नमस्ये परमेश्वरम् ॥३
धात्तो नापि नमस्कारः प्रयुक्तश्चक्रपाणये ।
संसारतृणवर्गाणामुद्वेजनकरो हि सः ॥४
कृष्णे स्फुरज्जलधरोदरचारुकृष्णे लोकाधिकारपुरुषे
परमप्रमेये ।
एको हि भावगुणमानदृढप्रणामः सद्य श्वपाकमपि साधयितुं
प्रशक्तः ॥५
अलम्ब्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्च्चयेत् ।
स या गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ॥६
दुर्गमसारकान्तारकूपारामेऽपि धावताम् ।
एक. कृष्णे नमस्कारो मुक्त्या तांस्तारयिष्यति ॥७

सूतजी ने कहा—मुक्ति के कारण स्वरूप—आदि एवं अन्त से रहित-अजन्मा—अव्यय अर्थात् नाश शून्य तथा क्षय से रहित प्रभु को जो नमन करता है वह मनुष्य सम्पूर्ण लोको का नमन करने के योग्य हो जाया करता है ॥१॥ आनन्द स्वरूप द्वैत से रहित—विज नमय—सर्वत्र गमन करने वाले परम प्रभु विष्णु को मैं सदा भक्ति भाव पूर्वक हृदय से प्रणाम करता हूँ जो कि मेरे हृदय में ही विराजमान रहने वाले हैं ॥२॥ जो अन्तःकरण मे सस्थित होकर सबके शुभ एवं अशुभ कर्मों को बराबर देखते रहा करते हैं उन सबके साक्षी परमेश्वर भगवान् विष्णु को मैं नमन करता हूं ॥ ३ ॥ भगवान् चक्रपाणि के लिये प्रयुक्त किया हुआ नमस्कार उनकी सर्वक्षम शक्ति के लिये है। वह प्रभु इस सम्पूर्ण ससार के तृण वर्गो के उद्वेजन करने वाले हैं ॥४॥ उमडते हुए महा मेघ की घटा के मध्य भाग के समान परम सुन्दर कृष्ण वर्ण वाले—समस्त लोको पर पूर्ण प्रभु व रखने वाले पुरुष एवं परम प्रया के करने योग्य भगवान् श्री कृष्ण के प्रति भक्ति-भाव पूर्वक किया हुआ केवल एक बार का दृढ प्रणाम प्रपच को भी तुरन्त ही साधित करने के लिये पूर्ण समर्थ होता है ॥५॥ भूमि भाग में पडे हुए दण्ड की भाँति प्रणाम करके जो भी कोई भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चना किया करता है वह जो परमोत्तम गति को प्राप्त किया करता है, उसे सैकडो यज्ञ करने वाला भी—कभी प्राप्त नही करता है ॥ ६ ॥ अत्यन्त दुर्गम इस ससार के गहन वन के कूपा राम में धावन करने वाले प्राणियो को श्री कृष्ण के प्रति किया हुआ एक ही प्रणाम मुक्ति दान के द्वारा उनको तार देता ॥ ७ ॥

आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन् वा यत्र तत्र वा ।
नमो नारायणायेति मन्त्रैकशरणो भवेत् ॥८
नारायणेति शब्दोऽस्ति वागस्ति वशवर्त्तिनी ।
तथापि नरके मूढाः पतन्तीति किमद्भुतम् ॥९
चतुर्मुखो वा यदि कोटिवक्त्रो भवेन्नरः कोऽपि विशुद्धचेता. ।
स वै *गुणानामयुतैकदेश वदेन्न वा* देववरस्य विष्णो ॥१०
व्यासाद्या मुनयः सर्वे स्तुवन्तो मधुसूदनम् ।
मतिक्षयान्निवर्तन्ते न गोविन्दगुणक्षयात् ॥११

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥१२
स्वप्नेऽपि नाम स्पृशतोऽपि तु सः क्षयं करोत्यक्षयपापराशिम् ।
प्रत्यक्षतः किं पुनरत्र पुंसा प्रकीर्त्तिते नाम्नि जनार्दनस्य ॥१३
नमः कृष्णाच्युतानन्तवासुदेवेत्युदीरितम् ।
यैर्भावभावितैर्विप्र न ते यमपुरं ययुः ॥१४

बैठा हुआ हो—शयन करता हुआ हो या स्थित हो जहाँ-कहीं भी किसी भी स्थिति में क्यों न हो जो कोई एक ही बार 'नमो नारायण'—अर्थात् भगवान् नारायण के लिये मेरा नमस्कार है—इस मन्त्र द्वारा उनकी शरणागति ग्रहण किया करता है उसका कल्याण हो जाता है ॥८॥ नारायण—यह शब्द वाणी को वशवर्त्तिनी करता है—ऐसा इसका अद्भुत चमत्कार है तो भी मूढ़ जीव नरक में पतित होते हैं—यह कितनी आश्चर्य की बात है ॥ ६ ॥ चार मुखों वाला हो अथवा एक करोड़ मुखों वाला मनुष्य क्यों न हो—कोई भी विशुद्ध चित्त वाला हो और देवों में परम श्रेष्ठ विष्णु से सहस्रों गुणों के एक देश को मुख से उच्चारण करे अथवा न करे ॥ १० ॥ व्यास आदि समस्त मुनिगण मधुसूदन भगवान् की स्तुति करते हुए मति के क्षय से निवृत्त हो जाया करते हैं गोविन्द के गुण क्षय से नहीं होते हैं ॥ ११ ॥ अवशता में रहने वाले के द्वारा भी भगवान् के कीर्त्तन करने पर पुरुष समस्त पातकों से सिंह के हाथों से मृग की भाँति तुरन्त ही विमुक्त हो जाता है तथा मोक्ष के लिये गमन करने के प्रति बद्धपरिकर होता है ॥१२॥ स्वप्न में भी भगवान् के नाम का स्पर्श करने वाले पुरुष के अक्षय पापों के समुदाय का क्षय हो जाता है—ऐसा इस भगवन्नाम का माहात्म्य है । यदि प्रत्यक्ष रूप से इस लोक में पुरुष के द्वारा भगवान् जनार्दन के नाम का कीर्त्तन करने पर तो जो इसका महत्त्व है उसका कहना ही क्या है ।१३। हे विप्र ! हे कृष्ण ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! आपके लिये नमस्कार है—ऐसा भक्ति के भाव से पूर्ण भावित होकर जो पुरुष भगवन्नाम को कहते हैं वे कभी भी यमपुर को नहीं जाया करते हैं ॥१४॥

क्षयो भवेद्यथा वह्नेस्तमसो भास्करोदये ।
तथैव कलुषौघस्य नामसंकीर्त्तनाद्धरे ॥१५
यत्र नाकपृष्ठगमन पुनरायाति न क्षयम् ।
गच्छतां दूरमध्वान कृष्णमूर्च्छितचेतसाम् ॥१६
पाथेय पुण्डरीकाक्षनामसंकीर्त्तनं हरे ।
संसारसर्पसंदष्टविषचेष्टैकभेषजम्
कृष्णेति वैष्णव नाम जप्त्वा मुक्तो भवेन्नर ॥१७
ध्यायन्कृते जपेन्मन्त्रैस्त्रेताया द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संस्मृत्य केशवम् ॥१८
जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
संसारसागर तीर्त्वा स गच्छेद्वैष्णव पदम् ॥१९
विज्ञातदुष्कृतिसहस्रसमावृतोऽपि श्रेय परं तु
परिशुद्धिमभीप्समान ।
स्वप्नान्तरे न हि पुनश्च भव स पश्येन्नारायणस्तुतिकथापरमो
मनुष्य ॥२०

भुवनभास्कर सूर्य्य के उदय होने पर अग्नि की भाँति अन्धकार का क्षय हो जाता है उसी प्रकार से पापो के समूह का क्षय हरि भगवान् के शुभ नाम एव गुणो की संकीर्त्तन से हो जाया करता है ॥१५॥ स्वर्ग मे गमन करना क्या है जहाँ पुण्यो के क्षीण हो जाने पर पुन मानव यहाँ इस लोक मे आ जाया करता है अर्थात् स्वर्ग वास सावधिक ही हुआ करता है चिर स्थायी नहीं होता है । भगवान् श्री कृष्ण के नमोच्चारण करने से भावावेश मे मूर्छित चित्त वाले और दूर मार्ग में जाने वाले भक्तो का कभी क्षय नहीं होता है ॥ १६ ॥ भक्ति मार्ग मे चलने वालो का पाथेय (मार्ग का आहार) पुण्डरीकाक्ष भगवान् हरि के नामो का सङ्कीर्त्तन ही हुआ करता है अर्थात् नाम—सङ्कीर्त्तन के बल पर ही भक्त लोग आगे बढते चले जाया करते हैं । भगवान् के नामो का सङ्कीर्त्तन संसार रूपी सर्प के दशन के विष की चेष्टा की एक मात्र महौषध है । मनुष्य 'कृष्ण'—इस विष्णु के नाम का जाप करके मुक्त हो जाता है ॥ १७ ॥

कृतयुग में ध्यान से—त्रेता में मन्त्रों के जाप से—द्वापर में भगवान् के अर्चन से जो भी फल प्राप्त होता था वही फल इस कलियुग में भगवान् केशव के शुभ परम मङ्गलमय नाम के कीर्तन एवं स्मरण से होता है ॥ १८ ॥ जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर 'हरि'—ये भगवान् के दो अक्षर विद्यमान रहा करते हैं अर्थात् जो रात दिन 'हरि हरि'—यह रटता रहता है वह इस अथाह संसार के सागर को पार कर अन्त में भगवान् विष्णु के गृह अर्थात् लोक की प्राप्ति किया करता है ॥१६॥ सहस्रों विज्ञात दुष्कृत्यों से घिरा हुआ भी परिशुद्धि की इच्छा रखने वाला मानव पर श्रेय को भगवन्नाम के प्रभाव से प्राप्त कर लेता है। भगवान् नारायण को स्तुति तथा कथा में अहर्निश परायण रहने वाला मनुष्य स्वप्नान्तर में भी फिर इस संसार को नहीं देखा करता है ॥२०॥

१०६—विष्णु पूजादि कथन

अशेषलोकनाथस्य सारमाराधनं हरेः ।
दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव च ॥१
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम् ।
यो न पूजयते विष्णुं तं विद्याद् ब्रह्मघातकम् ॥२
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
तं यो न ध्यायते विष्णुं स विष्ठायां क्रिमिर्भवेत् ॥३
नरके पच्यमानस्तु यमेन परिभाषितः ।
किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ॥४
उदकेनाप्यभावेन द्रव्याणामर्चितः प्रभुः ।
यो ददाति स्वकं लोकं स त्वया किं न चार्चितः ॥५
न तत्करोति मा माता न पिता नापि बान्धवः ।
यत्करोति हृषीकेशः सन्तुष्टः श्रद्धयार्चितः ॥६
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः ॥७

न दानैर्विविधैर्दत्तैर्न पुष्पैर्नानुलेपनैः ।
तोषमेति महात्मासौ यथा भक्त्या जनार्दनः ॥८
सम्पदैश्वर्य्यमाहात्म्यैः सन्तत्या न च कर्मणा ।
विमुक्तैश्चैकता लभ्या मूलमाराधनं हरेः ॥९

सूतजी ने कहा—समस्त लोकों के स्वामी भगवान् हरि की आराधना करना ही इस संसार में परम सार वस्तु है। जो हरि को पुरुष सूक्त मन्त्रों के द्वारा जल तथा पुष्पों को समर्पित करता है वह हरि का परमाराधक पुरुष है ॥१॥ केवल एक श्री हरि की समर्चना करने से यह सम्पूर्ण चराचर जगत अर्चित हो जाता है। जो पुरुष भगवान् विष्णु का पूजन नहीं किया करता है उसको ब्रह्म घातक ही समझना चाहिए अर्थात् ब्रह्म घाती के तुल्य पाप का भागी होता है ॥२॥ जिसमें समस्त भूतों की प्रवृत्ति होती है और जिसके द्वारा ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ करता है उन भगवान् विष्णु को जो ध्यान में नहीं लाता है वह निश्चय ही विष्ठा में रहने वाला कृमि हुआ करता है ॥३॥ नरक में घोर यातनाऐं सहन करते हुए मनुष्य से यमराज के द्वारा पूछा जाता है कि क्या तूने सब क्लेशों के नाश करने वाले देव केशव भगवान् की कभी अर्चना नहीं की थी ? ॥४॥ भगवान् केशव तो इतने कृपालु हैं कि यदि पूजा के अन्य समस्त उपचार द्रव्यों का भी अभाव हो तो केवल जल से ही उनकी अर्चना भक्ति के साथ करने से वे इतने सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाया करते हैं कि उस अर्चना करने वाले जीव को अपना लोक प्रदान कर देते हैं। ऐसे सहज दयालु प्रभु की तूने अर्चना क्यों नहीं की थी ॥५॥ फिर यमराज ने कहा—अपने गर्भ से उत्पन्न करने वाली वह माता जिस काम को नहीं किया करती है—न पिता ही करता है और न कोई बान्धव करता है उसको परम श्रद्धा के भाव से अर्चित किये हुए हृषीकेश प्रभु पूर्ण सन्तुष्ट होकर अपने भक्त के परम कल्याण को कर दिया करते हैं ॥६॥ वर्णों और आश्रमों के शास्त्रों के आधार वाले पुरुष के द्वारा परमाराध्य पुरुष भगवान् विष्णु समाराधित किये जाते हैं। उनकी आराधना के अतिरिक्त अन्य उनको सन्तुष्ट करने का कोई भी मार्ग नहीं है ॥७॥ अनेक प्रकार के दानों से जो कि दिये जाया करते हैं—

गुणों में और अनुलेपनों से यह महान् आत्मा वाले भगवान् तोष को प्राप्त नहीं होते हैं जैसे कि जनार्दन प्रभु भक्ति के द्वारा प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ करते हैं ॥८॥ विमुक्तों के द्वारा सम्पत्ति—ऐश्वर्य—माहात्म्य—सन्तति और कर्म से एकता प्राप्त नहीं की जाती है। इस एकता अर्थात् एकरूपता एवं भगवत्सन्निधि के प्राप्त करने का मूल श्री हरि का आराधन ही होता है ॥९॥

१०७—विष्णु माहात्म्य कथन

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥१
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः।
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ॥२
षष्ठिस्तीर्थसहस्राणि षष्ठिस्तीर्थशतानि च।
नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपः कर्माणि यानि वै।
यानि येषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥४
कृतपापेऽनुरक्तिश्च यस्य पुंसः प्रजायते।
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरेः संस्मरणं परम् ॥५
मुहूर्त्तमपि यो ध्यायेन्नारायणमतन्द्रितः।
सोऽपि स्वर्गतिमाप्नोति किं पुनस्तत्परायणः ॥६
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषु योगस्थस्य च योगिनः।
या काचिन्मनसो वृत्तिः सा भवत्यच्युताश्रया ॥७

श्री सूतजी ने कहा—समस्त शास्त्रों का अवलोकन करके और बारम्बार भली-भाँति विचार करके यह एक ही सिद्धान्त निष्पन्न हुआ है कि सर्वदा भगवान् नारायण का ही ध्यान करना चाहिए ॥१॥ जो परम देव भगवान् नारायण का अनन्य बुद्धि के द्वारा नित्य ध्यान किया करता है उसको दानों के देने, तीर्थों के भ्रमण, तपश्चर्या और यज्ञों के यजन करने से क्या प्रयोजन है अर्थात् इन सबके करने की नारायण के उपासक को कोई भी आवश्यकता नहीं है ॥२॥ साठ हजार और साठ सौ तीर्थ भी नारायण को किये हुए एक प्रणाम की

सोलहवी कला के समान नहीं होते हैं। भगवान् नारायण के लिये किये ६८
प्रणाम का इतना अधिक महत्त्व है ॥३॥ सम्पूर्ण प्रायश्चित्त और समस्त तप-
श्चर्या के कर्म-कलाप जो भी हैं ये सब उतना महत्त्व नहीं रखते हैं जितना श्री
कृष्ण नाम के स्मरण का होता है। कृष्ण का अनुस्मरण इन सबसे परमाधिक
होता है ॥४॥ जिस पुरुष की किये हुए पाप में अनुरक्ति हो जाती है उसका
एक ही श्री हरि का संस्मरण करना परमोत्तम प्रायश्चित्त है ॥५॥ जो कोई
व्यक्ति तन्द्रा रहित होकर एक मुहूर्त्त मात्र भी नारायण का ध्यान करता है
वह भी स्वर्ग को गमन करता है उसके विषय में तो क्या कहा जावे, जो अहर्निश
नारायण के ध्यान में ही परायण रहा करता है ॥६॥ जाग्रत-स्वप्न और सुषुप्ति
की अवस्था में और योग में स्थित योगी की दशा में जो कुछ भी मन की वृत्ति
होती है वह मनोवृत्ति भगवान् के समाश्रय प्राप्त करने वाली हुआ करती
है ॥ ७ ॥

उत्तिष्ठन्निपतन्विष्णु प्रलपन्विविशस्तथा ।
भक्षन् जाग्रच्च गोविंद माधव यश्च संस्मरेत् ॥८
स्वे स्वे कर्मण्यभिरत कुर्याच्चित्त जनार्दने ।
एपा शास्त्रानुसारोक्ति किमन्यैर्बहुभाषितै ॥९
ध्यानमेव परो धर्मो ध्यानमेव पर तप ।
ध्यानमेव पर शौच तस्माद् ध्यानपरो भवेत् ॥१०
नास्ति विष्णो पर ध्येय तपो नानशनात्परम् ।
तस्मात्प्रधानमत्रोक्त वासुदेवस्य चिन्तनम् ॥११
यद् दुर्लभ पर प्राप्य मनसो यन्न गोचरम् ।
तदप्यप्रार्थित ध्यातो ददाति मधुसूदन ॥१२
प्रमादात्कुर्वता पृ सा प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णो सपूर्णं स्यादिति श्रुति ॥१३
ध्यानेन सदृश नास्ति शोधन पापकर्मणाम् ।
आगामिदेहहेतूना दाहका योगपावक ॥१४

उठते हुए, पड़ते हुए तथा विवश होकर बैठते हुए, भोजन करते

और जागते हुए जो भगवान् हरि के नाम का उच्चारण करता रहता है तथा गोविन्द माधव का संस्मरण किया करता है। अपने-अपने कर्मों में रत रहते हुए जो भगवान् जनार्दन में अपना चित्त लगाता रहता है, यह शास्त्र के अनुसार ही उक्ति है, अन्य बहुत कुछ कथनों से क्या लाभ है ॥८।६॥ भगवान् का ध्यान करना ही सब से परम धर्म है और भगवद्-ध्यान ही सबसे बड़ा तप होता है। ध्यान का करना ही सर्वोत्तम शुचिता है। इसलिये सर्वदा भगवान् के ध्यान में ही परायण रहना चाहिए ॥१०॥ भगवान् विष्णु से अधिक अन्य कोई भी ध्येय अर्थात् ध्यान करने के योग्य नहीं है और अनशन करने से बड़ा अन्य कोई तप नहीं होता है। अतएव प्रधान मन्त्र द्वारा कथित भगवान् वासुदेव का ही चिन्तन होना है ॥११॥ जो प्राप्त करना अत्यन्त ही दुर्लभ है और जो मन में भी कभी आने वाला नहीं है उसको भी बिना ही प्रार्थना किये हुए ध्यान में आने वाले भगवान् मधुसूदन प्रदान कर दिया करते हैं ॥१२॥ प्रमाद पूर्वक करने वाले कर्मों का जो कुछ भी यज्ञो मे छूट जाता है वह सभी विष्णु के स्मरण करने से ही सम्पूर्णता को प्राप्त हो जाया करता है—यह श्रुति प्रतिपादन करती है। १३॥ पाप कर्मों के शोधन करने के लिए ध्यान के समान अन्य कोई भी उत्तम साधन नहीं है। आने वाले देह के हेतुओं को दाह करने वाला योग ही एक पावक होता है ॥१४॥

विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्तिमत्रैव जन्मनि।
प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्मा च योऽचिरात् ॥१५
यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति चानिलः।
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्बिषम् ॥१६
यथाग्नियोगात्कनकममलं सम्प्रजायते।
सम्पृष्टो वासुदेवेन मनुष्याणां सदा मलं ॥१७
गङ्गास्नानसहस्रेषु पुष्करस्नानकोटिषु।
यत्पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ ॥१८
प्राणायामसहस्रैस्तु यत्पापं नश्यति ध्रुवम्।
क्षणमात्रेण तत्पापं हरेर्ध्यानात्प्रणश्यति ॥१९

कलिप्रभावो दुष्टोक्ति पापण्डाना तथोक्तय ।
न क्रामेन्मानस तस्य यस्य चेतसि केशव ॥२०
सा तिथिस्तदहोरात्र स योग स च चन्द्रमा ।
लग्न तदेव विख्यात यत्र प्रस्मर्य्यते हरि ॥२१

विशेष रूप से निष्पन्न समाधि वाला योगी इसी जन्म मे मुक्ति की प्राप्ति कर लिया करता है क्योकि वह योग की अग्नि के द्वारा अपने समस्त कर्मों का शीघ्र ही दाह कर दिया करता है ॥१५॥ जिस प्रकार से उठी हुई ज्वाला वाला अग्नि कक्ष को दग्ध कर दिया करता है उसी भाँति विष्णु के चित्त मे स्थित होने पर योगियो के सम्पूर्ण पापो को अनिल दग्ध कर दिया करता है ॥१६॥ जिस तरह अग्नि के ताप के सम्पर्क को प्राप्त करके सुवर्ण विशुद्ध एव मल रहित हो जाया करता है उसी तरह से भगवान् वासुदेव के सम्पर्क होने से मनुष्यो के मन का मल भी सदा सम्लुप्त हो जाता है ॥१७॥ जो महापाप सहस्रो बार भागीरथी गगा मे स्नान करने से तथा करोडो बार पुष्कर में स्नान करने से क्षीण हुआ करता है वह भगवान् श्री हरि के स्मरण करने मात्र से नष्ट हो जाया करता है ॥१८॥ सहस्रा बार प्राणायाम करने से जो पाप का निश्चय रूप से नाश होता है वही पाप एक क्षण मात्र के श्री हरि के ध्यान करने से नष्ट हो जाया करता है ॥१९॥ इस घोर एव महान् दारुण कलियुग का प्रभाव दुष्टों की उक्ति तथा पाखण्डियो की उक्तियाँ उस पुरुष के हृदय को क्रमण नहीं किया करती है जिनके हृदय मे भगवान् केशव विद्यमान रहा करते हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान् के ध्यान करने वाले के हृदय पर कोई भी दूषित प्रभाव नहीं होता है ॥२०॥ वही उत्तम तिथि है—वही श्रेष्ठ अहोरात्र है—वह ही अच्छा योग और चन्द्रमा है तथा उत्तम लग्न कही गई है जिसमें श्री हरि का स्मरण किया जाता है ॥२१॥

सा हानिस्तन्महच्छिद्र सा चार्यजडमूकता ।
यन्मुहूर्त क्षणो वापि वासुदव न चिन्तते ॥२२
यलो कृतयुगस्तस्य कलिस्तस्य कृते युगे ।
हृदये यस्य गोविन्दो यस्य चेतसि नाच्युत ॥२३

यस्याग्रतस्तथा पृष्ठे गच्छनस्तिष्ठतोऽपि वा ।
गोविन्दे नियत चेत· कृतकृत्य· सदैव स: ।।२४

वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिक फलम् ।।२५

असत्यज्य च गार्हस्थ्य स तप्त्वा च महत्तप. ।
छिनत्ति पौरुषी माया केशवार्पितमानस· ।।२६

क्षमा कुर्वन्ति क्रुद्धेषु दया मूर्खेषु मानवा. ।
मुदञ्च धर्मशीलेषु गोविन्दे हृदयस्थिते ।।२७

ध्यायेन्नारायण देवं स्नानदानादिकर्मसु ।
प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु दुष्कृतेषु विशेषत: ।।२८

वही सबसे बडी हानि है और वही महान छिद्र है तथा वही अर्थ जडना एव मूकता है, जो घडी और क्षण भगवान् वासुदेव के चिन्तन के बिना यो ही नष्ट हो जाया करते हैं। इस मन दुर्लभ मनुष्य जीवन का समय भगवान् के ध्यान, चिन्तन और स्मरण के बिना नष्ट कर देने के समान महान् हानि अन्य कुछ भी नहीं है ।।२२।। जिसके हृदय में गोविन्द का ध्यान है और वह विराजमान रहते है उसके लिये इस कलियुग मे भी सतयुग ही होता है और जिसके हृदय में गोविन्द का ध्यान—स्मरण और चिन्तन नही है उसको कृतयुग मे भी घोर कलियुग ही रहा करता है ।।२३।। जिसके आगे-पीछे जाते हुए और स्थित होते हुए चित्त मे नियत रूप से गोविन्द का ध्यान एव स्मरण रहता है वह पुरुष सदा ही कृत कृत्य समझना चाहिये ।।२४।। जप, होम और अर्चन आदि मे जिसका मन भगवान् वासुदेव मे स्थित रहा करता है। हे मैत्रेय ! उसके उस निरन्तर भगवच्चिन्तन में देवेन्द्र के पदादि के प्राप्ति का फल ही महान् विघ्न हुआ करता है ।।२५।। गृहस्थाश्रम का त्याग न करके महान् तप करते हुए केशव भगवान् मे अपने मन को लगा देने वाला पुरुष पौरुषी माया का छेदन कर दिया करता है ।।२६।। भगवान् गोविन्द जब हृदय मे विराजमान रहते हैं तो मनुष्य क्रुद्धो पर क्षमा, मूर्खों पर दया और धर्मशीलो पर प्रसन्नता

किया करते हैं ।।२७।। स्नान आदि सब कर्मों मे, समस्त प्रायश्चित्तों मे घोर विशेष रूप से दुष्कर्तों में देववर नारायण का ही ध्यान करना चाहिए ।।२८।।

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ।।२९
कीटपक्षिगणानाञ्च हरौ संन्यस्तचेतसाम् ।
ऊर्ध्वा एव गतिश्चास्ति किं पुनर्ज्ञानिनां नृणाम् ।।३०
वासुदेवतरुच्छाया नातिशीतातितापदा ।
नरकद्वारशमनी सा किमर्थं न सेव्यते ।।३१
न च दुर्वाससः शापो राज्यञ्चापि शचीपतेः ।
हन्तुं समर्थं हि सखे हृत्कृते मधुसूदने ।।३२
वदतस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः ।
नापयाति यदा चिन्ता सिद्धां मन्येत धारणाम् ।।३३
ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती नारायणः सरसिजासन-सन्निविष्ट. ।
केयूरवान्कनककुण्डलवान्किरीटी हारी हिरण्मयवपुधृतशङ्खचक्रः।
न हि ध्यानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
श्वपचान्नानि भुञ्जानो पापी नैवात्र लिप्यते ।।३४।३५

जिन पुरुषों के हृदय में इन्दीवर के सदृश श्याम वर्ण वाले भगवान् जनार्दन विराजमान रहते हैं अर्थात् जो जनार्दन प्रभु का निरन्तर चिन्तन एवं स्मरण किया करते हैं उनको सदा लाभ ही होता है और उनकी सर्वदा विजय होती है। उनका पराभव तो कभी होता ही नहीं है ।।२९।। जिन कीट और पक्षीगणों ने भी हरि मे अपने चित्त की वृत्ति लगादी है उनकी ऊर्ध्व ही गति होती है। जो ज्ञान वाले मनुष्य हैं उनकी चित्तवृत्ति हरि में सलग्न हो जावे तो उनके कल्याण के विषय में तो कहना ही क्या है ? ।।३०।। भगवान् वासुदेव के चरण की शरणागति एक तरुवर की छाया के समान ही है, जो न अत्यन्त शीत देने वाली है और न अति ताप ही प्रदान करने वाली होती है। वह तो नरकों के द्वारों का शमन करने वाली होती है। ऐसी वासुदेव तरु की छाया

का सेवन क्यो नही किया जाता है ? तात्पर्य यह है कि उसका सेवन अवश्य हर एक को करना ही चाहिए ॥३१॥ भगवान् मधुसूदन को अपने हृदय मे स्थित कर लेने पर अर्थात् हृदय मे उनका चिन्तन-स्मरण करने पर हे मखे ! दुर्वासा ऋषि का शाप और शची के पति इन्द्रदेव का राज्य भी हनन करने को समर्थ नही होता है ॥३२॥ बोलते हुए, स्थित रहते हुए अथवा स्वेच्छा से अन्य कोई भी कर्म करते हुए भी जिस समय मे भगवान् का चिन्तन हृदय से दूर नही रहता है उसको ही सिद्ध धारणा मानना चाहिए ॥३३॥ सूर्य-मण्डल के मध्य मे स्थित, कमल के आसन पर सन्निविष्ट केयूर धारण करने वाले, सुवर्ण के कुण्डल पहिने हुए तथा किरीट और हार धारे हुए, सुवर्ण सदृश शरीर वाले एव शख और चक्र को धारण करने वाले भगवान् नारायण का सदा ध्यान करना चाहिए ॥३४॥ भगवान् के ध्यान के तुल्य इस लोक मे अन्य कुछ भी पवित्र नही है । श्वपच के अन्नो का खाने वाला पापी इसमे लिप्त नही होता है । ॥ ३५ ॥

सदा चित्त समासक्त जन्तोर्विषयगोचरे ।
यदि नारायणेऽप्येव को न मुच्येत बन्धनात् ॥३६

विष्णुभक्तिर्यस्य चित्ते त वा जीवो नमेत्सदा ।
स तारयति चात्मान तथैव दुरितार्णवात् ॥३७

तज्ज्ञान यत्र गोविन्द' स कथा यत्र केशव ।
तत्कर्म यत्तदर्थाय किमन्यैर्बहुभाषितै ॥३८

स जिह्वा या हरि स्तौति तच्चित्त यत्तदर्पितम् ।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ॥३९

प्रणाममीशस्य शिर फल विदुस्तदर्चन पाणिफल दिवौकम ।
मन फल तद्गुणकर्मचिन्तन वचस्तु गोविन्दगुणस्तुति फलम् ॥४०

मेरुमन्दारमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मण ।
केशवस्मरणादेव तस्य सर्व विनश्यति ॥४१

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म पुरुषः साध्वसाधु वा ।
सर्वं नारायणे न्यस्य कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥४२
तृणादिचतुरास्यान्त भूतग्राम चतुर्विधम् ।
चराचर जगत्सर्वं प्रसुप्तं मायया तव ॥४३

जीवो का चित्त सांसारिक विषयों में सदा आसक्त रहा करता है। जैसी आसक्ति उसकी विषयों में होती है वैसी ही यदि नारायण के चरणों में हो तो फिर इस जन्म-मरण के आवागमन के सांसारिक बन्धनों से कौन मुक्ति नहीं पा जाता ॥३६॥ सूतजी ने कहा—जिसके चित्त में सदा विष्णु की भक्ति रहती है अथवा विष्णु का जो नमन किया करता है वह दुरितों (पापों) के समुद्र से अपने आप को पार कर ले जाया करता है ॥ ३७ ॥ वह ही ज्ञान चर्चा है जिस में गोविन्द के गुणों का वर्णन हो और वही कथा है जिस में भगवान् केशव की लीला का वर्णन हो तथा वही कर्म है जो भगवान् की सेवा से सम्बन्धित होता है अर्थात् भगवान् के निमित्त ही किया जाता है। विशेष कथन करने से क्या लाभ है ॥३८॥ वही वस्तुतः जिह्वा सफल एवं सार्थक है जो हरि का स्तवन किया करती है। वही चित्त प्रशंसनीय है जो भगवान् में लगा दिया गया हो। वे ही दोनों हाथ श्लाघा करने के योग्य होते हैं जो भगवान् की पूजा करने में लगे रहते हैं ॥३९॥ ईश्वर को प्रणाम करना ही शिर के प्राप्त करने का फल होता है। जो शिर भगवान् के आगे झुक जाता है वही सफल शिर होता है। देवगणों की पूजा-अर्चा का करना ही हाथों का फल होता है। भगवान् के गुण गणों का चिन्तन करने ही में मन की सफलता हुआ करती है। वाणी की सफलता तभी होती है जब श्री गोविन्द के गुणों का वर्णन करे या उनकी स्तुति किया करती है ॥४०॥ मेरु एवं मन्दार पर्वत के समान भी पाप कर्मों का समूह भगवान् केशव के स्मरण से ही वह महान् पापों की राशि सम्पूर्ण विनष्ट हो जाया करती है ॥४१॥ तृण से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त चार प्रकार का भूतों का समुदाय होता है। यह समस्त चर—अचर स्वरूप जगत् आपकी माया से प्रसुप्त है। जो कुछ भी सत् या असत् कर्म पुरुष किया करता है उस सबको नारायण में न्यस्त कर देने पर वह कुछ भी करता हुआ भी लिप्त नहीं हुआ करता है ॥४२॥४३॥

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र न वेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।
मुक्तिश्चेतसि सस्थितोजड़धियांपुंसां ददात्यव्ययः ।
किञ्चित्रं यदयं प्रयाति विलय तत्राच्युते कीर्तिते ।।४४
अग्निकार्य्यं जपः स्नानं विष्णोर्ध्यानञ्च पूजनम् ।
गन्तुं दुःखोदधेः कुर्य्युर्मे च तत्र तरन्ति ते ।।४५
राष्ट्रस्य शरणं राजा पितरो बालकस्य च ।
धर्मश्च सर्वमर्त्यानां सर्वस्य शरणं हरिः ।।४६
ये नमन्ति जगद्योनिं वासुदेव सनातनम् ।
न तेभ्यो विद्यते तीर्थमधिकं मुनिसत्तम ।।४७
अनर्घ्यरत्नपूजाञ्च कुर्य्यात्स्वाध्यायमेव च ।
तमेवोद्दिश्य गोविन्दं ध्यानं नित्यमतन्द्रितः ।।४८

जिस भगवान् में अपनी मति को न्यस्त कर देने वाला पुरुष नरक में कभी नही जाया करता है और जिनके चिन्तन करने में स्वर्ग मे प्राप्त होता है। जिसमे अपनी आत्मा और मन को निवेशित कर देने वाले को कभी ब्रह्म का लोक भी बड़ी वस्तु नही होता है। चित्त मे सस्थित होकर जो जड बुद्धि वालो को भी पुरुषो को अव्यय अविनाशी भगवान् मुक्ति प्रदान कर दिया करते है तो क्या आश्चर्य की बात है कि अच्युत भगवान् का सङ्कीर्तन करने पर यह पुरुष विलय को प्राप्त हो जाता है।। ४४ ।। अग्नि कार्य अर्थात् होम करना—जप—स्नान—विष्णु का ध्यान तथा भगवान् विष्णु का अर्चन दुःख के सागर मे पार होने के लिये करने चाहिए जिस में वे तर जाते हैं ।। ४५ ।। राष्ट्र का रक्षक राजा होता है—बाल्यावस्था मे बालक के रक्षा करने वाले उसके माता-पिता होते हैं—समस्त मनुष्यो का शरण अर्थात् रक्षा करने वाला धर्म हुआ करता है और सभी का शरण भगवान् श्री हरि होते हैं ।। ४६ ।। जो इस जगत् योनि अर्थात् उद्भव स्थान—सनातन भगवान् वासुदेव का नमन किया करते है हे मुनि श्रेष्ठ ! उनसे विशेष अधिक तीर्थ नही होता है। तात्पर्य यह है कि भगवान् को नमन करने वाले भक्त तीर्थ स्वरूप ही हुआ करते हैं ।।४७।।

नित्य ही तन्द्रा से रहित होकर अनघ्य रत्न—पूजा और स्वाध्याय उसी गोविन्द के उद्देश्य रख कर ध्यान करना चाहिए ॥४८॥

शूद्र वा भगवद्भक्त निषाद श्वपच तथा ।
द्विजजाति सम मन्ये न याति नरक नर ॥४९
आदरेण सदा स्तौति धनवन्त धनेच्छया ।
तथा विश्वस्य कर्त्तार को न मुच्येत बन्धनात् ॥५०
यथा जातवना वह्निर्दहत्याद्र मपीन्धनम् ।
तथाविध स्थितो विष्णुर्योगिना सर्वकिल्विषम् ॥५१
आदीप्त पर्वत यद्वन्नाश्रयन्ति मृगादय ।
तद्वत्पापानि सर्वाणि योगाभ्यासरता नर ॥५२
यस्य यावाश्च विश्वासस्तस्य सिद्धिस्तु तावती ।
एतावानेव कृष्णस्य प्रभाव परिमीयते ॥५३
विद्वेपादपि गोविन्द दमघोषात्मज स्मरन् ।
शिशुपालो गतस्तत्त्व किं पुनस्तत्परायण ॥५४

भगवान का भक्त शूद्र-निषाद, श्वपच अथवा द्विज जाति हो सबको समान मानना चाहिए ऐसा पुरुष कभी नरक मे नही जाया करता है ॥ ४९ ॥ जिस प्रकार से बहुत ही आदर के साथ धन की इच्छा से धनवान् पुरुषो की स्तुति किया करते हैं उसी भाँति इस सम्पूर्ण विश्व के कर्त्ता भगवान् का स्तवन किया जावे तो कौन पुरुष है जो सासारिक बन्धन से मुक्ति न पावे अर्थात् सभ मुक्त हो जाया करते हैं ॥५०॥ जिस तरह वन मे वृक्षो के ही सघर्ष से समुत्पन्न दावानल गीले भी ईधन को दग्ध कर दिया करता है उसी भाँति योगियो के हृदय में स्थित भगवान् विष्णु उनके सम्पूर्ण किल्विषो को जला कर नष्ट कर दिया करते हैं ॥ ५१ ॥ जैसे चारो ओर से अग्नि से दीप्त पर्वत को मृग आदि पशुगण अपना आश्रय नही बनाया करते हैं उसी तरह योग के अभ्यास में रति रखने वाले पुरुष समस्त पापो को अपने अन्दर आश्रय नहीं दिया करते हैं ॥५२॥ जिन पुरुष का जितना विश्वास भगवान् मे होता है उसको उतनी ही सिद्धि हुआ करती है। भगवान् श्री कृष्ण का इतना ही

प्रभाव परिमाणित होता है ॥५३॥ दमघोस का पुत्र शिशुपाल विद्वेष के भाव से भी श्री कृष्ण का अहर्निश स्मरण करता हुआ मुक्ति को प्राप्त हो गया था फिर जो श्री कृष्ण के ध्यान—स्मरण मे भक्ति भाव से परायण रहने वाले हैं उनके कल्याण के विषय मे क्या कहा जा सकता है ॥५४॥

१०८—नृसिंह स्तोत्र

नारसिंहस्तुतिं वक्ष्ये शिवोक्तं शौनकाधुना ।
पूर्वं मातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन् ॥१
भगवन् भक्षयिष्याम सदेवासुरमानुषम् ।
त्वत्प्रसादाज्जगत्सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ॥२
भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः ।
तस्माद्घोरतरप्रायं मनः शीघ्रं निवर्त्यताम् ॥३
इत्येव शङ्करेणोक्तमनादृत्य तु तद्वचः ।
भक्षयामासुरव्यग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै ।
नृसिंहरूपिणं देवं प्रदध्यौ भगवान् शिवः ॥५
अनादिनिधनं देवं सर्वभूतभवोद्भवम् ।
विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केशरमालिनम् ॥६
रत्नाङ्गदं सुमुकुटं हेमकेशरभूषितम् ।
श्रोणिसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम् ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब मैं शिव के द्वारा वर्णित नरसिंह भगवान् की स्तुति को बतलाता हूँ । पहिले सब मातृगण ने भगवान् शङ्कर से यह वाक्य कहे थे ॥१॥ हे भगवन् ! आपके प्रसाद से हम इस देव-असुर और मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण जगत् को भक्षण कर जायगें । आप हमको अपनी आज्ञा दे दीजिये ॥२॥ शङ्कर ने कहा—आप सबके द्वारा इन समस्त प्रजाजनो की रक्षा करनी चाहिए—इसमे कुछ भी संशय नहीं है । इसके विषय में जो तुम्हारा अत्यन्त घोरतर मन है उसे शीघ्र ही निवृत्त कर डालो ॥ ३ ॥ भगवान्

शङ्कर ने यही कहा था किन्तु उन ने शङ्कर के वचनों को न मान कर अव्यग्र होते हुए चराचर इस त्रिलोकी को भक्षण करना आरम्भ कर दिया था ॥ ४ ॥ इस प्रकार से मातृगण के द्वारा त्रैलोक्य के भक्ष्यमाण हो जाने पर भगवान् शिव ने नृसिंह रूप वाले देव का ध्यान किया था ॥ ५ ॥ नृसिंह देव के ध्यान में स्वरूप का वर्णन किया जाता है—आदि और अन्त से रहित देव—समस्त प्राणियों के उत्पत्ति स्थान—विद्युत् के तुल्य जीभ वाले—महान् दाढ़ों से युक्त—स्फुरमाण केसरों की माला वाला उनका दिव्य रूप है ॥ ६ ॥ रत्नों से जटित भज्जुयों को भुजाओं में धारण करने वाले—सुन्दर मुकुट मस्तक पर पहिने हुए—सुनहले केसरों से अलङ्कृत तथा विशाल सुवर्ण की करधनी से विभूषित हैं ॥ ७ ॥

नीलोत्पलदलश्याम रत्ननूपुरभूषितम् ।
तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डोदरमण्डपम् ॥८
आवर्त्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहरोमभिः ।
सर्वपुष्पविचित्राञ्च धारयश्च महास्रजम् ॥९
स ध्यातमात्रो भगवान्प्रददौ तस्य दर्शनम् ।
यादृशेनैव रूपेण ध्यातो रुद्रैस्तु भक्तित ॥१०
तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्षेण दैवतं. ।
प्रणिपत्य तु देवेश तदा तुष्टाव शङ्करः ॥११
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर ।
दैत्येश्वरेन्द्र सहारनखशुक्तिविराजित ।१२
नखकमलसलग्न हेमपिङ्गलविग्रह ।
नमोऽस्तु पद्मनाभाय शोभनाय जगद्गुरो ॥
कल्पान्तेऽम्भोदनिर्घोष सूर्य्यकोटिसमप्रभ ॥१३

नील कमल के दलों के समान श्याम वर्ण वाले—रत्नों से निर्मित, नूपुरों से भूषित और अपने अतुल तेज से समस्त ब्रह्माण्ड- के उदर, मण्डप को आक्रान्त किये हुए हैं ॥८॥ आवर्त्त (भँवर) के समान आकार वाले शरीर के रोमों से समन्वित आपका देह है। समस्त प्रकार के पुष्पों से सुनिर्मित एव

अति अद्भुत विशाल माला को धारण किये हुए हैं ॥६॥ इस प्रकार के अद्भुत स्वरूप वाले भगवान् का जैसे ही शङ्कर ने ध्यान किया था वैसे ही नृसिंह भगवान् ने ध्यान करने ही से तुरन्त शिव को दर्शन दिया था। भक्ति भाव पूर्वक जिस प्रकार के स्वरूप का ध्यान शिव ने किया था उसी प्रकार के रूप से जोकि देवों के द्वारा भी दुर्निरीक्ष्य था नृसिंह देव ने दर्शन प्रदान किया था। उस समय शङ्कर ने देवेश नृसिंह को प्रणाम करके फिर उनकी स्तुति की थी ॥ १० ॥ ११ ॥ शङ्कर ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! नरसिंह के स्वरूप धारण करने वाले आपको मेरा नमस्कार है। दैत्यों के स्वामी हिरण्यकशिपु के संहार करने वाले नखरूपी शक्तियों से आप सुशोभित हैं। नखरूपी कमलों में संलग्न हेम के समान पिङ्गल वर्ण के विग्रह से युक्त हैं। हे जगत् के गुरु ! परम शोभन पद्मनाभ आपके लिये मेरा प्रणाम है। आप कल्प के अन्त में मेघों के समान निर्घोष (गर्जना) वाले हैं और करोड़ों सूर्यों के तुल्य प्रभा से युक्त हैं ॥१२॥१३॥

सहस्रयमसन्त्रास सहस्रेन्द्रपराक्रम ।
सहस्रधनदस्फीत सहस्रचरणात्मक ॥१४

सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रांशुहरिक्रम ।
सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रब्रह्मसंस्तुत ॥१५

सहस्ररुद्रसंजप्त सहस्राक्षनिरीक्षण ।
सहस्रजन्ममथन सहस्रबन्धमोचन ॥१६

सहस्रवायुवेगाग्र सहस्राक्ष कृपाकर ।
स्तुत्वैवं देवदेवेश नृसिंहवपुषं हरिम् ॥
विज्ञापयामास पुनर्विनयावनतः शिवः ॥१७

अन्धकस्य विनाशाय या सृष्टा मातरो मया ।
अनादृत्य तु मद्वाक्यं भक्षयन्त्यद्भुता प्रजाः ॥१८

सृष्ट्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तुमपराजित ।
पूर्वं कृत्वा कथं तासां विनाशमभिरोचये ॥१९

एवमुक्त स रुद्रेण नरसिंहवपुर्हरिः ।
सहस्रदेवीर्जिह्वाग्रात्तदा वागीश्वरो हरि ॥२०
तथा सुरगणान्सर्वान्रौद्रान्मातृगणान्विभुः ।
संहृत्य जगत शर्म कृत्वा चान्तरधीयत ॥२१

हे नृसिंह देव ! आप सहस्रों यमों को सन्त्रास देने वाले हैं और सहस्र इन्द्रों के समान पराक्रम से युक्त हैं। आप सहस्र कुबेरों के तुल्य स्फीत हैं तथा सहस्र वरुणों के स्वरूप वाले हैं ॥१४॥ सहस्र चन्द्रों की प्रतिमा के सदृश हैं— और सहस्रायु (सूर्य) के हरि (अङ्गों) के समान क्रम वाले हैं। सहस्र रुद्रों के समान तेज वाले हैं और आप सहस्रों ब्रह्माओं से संस्तुत हैं ॥ १५ ॥ सहस्र रुद्रों से भली भाँति जप किये हुए हैं और सहस्राक्ष (इन्द्र) के समान निरीक्षण करने वाले हैं। आप सहस्र जन्मों के मथन करने वाले तथा सहस्रों के बन्धों को मोचन करने वाले हैं ॥१६॥ सहस्र वायु के वेग के समान अग्रगामी हैं। आप सहस्राक्ष हैं तथा कृपा के करने वाले हैं। इस तरह से शिव ने देवों के हेतु नृसिंह वपुधारण करने वाले हरि भगवान् की स्तुति की थी और फिर बहुत नम्रता के साथ अवनत होकर शङ्कर ने उनको विज्ञापित किया था ॥१७॥ अन्धक दैत्य के विनाश करने के लिये जो मैंने मातृगण का सृजन किया था वे मेरे वाक्य का अनादर करके अद्भुत प्रजाओं का भक्षण करती हैं ॥१८॥ उनका सृजन करके अपराजित मैं अब उनका संहार करने में असमर्थ हूँ क्योंकि पहिले मैंने उनका सृजन किया था अब उनका विनाश करना कैसे अच्छा लगता है ? ॥१९॥ इस प्रकार से जब रुद्र ने कहा तो नरसिंह के स्वरूप धारण करने वाले भगवान् हरि ने जो वागीश्वर थे अपनी जिह्वा के अग्रभाग से सहस्र देवी—सुरगण—रौद्रगण और मातृगणों को विभु ने संहार करके सम्पूर्ण जगत् का कल्याण कर दिया था तथा उसी समय वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ॥२०॥२१॥

नारसिंहमिदं स्तोत्रं य पठेन्नियतेन्द्रिय. ।
मनोरथप्रदस्तस्य रुद्रस्येव न संशय. ॥२२

ध्यायेन्नृसिंह तरुणार्कनेत्रं सिताम्बुजातं ज्वलिताग्निवक्त्रम् ।
अनादिमध्यान्तमज पुराणं परावरेश जगतां निधानम् ॥२३
जपेदिदं सन्ततदुःखजालं जहाति नीहारमिवांशुमाली ।
समातृवर्गस्य करोति मूर्त्ति यदा यदा तिष्ठति तत्समीपे ॥२४
देवेश्वरस्यापि नृसिहमूर्त्तेः पूजां विधातुं त्रिपुरान्तकारी ।
प्रसाद्य त देववरं स लब्ध्वा ग्रव्याज्जगन्मातृगणोम्य एव ॥२५

इस नरसिंह भगवान् के स्तोत्र को अपनी सब इन्द्रियों को नियत करके जो भी कोई पुरुष नित्य पढ़ेगा उस पाठ करने वाले के समस्त मनोरथों को रुद्र की ही भाँति यह स्तोत्र प्रदान कर देगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२२॥ तरुण सूर्य के सदृश नेत्रों वाले—श्वेत कमल के समान वर्ण वाले—जलती हुई अग्नि के तुल्य मुख वाले—आदि-मध्य तथा अन्त से रहित—अजन्मा परावर के स्वामी—जगतों के निधान—परम पुराण पुरुष नृसिंह भगवान् का ध्यान करता हूँ ॥२३॥ जो इसका जाप करता है वह सूर्य के द्वारा नीहार (कुहरा) की भाँति सन्तत रहने वाले दुःखों के समुदाय को त्याग देता है अर्थात् उस जप करने वाले के दुःखों का जाल नष्ट हो जाता है। मातृ वर्ग के सहित की मूर्त्ति बनावे जब-जब उसके समीप में स्थित होवे। देवेश्वर नृसिंह मूर्त्ति की पूजा करने के लिये त्रिपुर दैत्य के विनाश करने वाले शङ्कर ने देवों श्रेष्ठ नृसिंह भगवान् को प्राप्त कर उन्हें प्रसन्न किया था और फिर मातृगण ही जग की रक्षा की थी ॥२४॥२५॥

१०६—कुलामृत स्तोत्र

कुलामृत प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं यत्तु हरोऽब्रवीत् ।
पृष्ट श्रीनारदेनैव नारदाय तथा शृणु ॥१
यः ससारे सदा द्वन्द्वैः कामक्रोधैः शुभाशुभैः ।
शब्दादिविषयैर्बद्धः पीड्यमानः स दुर्मतिः ॥२
क्षणं विमुच्यते जन्तुर्मृत्युसंसारसागरात् ।
भगवन् श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो हि त्रिपुरान्तक ॥३

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य त्रिलोचन ।
उवाच तमृषिं शम्भु प्रसन्नवदनो हर ॥४
ज्ञानामृतं परं गुह्यं रहस्यमृषिसत्तम ।
वक्ष्यामि शृणु दुःखघ्नं भवबन्धभयापहम् ॥५
तृणादिचतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
चराचरं जगत् सर्वं प्रसुप्तं यस्य मायया ॥६
तस्य विष्णोः प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुध्यति ।
स निस्तरति संसारं देवानामपि दुस्तरम् ॥७

सूत जी ने कहा—श्री नारद ने शिव से पूछा था तब नारद के द्वारा पूछे गये शिव ने नारद से जो कहा था उस पुनातन स्तोत्र को मैं अब कहता हूँ। उसका तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ नारद जी ने कहा—जो संसार में सदा शुभ और अशुभ द्वन्द्व काम और क्रोध तथा द्वन्द्व आदि अनेक विषयों से बद्ध रहा है और वह दुष्ट मति वाला पीड्यमान रहता है। ऐसा व्यक्ति इस मृत्यु संसार रूपी सागर से क्षण मात्र में ही विमुक्त हो जावे इस प्रकार का प्रयोग हे त्रिपुरान्तक शिव ! मैं आपसे श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ ॥ २ ॥ ३ ॥ त्रिलोचन भगवान् शङ्कर ने नारद के वचन को सुनकर परम प्रसन्न मुख होकर हर शम्भु उस ऋषि से बोले—॥ ४ ॥ महेश्वर ने कहा—हे ऋषियों! मैं परम श्रेष्ठ! ज्ञानामृत अत्यन्त गोपनीय वस्तु है और परम गुह्य रहस्य है। यह दुःखों के हनन करने वाला तथा सांसारिक बन्धन के भय का अपहरण करने वाला है—इसका मैं तुमको बतलाता हूँ तुम समाहित होकर इसका श्रवण करो ॥ ५ ॥ जिस परमात्मा प्रभु की माया से तृण जैसे तुच्छ वस्तु से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त चारों प्रकार का यह भूतों का चर और अचर समुदाय एवं सम्पूर्ण जगत् प्रसुप्त हो रहा है उस प्रभु विष्णु के प्रसाद से यदि कोई जन्तु प्रबुद्ध हो जाता है अर्थात् ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो वह इस देवों के द्वारा भी दुस्तर संसार सागर से पार चला जाता है। तात्पर्य है संसार के जन्म मरण द्वारा निरन्तर आवागमन महान् बन्धन से निस्तार प्राप्त कर लिया करता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

भोगैश्वर्यमदोन्मत्तस्तत्त्वज्ञानपराङ्मुख ।
पुत्रदारकुटुम्बेषु मत्ता सीदन्ति जन्तवः ॥८
सर्व एकार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ।
यस्त्वानन निबध्नाति दुर्मतिः कोपकारवत् ॥
तस्य मुक्ति न पश्यामि जन्मकोटिशतैरपि ॥६
तस्मान्नारद सर्वेषा देवाना देवमव्ययम् ।
आराधयेत् सदा सम्यग्ध्यायेद्विष्णु मुदान्वित· ॥१०
यस्तु विश्वमनाद्यन्तमजमात्मनि सस्थितम् ।
सर्वज्ञमचल विष्णु सदा ध्यायेत् स मुच्यते ॥११
देव गर्भोचित विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते ।
अशरीर विधातार सर्वज्ञानमनोरतिम् ।
अचल सर्वग विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१२
निर्विकल्प निराभास निष्प्रपञ्च निरामयम् ।
वासुदेव गुरु विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१३
सर्वात्मकस्य यावन्तमात्मचैतन्यरूपकम् ।
शुभमेकाक्षर विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१४

सासारिक भोगो के अति विशाल ज्ञान और ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त तथा तत्त्व-ज्ञान से विमुख जन्तु गण अपने पुत्र और दास एव कुटुम्ब परिवार मे ही मत्त होकर अनेक दु खो एव अवगादों को भोगते रहा करते हैं ॥८॥ सभी जन्तु इसी एक महा विशाल सागर में डूबे हुए है और वन के हाथियो की भाँति जीर्ण हो रहे हैं । कोपकार के समान जो आनन को निबद्ध कर लेता है वह दुर्मति है और उस ऐसे पुरुष की करोडो जन्मो के पश्चात् भी मैं मुक्ति नही देखता हूँ ॥६॥ इसलिये हे नारद ! समस्त देवों के भी देव परम प्रभु अव्यय, अविनाशी भगवान् विष्णु की सदा आराधना अवश्य ही करनी चाहिए । परम आनन्द से युक्त होकर विष्णु की भली भाँति समाराधना करे ॥१०॥ जो प्राणी विश्व स्वरूप आदि और अन्त से रहित, अजन्मा सर्वज्ञ, अचल और अपनी ही आत्मा मे अन्तर्यामी रूप मे विराजमान भगवान् विष्णु का ध्यान सदा किया

करता है वह अवश्य ही इस संसार से मुक्त हो जाता है ॥११॥ गर्भोचित देव विष्णु का सर्वदा ध्यान करने वाला पुरुष विमुक्ति प्राप्त कर लिया करता है। शरीर से रहित, विधाता, सबके ज्ञान और मन को रति प्रदान करने वाले, सर्वत्र गमन करने वाला अर्थात् सबमें व्यापक एवं अचल भगवान् विष्णु का ध्यान करते रहने वाला पुरुष संसार से विमुक्त हो जाया करता है ॥१२॥ विकल्पों से रहित, आभास शून्य, बिना प्रपञ्चों वाला एवं निरामय परम गुरु भगवान् वासुदेव विष्णु का सर्वदा ध्यान करने वाला व्यक्ति इस संसार से मुक्त हो जाता है ॥१३॥ सर्वात्मा का जितना भी आत्म चैतन्य स्वरूप है ऐसे परम शुभ, एकाक्षर भगवान् विष्णु का सर्वदा निरन्तर ध्यान करते रहने वाला पुरुष इस संसार के विशाल बन्धन से छुटकारा पा जाता है ॥१४॥

वाक्यातीत त्रिकालज्ञ विश्वेश लोकसाक्षिणम् ।
सर्वस्मादुत्तम विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१५
ब्रह्मादिदेवगन्धर्वैर्मुनिभि. सिद्धचारणैः ।
योगिभिः सेवित विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१६
संसारबन्धनान्मुक्तिमिच्छन्लोको ह्यशेषतः ।
स्तुत्वैव वरद विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१
संसारबन्धनात्कोऽपि मुक्तिमिच्छन्समाहित ।
अनन्तमव्यय देव विष्णु विश्वे प्रतिष्ठितम् ।
विश्वेश्वरमज विष्णु सदा ध्यायन्विमुच्यते ॥१८
नारदेन पुरा पृष्ट एव न वृषभध्वज. ।
यत्तेन तस्मै व्याख्यात तन्मया कथित तव ॥१६

वचनों से भी परे, तीनों (भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान) कालों का ज्ञाता, विश्व के स्वामी और समस्त लोकों के साक्षी तथा सबसे उत्तम भगवान् विष्णु का ध्यान करते रहने वाला जन्तु अवश्य ही विमुक्ति प्राप्त कर लेता है। ॥१५॥ ब्रह्मा से आदि लेकर देवों और गन्धर्वों के द्वारा, महामुनियों से, सिद्ध तथा चारणों के द्वारा एव योगियों से जो सेवित है ऐसे भगवान् विष्णु का निरन्तर ध्यान करने वाला पुरुष निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥१६॥

इस अत्यन्त दुस्तर और महाविशाल संसार के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष समाहित होकर सम्पूर्ण लोक से छुटकारा पाने की चाह रखता हुआ वरद विष्णु की इस प्रकार स्तुति करके उनका ही सर्वदा ध्यान करता हुआ इससे छुटकारा पा जाता है ॥१७॥ संसार के बन्धन से मुक्ति की इच्छा करने वाला कोई भी सावधान होकर अनन्त, अव्यय विष्णुदेव को जो इस विश्व में प्रतिष्ठित हैं तथा विश्व के ईश्वर एवं अजन्मा हैं उनका सर्वदा निरन्तर ध्यान करके अवश्य ही विमुक्त हो जाता है ॥१८॥ श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से पहिले समय मे नारद देवर्षि के द्वारा पूछे गये वह भगवान् वृषभध्वज शिव ने उनको जो व्याख्या करके बतलाया था वही मैंने सब तुमको बतला दिया है ॥१९॥

तमेव सततं ध्यायन्निर्व्ययं ब्रह्म निष्कलम् ।
अवाप्स्यसि ध्रुवं तात शाश्वतं पदमव्ययम् ॥२०
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
क्षणमेकाग्रचित्तस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२१
श्रुत्वा सुरर्षिर्विष्णोः प्राधान्यमिदमीश्वरात् ।
स विष्णुं सम्यगाराध्य सिद्धं पदमवाप्तवान् ॥२२
यः पठेच्छृणुयाद्वापि नित्यमेव स्तवोत्तमम् ।
कोटिजन्मकृतं पापमपि तस्य प्रणश्यति ॥२३
विष्णोः स्तवमिदं दिव्यं महादेवेन कीर्त्तितम् ।
प्रयत्नाद्यः पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति ॥२४

हे तात ! इसलिये निर्व्यय, निष्कल उसी ब्रह्म का निरन्तर ध्यान करते हुए तुम सब निश्चय ही अव्यय एवं शाश्वत पद को प्राप्त कर लोगे ॥२०॥ सहस्रों अश्वमेध यज्ञ तथा सैकडों वाजपेय यज्ञ भी एक क्षण भर एकाग्र चित्त करके भगवान् विष्णु के ध्यान करने की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते हैं। ऐसा विष्णु के ध्यान का माहात्म्य है ॥२१॥ इस तरह से देवर्षि नारद जी ने ईश्वर शिव से भगवान् विष्णु के ध्यान का परम प्राधान्य श्रवण किया था और फिर उनने विष्णु की भली-भाँति आराधना की तथा सिद्धि के

परम पद को प्राप्त किया था ॥२२॥ जो कोई भी पुरुष इस परमोत्तम स्तव का नित्य ही पाठ करता है अथवा इसका श्रवण किया करता है उसके करोड़ों जन्मों में किये हुए भी पाप पूर्ण रूप से नष्ट हो जाया करते हैं ॥२३॥ इस भगवान् विष्णु के स्तव को जो कि अत्यन्त दिव्य एवं परम उत्तम है, महादेव ने इसका कीर्तन किया था। जो भी कोई प्रयत्न पूर्वक इसका नित्य ही पाठ करता है वह अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है ॥२४॥

११०—मृत्युष्टक स्तोत्र

स्तोत्र सर्वं प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयेन भाषितम् ।
दामोदर प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्यु करिष्यति ॥१
शङ्खचक्रधर देव व्यक्तरूपिणमव्ययम् ।
अधोक्षज प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्यु करिष्यति ॥२
वराह वामन विष्णु नारसिंह जनार्दनम् ।
माधवञ्च प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्यु करिष्यति ॥३
पुरुष पुष्करक्षेत्रबीज पुण्य जगत्पतिम् ।
लोकनाथ प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्यु करिष्यति ॥४
सहस्रशिरस देव व्यक्ताव्यक्त सनातनम् ।
महायोग प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥५
भूतात्मान महात्मान यज्ञयोनिमयोनिजम् ।
विश्वरूप प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्यु करिष्यति ॥६

श्री सूतजी ने कहा—मार्कण्डेय के द्वारा भाषित में सर्व स्तोत्र को बतलाता हूँ। अब तो मैं भगवान् दामोदर की शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ। यह मृत्यु हमारा क्या बिगाड़ करेगा ? ॥१॥ शङ्ख, चक्र आयुधों के धारण करने वाले व्यक्त रूप से संयुत एवं परम अव्यक्त देव अधोक्षज विष्णु की शरणागति में पहुँच गया हूँ अब मेरा यह मृत्यु क्या कर सकेगा ? ॥२॥ वराह, वामन, नृसिंह, माधव, जनार्दन भगवान् विष्णु की प्रपत्ति में मैं प्राप्त हो गया हूँ। अब यह मृत्यु हमारी क्या हानि करेगा ? ।३। पुष्कर क्षेत्र के बीज, जगतों के स्वामी,

पुण्य स्वरूप, लोकों के नाथ परम पुरुष विष्णु का मैं प्रपन्न हो चुका हूँ, मेरा अब यह मृत्यु क्या बुरा करेगा ? ॥४॥ सहस्र शिरों वाले, व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप से समन्वित, सनातन (सदा सर्वदा रहने वाला) एवं महान् योग वाले विष्णुदेव प्रपत्ति मैंने ग्रहण कर ली है । अब यह परम दारुण मृत्यु प्राप्त होकर भी हमारी क्या हानि कर सकेगा ? ॥५॥ समस्त भूतों की आत्मा, महान् आत्मा यज्ञों की योनि अर्थात् उद्भव स्थान, विश्व रूप वाले तथा अयोनिज भगवान् विष्णु की मैं शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ । अब यह विचारा मृत्यु हमारा क्या कर सकेगा ? ॥६॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तवं तस्य महात्मनः ।
अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैः प्रपीडितः ॥७
इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता ।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ॥८
मृत्यष्टकमिदं पुण्यं मृत्युप्रशमनं शुभम् ।
मार्कण्डेयहितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह ॥९
इदं यः पठते भक्त्या त्रिकालं नियतः शुचिः ।
नाकाले तस्य मृत्युः स्यान्नरस्याच्युतचेतसः ॥१०
हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुराणं नारायणं शाश्वतमप्रमेयम् ।
विचिन्त्य सूर्यादतिराजमानं मृत्युं स योगी जितवांस्तथैव ॥११

इस प्रकार से कहे हुए महान् आत्मा वाले भगवान् के स्तव का श्रवण कर मृत्यु वहाँ से चला गया था और वह विष्णु के दूतों के द्वारा बहुत ही प्रपीडित किया गया था ॥७॥ इस प्रकार से परम धीमान् मार्कण्डेय मुनि ने उस मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी । पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले भगवान् नृसिंह के प्रसन्न हो जाने पर यहाँ फिर कुछ भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहा करती है ॥८॥ यह मृत्यु का अष्टक परम पुण्यमय है । यह अत्यन्त शुभ है और मृत्यु का प्रशमन करने वाला है । इसको मार्कण्डेय मुनि के हित—सम्पादन करने के लिये ही विष्णु भगवान् ने स्वयं ही अपने मुखारविन्द से कहा था ॥९॥ इस मृत्यु के अष्टक को जो नित्य ही नियम पूर्वक भक्ति-भाव के साथ तीनों कालों में नियत

एव पवित्र होकर पढता है उस अच्युत भगवान् मे चित्त को लगाने वाले मनुष्य की अकाल मे कभी भी मृत्यु नही होगी ॥१०॥ अपने हृदय रूपी पद्म मे सर्वदा संस्थित, परम पुराण पुरुष, शाश्वत, प्रमान करने के योग्य भगवान् नारायण का विशेष रूप से चिन्तन करे जो कि सूर्यदेव से भी अत्यधिक दीप्ति वाले हैं। ऐसा ध्यान करने वाला योगी मृत्यु को उसी प्रकार से मार्कण्डेय की भाँति ही जीत लेता है ॥११॥

१११—अच्युत् स्तोत्र

वक्ष्येऽहमच्युतस्तोत्रं शृणु शौनक सर्वदम् ।
ब्रह्मा पृष्टो नारदाय यथोवाच तथापरम् ॥१
यथाऽक्षयोऽव्ययो विष्णु स्तोतव्यो वरदो मया ।
प्रत्यह चार्चनाकाले तथा त्व वक्तुमर्हसि ॥२
ते धन्यास्ते सुजन्मानस्ते हि सर्वसुखप्रदा ।
सफलं जीवितं तेषां ये स्तुवन्ति सदाच्युतम् ॥३
मुने स्तोत्रं प्रवक्ष्यामि वासुदेवस्य मुक्तिदम् ।
शृणु येन स्तुतः सम्यक्पूजाकाले प्रसीदति ॥४
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नम सर्वपापहारिणे ।
नमो यज्ञवराहाय गोविन्दाय नमो नमः ॥५
नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर ॥६
नमस्ते ज्ञानसद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक ।
नमस्ते परमाद्वैत नमस्ते पुरुषोत्तम ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब हम भगवान् अच्युत के स्तोत्र कहेंगे जो कि समस्त पदार्थों के प्रदान करने वाला है। अब तुम उसका श्रवण करो। एक बार देवर्षि नारद जी ने ब्रह्मा जी से इसको पूछा था तब जैसा भी उन्होंने नारदजी से कहा था वही मैं तुमको बता रहा हूँ ॥१॥ नारद जी ने कहा—जिस विधि-विधान से अक्षय और अव्यय तथा वरदान देने वाले भगवान् विष्णु का स्तवन मुझे करना चाहिए और प्रतिदिन अर्चना करने के समय मे उनकी

स्तुति जिस प्रकार से करनी चाहिए—यह मुझे आप वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥२॥ वे पुरुष इस लोक में परम धन्य हैं तथा उनका जन्म धारण करना भी बहुत ही शुभ है एवं वे अत्यन्त सुख के प्रदान करने वाले हैं और उनका जीवन ही पूर्ण, सफल एवं सार्थक है जो सदा भगवान् अच्युत् स्तवन किया करते हैं ॥३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिवर ! मैं भगवान् वासुदेव के मुक्ति प्रदान कर देने वाले स्तोत्र का वर्णन करता हूँ, तुम उसका श्रवण करो। पूजन करने के अवसर पर इस स्तोत्र के द्वारा स्तवन किये जाने पर भगवान् परम प्रसन्न हो जाया करते हैं ॥४॥ स्तोत्र यह है—भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है। समस्त पापों के अपहरण करने वाले भगवान् के लिये नमस्कार है। यज्ञ वराह स्वरूप भगवान् के लिये नमस्कार है और गोविन्द के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥५॥ परम आनन्द स्वरूप वाले भगवन् ! आपके लिये नमस्कार है। हे परमाक्षर ! आपकी सन्निधि में मेरा नमस्कार है ॥६॥ आप ज्ञान में सद्रूप हैं आपके लिये नमस्कार है। हे ज्ञान के प्रदान करने वाले प्रभो ! आपको मेरा प्रणाम है। आप परम अद्वैत स्वरूप वाले हैं और पुरुषों में सर्वोत्तम हैं आपके लिये मेरा सविनय प्रणाम है ॥७॥

नमस्ते विश्वहृद्ध्येय नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु विश्वनाथ नमस्ते विश्वकारण ॥८
नमस्ते मधुदैत्यघ्न नमस्ते रावणान्तक ।
नमस्ते कंसकेशिघ्न नमस्ते कैटभार्दन ॥९
नमस्ते शतपत्राक्ष नमस्ते गरुडध्वज ।
नमस्ते कालनेमिघ्न नमस्ते गरुडासन ॥१०
नमस्ते देवकीपुत्र नमस्ते वृष्णिनन्दन ।
नमस्ते रुक्मिणीकान्त नमस्ते दितिनन्दन ।
नमस्ते गोकुलावास नमस्ते गोकुलप्रिय ॥११
जय गोपवपुः कृष्ण जय गोपीजनप्रिय ।
जय गोवर्द्धनाधार जय गोकुलवर्द्धन ॥१२
जय रावणवीरघ्न जय चाणूरनाशन ।

एवं पवित्र होकर पढ़ता है उस अच्युत भगवान् में चित्त को लगाने वाले मनुष्य की अकाल में कभी भी मृत्यु नहीं होगी ॥१०॥ अपने हृदय रूपी पद्म में सर्वदा संस्थित, परम पुराण पुरुष, शाश्वत, प्रणाम करने के योग्य भगवान् नारायण का विशेष रूप से चिन्तन करे जो कि सूर्यदेव से भी अत्यधिक दीप्ति वाले हैं। ऐसा ध्यान करने वाला योगी मृत्यु को उसी प्रकार से मार्कण्डेय की भाँति ही जीत लेता है ॥११॥

१११—अच्युत् स्तोत्र

वक्ष्येऽहमच्युतस्तोत्रं शृणु शौनक सर्वदम् ।
ब्रह्मा पृष्टो नारदाय यथोवाच तथापरम् ॥१
यथाक्षयोऽव्ययो विष्णुः स्तोतव्यो वरदो मया ।
प्रत्यहं चार्चनाकाले तथा त्वं वक्तुमर्हसि ॥२
ते धन्यास्ते सुजन्मानस्ते हि सर्वसुखप्रदाः ।
सफलं जीवितं तेषां ये स्तुवन्ति सदाच्युतम् ॥३
मुने स्तोत्रं प्रवक्ष्यामि वासुदेवस्य मुक्तिदम् ।
शृणु येन स्तुतः सम्यक्पूजाकाले प्रसीदति ॥४
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः सर्वपापहारिणे ।
नमो यज्ञवराहाय गोविन्दाय नमो नमः ॥५
नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर ॥६
नमस्ते ज्ञानसद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक ।
नमस्ते परमाद्वैत नमस्ते पुरुषोत्तम ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब हम भगवान् अच्युत के स्तोत्र कहेंगे जो कि समस्त पदार्थों के प्रदान करने वाला है। अब तुम उसका श्रवण करो। एक बार देवर्षि नारद जी ने ब्रह्मा जी से इसको पूछा था तब जैसा भी उन्होंने नारदजी से कहा था वही मैं तुमको बता रहा हूँ ॥१॥ नारद जी ने कहा—जिस विधि-विधान से अक्षय और अव्यय तथा वरदान देने वाले भगवान् विष्णु का स्तवन मुझे करना चाहिए और प्रतिदिन अर्चना करने के समय में उनकी

स्तुति जिस प्रकार से करनी चाहिए—यह मुझे आप वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥२॥ वे पुरुष इस लोक में परम धन्य हैं तथा उनका जन्म धारण करना भी बहुत ही शुभ है एवं वे परयन्त सुख के प्रदान करने वाले हैं और उनका जीवन ही पूर्णत. सफल एवं सार्थक है जो सदा भगवान् अच्युत् स्तवन किया करते हैं ॥३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिवर ! मैं भगवान् वासुदेव के मुक्ति प्रदान कर देने वाले स्तोत्र का वर्णन करता हूँ, तुम उसका श्रवण करो । पूजन करने के अवसर पर इस स्तोत्र के द्वारा स्तवन किये जाने पर भगवान् परम प्रसन्न हो जाया करते हैं ॥४॥ स्तोत्र यह है—भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है । समस्त पापों के अपहरण करने वाले भगवान् के लिये नमस्कार है । यज्ञ वराह स्वरूप भगवान् के लिये नमस्कार है और गोविन्द के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥५॥ परम आनन्द स्वरूप वाले भगवन् ! आपके लिये नमस्कार है । हे पर-माक्षर ! आपकी सन्निधि में मेरा नमस्कार है ॥६॥ आप ज्ञान के सद्भाव हैं आपके लिये नमस्कार है । हे ज्ञान के प्रदान करने वाले प्रभो ! आपको मेरा प्रणाम है । आप परम अद्वैत स्वरूप वाले हैं और पुरुषों में सर्वोत्तम हैं आपके लिये मेरा सविनय प्रणाम है ॥७॥

नमस्ते विश्वकृद्देव नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु विश्वनाथ नमस्ते विश्वकारण ॥८
नमस्ते मधुदैत्यघ्न नमस्ते रावणान्तक ।
नमस्ते कंसकेशिघ्न नमस्ते कैटभार्दन ॥९
नमस्ते शतपत्राक्ष नमस्ते गरुडध्वज ।
नमस्ते कालनेमिघ्न नमस्ते गरुडासन ॥१०
नमस्ते देवकीपुत्र नमस्ते वृष्णिनन्दन ।
नमस्ते रुक्मिणीकान्त नमस्ते दितिनन्दन ।
नमस्ते गोकुलावास नमस्ते गोकुलप्रिय ॥११
जय गोपवपुः कृष्ण जय गोपीजनप्रिय ।
जय गोवर्द्धनाधार जय गोकुलवर्द्धन ॥१२
जय रावणवीरघ्न जय चाणूरनाशन ।

जय वृष्णिकुलोद्योत जय कालीयमर्दन ॥१३
जय सत्यजगत्साक्षिन् जय सर्वार्थसाधक ।
जय वेदान्तविद्वेद्य जय सर्वद माधव ॥१४

हे विश्व की रचना करने वाले देव ! आप तो इस समस्त विश्व का पूर्णतया पालन एवं रक्षण करने वाले हैं। आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं और विश्व की रचना के कारण स्वरूप हैं। आपकी सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥८॥ हे मधु नामक दैत्य के हनन करने वाले प्रभो ! आपको नमस्कार है। रावण राक्षस के अन्त करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है। कंस और केशी के वध करने वाले तथा कैटभ के हनन करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है। ॥९॥ हे गरुडध्वज ! कमल के सदृश सुन्दर नेत्रों वाले प्रभो ! आपको मेरा प्रणाम है। हे गरुड़ के ऊपर आसीन रहने वाले ! आपने कालनेमि का हनन किया था। आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम है ॥१०॥ हे देवकी के पुत्र ! हे वृष्णि नन्दन ! आपको मेरा नमस्कार है। हे रुक्मिणी के कान्त ! हे अदिति को आनन्द देने वाले ! आपको मेरा नमस्कार है। आपका आवास गोकुल ग्राम में है और आप गोकुल के परम प्रिय है, आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम है ॥११॥ हे कृष्ण ! आपने एक गोप का शरीर धारण करके भूमण्डल पर अवतार लिया है और गोपीजनों के परम प्रिय हैं, आपकी जय हो। आप गोवर्धन को आधार बन'कर गिरिराज का सब भोग ग्रहण करने वाले हैं और गायों के कुल को बढ़ाने वाले हैं, आपकी सदा जय हो ॥१२॥ आपने रावण जैसे महा वीर का हनन किया था और चाणूर मल्ल का विनाश करने वाले हैं, आपको सदा जय जयकार होवे। आपने जन्म लेकर विश्व मे वृष्णि कुल को प्रकाशित कर दिया था। आपने महा विषधर कालिय नाग का मर्दन कर दिया था, आपकी सदा जय हो ॥१३॥ हे इस जगत् के सच्चे साक्षी प्रभो ! हे सम्पूर्ण अर्थों के साधन करने वाले ! आपकी सर्वदा जय हो। हे माधव ! आप वेदान्त के वेत्ता मनीषियों के वेद्य हैं और सभी कुछ प्रदान करने वाले हैं, आपको सदा जय हो ॥ १४ ॥

जय सर्वाश्रयाव्यक्त जय सर्वद माधव ।
जय सूक्ष्मचिदानन्द जय चित्तनिरञ्जन ॥१५
जयस्तेऽस्तु निरालम्ब जय शान्त सनातन ।
जय नाथ जगत्पुष्ट जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥१६
त्वं गुरुस्त्वं हरे शिष्यस्त्वं दीक्षामन्त्रमण्डलम् ।
त्वं न्यासमुद्रासमयस्त्वञ्च पुष्पादि साधनम् ॥१७
त्वमाधारस्त्वमनन्तस्त्वं कूर्मस्त्वं धराम्बुज ।
धर्मज्ञानादयस्त्वं हि वेदिमण्डलशक्तय ॥१८
त्वं प्रभो छलभृद्रामस्त्वं पुन सवरान्तक ।
त्वं ब्रह्मर्षिश्च देवस्त्वं विष्णु सत्यपराक्रम ॥१९
त्वं नृसिंह परानन्दो वराहस्त्वं धराधर ।
त्वं सुवर्णस्तथा चक्रस्त्वं गदा शङ्ख एव च ॥२०
त्वं श्री प्रभो पुष्टिस्त्वं त्वं माला देव शाश्वती ।
श्रीवत्स कौस्तुभस्त्वं हि शार्ङ्गी त्वञ्च तथेषुधि ॥२१

हे लक्ष्मी के पति देव ! आप सबके अव्यक्त रूप से आश्रय हैं और समस्त अर्थों के प्रदान करने वाले हैं आपकी सदा जय होवे। भगवान् ! आपका स्वरूप परम सूक्ष्मचित् अर्थात् ज्ञानमय और आनन्द रूप है। आप सबके चित्त के रञ्जन करने वाले हैं। आपकी सदा जय हो ॥१५॥ आप स्वयं बिना अवलम्ब वाले हैं—शान्त स्वरूप हैं और सनातन अर्थात् सर्वदा से चले आने वाले तथा सदा रहने वाले हैं, आपकी सदा जय हो। हे नाथ ! आप से ही यह समस्त जगत् पोषण प्राप्त कर पुष्ट होता है। हे विष्णो ! आपकी जय हो और आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥१६॥ हे हरे ! आप ही सबके अज्ञान के नाश करने वाले गुरु हैं और आप ही दीक्षा देने वाले मन्त्रों का मण्डल है—आप न्यास, मुद्रा और समय हैं तथा पुष्प आदि की अर्चना के साधन भी आप ही हैं ॥१७॥ हे प्रभो ! आप ही सब के आधार हैं और आप अनन्त हैं। आप ही भूमि का आधार कूर्म हैं, आप धरा हैं और आप ही अम्बुज अर्थात् पद्म हैं। जो धर्म और ज्ञान आदि हैं ये सभी आपका ही रूप हैं।

वेदि मण्डल और शक्तियाँ भी आप ही हैं ॥१८॥ हे प्रभो ! आप ही छल मृत राम हैं और फिर आप ही सवरात्मक हैं। आप ही ब्रह्मपि देव हैं और सत्य पराक्रम वाले विष्णु रूप भी आप ही है ॥१९॥ परम आनन्द स्वरूप नृसिंह भी आप हैं और इस धरा मण्डल को धारण कर पातालसे लाने वाले वाराह भी आप ही हैं। आप सुन्दर वर्ण वाले हैं तथा शङ्ख—चक्र और गदा जो आयुध हैं वे भी सब आप के ही स्वरूप हैं ॥२०॥ हे प्रभो ! आप ही श्री हैं—आप ही पुष्टि हैं आप ही वनमाला हैं हे देव ! जो वनमाला सर्वदा धारण किये हुए हैं आप ही श्री वत्स हैं—आप ही कौस्तुभ हैं और आप ही शार्ङ्ग धनुष है ॥ २१ ॥

त्वं खड्गचर्मणा सार्द्धं त्वं दिक्पालस्तथा प्रभो ।
त्वं रक्षोऽधिपतिः साध्यस्त्वं वायुस्त्वं निशाकरः ॥२२
आदित्या वसवो रुद्रास्त्वमश्विन्यौ मरुद्गणाः ।
त्वं दैत्या दानवानागास्त्वं यक्षा राक्षसाः खगाः ॥२३
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा पितरस्त्वं महामराः ।
भूतानि विषयस्त्वं हि त्वमव्यक्तेन्द्रियाणि च ॥२४
मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञस्त्वं हृदीश्वरः ः
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः समित्कुशाः ॥२५
त्वं वेदी त्वं हरे दीक्षा त्वं यूपस्त्वं हुताशनः ।
त्वं होता यजमानस्त्वं त्वं धान्य. पशुयाजकः ॥२६
त्वमध्वर्युस्त्वमुद्गाता त्वं यज्ञ पुरुषोत्तम ।
दिक्पातालमहो व्योम द्यौस्त्वं नक्षत्रतारक. ॥२७
देवतिर्य्यङ्मनुष्येषु जगदेतच्चराचरम् ।
यत्किञ्चिद्दृश्यते देव ब्रह्माण्डमखिलं जगत् ॥२८
तव रूपमिदं सर्वं दृष्टयर्थं सम्प्रकाशितम् ।
नाथ यत्तं परं ब्रह्म देवैरपि दुरासदम् ॥२९

चर्म में साथ खड्ग भी आप हैं और हे प्रभो ! समस्त दिशाओं के पालक दिक्पाल भी आप ही हैं। आप राक्षसों के अधिपति हैं। आप ही साध्य

हैं तथा वायु और निशाकर चन्द्र भी आप ही हैं ॥ २२ ॥ द्वादश आदित्य—आठ वसुगण—एकादश रुद्र—दोनों अश्विनी कुमार एवं मरुद्गण आप ही हैं अर्थात् आपके ही ये सब विभिन्न रूप हैं। आप ही दैत्यों के रूप में रहते हैं—आप ही दानव हैं—नाग, यक्ष, राक्षस खग, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध और पितृगण तथा महान् अमर गण भी आप ही हैं अर्थात् ये सब आपके ही स्वरूप हैं। तात्पर्य यह है कि आपके अतिरिक्त अन्य कहीं भी कुछ नहीं है सर्वत्र सभी रूपों में आप ही विराजमान हैं। समस्त भूत और विषय आप ही हैं। आप ही अव्यक्त हैं और समस्त इन्द्रियाँ भी आपका स्वरूप हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ मन-बुद्धि-अहङ्कार और हृदय में क्षेत्रज्ञ ईश्वर भी आप ही हैं। आप ही यज्ञ हैं—आप ही वषट्कार और ओंकार भी हैं तथा कुश एवं समित् भी आपका स्वरूप हैं ॥२५॥ हे हरे ! आप ही वेदी—दीक्षा—यूप और हुताशन है। आप ही होता हैं और आप ही यजमान हैं। आप ही धान्य तथा पशुपाजक हैं ॥२६॥ आप ही अध्वर्यु हैं और आप ही उद्गाता हैं। आप ही पुरुषोत्तम एवं यज्ञ भी आप ही हैं। दिशाएँ—पाताल—मही—व्योम—द्यौ और नक्षत्र आदि सब आप ही के स्वरूप हैं ॥ २७ ॥ देवगण—तिर्यक् योनि के जन्तु तथा मनुष्य ये स्वरूप में जो यह चर एवं अचर जगत् है तथा हे देव ! यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जगत् जो कुछ भी दिखलाई देता है यह सब आप ही का रूप है और दृष्टि के लिये ही ये सब सम्प्रकाशित हुए हैं। हे नाथ ! आपका जो परात्पर स्वरूप है जिसे ब्रह्म कहा जाता है वह तो देवों के द्वारा भी दुष्प्राप्त होने वाला है साधारण जन्तु तो प्राप्त ही कैसे कर सकता है ? ॥२८॥२९॥

कस्तज्जानाति विमलं योगिगम्यमतीन्द्रियम्
अव्ययं पुरुषं नित्यमव्यक्तमजमव्ययम् ॥३०

प्रलयोत्पत्तिरहितं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ।
सर्वज्ञं निर्गुणं शुद्धमानन्दमजरं परम् ॥३१

बोधरूपं ध्रुवं शान्तं पूर्णमद्वैतमक्षयम् ।
अवतारेषु या मूर्त्तिविहरद्वैव दृश्यते ॥३२

परं भावमजानन्तस्त्वां भजन्ति दिवौकसः ।
कथं त्वामीदृग्‌ सूक्ष्मं शक्नोमि पुरुषोत्तम ॥३३
पुष्पधूपादिभिर्यत्तत्तव सर्वविभूतयः ।
सङ्कर्पणादि हे देव तव यत्पूजितो मया ॥३४
क्षन्तुमर्हसि तत्सर्वं यत्कृतं न कृत मया ।
न शक्नोमि विभो सम्यक्तव पूजां यथोदिताम् ॥३५

आपके उस ब्रह्म स्वरूप को कौन जानता है ? वह तो अत्यन्त विमल-योगियो के द्वारा जानने के योग्य होता है और वह इन्द्रियो से भी परे की वस्तु है । ब्रह्म का स्वरूप अव्यय पुरुष है—नित्य—अव्यक्त–अज और नाश रहित है ॥३०॥ ब्रह्म प्रलय तथा उत्पत्ति से रहित है–सर्वत्र व्याप्त रहने वाला और सबका ईश्वर है । वह सर्वज्ञ अर्थात् सभी कुछ के ज्ञाता हैं । ब्रह्म मे कोई भी गुण नही है अर्थात् गुणो से शून्य निर्गुण हैं । उस ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप होता है । जरा से (वार्धक्य से) रहित परात्पर और आनन्दमय वह होता है ॥३१॥ ब्रह्म बोध अर्थात् ज्ञान के स्वरूप वाला है—ध्रुव है—शान्त है–पूर्ण है तथा क्षय से शून्य एव द्वैतभाव से विपीत होता है । जो उसी ब्रह्म की मूर्त्ति अवतीर्ण होकर इस लोक मे अवतार धारण किया करती है वह सर्वत्र विचरण किया करती है और हे देव ! वह सबके द्वारा दिखलाई देती है ॥ ३२ ॥ हे पुरुषों मे परमश्रेष्ठ ! उस आपके ब्रह्म स्वरूप के परम भाव का ज्ञान न रखने वाले देवगण आपका भजन एव सेवन किया करते है । आपके इस प्रकार के सूक्ष्म स्वरूप को कैसे प्राप्त कर सकते हैं ॥ ३३ ॥ गन्धाक्षत पुष्प धूप दीपादि पूजनोपचारो के द्वारा मैंने जो सङ्कर्षण आदि की प्रतिमाओ का अर्चन किया है वे सब आप ही की विभूतियाँ हैं । उन आपकी विभूतियो का पूजन भी आप का ही पूजन है ॥३४॥ हे विभो ! मैंने जो कुछ भी आपकी अर्चना आदि की है और जो कुछ भी नहीं किया है अर्थात् मुझसे जो त्रुटि रह गई है उन सबको आप क्षमा करने के योग्य होते हैं । हे प्रभो ! जिस प्रकार से आपकी पूजा बनाई गई है उसे ठीक तरह से मैं नहीं कर सकता हूँ ॥ ३५ ॥

यत्कृत जपहोमादि असाध्य पुरुषोत्तम ।
विनिष्पादयितुं भक्त्या अतस्त्वा क्षमयाम्यहम् ॥३६
दिवारात्रौ च सन्ध्याया सर्वावस्थासु चेष्टत ।
अचला तु हरे भक्तिस्तवाङ्घ्रियुगले मम ॥३७
शरीरेण तथा प्रीतिर्न च धर्मादिकेषु च ।
यथा त्वयि जगन्नाथ प्रीतिरात्यन्तिकी मम ॥३८
किं तेन न कृत कर्म स्वगमोक्षादिसाधनम् ।
यस्य विष्णौ दृढा भक्ति. सर्वकामफलप्रदे ॥३९
पूजा कर्त्तुं तथा स्तोत्र क. शक्नोति तवाच्युत ।
स्तुत तु पूजित मेऽद्य तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते ॥४०
इति चक्रधरस्तोत्र मया सम्यगुदाहृतम् ।
स्तौहि विष्णु मुने भक्त्या यदीच्छसि पर पदम् ॥४१

हे पुरुषोत्तम ! मैंने जो कुछ भी असाध्य अर्थात् साधना न प्रयोग्य जप एवं होम आदि को विशेष रूप से निष्पादित करने के लिये भक्तिभाव पूर्वक किया है। उनमें बहुत-सी त्रुटियाँ अवश्य ही रही होंगी। अतएव मैं आप से उन सब के लिये क्षमा की याचना करता हूँ ॥ ३६ ॥ दिन और रात्रि मे तथा दोनो सन्धि कालो मे एवं सभी प्रकार की अवस्थाओं मे स्थित रहकर चेष्टाएँ करते हुए मेरी हे हरि भगवन् ! आपके चरण युगल मे अचल भक्ति है ॥३७॥ हे जगत् के नाथ ! धर्म आदि अन्य कार्यो म मेरी शरीर के द्वारा उस प्रकार की प्रीति नही है जैसी कि आत्यन्तिकी प्रीति मेरी आपके चरण कमल मे रहती है ॥ ३८ ॥ उस पुरुष ने स्वर्ग और मोक्ष आदि का कौन-सा साधन नहीं कर लिया है, जिसकी समस्त कामनाओं के फलो का प्रदान कर देने वाले भगवान् विष्णु के चरणारविन्द मे परम सुदृढ भक्ति होती है। विष्णु की भक्ति ही समस्त कर्मों के फलो को प्रदान करने वाली होती है। इसके करने के बाद फिर अन्य किसी भी धर्मादि साधन करने की आवश्यकता ही नही रहा करती है ॥३९॥ हे अच्युत् ! आपकी उस प्रकार की विधि विधान पूर्वक अर्चना तथा आपके स्तोत्र का पाठ कौन पुरुष करने मे समर्थ होता है ?

अर्थात् कोई भी कर नहीं सकता है। हे भगवन् ! आज मैंने आपका स्तवन किया है और आपका अर्चन भी किया है। इनमें बहुत-सी त्रुटियाँ जो हो गई हैं उन्हें आप कृपाकर क्षमा कर देवें। आपके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥ ४० ॥ यह भगवान् चक्रधारी का स्तोत्र मैंने भली भाँति वर्णन करके तुमको बता दिया है। हे मुने ! यदि आप परम पद के प्राप्त करने की इच्छा रखते हो तो भक्ति की भावना से भगवान् विष्णु का स्तवन करो। एकमात्र इसी से तुमको सर्वोत्तम पद की प्राप्ति हो जायगी और पूर्ण कल्याण होगा ॥ ४१ ॥

स्तोत्रेणानेन यः स्तौति पूजाकाले जगद्गुरुम् ।
अचिराल्लभते मोक्षं छित्वा ससारबन्धनम् ॥४२
कल्येऽपि यो जपेद्भक्त्या त्रिसन्ध्य नियत. शुचिः ।
इदं स्तोत्रं मुने सोऽपि सर्वकाममवाप्नुयात् ॥४३
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
रोगाद्विमुच्यते रोगी निर्धनो लभते धनम् ॥४४
विद्यार्थी लभते विद्यां यशः कीर्त्तिञ्च विन्दति ।
जातिस्मरत्वं मेधावी यद्यदिच्छति चेतसा ॥४५
अधन्यः सर्ववित्प्राज्ञस्त्वसाधुः सर्वकर्मकृत् ।
सत्यवाक्यः शुचिर्दाता यः स्तौति पुरुषोत्तमम् ॥४६
साधुशीला हि ते सर्वे सर्वधर्मबहिष्कृताः ।
येषां प्रवर्त्तनं नास्ति हरिमुद्दिश्य सत्क्रियाः ॥४७
नाशौचं विद्यते तस्य मनो वाक् च दुरात्मनः ।
यस्य सर्वार्थदे विष्णौ भक्तिर्नाव्यभिचारिणी ॥४८
आराध्य विधिवद्देवं हरिं सर्वसुखप्रदम् ।
प्राप्नोति पुरुष. सम्यग्यद्यत्प्रार्थयते फलम् ॥४९

इस भगवान् विष्णु के स्तोत्र के द्वारा विष्णु के अर्चन के समय में सम्पूर्ण जगत् के गुरु भगवान् विष्णु का जो भी कोई पुरुष स्तवन किया करता है वह बहुत ही शीघ्र ससार के सम्पूर्ण विशाल बन्धनों का छेदन करके अवश्य

हो मोक्ष पाने का लाभ प्राप्त कर लिया करता है ॥४२॥ जो पुरुष प्रातःकाल में भी भक्ति भाव पूर्वक नियत रूप से पवित्र होकर तीनों सन्ध्याओं में इस स्तोत्र का जाप किया करता है हे मुनिवर ! वह पुरुष भी अपनी सभी कामनाओं के फलों को प्राप्त कर लिया करता है ॥४३॥ जो पुत्र के प्राप्त करने की कामना रखकर इस स्तोत्र का जप करता है वह पुत्र की प्राप्ति किया करता है और जो सांसारिक बन्धनों में बँधा हुआ उन सब से छुटकारा पाने के लिये इस स्तव का जाप करता है वह उन सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। जो कोई रोग से मुक्त होने वाला इस विष्णु के स्तोत्र का जाप करता है वह रोग से छुटकारा पा जाता है और धन रहित पुरुष धन की प्राप्ति कर लेता है ॥ ४४ ॥ विद्या की चाह रखने वाला पुरुष पूर्ण विद्या का लाभ प्राप्त कर लेता है तथा इसी प्रकार से यश और कीर्ति को भी प्राप्ति किया करता है। अपनी जाति में प्रमुखता को भी इस स्तोत्र के पाठ एवं जाप के प्रभाव से मनुष्य प्राप्त कर लेता है। मेधावी पुरुष जो-जो भी चित्त से चाहता है उसी का लाभ निश्चय ही उसको हो जाया करता है। जो अधन्य है वह इस स्तव के प्रभाव से सबका वेत्ता परम प्राज्ञ हो जाता है और जो असाधु है वह समस्त धर्मों के करने वाला बन जाया करता है। जो सत्य वचनों के बोलने वाला—परम पवित्र हो कर तथा दान शील रहते हुए इस स्तव के द्वारा भगवान् पुरुषोत्तम का स्तवन करता है उसका सब भाव से पूर्ण कल्याण हो जाता है ॥४५॥४६॥ जो चाहे साधु शील भी हों किन्तु वे सब समस्त धर्मों से बहिष्कृत होते हैं जिनकी प्रवृत्ति भगवान् विष्णु की सान्निधि प्राप्त करने के उद्देश्य को लेकर नहीं होती है ॥ ४७ ॥ उस दुरात्मा के मन तथा वाणी में कभी शुचिता नहीं रहा करती है जिसकी सब धर्मों के प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु में अव्यभिचारिणी भक्ति नहीं होती है। व्यभिचार रहित अर्थात् आत्यन्तिकी विष्णु भक्ति का होना परमावश्यक साधन मानव के नि श्रेयस प्राप्त करने के लिये होना है ॥ ४८ ॥ सब सुखों के प्रदान करने वाले हृदिस्थ का विधि पूर्वक आराधन करके मनुष्य जिस जिस भी फल के पाने की प्रार्थना करता है उसी उसी फल का लाभ वह अवश्य ही कर लेता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥४९॥

११२-रोग नाशन वैष्णव कवचम्

श्वेतद्वीपनिवासी च श्वेतद्वीपं नयत्वजः ।
सर्वान्शत्रून्सूदयतु मधुकैटभसूदनः ॥१
विष्णुः सदा चाकर्षतु किल्बिषं मम विग्रहात् ।
हंसो मत्स्यस्तथा कूर्मः पातु मां सर्वतो दिशम् ॥२
त्रिविक्रमस्तु मे देवः सर्वान्पापान्निगृह्णतु ।
तथा नारायणो देवो बुद्धि पालयतां मम ॥३
शेषो मे निर्मलं ज्ञानं करोत्वज्ञाननाशनम् ।
वड़वामुखो नाशयतु कल्मषं यत्कृतं मया ॥४
पद्भ्यां ददातु परमं सुखं मूर्ध्नि मम प्रभुः ।
दत्तात्रेयः कलयतु सपुत्रपशुबान्धवम् ॥५
सर्वानरीन्नाशयतु रामः परशुना मम ।
रक्षोघ्नस्तु दाशरथिः पातु नित्यं महाभुजः ॥६
शत्रून्हलेन मे हन्याद्रामो यादवनन्दनः ।
प्रलम्बकेशिचाणूरपूतनाकंसनाशनः ॥
कृष्णस्य यो बालभावः स मे कामान् प्रयच्छतु ॥७

भगवान् परशुराम अपने परशु से मेरे सभी शत्रुओं का नाश कर देवे । सम्पूर्ण राक्षसों के संहार करने वाले भगवान् दाशरथि श्री राम जिनकी बड़ी बड़ी भुजाएं हैं मेरी नित्य ही रक्षा करें ॥ ६ ॥ भगवान् बलराम जो कि यादव कुल में अवतीर्ण हुए हैं अपने हल से मेरे समस्त शत्रुओं का हनन करें । प्रलम्ब-केशी—चाणूर—पूतना और कंस के नाश करने वाला जो भगवान् श्री कृष्ण का बाल भाव है वह मेरी समस्त कामनाओं को प्रदान करें ॥७॥

अन्धकारतमोघोरं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
पश्यामि भयसन्त्रस्तः पाशहस्तमिवान्तकम् ॥८
ततोऽहं पुण्डरीकाक्षमच्युतं शरणं गतः ।
धन्योऽहं निर्भयो नित्यं यस्य मे भगवान्हरिः ॥९
ध्यात्वा नारायणं देवं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
वैष्णवं कवचं बद्ध्वा विचरामि महीतले ॥१०
अप्रधृष्योऽस्मि भूतानां सर्वदेवमयो ह्यहम् ।
स्मरणाद्देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ॥११
सिद्धिर्भवतु मे नित्यं यथा मन्त्रमुदाहृतम् ।
यो मां पश्यति चक्षुर्भ्यां यञ्च पश्यामि चक्षुषा ॥
सर्वेषां पापदुष्टानां विष्णुर्बध्नाति चक्षुषी ॥१२
वासुदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य ये त्वराः ।
ते हि छिन्दन्तु पापानि मम हिंसन्तु हिंसकान् ॥१३

अन्धकार तम से परम घोर कृष्ण और पिङ्गल वर्ण वाले पुरुष को जिसके हाथों में पाश है साक्षात् यम के समान मैं जब देखता हूँ तो भय से एकदम सन्त्रस्त हो जाता हूँ । तब मैं पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले भगवान् अच्युत के शरणागति में प्राप्त हुआ हूँ । मैं परम धन्य एवं भाग्यशाली हूँ कि फिर मैं निर्भय हो जाता हूँ क्योंकि मैं नित्य ही भगवान् हरि के सन्निकट में स्थित रहता हूँ ॥ ८ ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण उपद्रवों के नाश करने वाले देव नारायण का ध्यान करके और इस वैष्णु सम्बन्धी वैष्णव कवच को बाँध कर मैं निर्भय इस मही मण्डल में विचरण करता हूँ । १० ॥ मैं भूतों के प्रधर्षण करने

के अयोग्य हूँ और मैं सब देवों से परिपूर्ण हूँ अर्थात् सब देव मेरे साथ हैं। अमित तेज वाले भगवान् विष्णु जो देवों के भी देव हैं उनके स्मरण का ही यह प्रभाव है ।। ११ ।। जैसे ही मैंने मन्त्र का उच्चारण किया वैसे ही मुझे नित्य सिद्धि होवे। जो मुझको नेत्रों से देखता है और जिस को मैं नेत्र से देखता हूँ, भगवान् विष्णु समस्त दुष्ट पापियों के नेत्र को बाँध देते हैं ।। १२ ।। भगवान् वासुदेव का जो चक्र है और उस चक्र की जो त्वराएँ हैं वे पापों का छेदन करें और मेरे हिंसकों की हिंसा कर देवें ।।१३।।

राक्षसेषु पिशाचेषु कान्तारेष्वटवीषु च ।
विवादे राजमार्गेषु द्यूतेषु कलहेषु च ।।१४
नदीसन्तारणे घोरे सम्प्राप्ते प्राणसंशये ।
अग्निचौरनिपातेषु सर्वग्रहनिवारणे ।।१५
विद्युत्सर्पविषोद्वेगे रोगे च विघ्नसङ्कटे ।
अप्यमेतज्जपेन्नित्य शरीरे भयमागते ।।१६
अय भगवतो मन्त्रो मन्त्राणा परमो महान् ।
विख्यातं कवचं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
स्वमायाकृतनिर्माणकल्पान्तगहनं महत् ।।१७
ॐ अनाद्यन्त जगद्बीज पद्मनाभ नमोऽस्तु ते ।।१८

राक्षसों में—पिशाचों में—घोर वनों में—अटवियों में—विवाद के अवसर पर—राजमार्गों में—द्यूतों में और कलहों में—नदी के सन्तरण में—घोर प्राणों के संशय के अवसर पर—अग्नि, चोरों के निपातों में—सब ग्रह के निवारण में—विद्युत्—सर्पविष—उद्वेग में—रोग में—विघ्नों के सङ्कट में इस कवच का जाप नित्य ही करना चाहिए और जिस समय में भी शरीर पर कोई भय उपस्थित हो इसका जाप करे। यह भगवान् का मन्त्र है समस्त मन्त्रों में यह परम महान् है। यह वैष्णव कवच अति विख्यात और अत्यन्त गोपनीय है। यह समस्त पापों का नाशक है। अपनी माया किये गये निर्माण और कल्पान्त के समान महान् गहन है ।। १४ ।। १५ ।। १६ ।। १७ ।। मन्त्र—" ॐ अनाद्यन्त जगद्बीज पद्मनाभ नमोऽस्तु ते "

अर्थात् आप आदि और अन्त से रहित हैं—इस जगत् के बीज स्वरूप अर्थात् कारण हैं—आपकी नाभि में पद्म है ऐसे आपके लिये प्रणाम है ॥१८॥

११३—सर्वकामद विद्या कथन

सर्व कामप्रदा विद्या सप्तरात्रेण तां शृणु ।
नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥१
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ।
नमो विज्ञानदात्रे च परमानन्दमूर्तये ॥२
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ।
रूपाणि च सर्वाणि तस्मात्तुभ्यं नमो नमः ॥३
हृषीकेशाय महते नमस्तेऽनन्तमूर्तये ।
यस्मिन्निदं यतश्चैतत्तिष्ठत्यन्योऽपि जायते ॥४
मृन्मयीं वहसि क्षोणीं तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ।
यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ॥
अन्तर्बहिश्चरसि त्वं व्योमतुल्यं नमाम्यहम् ॥५
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाभूतपतये सकलसत्त्वभावि-व्रीडनिकरकमलरेणूत्पलनिभधर्मार्यविद्यया चरणारविन्दयुगल परमेष्ठिन्नमस्ते अवापविद्याधरता चित्रकेतोश्च विद्यया ॥६

श्री हरि ने कहा—समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाली उस विद्या को सात रात्रि पर्यन्त श्रवण करो। भगवान् आपके लिये नमस्कार है। वासुदेव भगवान् का ध्यान करते हैं ॥१॥ प्रद्युम्न—अनिरुद्ध और सङ्कर्षण भगवान् के लिये नमस्कार है। विज्ञान के दाता के लिये और परम आनन्द की मूर्त्ति के लिये नमस्कार है ॥ २ ॥ अपनी ही आत्मा में रमण करने वाले—शान्त स्वरूप और द्वैत दृष्टि के निवृत्त हो जाने वाले आपके लिये मेरा नमस्कार है। आप ही समस्त रूपों में विद्यमान है। इसलिये आपको बारम्बार नमस्कार

है ॥ ३ ॥ भगवान् हृषीकेष और महान् अनन्तमूर्त्ति के लिये मेरा नमस्का
है। जिसके स्वरूप में यह सम्पूर्ण जगत् है और जिससे इसकी उत्पत्ति हो
है तथा जिसमें यह स्थिति प्राप्त किया करता है एवं अन्य भी समुत्पन्न हो
है, उन भगवान् के लिये मेरा नमस्कार है। जो इस मृत्तिकामयी पृथ्वी
वहन करते हैं उन ब्रह्म के लिये नमस्कार है। जिसका मन—बुद्धि—इन्द्रि
और प्राण स्पर्श नहीं किया करते हैं और न जानते ही हैं। हे भगवन ! आ
बाहिर और भीतर सर्वत्र विचरण किया करते हैं और व्योम के समान हैं
मैं ऐसे आप के लिये नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ ५ ॥ मन्त्र—'ॐ नः
भगवते'''चित्रकेतोश्च विद्या'—अर्थात् महाभूतों के पति महा पुरुष भगव
के लिये नमस्कार है। समस्त सत्वों के, माविम्रोड के, समुदाय के, कमल रे
के, उत्पल के तुल्य धर्म नाम वाली विद्या से चरणारविन्द युगल परमे
आपके लिये नमस्कार है। चित्रकेतु की विद्या से आपने विद्याधरता का प्र
किया था ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥६॥

११४—व्याकरण कथन

अथ व्याकरणं वक्ष्ये कात्यायन समासत ।
सिद्धशब्दविवेकाय बालव्युत्पत्तिहेतवे ॥१
सुप्तिङन्त पद स्यात सुप सप्त विभक्तयः ।
स्वौजसः प्रथमा प्रोक्तासा प्रातिपदिकात्मके ॥२
सम्बोधने च लिङ्गादावुक्ते कर्मणि कर्त्तरि ।
अर्थवत्प्रातिपदिक धातुप्रत्ययवर्जितम् ॥३
अमौशसा द्वितीया स्यात्तत्कर्म क्रियते च यत् ।
द्वितीया कर्मणि प्रोक्ताऽन्तरान्तरेण सयुते ॥४
टाभ्याभिसस्तृतीया स्यात्करणे कर्त्तरीरिता ।
येन क्रियते तत्करणं कर्त्ता यश्च करोति सः ॥५
ङेभ्याम्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदाने च कारके ।
यस्मै दित्सा धारयते,रोचते सम्प्रदानकम् ॥६

पञ्चमी स्यान्ङसिभ्यांभ्यो ह्यपादाने च कारके ।
यतोऽपैति समादत्ते अपादत्ते भयं यतः ॥७

कुमार ने कहा—इसके अनन्तर अब मैं व्याकरण के विषय में बतलाता हूँ। हे कात्यायन! बालकों की व्युत्पत्ति के निमित्त सिद्ध शब्दों के विवेक के लिए संक्षेप में इसका वर्णन किया जाता है ॥१॥ सुबन्त और तिङन्त दो प्रकार के पद कहे गये हैं। सुप ये सात विभक्तियाँ होती हैं। सु—औ—जस् नाम वाली प्रातिपदिक रूप शब्द से तीन, एक वचन, द्विवचन और बहुवचन में विभक्तियाँ प्रथमा कही जाती हैं ॥२॥ यह प्रथमा विभक्ति सम्बोधन में—लिङ्गादि में, उक्त कर्म में अर्थात् वहाँ जहाँ कर्म की ही प्रधानता कथित हो और कर्त्ता में होती है। जो शब्द अर्थ वाला हो और धातु एवं प्रत्यय से रहित हो वही प्रातिपदिक कहा जाता है ॥३॥ अम्—औ—शस्—ये तीनों वचनों में कर्म की विभक्तियाँ होती हैं। अन्तरा और अन्तरेण से युक्त में और कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है ॥४॥ टा—भ्याम्—भिस्—ये तीनों वचनों में करण की विभक्तियाँ होती हैं। ये उक्त कर्म जहाँ होता है वहाँ कर्त्ता में भी होती हैं। जिसके द्वारा किया जाता है अर्थात् जो क्रिया का साधन होता है वह करण कहा जाता है, और जो क्रिया को करता है वह कर्त्ता होता है ॥५॥ ङे—भ्याम्—भ्यस्—ये तीन वचनों में तीन विभक्तियाँ चतुर्थी कही जाती हैं और सम्प्रदान कारक में होती हैं। जिसके लिये देने की इच्छा होती है और जो दान का पात्र होता है वह सम्प्रदान कहा जाता है ॥६॥ ङसि—भ्याम्—भ्यस्—ये तीन वचनों में पञ्चमी विभक्ति होती है जो अपादान कारक में होते हैं। जहाँ से अपगमन होता है, समादान होता है या अपादान एवं भय जिससे होता है वहाँ पर अपादान कारक हुआ करता है ॥७॥

ङसोसामश्च षष्ठी स्यात्स्वामिसम्बन्धमुख्यके ।
ङ्योःसुपश्च सप्तमी स्यात् सा चाधिकरणे भवेत् ॥८
आधारश्चाधिकरणो रक्षार्थानां प्रयोगतः ।
ईप्सितञ्चानीप्सितं यत्तदपादानकं स्मृतम् ॥९
पञ्चमी पर्य्यपाङ्योगे इतरर्तेऽन्यदिङ्मुखे ।

एनयोगे द्वितीया स्यात्कर्मप्रवचनीयकैः ॥१०
वीप्सेत्थम्भावचिह्नेऽभिभागे चैव परिप्रती ।
अनुरेषु सहार्थे च हीनेऽनूपश्च कथ्यते ॥११
द्वितीया च चतुर्थी स्याच्चेष्टाया गतिकर्मणि ।
अप्राणे हि विभक्ती द्वे मन्यकर्मण्यनादरे ॥१२
नमः स्वस्ति स्वधा स्वाहालवषड्योग ईरिता ।
चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमर्थाद्भाववाचिनः ॥१३
तृतीया सहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे ।
काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगेऽपि षष्ठ्यपि ॥१४

ङस्, ओस्, आम्—ये तीनो वचनो मे षष्ठी विभक्ति के रूप होते हैं। यह षष्ठी विभक्ति मुख्यतया स्वामी के सम्बन्ध मे ही हुआ करती है। ङि, ओस्, सुप्—ये तीनो वचनो मे सप्तमी विभक्ति के रूप होते हैं। यह अधिकरण में होती है ॥८॥ जो क्रिया का होना जिस स्थान, समय आदि में होता है वही उसका आधार होता है उसे ही अधिकरण कहा जाता है। रक्षार्थों के प्रयोग से, ईप्सित और अनीप्सित जो होता है वह अपादान कहा गया है। परि, अप् और आङ् के योग मे तथा इतरत्—ऋते और अन्य दिशा के मुख मे भी पञ्चमी होती है। एन के योग मे द्वितीया होती है तथा कर्म प्रवचनीय नामक सज्ञा के योग मे द्वितीया विभक्ति हुआ करती है ॥८।९।१०॥ वीप्सा में—इत्थभाव चिह्न में—अभिभाग मे परि और प्रति के याग में—सहार्थ मे अनु और हीन मे अनूप कहा जाता है ॥११॥ और इनमे द्वितीया विभक्ति होती है। चेष्टा में, गतिकर्म मे और अप्रमाण मे, मन्य कर्म मे और अनादर मे द्वितीया तथा चतुर्थी दोनों विभक्तियाँ होती हैं ॥१२॥ नम —स्वस्ति, स्वधा, स्वाहा, अल, वषट्—इनके योग में भी चतुर्थी विभक्ति कही गई है। तादर्थ्य में और भाववाची तुमर्थ मे अर्थात् तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में भी चतुर्थी विभक्ति हुआ करती है ॥१३॥ सह और सहार्थक अन्य भी किसी शब्द के योग मे एव कुत्सित अङ्ग के विशेषण के होने पर तृतीया विभक्ति होती है। काल मे और भाव मे सप्तमी होती है और इनके योग मे षष्ठी भी होती है ॥१४॥

स्वामीश्वराधिपतिभि. साक्षाद्दायादसूतकैः ।
निर्द्धारणे द्वे विभक्ती षष्ठी हेतुप्रयोगके ॥१५
स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियत्नके ।
हिंसार्थानां प्रयोगे च प्रतिकर्मणि कर्त्तरि ॥१६
न कर्त्तृकर्मणोः षष्ठीनिष्ठयोः प्रातिपादिके ।
द्विविध प्रातिपदिक नाम धातुस्तथैव च ॥१७
भुवादिभ्यस्तिङो लःस्याल्लकारा दश वै स्मृताः ।
तिप्तसन्ति प्रथमो मध्यः सिप्यसथोत्तमपुरुष. ॥१८
मिब्वस्मस्परस्मै तु पदानाञ्चात्मनेपदम् ।
त आत अन्ते प्रथमो स आथे ध्वे च मध्यमः ॥१९

स्वामी, ईश्वर, अधिपति और साक्षात् दायाद तथा सूतकों के साथ निर्धारण करने में दो विभक्तियाँ होती है । हेतु के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति हुआ करती है ॥१५॥ स्मृति के अर्थ कर्म में तथा कृञ् धातु के प्रति यत्न में और हिंसार्थकों के प्रयोग में प्रतिकर्म कर्त्ता में षष्ठी होती है ॥१६॥ प्रातिपदिक में निष्ठ कर्त्ता और कर्म में षष्ठी नहीं होती है । प्रातिपदिक दो प्रकार का होता है । एक नाम है और दूसरा धातु है ॥१७॥ भू आदि से तिङ् होते है । तिङों से लकार होते हैं । वे लकार दश कहे गये हैं । तिप्, तस्, झि (अन्ति) ये तीन तिङ् प्रत्यय प्रथम पुरुष में होते हैं । मध्यम पुरुष में सिप्, थस् और थ—ये तीन प्रत्यय एक वचन, द्विवचन और बहुवचन में होते हैं । उत्तम पुरुष के इसी क्रम से तीनों वचनों में मिप्, वस् और मस्—ये तिङ् प्रत्यय होते हैं । ये तीनों पुरुषों और तीन-तीन वचनों के तिङ् प्रत्यय परस्मै पद में हुआ करते हैं । दूसरे के लिये जो क्रिया का प्रयोग किया जाता है वह परस्मैपद कहा जाता है । अब आत्मनेपद बतलाते है जो अपने अर्थ प्रयुक्त होता है । ते, आताम्, झ (आताम् और झ का परिणत रूप 'आते', 'अन्ते' है) ये तीनों वचनों के आत्मनेपद में प्रथम पुरुष के तिङ् प्रत्यय होते हैं । स—आथे—ध्वे—ये तीन मध्यम पुरुष में होते हैं ॥१८।१९॥

ए वहे महे उत्तमः पुरुषो हि निरूप्यते ।
नाम्नि प्रयुज्यमानेऽपि प्रथम. पुरुषो भवेत् ॥२०
मध्यमो युष्मदि प्रोक्त उत्तमः पुरुषोऽस्मदि ।
भूराद्या धातवः प्रोक्ताः सनाद्यन्तास्तथा ततः ॥२१
लडीरितो वर्तमाने स्मेनातीते च धातुतः ।
भूतेऽनद्यतने लङ् वा लुङाशिषि च धातुतः ॥२२
विध्यादावेवानुमतौ लोङ् वाच्यो मन्त्रणे भवेत् ।
निमन्त्रणाधीष्टसप्रश्ने प्रार्थनेषु तथाशिषि ॥२३
लिडतीते परोक्षे स्याद्दद्भूते लुङ् भविष्यति ।
धातोर्लृ ट्क्रियातिपत्तौ लिङर्थे लोट् प्रकीर्तितः ॥२४
कृतस्त्रिष्वपि वर्तन्ते भावे कर्मणि कर्तरि ।
तृण्तव्यवड्नीय. स्यात् शतृङाद्याश्च धातुतः ॥२५

ए–वहे–महे—ये तीन उत्तम पुरुष मे होते है। नाम के प्रयोग किये जाने पर प्रथम पुरुष होता है। युष्मद् शब्द के प्रयोग में मध्यम पुरुष होता है और अस्मद् शब्द के प्रयोग मे उत्तम पुरुष होता है। भू आदि धातुएँ कही जाती हैं। उनसे फिर सनादि प्रत्यय भी होते हैं ॥२०।२१॥ लट् लकार वर्तमान काल में होता है। लट् लकार मे धातु के आगे 'स्म' लगा देने से भूतकाल का अर्थ हो जाता है। अनद्यतन भूतकाल में लङ् लकार होता है। चौबीस घण्टो से पहिले के काल को अनद्यतन काल कहते हैं। धातु से आशीर्वाद के अर्थ मे लिङ् लकार होता है। आशिषि लिङ् और विधि लिङ् ऐसे लिङ् लकार दो प्रकार का होता है। विधि आदि के अर्थ मे और अनुमति में भी लिङ् होता है। मन्त्रण मे लोट् लकार होता है। निमन्त्रण–अधीष्ट सप्रश्न–प्रार्थना मे और आशीष मे लिङ् लकार होता है। परोक्ष में लिट् लकार होता है और उद्भूत लुङ् होता है। भविष्यदर्थ में धातु से लृट् लकार होता है। क्रियातिपत्ति मे लिट् के अर्थ मे लोट् लकार बताया गया है। तीनो कालों मे भाव, कर्म और कर्त्ता मे कृदन्त प्रत्यय हुआ करते हैं। केवल धातु के अर्थ

भाव का जहाँ द्योतन होता है उसे भाव कहते हैं। तृण्, तव्य, अनीयर्, शतृ, शानच् आदि कृत्प्रत्यय धातु से हुआ करते हैं ॥२२ से २५॥

११५—सदाचार कथन

हरेः श्रुत्वाऽब्रवीद् ब्रह्मा यथा व्यावसाय शौनक।
ब्राह्मणादिसमाचारं सर्वदं ते यथा वदे ॥१
श्रुतिस्मृती तु विज्ञाय श्रौतं कर्म समाचरेत्।
श्रौतं कर्म न चेदुक्तं तदा स्मार्त्तं समाचरेत् ॥२
तत्राप्यशक्तः करणे सदाचारं चरेद् बुधः।
श्रुतिस्मृतीहि विप्राणां लोचने कर्मदर्शने ॥३
श्रुत्युक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः।
शिष्टाचारेण शिष्टानां त्रयो धर्मा सनातना ॥४
सत्यं दानं दया लोभो विद्येज्या पूजनं दमः।
अष्टौ तानि पवित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥५
तेजोमयानि पूर्वपा शरीराणीन्द्रियाणि च।
न च लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥६
निवासमुख्या वर्णाना धर्माचारा प्रकीर्त्तिता।
सत्यं यज्ञस्तपो दानमेतद्धर्मस्य लक्षणम् ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! भगवान् हरि से श्रवण करके ब्रह्माजी ने जिस तरह से व्यास महर्षि से कहा था वह सब देने वाला ब्राह्मणादि का समाचार तुमको बतलाता हूँ ॥१॥ श्रुति और स्मृति का ज्ञान प्राप्त करके जो श्रौत (वैदिक) कर्म है उसका समाचरण करना चाहिए। यदि श्रौत कर्म न कहा गया है तो फिर स्मार्त्त कर्म अर्थात् स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित कर्म करना चाहिए। वैदिक कर्म को प्राथमिकता देनी चाहिए ॥२॥ यदि स्मार्त्त कर्मों के करने में भी असमर्थता किसी कारण से हो तो फिर बुध पुरुष को सत्पुरुषों का आचार ही करना चाहिए। श्रुति और स्मृति ये दोनों विप्रों के नेत्र होते हैं। जिनके द्वारा कर्मों का दर्शन हुआ करता है ॥३॥ श्रुति के द्वारा जो धर्म प्रति-

पादित किया गया है वह परम धर्म होता है। स्मृति शास्त्रों के द्वारा जो कहा गया है वह दूसरी श्रेणी का अपर धर्म होता है। शिष्ट पुरुषों के शिष्टाचार के द्वारा जिस धर्म का बोध होता है वह भी तीसरी श्रेणी का धर्म होता है। इस प्रकार से ये तीन सनातन (सर्वदा से चले आने वाले) धर्म होते हैं ॥४॥ सत्य, दान, दया, लाभ, विद्या, इज्या, पूजन और दम ये आठ पवित्र अर्थात् शुद्ध धर्म के स्वरूप है जो कि शिष्टाचार के लक्षण हैं ॥५॥ पूर्व पुरुषों के शरीर और इन्द्रियाँ तेजोमय थे और वे पाप से लिप्त नहीं हुआ करते थे जिस तरह पद्म के पत्र जल से कभी लिप्त नहीं होते हैं और वे जल में ही रहा करते हैं। ॥६॥ वर्णों के धर्म तथा आचार निवास की मुख्यता वाले बताये गये हैं। सत्य, यज्ञ, तप और दान ये धर्म के लक्षण हैं ॥७॥

अदत्तस्यानुपादानं दानमध्ययन तपः ।
विद्या वित्त तपः शौर्यं कुले जन्म त्वरोगिता ॥८
संसारोच्छित्तिहेतुश्च धर्मादेव प्रवर्त्तते ।
धर्मात् सुखञ्च ज्ञानञ्च ज्ञानान्मोक्षोऽधिगम्यते ॥९
इज्याध्ययनदानानि यथाशास्त्रं सनातनः ।
ब्रह्मक्षत्रियवैश्याना सामान्यो धर्म उच्यते ॥१०
याजनाध्ययने शुद्धे विशुद्धाच्च प्रतिग्रह ।
वृत्तित्रयमिद प्राहुर्मुनयः श्रेष्ठवर्णिनः ॥११
शस्त्रेणाजीवन राज्ञो भूतानाञ्चाभिरक्षणम् ।
पाशुपाल्य कृषिः पण्यं वैश्यस्य जीवन स्मृतम् ॥१२
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजानामनुपूर्वशः ।
गुरौ वासोऽग्निशुश्रूषा स्वाध्यायो ब्रह्मचारिणः ॥१३
त्रिस्नाता स्नापिता भैक्ष्य गुरौ प्राणान्तिकी स्थिति ।
समेखले जटा दण्डी मुण्डो वा गुरुसंश्रय. ॥१४

अदत्त अर्थात् न दिये हुए का अनुपदान, दान, अध्ययन, तप, विद्या, वित्त, शौर्य, अच्छे कुल मे जन्म, नीरोगता और संसार के उच्छेदन के हेतु यह धर्म से ही प्रवृत्त होता है। धर्म से ही सुख की प्राप्ति होती है और धर्म

से ही ज्ञान का लाभ भी हुआ करता है। ज्ञान जब हो जाता है तो उससे संसार के जन्म-मरण के आवागमन से छुटकारा पाकर मोक्ष की प्राप्ति हो जाया करती है ॥८।९॥ इज्या (यज्ञादि का करना, कराना), अध्ययन (वेद-वेदाङ्गादि शास्त्रों का पढ़ना)—दान शास्त्र के अनुसार और सदा से चला आने वाला ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों का साधारण धर्म कहा जाता है ॥१०॥ मुनिगण श्रेष्ठ वर्ण वाले की शुद्ध याजन और अध्ययन तथा विशुद्ध से प्रतिग्रह लेना वृत्ति अर्थात् तीन प्रकार की रोजी बतलाते हैं ॥११॥ क्षत्रिय का कर्म शस्त्र के द्वारा जीवन निर्वाह करना और प्राणिमात्र की अभिरक्षा करना है। पशुओं का पालन, कृषि करना तथा दूकानदारी का व्यवसाय करना यही जीवन निर्वाह का साधन वैश्यों को बताया गया है ॥१२॥ शूद्र का कर्म द्विजातियों की सेवा करना है जो कि द्विजों की आनुपूर्व शुश्रूषा करनी चाहिए अर्थात् सबसे प्रथम विप्र फिर क्षत्रिय और इनके पश्चात् वैश्य की सेवा करे। अब चारों वर्णों के धर्मों के अनन्तर चारों आश्रमों के धर्म बतलाते हैं—ब्रह्मचर्य की अवस्था का पालन करने वाले ब्रह्मचारी का कर्म है अपने गुरुवर्य के निकट गुरुकुल में घर छोड़कर निवास करना, अग्निहोत्र नित्य नियम से करना और वेद एवं वेद के अङ्ग शास्त्रों का समयानुसार अध्ययन करना होता है ॥१३॥ ब्रह्मचारी को तीनों कालों में स्नान और त्रिषवण तथा स्नापन करना चाहिए—भिक्षाचरण करे, गुरु की सन्निधि में प्राणों के अन्त तक स्थिति रक्खे, मेखला, जटा, दण्ड धारण करे, मुण्डन और गुरु का राश्रम रक्खे। ये उसके कर्म-धर्म होते हैं ॥ १४ ॥

अग्निहोत्रोपचरणं जीवनञ्च स्वकर्मभिः ।
धर्मदारेषु कल्पेत पर्ववर्जं रतिक्रिया ॥१५
देवपित्रतिथिभ्यश्च पूजादिष्वनुकल्पनम् ।
श्रुतिस्मृत्यर्थसस्थान धर्मोऽस्य गृहमेधिन ॥१६
जयित्वमग्निहोतृत्व भूशय्याजिनधारणम् ।
वने वासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता ॥१७
प्रतिषिद्धे निवृत्तिश्च त्रि:स्नान व्रतधारिता ।

देवतातिथिपूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः ॥१८
सर्वारम्भपरित्यागो भैक्ष्याद्य वृक्षमूलता ।
निष्परिग्रहता द्रोह समता सर्वजन्तुषु ॥१९
प्रियाप्रियपरिष्वङ्गे सुखदुःखाधिकारिता ।
सबाह्याभ्यन्तर शौच वाग्यमो ध्यान चारिता ॥२०
सर्वेन्द्रियसमाहारो धारणाध्याननित्यता ।
भावसंशुद्धिरित्येष परिव्राड्धर्म उच्यते ॥२१

गृहस्थ आश्रम में प्राप्त होकर उसका फिर कर्म होता है नित्य अग्नि होत्र करना—अपने शास्त्रोक्त कर्मों के द्वारा जीवन का निर्वाह करना तथा वैदिक पद्धति से परिणीत सवर्णा पत्नी के साथ पर्वों का त्याग कर रति क्रिया करे ॥ १५ ॥ देवता—पितृगण और अतिथियों का पूजन—सत्कार करना चाहिए तथा श्रुति स्मृति के द्वारा प्रतिपादित अर्थ का सस्थान रक्खे यही एक गृहमेधी (गृहस्थी) का धर्म एवं कार्य होता है। गृहस्थ धर्म का पूर्ण निर्वाह कर लेने के अनन्तर वन में निवास करके वानप्रस्थ आश्रम में जब प्रवेश करता है तो उस समय उसका धर्म है कि इन्द्रियों पर संयम करे—नित्य अग्नि होत्र करे—भूमि पर शयन करे-मृग चर्म धारण करे। उस दशा में वन में निवास करना चाहिए। वहाँ पर जो सुविधा से जल—मूल—नीवार और फल आदि प्राप्त हों उनसे ही निर्वाह करे ॥ १६ ॥ १७ ॥ जो शास्त्र द्वारा प्रतिषिद्ध किया गया हो उससे निवृत्त रहे—तीन बार स्नान करे-जटा को धारण करे और देव एवं समागत अतिथियों का अर्चन करना चाहिए—यही धर्म एक वनवासी आश्रमधारी का होता है ॥ १८ ॥ अब चौथा आश्रम संन्यास है उस आश्रम में रहने वाले के धर्म बताये जाते हैं—सब प्रकार के आरम्भों का परित्याग संन्यासी को सबसे प्रथम करना चाहिए—भिक्षा वृत्ति से जो अन्न प्राप्त हो उस से अपनी शरीर यात्रा पूरी करे। वृक्ष के मूल में निवास करे। अपने पास कुछ भी साधन संचित न रक्खे—किसी से द्रोह न करे। समस्त जन्तुओं में समता का भाव रक्खे ॥१९॥ किसी को भी प्रिय तथा अप्रिय न समझे। सुख और दुःख में समान रहे। बाहिर और भीतर अर्थात् अन्तः

करण मे भी शुद्ध रहे—मौन रहे या बहुत कम भाषण करे। ध्यान में मग्न रहे ॥ २० ॥ समस्त इन्द्रियों का नियन्त्रिन करे तथा नित्य ध्यान एव धारणा करे। सर्वदा अपने हृदय की भावनाओं को शुद्ध रक्खे—यही एक परिव्राड् (सन्यासी) का धर्म कहा जाता है ॥२१॥

अहिंसा सूनृता वाणी सत्यशौचे क्षमा दया ।
वर्णाना लिंगिनाञ्चैव समान्यो धर्म उच्यते ॥२२
यथोक्तकारिणः सर्वे प्रयान्ति परमा गतिम् ।
आबोधाद्व स्वपन यावत् गृहस्थधर्म वच्मि ते ॥२३
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
शर्वर्य्यन्ते समुत्थाय कृतशौचः समाहित. ॥२४
स्नात्वा सन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्विकाम् ।
प्रातःसन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्विकाम् ॥२५
उभे मूत्रपुरीपे च दिवा कुर्य्यादुदङ्मुखः ।
रात्रौ च दक्षिणे कुर्यादुभे सन्ध्ये यथा दिवा ॥२६
छायायामन्धकारे वा रात्रौ वाहनि वा द्विजः ।
यथा तु सुमुख कुर्य्यात् प्राणाबाधभयेपु च ॥२७
गोमयाङ्गारवल्मीकफालाकृष्टे जले शुभे ।
मार्गोपजीव्यच्छायासु न मूत्रञ्च पुरीपकम् ॥२८

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना अर्थात् किसी भाँति से न सताना—सत्य एव सुप्रिय वाणी बोलना—सत्य व्यवहार मन वचन और कर्म से करना—पवित्रता रखना—क्षमा रखना—सब पर दया भाव रखना ये सब वर्णों के लोगो का और समस्त आश्रमों मे रहने वालों का सामान्य धर्म है जो सामान्यतया सभी मे होना चाहिए ॥ २२ ॥ जैसा शास्त्र ने बताया है उसी का पूर्णतया पालन करने वाले सभी को परम गति प्राप्त हुआ करती है। जब से प्रातः काल मे शय्या से उठे और रात्रि मे जिस समय तक शयन करे उस पूरे समय का एक गृहस्थ धर्म को मैं अब तुमको बतलाता हूँ ॥ २३ ॥ एक गृहस्थ को प्रातः काल म ब्राह्म मुहूर्त्त मे शय्या का त्याग कर उठ जाना

चाहिए। अरुणोदय और उषा काल से भी पूर्व का समय ब्राह्म मुहूर्त कहा जाता है। उठ कर अर्थात् शय्या का त्याग करके सब से प्रथम धर्म और अर्थ का चिन्तन करे। रात्रि के अन्त में उठकर फिर शौचादि क्रिया से निवृत्त होवे और पूर्णतया सावधान हो जावे ॥ २४ ॥ स्नान करे—सन्ध्या—वन्दन करे। इस स्नान क्रिया के पूर्व ही दन्त धावन आदि शुद्धि कर लेनी चाहिए। प्रातः काल की सन्ध्या तभी करे जब पहिले दाँतुन आदि की पूर्ण शुद्धि कर लेवे ॥ २५ ॥ मूत्र त्याग और मल का त्याग ये दोनों कार्य दिन में उत्तर दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए। यदि रात्रि के समय में ये दोनों कार्य करे तो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करे। दोनों दिन-रात के सन्धि-काल में इन मल-मूत्रों का त्याग करना हो तो दिन की जो दिशा बताई गई है उसी ओर मुख करके करना चाहिए ॥ २६ ॥ छाया में—अन्धकार में-रात्रि में अथवा दिन में द्विज को जैसे भी सुसुख हो वैसे ही करे। प्राणों की यदि बाधा होने का भय उपस्थित हो तो भी जैसे भी हो मल-मूत्र का त्याग करे ॥ २७ ॥ गोमय (गोबर)- आग का अँगारा-वल्मीक (बाँबी)-हल से जुता हुआ भू-भाग—शुभ स्थान—जल—मार्ग उपजीव्य छाया में कभी भी मल और मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ॥२८॥

अन्तर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ।
परेषा शौचशिष्टाच्च श्मशानाच्च मृद त्यजेत् ॥२९

एका लिङ्गे मृद दद्याद्वामहस्ते मृद द्वयम् ।
उभयोर्द्वे च दातव्ये मूत्रशौच प्रचक्षते ॥३०

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश ।
पञ्च पादे दशैकस्मिन् करयो सप्त मृत्तिका ॥३१

अर्द्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ।
द्वितोया च तृतीया च तदर्द्धा परिकीर्त्तिता ॥३२

उपविष्टस्तु विण्मूत्रं कर्तुं यस्तु न विन्दति ।
स कुर्यादर्द्धशौच तु अस्य शौचस्य सर्वदा ॥३३

दिवा शौचस्य रात्र्यर्द्धं यद्वा पादो विधीयते ।
स्वस्थस्य तु यथोद्दिष्टमार्त्तः कुर्य्याद्यथावलम् ॥३४
वसाशुक्रमसृङ् मज्जालालाविण्मूत्रकर्णगुत् ।
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥३५

जल के अन्दर से—देवगृह से—वल्मीक से—चूहों के रहने के स्थल से—पर पुरुषों के शौच से, शिष्ट स्थल से और श्मशान से मिट्टी का त्याग कर देना चाहिए अर्थात् इन उक्त स्थलों से मिट्टी नहीं लेनी चाहिए ॥ २६ ॥ मूत्र त्याग करने के पश्चात् एक बार मिट्टी मूत्रेन्द्रिय पर लगावें-बाँये हाथ में दो बार मिट्टी लगावे और फिर दोनों हाथों में दो बार मिट्टी लगा कर मूत्र त्याग के अनन्तर शुद्धि करे ॥ ३० ॥ मल के त्याग करने के पश्चात् एक बार लिङ्ग पर-तीन बार गुदा पर—दशवार बाँये हाथ में—पाँच बार पैर में-एक कर में दशबार और दोनों हाथों में मिलाकर सातबार मृत्तिका लगा कर शुद्धि शौच जाने के बाद करना चाहिए ॥ ३१ ॥ आधी पस मिट्टी पहिली बताई गई है—दूसरी वार और तीसरी कर उससे आधी-आधी कही गई है ॥ ३२ ॥ जो उपविष्ट होता हुआ मल-मूत्र का त्याग नहीं कर पाता है उसे अर्ध शौच (आधी शुद्धि) ही करना चाहिए क्योंकि इस शौच का सर्वदा यही बताया गया है ॥ ३३ ॥ दिन में जो शुद्धि का विधान कहा गया है रात्रि में उसका आधा अथवा चौथाई भाग ही का विधान होता है । यह सम्पूर्ण विधान स्वस्थ व्यक्ति के लिये ही कहा गया है । जो आर्त्त हो उस तो अपनी शक्ति और बल के ही अनुसार शारीरिक शुद्धि करनी चाहिए ॥ ३४ ॥ मनुष्यों के निकलने वाले मल बारह प्रकार के हुआ करते हैं । उनके नाम निम्नलिखित हैं—वसा-शुक्र—रक्त-मज्जा—लाला (लार)-विष्ठा-मूत्र—कर्ण—गुत्—आँसू-श्लेष्मा (कफ)—स्वेद (पसीना) हैं ॥३५॥

यावता शुद्धिर्मन्येत तावच्छौचं समाचरेत् ।
प्रमाणं शौचसंख्याया नादिष्टं रवशिष्यते ॥३६
शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथान्तरम् ॥३७

त्रिराचामेदप. पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
संमृज्याङ्गुष्ठमूलेन त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥३८
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम् ।
अंगुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षु श्रोत्रे पुनः पुन. ॥३९
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ।
सर्वाभिस्तु शिर पश्चाद्वाहू चाग्रेण संस्पृशेत्॥४०
ऋचो यजूंषि सामानि त्रिः पठन् प्रीणयेत्क्रमात् ।
अथर्वाङ्गिरसौ पूर्वं द्वि प्रमाष्टर्यथ षण्मुखम् ॥४१
इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि यथाक्रमम् ।
ए मुखे नासिके वायु नेत्रे सूर्यः श्रु तिर्दिश. ॥४२
प्राणग्रन्थिमथो नाभि ब्रह्माणं हृदये स्पृशेत् ।
रुद्रं मूर्ध्ना समालभ्य प्रीणात्यथशिखामृषीन् ॥४३

जहाँ तक मन में शुद्धि हो जाने की बात ठीक बैठे वहाँ तक उस शुद्धि करनी चाहिए। शौच की संख्या का प्रमाण जो आदिष्ट किया गया वह अवशिष्ट नहीं रहता है ॥ ३६ ॥ यह शौच (शुद्धि) बाह्य और आभ्यन्तर दो तरह की बताई गई है। मिट्टी और जल से तो बाहिरी शारीरिक शु हुआ करती है तथा आभ्यन्तर शुद्धि तो भावों के विशुद्ध रखने पर ही हो है। जब तक मन की अन्तर्भावना शुद्ध नहीं होगी तब तक आन्तरिक शु नहीं हो सकती है। बाहिरी शुद्धि के साथ आन्तरिक शुद्धि का होना भी प आवश्यक होता है ॥ ३७ ॥ सबसे पूर्व तीन बार जल का आचमन करे फि दो बार मुख का प्रमार्जन करे फिर अगुठे के मूल से तीन बार मुख का स्पर्शन करना चाहिए ॥ ३८ ॥ अगुष्ठ और प्रदेशिनी से पीछे घ्राण (नासिक का स्पर्श करे। इसके उपरान्त अगूठा और अनामिका से बार-बार नेत्र औ श्रोत्र का स्पर्श करना चाहिए ॥ ३९ ॥ कनिष्ठिका और अगुष्ठ से नाभि और तले से हृदय का स्पर्श करे। सम्पूर्ण अंगुलियों से शिर का स्पर्श और इसके अनन्तर अग्रभाग से बाहुओं का स्पर्श करना चाहिए ॥ ४० ॥ ऋग्वेद—यजुर्वेद और सामवेद इन तीनों का क्रम से पाठ करता हुआ प्रीणन

करना चाहिए। इसके पूर्व अथर्व और आङ्गिरस करे और दोनों से पदमुद्र का प्रमार्जन करे ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त इतिहास और पुराण तथा यथाक्रम वेदों के मन्त्रों का पारायण करना चाहिए। मुख में आकाश—नासिका में वायु—नेत्र में सूर्य—कानों में दिशा—नाभि में प्राण ग्रन्थि और हृदय में ब्रह्मा का स्पर्श करना चाहिए। मस्तक से रुद्र का सम्यक् प्रकार से लाभ करके फिर शिखा के स्पर्श से ऋषियों को प्रसन्न करे ॥४२॥४३॥

बाहू यमेन्द्रवरुणे कुबेरवसुधानलान्।
अभ्युक्ष्य चरणौ विष्णुमिन्द्रं विष्णुं करद्वयम् ॥४४
अग्निर्वायुश्च सूर्येन्दुगिरयोऽङ्गुलिपर्वसु।
गङ्गाद्याः सरितस्तासु या रेखाः करमध्यगाः ॥४५
उषःकाले तु सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत्।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥४६
मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्धि दन्तधावनम् ॥४७
कदम्बबिल्वखदिरकरवीरवटार्जुना।
यूथी च वृहती जाती करञ्जार्कातिमुक्तका ॥४८
जम्बूमधूकापामार्गशिरीषोदुम्बराशना।
क्षीरिकण्टकिवृक्षाद्याः प्रशस्ता दन्तधावने ॥४९

दोनों बाहुओं में यम—इन्द्र और वरुण का—चरणों से कुबेर, वसुधा और अनल का तथा दोनों हाथों में विष्णु और इन्द्र का अभ्युक्षण करे ॥४४॥ अग्नि—वायु—सूर्य—चन्द्र गिरि ये अंगुलियों के पर्वों में तथा कर के मध्य में जो सब रेखाएँ हैं वे सब गङ्गा आदि सम्पूर्ण नदियाँ हैं ॥ ४५ ॥ प्रातः काल के प्राप्त होने पर यथार्थ रीति से शौच (शुद्धि) करके फिर दन्त धावन के पश्चात् स्नान करना चाहिए ॥ ४६ ॥ मुख के पर्युषित (बासी) बने रहने पर सर्वदा मनुष्य अप्रयत रहा करता है। इसलिए सब प्रकार से पूर्ण प्रयत्नों के साथ दातुन अवश्य ही करना चाहिए ॥ ४७ ॥ दन्त धावन के लिये जो जिन वृक्षों की दातुन अच्छी मानी गई है उन वृक्षों के नाम ये हैं—कदम्ब—

बिल्व—खदिर—करवीर—वट—अर्जुन—करञ्ज—जाती—यूथी—वृहती—अर्क—अति मुक्तक—जामुन—मधूक—अपामार्ग—शिरीष—उदुम्बर (गूलर)—असन और जो वृक्ष दूध वाले तथा काँटेदार हैं वे भी प्रशस्त माने जाते हैं ॥४८॥४९॥

कटुतिक्तकषायाश्च धनारोग्यसुखप्रदाः ।
प्रक्षाल्य भुक्त्वा च शुचौ देशे त्यक्त्वा तदाचमेत् ॥५०
अमावस्या तथा षष्ठ्यां नवम्यां प्रतिपद्यपि ।
वर्जयेद्न्तकाष्ठं तु तथैवार्कस्य वासरे ॥५१
अभावे दन्तकाष्ठस्य निषिद्धायां तथा तिथौ ।
अपां द्वादशगण्डूषै: कुर्वीत मुखशोधनम् ॥५२
प्रातः स्नात्वा प्रशसन्ति दृष्टादृष्टकरं हितम् ।
सर्वं मर्हति शुद्धात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥५३
अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।
श्रवत्येष दिवारात्रौ प्रातःस्नानं विशोधनम् ॥५४

कटु—तिक्त और कषाय (कसैले) स्वाद वाली जो दाँतुन होती हैं वे धन—आरोग्य तथा सुख के प्रदान करने वाली हुआ करती है। दाँतुनों को धोकर फिर उन से दाँत साफ करने चाहिए। दन्त धावन करके किसी शुद्ध स्थान पर डाल देवे और आचमन (कुल्ली) करे ॥ ५० ॥ अमावस्या—षष्ठी—नवमी और प्रतिपदा तिथियों में तथा रविवार के दिन में दन्त काष्ठ का सेवन करना अर्थात् काष्ठ से दाँतों को स्वच्छ करना वर्जित होता है ॥ ५१ ॥ दाँतुन के अभाव में तथा जो तिथियाँ ऊपर निषिद्ध बताई गयी है उनमें जल के बाहर कुल्ले करके मुख का शोधन कर लेना चाहिए। मुख का शोधन करना तो परम आवश्यक है ॥ ५२ ॥ प्रातः काल में दृष्ट तथा अदृष्ट हित करने वाले हित स्नान करके ही प्रशस्त होते हैं। प्रातः काल में स्नान करने वाला शुद्ध आत्मा से युक्त पुरुष ही जप आदि सम्पूर्ण कार्य करने के योग्य होता है ॥५३॥ शरीर के अनेक छिद्रों से युक्त यह मानव अत्यन्त मलिन देह वाला होता है। इस शरीर से रात-दिन अनेक मलिनता करने वाले मलों का स्राव बराबर

होता ही रहता है। प्रातः काल में जो सर्वाङ्ग स्नान किया जाता है उससे सब देह का पूर्ण शोधन हो जाता है। अतः प्रातः स्नान परम आवश्यक शुद्धि के लिये माना गया है ॥५४॥

मन प्रसादजननं रूपसौभाग्यवर्द्धनम् ।
शोकदुःखप्रशमनं गङ्गास्नानवदाचरेत् ॥५५
अद्य हस्ते तु नक्षत्रे दशम्यां ज्येष्ठके सिते ।
दशपापहरायाञ्च अदत्त्वा दानकल्मषम् ॥५६
विरुद्धाचरणं हिंसा परदारोपसेवनम् ।
पारुष्यानृतपैशून्यमसम्बद्धाभिभाषणम् ॥५७
परद्रव्याभिधानञ्च मनसानिष्टचिन्तनम् ।
एतद्दशाघघातार्थं गङ्गास्नानं करोम्यहम् ॥५८
प्रातः सक्षेपतः स्नानं वाणप्रस्थगृहस्थयोः ॥५९

प्रातः काल में किये हुए स्नान से मन में एक प्रकार की प्रसन्नता होती है और सुबह ही स्नान करने से रूप तथा सौभाग्य की उत्पत्ति हुआ करती है। यह स्नान शोक और दुःख शमन करने वाला है। इसे गङ्गा स्नान की भाँति परम पुण्यमय समझ कर करना चाहिए ॥ ५५ ॥ आज हस्त नक्षत्र में और ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि में अर्थात् दशहरा में जो कि दशमी तिथि दश पाप का अपहरण करने वाली होती है—कुछ भी दान न देकर कल्मष रहित यह गङ्गा स्नान करता हूँ ।५६। यह स्नान किसी के विरुद्ध आचरण करना—हिंसा—पराई स्त्री का सेवन करना—पारुष वचन एवं कठोर व्यवहार करना—मिथ्या भाषण—पिशुनता (चुगली)—असम्बद्ध भाषण करना—पराये द्रव्य का अपहरण—अभिधान तथा मन से किसी के अनिष्ट का चिन्तन करना इन दश पापों के घात करने के लिये यह स्नान किया जाता है। यह वाणप्रस्थ और गृहस्थ को प्रातः काल में संक्षेप से स्नान करना चाहिए ॥५७॥५८॥५९॥

यतेस्त्रिषवणं स्नानं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः ।
आचम्य तीर्थमावाह्य स्नायात्संस्मृत्वाव्ययं हरिम् ॥६०

तिस्र कटघद्धं विज्ञेया मन्देहा नाम राक्षसाः ।
उदयन्त दुरात्मान सूर्य्यमिच्छन्ति खादितुम् ॥६१
स हन्ति सूर्य्यं सन्ध्याया नोपास्ति कुरुते तु य ।
दहन्ति मन्त्रपूतेन तोयेनानलरूपिणा ॥६२
अहोरात्रस्य य सन्धि सा सन्ध्या भवतीति ह ।
द्विनाडिका भवेत्सन्ध्या यावद्भवति दर्शनम् ॥६३
सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयहोमो विधीयते ।
स्वयहोमफल यत्त् तदन्येन न जायते ॥६४
ऋत्विक्पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पति ।
एभिरेव हुत यत्त् तद्धुत स्वयमेव हि ॥६५
ब्रह्मा वै गार्हपत्याग्निर्दक्षिणाग्निस्त्रिलोचन ।
विष्णुराहवनीयोऽग्नि कुमारः सत्य उच्यते ॥६६

यति को तीन बार स्नान और सन्ध्या करनी चाहिए और ब्रह्मचारी को एक बार ही स्नान पर्याप्त होता है। आचमन करके तथा तीर्थ का आवाहन करके, अव्यय भगवान् हरि का स्मरण करके स्नान करना चाहिए ॥६०॥ मन्देह नामवाले साढ़े तीन करोड़ राक्षस हैं जो दुष्ट आत्मा वाले उदय होने वाले सूर्य को भक्षण कर जाना चाहते हैं ॥ ६१ ॥ जो सन्ध्या के समय मे उपासना नही करता है वह सूर्य का हनन किया करता है। मन्त्रों से पूत अनलरूप जल से जलते हैं ॥ ६२ ॥ दिन और रात की जो सन्धि होती है वही सन्ध्या हुआ करती है। दो नाडिका के समय पर्यन्त सन्ध्या होती है जब तक कि दर्शन होता है ॥ ६३ ॥ सन्ध्या कर्म के अन्त मे स्वय होम करने का विधान है। जो स्वय होम का फल होता है, वह अन्य किसी से भी नही होता है ॥ ६४ ॥ ऋत्विक् पुत्र, गुरु भ्राता—भागिनेय (भानजा) और विट् पति इन के द्वारा जो होम किया गया है वह स्वय ही हुत समझना चाहिए ॥ ६५ ॥ गार्हपत्याग्नि ब्रह्मा है—दक्षिणाग्नि त्रिलोचन शिव है—आहवनीय अग्नि विष्णु है तथा सत्य कुमार कहे जाते हैं ॥६६॥

कृत्वा होमं यथाकालं सौरान्मन्त्राञ्जपेत्ततः :
समाहितात्मा सावित्री प्रणवञ्च यथोदितम् ॥६७ .
प्रणवे नित्ययुक्तस्य व्याहृतीषु च सप्तसु ।
त्रिपदायाञ्च सावित्र्यां न भय विद्यते क्वचित् ॥६८
गायत्री यो जपेन्नित्य कल्यमुत्थाय मानव. ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥६९
श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा ।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा ॥७०
आवाह्य यजुषाऽनेन तेजोऽसीति विधानत. ।
एतद्यजु: पुरा देवैर्दृष्टिदर्शनकाङ्क्षिभि: ॥७१
आदित्यमण्डलान्त.स्था ब्रह्मलोकस्थितामपि ।
तत्रावाह्य जपित्वातो नमस्काराद्विसर्जयेत् ॥७२
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ।
न विष्णो. परमो देवस्तस्मात्तं पूजयेत्सदा ॥७३

यथा समय होम करके सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों का जाप करना चाहिए। समाहित आत्मा वाला होकर यथोदित प्रणव और सावित्री का जाप करे। ॥ ६७ ॥ नित्य प्रणव में और सात व्याहृतियों तथा त्रिपदा सावित्री में जो युक्त रहता है उस को कहीं भी भय नहीं होता है ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य प्रातः काल में उठ कर नित्य प्रति नियम से गायत्री मन्त्र का जप किया करता है वह कभी भी पापों से जल से कमल के पत्र की भाँति लिप्त नहीं हुआ करता है ॥ ६९ ॥ गायत्री देवी के स्वरूप का ध्यान बतलाते हैं—गायत्री का वर्ण श्वेत है और वह देवी कौशेय (रेशमी) वस्त्रों को धारण करने वाली और पद्म के आसन पर वह शुभा देवी विराजमान हैं ॥ ७० ॥ " तेजोऽसि "—इस यजुर्वेद के मन्त्र के द्वारा विधान से आवाहन करे। यह यजुर्वेद का मन्त्र पहिले दृष्टि से दर्शन करने की इच्छा वाले देवों ने पढा था ॥ ७१ ॥ आदित्य के मण्डल के अन्दर विनाश करने वाली और ब्रह्मलोक में विराजमान देवी सावित्री का वहाँ

पर आवाहन करके तथा जाप करके अभिवादन कर विसर्जन करना चाहिए ।। ७२ ।। दो पहर के पूर्व में ही देवताओं का पूजन करे। भगवान् विष्णु से परम देव अन्य कोई नहीं है अतएव उनका सदा अर्चन करना चाहिए ।।७३।।

ब्रह्मविष्णुशिवान्देवान्न पृथग्भावयेत्सुधी ।
लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौहुँताशन ।।७४
हिरण्य सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टम ।
एतानि सतत पश्येदर्चयेन्न प्रदक्षिणम् ।।७५
वेदस्याध्ययन पूर्वं सर्वदाभ्यसन चरेत् ।
तद्दानञ्चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ।।७६
वेदार्थं यज्ञशास्त्राणि धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
मूल्येन लेखयित्वा यो दद्याद्याति स वैदिकम् ।।७७
इतिहासपुराणानि लिखित्वा य प्रयच्छति ।
ब्रह्मदानसम पुण्य प्राप्नोति द्विगुणीकृतम् ।।७८
तृतीये च तथा भागे पोष्यवर्गार्थ साधनम् ।
माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीना समाश्रिता ।।७९
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्नि पोष्यवर्गा उदाहृता ।
भरण पोष्यवर्गस्य प्रशस्त स्वर्गसाधनम् ।।८०

सुधी पुरुष को चाहिए कि ब्रह्मा—विष्णु और शिव इन तीनों को पृथक् न समझे। इस लोक में ये आठ मङ्गलमय वस्तु हैं—ब्राह्मण—गौ—हुताशन—हिरण्य—घृत—सूर्य—जल तथा आठवाँ राजा है। इनको सदा देखे और इनकी अर्चना करे एव प्रदक्षिणा करे ।। ७४ ।। ७५ ।। वेद का पाँच प्रकार का अभ्यास होता है—प्रथम वेद का अध्ययन, सदा उसका अभ्यास करते रहना उस वेद का दान अर्थात् अध्यापन जो कि शिष्यों को कराना चाहिए ।। ७६ ।। वेदार्थ—यज्ञ करने—कराने का शास्त्र—धर्म शास्त्र इनको मूल्य देकर लिखवा कर जो किसी वैदिक ब्राह्मण को दान करता है और इतिहास—पुराणों को लिखकर देता है वह ब्रह्मदान के समान दुगना पुण्य प्राप्त किया करता है ।। ७७ ।। ७८ ।। तीसरे भाग में जो पोष्य (पोषण करने के

योग्य हों) वर्ग के अर्थ का साधन करे जैसे—माता—पिता—गुरु—भ्राता—प्रजा—दीन और आश्रय में रहने वाले हों—अभ्यागत—अथिति और अग्नि ये सब पोष्य कहे गये है। पोष्य वर्ग का भरण करना भी परम प्रशस्त और स्वर्ग का साधन माना गया है ॥७६॥८०॥

भरणं पोष्यवर्गस्य तस्माद्यत्नेन कारयेत् ।
स जीवति वरस्त्वेको बहुभिर्योपजीव्यति ॥८१
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः ।
स्वकीयोदरपूर्णाश्च कुक्कुरस्यापि विद्यते ॥८२
अर्थेभ्योऽपि विवृद्धेभ्यः सम्भूतेभ्यस्ततस्ततः ।
क्रियाः सर्वा प्रवर्त्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥८३
सर्वेरत्नाकरा भूमिर्धान्यानि पशवः स्त्रियः ।
अर्थस्य कार्य्ययोगत्वादर्थ इत्यभिधीयते ॥८४
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिस्ता समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥८५
धन तु त्रिविध ज्ञेय शुक्ल शवलमेव च ।
कृष्णञ्च तस्य विज्ञेया विभागः सप्तधा पृथक् ॥८६
क्रमायत्त प्रीतिदत्त प्राप्तश्च सह भार्य्यया ।
अविशेषेण सर्वेषां वर्णाना त्रिविध धनम् ॥८७

अतएव पोष्य वर्ग का भरण-पोषण यत्नपूर्वक करना चाहिए। इस एक पुरुष का परम प्रशस्त जीवन होता है जिसके सहारे बहुतों का उपजीवन होता है ॥८१॥ जो अपने ही उदर को भरने वाले रहकर जीवन बिताते हैं वे पुरुष जीवित रहते हुए भी मृतक ही के समान होते हैं। अपने पेट को तो एक कुत्ता भी किसी प्रकार से भर ही लिया करता है ॥८२॥ अर्थों के विशेष रूप से बढ जाने पर तथा इधर-उधर चारों ओर से आने पर फिर उन्हीं से पर्वतों से नदियों की भाँति समस्त क्रियाऐं प्रवृत्त हुआ करती हैं ॥८३॥ यह भूमि समस्त प्रकार के रत्नों की खान है। धान्य, पशु, स्त्रियाँ ये सब अर्थ के कार्यों के योग होते हैं अतएव इनको अर्थ ही कहा जाता है ॥८४॥ समस्त प्राणियों के साथ

किसी भी प्रकार का द्रोह न हो अथवा द्रोह कुछ हो भी तो बहुत ही कम हो, इस प्रकार की जो वृत्ति हो उसी वृत्ति मे विप्र को धनापत्ति काल में स्थित रह कर जीवन का यापन करना चाहिए ॥८५॥ यह धन तीन प्रकार का जानना चाहिए—शुक्ल, शवल और कृष्ण ये तीन वर्ण होते हैं। उस धन का सात प्रकार से पृथक् विभाग होता है ॥८६॥ यह धन एक तो पितृ परम्परा के क्रम से आया हुआ होता है—दूसरा ऐसा धन होता है जो किसी के द्वारा प्रीति से प्रदान किया हुआ होता है। तीसरे प्रकार का धन ऐसा होता है जो भार्या के साथ प्राप्त होने वाला होता है। विशेषता के बिना प्राय समस्त वर्णों का यह तीन ही प्रकार का धन हुआ करता है ॥८७॥

वैशेषिक धन दृष्ट ब्राह्मणस्य त्रिलक्षणम् ।
याजनाध्यापने नित्य विशुद्धश्च प्रतिग्रह ॥८८
त्रिविध क्षत्रियस्यापि प्राहुर्वैशेषिक धनम् ।
युद्धार्थं लब्धकरज दण्डाप्तं जयज तथा ॥८९
वैशेषिक धन दृष्टं वैश्यस्यापि त्रिलक्षणम् ।
कृषिगोरक्षवाणिज्य शूद्रस्यैभ्यस्त्वनुग्रहात् ॥९०
कुसीदकृषिवाणिज्य प्रकुर्वीत स्वय कृतम् ।
आपत्काले स्वय कुर्वन्न नरा युज्यते द्विज ॥९१
बहवो वर्त्तनोपाया ऋषिभि परिकीर्त्तिता ।
सर्वेषामपि चैवैषा कुसीदमधिक विदु ॥९२
अनावृष्ट्या राजभयान्मूषिकाद्यैरुपद्रवे ।
कृष्यादिके भवेद्बाधा सा कुसीदे न विद्यते ॥९३
देश गताना या वृद्धिर्नानापण्योपजीविनाम् ।
कुसीद कुर्वत सम्यक्सस्थितस्यैव जायते ॥९४
लब्धलाभ पितृन्देवान्ब्राह्मणाश्चैव पूजयेत् ।
ते तृप्तास्तस्य तद्दोष शमयन्ति न सशय ॥९५

विशेषता से युक्त ब्राह्मण का धन तीन प्रकार के लक्षणों से युक्त देखा गया है—याजन से प्राप्त होने वाला, अध्यापन से प्राप्त और विशुद्ध प्रतिग्रह

से प्राप्त होने वाला धन होता है ॥८८॥ इसी प्रकार से क्षत्रिय का भी धन तीन प्रकार का होता है जो कि वैशेषिक धन कहलाता है। शुद्ध धन वह है जो करों के द्वारा न्यायोचित रूप से प्राप्त किया जाता है अर्थात् शास्त्रोक्त उचित करों के द्वारा जो राजा के पास आता है। दण्डों द्वारा जो धन राजा के पास आया करता है। तीसरा वह धन है जो विजय करके धन प्राप्त होता है अर्थात् अन्य राजा से युद्ध करके उस पर जय प्राप्त कर उससे जो मिला करता है ॥८९॥ इसी तरह विशेषता से संयुत वैश्य का धन भी तीन प्रकार का हुआ करता है। कृषि के द्वारा लब्ध धन, पशु पालन से आने वाला धन और वाणिज्य व्यवसाय से मिलने वाले मुनाफे का धन तीसरी तरह का वैशेषिक धन है। शूद्रों के पास जो धन होता है वह तो इन तीन वर्ण वालों के अनुग्रह से ही प्राप्त हुआ करता है ॥९०॥ ब्राह्मण भी आपत्ति काल उपस्थित होने कुसीद, गोरक्षण और वाणिज्य यदि स्वयं भी करें तो उसे कोई पाप नहीं लगता है ॥९१॥ ऋषियों ने बहुत से जीवन निर्वाह के उपाय बतलाये हैं किन्तु इन सभी उपायों में कुसीद (ब्याज) को सबसे साधक बताया है ॥९२॥ कृषि कर्म में अनावृष्टि से, राजा के भय से और मूषिका आदि के अन्य अनेकों उपद्रवों से बाधा उपस्थित हो जाया करती है किन्तु कुसीद वृत्ति में यह कुछ भी बाधाऐं नहीं हैं ॥९३॥ दूसरे देशों में जाने वाले अनेक पण्य पदार्थों का विक्रय कर रोजी कमाने वालों की जो वृद्धि होती है वह कुसीद के काम करने वालों को एक ही स्थान पर स्थित रहते हुए ही हो जाया करती है ॥९४॥ जो लाभ प्राप्त होता है उससे मनुष्य को चाहिए कि पितृगण, देवता और ब्राह्मणों का पूजन करे। ये सब तृप्त होकर उसका जो भी कुछ दोष होता है उसका शमन कर दिया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥९५॥

कृषीवलोऽन्नपानादियानशय्यासनानि च।
राजभ्यो विंशतिदत्त्वा पशुस्वर्णादिकं धनम् ॥९६
विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षा विपणिः कृषिः।
वृत्तिर्भैक्ष्यं कुसीदञ्च दश जीवनहेतवः ॥९७
प्रतिग्रहार्जिता विप्रे क्षत्रिये शस्त्रनिर्जिता।
वैश्ये न्यायार्जिता स्वार्या शूद्रे शुश्रूषयार्जिता ॥९८

नदी बहूदका शाकपर्णानि च समित्कुशाः ।
आग्नेयो ब्रह्मघोषश्च विप्राणां धनमुत्तमम् ॥९९
अयाचितोपपन्ने तु नास्ति दोषः प्रतिग्रहे ।
अमृत तद्विदुर्देवास्तस्मात्तन्नैव वर्जयेत् ॥१००
गुरुद्रव्यांश्चोज्जिहीर्षुर्नार्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥१०१
...... [illegible] द्विजः ।
मज्जति ॥१०२

कृषीवल (किसान) अन्न पान आदि, शय्या, आसन और पशु स्वर्णादिक दान तथा विशिष्ट राजाओं को देते हैं ॥९६॥ विद्या, शिल्प, भृति, सेवा, गोरक्षा दूकानदारी, खेती, वृत्ति, भैक्ष्य और कुसीद ये दस जीवन निर्वाह के हेतु होते हैं ॥९७॥ ब्राह्मण में प्रतिग्रह से अर्जित, क्षत्रिय में शस्त्रों के द्वारा विजित और वैश्य में न्याय से उपार्जित तथा शूद्र में सेवा से अर्जित स्वार्थ होते हैं। ब्राह्मणों का उत्तम धन तो बहुत अन्न वाली नदी, शाकपत्र, समिधा, कुशा, आग्नेय और ब्रह्म घोष होता है ॥९८।९९॥ बिना याचना किये हुए जो उपपन्न हो ऐसे प्रतिग्रह में कोई भी दोष नहीं होता है। देवगण उसको अमृत कहते हैं इसलिये उसको वर्जित नहीं करना चाहिए ॥१००॥ गुरुजन के द्रव्यों का हरण करने की इच्छा वाला और देवता तथा अतिथियों का अर्चन न करता हुआ जो सभी ओर से प्रतिग्रह लेता है और स्वयं ही उससे तृप्ति किया करता है ॥१०१॥ अब यह प्रतिग्रह के विषय में यह बताया जाता है कि दान साधु पुरुष से ही लेना चाहिये, असाधु पुरुष से दान लेने का विचार द्विज को करना चाहिए। कौनसा दान गुण वाला है और कौनसा दान दोनों में मुख्य है—यह भी विचार करना चाहिए। जो गुणहीन होता है वह निमज्जित हो जाता है ॥१०२॥

नित्य नैमित्तिकं काम्य क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।
मार्जनाचमावगाहाश्चाष्टस्नान प्रकीर्त्तितम् ॥१०५
अस्नातस्तु पुमान्नार्हो जपाग्निहवनादिषु ।
प्रात स्नान तदर्थन्तु नित्यस्नान प्रकीर्त्तितम् ॥१०६
चाण्डालशवविष्ठाद्यान् स्पृष्ट्वा स्नान रजस्वलाम् ।
स्नानार्हस्तु यदा स्नाति स्नान नैमित्तिकं हि तत् ॥१०७
पुष्यस्नानादिक स्नान दैवज्ञविधिचोदितम् ।
तद्धि काम्यं समुद्दिष्ट नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥१०८
जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
स्नान समाचरेद्यत्तु क्रियाङ्ग तच्च कीर्त्तितम् ॥१०९

इस प्रकार से अक्षर वृत्ति के द्वारा अपना भरण करके द्विजोत्तम को बाद में प्रायश्चित्त करके विशुद्धि कर लेनी चाहिये ॥१०३॥ तथा चतुर्थ भाग मे स्नान के लिये मृत्तिका का आहरण करे और तिल, पुष्प तथा कुशा आदि लावे । अकृत्रिम अर्थात् प्राकृतिक भरे हुए जल में स्नान करे । स्नान आठ प्रकार के होते हैं । नित्यस्नान, निमित्त से सम्बन्धित स्नान, काम्य अर्थात् किसी कामना को हृदय में रखकर किया जाने वाला स्नान, किसी क्रिया का अङ्ग स्वरूप स्नान, मल को साफ करने वाला स्नान, मार्जन, आचमन और अवगाहन ये आठों के नाम हैं ॥१०४।१०५॥ जो पुरुष स्नान न किया हुआ हो वह जप, अग्नि और हवन आदि कर्मों के करने के योग्य नहीं होता है । जो प्रातःकाल में किया जाने वाला स्नान होता है वह उसके लिए नित्यस्नान कहा गया है ॥१०६॥ किसी चाण्डाल, शव और विष्ठा आदि का स्पर्श करके या किसी रजस्वला का स्पर्श कर स्नान के योग्य होकर स्नान किया करता है वह नैमित्तिक स्नान कहा गया है ॥१०७॥ ज्योतिषियों के द्वारा बताई विधि से प्रेरित होकर जो पुष्य स्नान आदि के विधान से स्नान होता है वह काम्य स्नान है । इसे बिना कामना वाला कभी नहीं किया करता है ॥१०८॥ जाप करने की इच्छा वाला देवता तथा अतिथियों की अर्चना करने के लिए पवित्रता के अर्थ स्नान किया जाता है वह स्नान क्रिया का अङ्ग स्नान कहा गया है ॥१०९॥

मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तत्र नान्यथा।
सर सु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥११०
स्नानमेव क्रिया यस्मात्क्रियास्नानमत परम् ।
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति तीर्थस्नानात्फल लभेत् ॥१११
मार्जनान्मज्जनैर्मन्त्रै पापमाशु प्रणश्यति ।
नित्य नैमित्तिकञ्चापि क्रियाङ्ग मलकर्षणम् ।
तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकं ॥११२
भूमिष्ठादुद्धृत पुण्य ततः प्रस्रवणादिकम् ।
ततोऽपि सारस पुण्य तस्मान्नादेयमुच्यते ॥११३
तीर्थतोय ततः पुण्य गाङ्ग पुण्यन्तु सर्वतः ।
गाङ्ग पयः पुनात्याशु पापमामरणान्तिकम् ॥११४
गयायाञ्च कुरुक्षेत्रे यत्तोय समुपस्थितम् ।
तस्मात्तु ताङ्गमपर जानीयात्तोयमुत्तमम् ॥११५
पुनर्जन्मनि योगेषु तथा सक्रमणे रवे. ।
राहोश्च दर्शने स्नान प्रशस्त निशि नान्यथा । ११६
उषस्युषसि यत्स्नान सन्ध्यायामुदिते रवौ ।
प्राजापत्येन तत्तुल्य महापातकनाशनम् ॥११७

केवल शरीर के मल का प्रक्षालन करने के ही निमित्त जो स्नान होता है वह मलापकर्षण स्नान कहा गया है क्योंकि अन्य कोई हेतु उसका नहीं होता है। उसकी प्रवृत्ति ही मल का अपकर्षण ही होती है। सरोवरो मे–देवखातो मे, तीर्थों मे और नदियो मे जो स्नान है वही एक क्रिया है, इसलिये इसे क्रिया स्नान कहते हैं। इसके पश्चात् जल से शरीर के अङ्गो की शुद्धि होती है और तीर्थों के स्नान से फल का भी लाभ होता है ॥११०।१११॥ मज्जन मन्त्रो के द्वारा मार्जन करने मे पापो का बहुत ही शीघ्र प्रणाश हो जाता है। नित्य, नैमित्तिक, क्रियाङ्ग, मलकर्षण स्नान तीर्थ के अभाव मे उष्णोदक तथा परोदक मे करना चाहिये ॥११२॥ भूमि से जो उद्धृत जल होता है वह पुण्य है। इससे भी अधिक पुण्य प्रस्रवण आदि का होता है। इससे ज्यादा सरोवर का

जल पवित्र है। सरोवर से भी अधिक पुण्य नदी का जल है—ऐसा कहा जाता है ॥११३॥ तीर्थ का जल विशेष पुण्य होता है। गङ्गा का जल तो सभी प्रकार से पुण्य है। गंगा का जल शीघ्र ही पवित्र किया करता है और आमरणान्तिक पापों को नष्ट कर देता है ॥११४॥ गया में, कुरुक्षेत्र में जो जल उपस्थित है उससे भी उत्तम दूसरा गंगाजल को ही समझना चाहिये ॥११५॥ पुत्र के जन्म में, योग विशेषों में, रवि के सक्रमण की वेला में, राहु के दर्शन में अर्थात् ग्रहण के समय में रात्रि में स्नान प्रशस्त माना गया है अन्यथा निशा की वेला में स्नान अच्छा नहीं कहा गया है ॥११६॥ सुबह ही सुबह के समय में रवि के उदय होने की सन्धि में जो स्नान होता है वह प्राजापत्य व्रत के समान महापातकों के नाश करने वाला होता है ॥११७॥

यत्फल द्वादशाब्दानि प्राजापत्ये कृते भवेत् ।
प्रात स्नायी तदाप्नोति वर्षेण श्रद्धयान्वित ॥११८
य इच्छेद्विपुलान्भोगाश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् ।
प्रात स्नायी भवेन्नित्य मासौ द्वौ माघफाल्गुनौ ॥११९
यस्तु माघ समासाद्य प्रात स्नायी हविष्यभुक् ।
अतिपाप महाघोर मासादेव व्यपोहति ॥१२०
मातर पितरञ्चापि भ्रातर सुहृद गुरुम् ।
यद्धुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशाश लभेत्तु स ॥१२१
तुष्यत्यमलर्कविष्णुरेवादश्या विशेषत ।
श्रीकाम सर्वदा स्नान कुर्वीतामलकैर्नर ॥१२२
सन्ताप कीर्त्तिरल्पायुधन निधनमेव च ।
आरोग्य सर्वकामाप्तिरभ्यङ्गाद्भास्करादिषु ॥१२३
उपोषितस्य व्रतिन कृत्तकेशस्य नापितै ।
तावच्छ्रीस्तिष्ठति प्रीता यावत्तैल न सम्पृशेत् । १२४

बारह वर्ष तक प्राजापत्य व्रत के करने से जो फल प्राप्त होता है उसे श्रद्धा से समन्वित होकर नित्य प्रात काल में स्नान करने वाला एक वर्ष ही में प्राप्त कर लिया करता है ॥११८॥ जो पुरुष चन्द्र और सूर्य ग्रहों के तुल्य बहुत

अधिक भोगो के प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसे माघ और फाल्गुन इन दो मासो में नित्य ही प्रात काल म स्नान करने वाला हो जाना चाहिए ।।११६।। जो पुरुष माघ मास को प्राप्त कर नित्य प्रात काल म स्नान करता है और हविष्य का भोजन करता है वह अत्यन्त उग्र महान् पाप को भी एक ही मास म नष्ट करके विशुद्ध हो जाता है ।।१२०।। माता, पिता, भ्राता, सुहृद गुरु इनम जिस किसी का उद्देश्य लेकर निमज्जन किया करता है उसका बारहवाँ अंश वह प्राप्त किया करता है ।।१२१।। भगवान् विष्णु विशेषकर एकादशी तिथि म आमलकी से बहुत सन्तुष्ट हुआ करते हैं। जो श्री की कामना रखता हो उस मनुष्य को सवदा आमलकी (आँवला) से स्नान करना चाहिये ।।१२२।। भास्कर आदि दिना मे अभ्यग करने से सन्ताप कीर्ति, अल्पायु धन, निधन और आरोग्य इन सम्पूर्ण कामो की प्राप्ति होती है ।।१२३।। उपोषित, व्रती और नापित के द्वारा कशो क कर्तन कराने वाले की श्री प्रसन्न होकर तभी तक स्थित रहा करती है जब तक तैल का स्पश नहीं किया करता है ।।१२४।।

एव स्नात्वा पितृन्देवान्मनुष्यास्तर्पयेन्नर ।
नाभिमाने जले स्थित्वा चिन्तयदूर्ध्वमानस ।।१२५
आगच्छन्तु मे पितर इम गृह्णन्त्वपोऽञ्जलिम् ।
त्रीस्त्रीनञ्जलीन्दद्यादाकाशे दक्षिणे तथा ।।१२६
वसित्वा वसन शुष्क स्थलस्थास्तीर्णबर्हिषि ।
विधिज्ञास्तर्पण कुर्य्युर्न पात्रे तु कदाचन ।।१२७
यदपा क्रूरमासात्त यदमेध्य तु किञ्चन ।
अशान्त मलिन यच्च तत्सर्वमपगच्छतु ।।१२८
गृहीत्वानेन मन्त्रेण तोय सव्येन पाणिना ।
प्रक्षिपेद्दिदिशि नैऋत्या रक्षाऽपहतये तु तत् ।।१२९
निषिद्धभक्षणाद्यत्त पापाद्यच्च प्रतिग्रहम् ।
दुष्कृत यच्च मे किञ्चिद्वाङ्मन कायकर्मभि ।।१३०
पुनातु मे तदिन्द्रस्तु वरुण सबृहस्पति ।
सविता च भगश्चैव मुनय सनकादय ।।१३१

इस प्रकार से स्नान करके मनुष्य को पितृगण, देवता और मनुष्यों को तृप्त करना चाहिए। नाभि मात्र जल में स्थित होकर ऊर्ध्व मन वाला होते हुए चिन्तन करे ॥ १२५ ॥ चिन्तन इस प्रकार से करे–हे मेरे पितृगण ! आप लोग आइये और मेरी इस दी हुई जलाञ्जलि को ग्रहण कीजिए। दक्षिण दिशा में तीन-तीन अञ्जलियाँ आकाश में देवे। फिर सूखे हुए वस्त्रों को पहिन कर स्थल पर बिछे हुए बर्हि पर बैठकर विधि के ज्ञाताओं को तर्पण करना चाहिए किन्तु पात्र में कभी तर्पण न करे ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ क्रूर मांस में जो कुछ भी जल में अमेध्य हो और अज्ञान एवं मलिन जो कुछ भी हो वह सब अपगत हो जावे ॥ १२८ ॥ इस मन्त्र से सव्य हाथ से जल ग्रहण करके नैऋत्य दिशा में राक्षसों के अप हनन करने के लिये उस जल को प्रक्षिप्त कर देवे ॥ १२९ ॥ निषिद्ध पदार्थ के भक्षण करने के पाप से और प्रतिग्रह के लेने से जो भी कुछ दुष्कृत मन—वाणी–शरीर के कर्म के द्वारा मेरा हुआ हो उसे इन्द्रदेव–वरुण–बृहस्पति–सविता—भग और सनकादि मुनि गण पवित्र करें ॥ १३० ॥ १३१ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं जपंस्तृप्यन्त्विति ब्रुवन् ।
क्षिपेदपोऽञ्जलीस्त्रीस्तु कुर्वन्सक्षेपतर्पणम् ॥१३२
सुराणामर्चनं कुर्य्याद् ब्रह्मादीनाममत्सरी ।
ब्राह्मवैष्णवरौद्रैश्च सावित्रैर्मैत्रवारुणैः ॥१३३
सलिङ्गैरर्चयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान्नमस्य च ।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेत्तु पृथक्पृथक् ॥१३४
सर्वदेवमयं विष्णुं भास्करञ्चाथ चार्चयेत् ।
दद्यात्पुरुषसूक्तेन य पुष्पाण्यप एव वा ॥१३५
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम् ।
अन्यैश्च तान्त्रिकैर्मन्त्रैः पूजयेच्च जनार्दनम् ॥१३६

'आब्रह्म स्तम्ब पर्यन्तम्'–इस मन्त्र का जप करते उच्चारण करता हुआ, संक्षेप से तर्पण करता हुआ तीन-तीन जल की अञ्जलियों का क्षेप करना चाहिए ॥ १३२ ॥ फिर ब्रह्मादि सुरों का मत्सरता से रहित होकर अर्चन

करना चाहिए। ब्राह्म-वैष्णव—रौद्र-सावित्र—मैत्रवारुण तत् तत् लिङ्गों वाले मन्त्रों के द्वारा सम्पूर्ण देवों का अर्चन करे फिर सब देवताओं को नमस्कार करके पृथक् पृथक नमस्कार द्वारा ही पुष्पों का विन्यास करना चाहिए ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ समस्त देवों के परिपूर्ण भगवान् विष्णु और भुवन भास्कर की अर्चना करनी चाहिए। पुरुष सूक्त के द्वारा जो पुष्पों को एवं जल को समर्पित करता है उसने इस सम्पूर्ण चराचर जगत् की ही अर्चना करली है। इसके अतिरिक्त तान्त्रिक मन्त्रों के द्वारा भी जनार्दन की पूजा करे ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

आदावर्घ्यं प्रदातव्य तत पश्चाद्विलेपनम् ।
तत पुष्पाञ्जलि धूपं उपहारफलानि च ॥१३७
स्नानमन्तर्जले चैव मार्जनाचमन तथा ।
जलाभिमन्त्रण यच्च तीर्थस्य परिकल्पनम् ॥
अघमर्षणसूक्तेन त्रिवार स्वेव नित्यश ॥१३८
स्नाने चरितमित्येतरसमुद्दिष्ट महात्मभि ।
ब्रह्मक्षत्रविशाञ्चैव मन्त्रवत् स्नानमिष्यते ।
तूष्णीमेव तु शूद्रस्य सनमस्कारक स्मृतम् ॥१३९
अध्यापन ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञस्तु सर्पणम् ।
होमो दैवो वलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥१४०
गवा गोष्ठे दशगुण अग्न्यागारे शताधिकम् ।
सिद्धक्षेत्रेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ॥
सहस्रशतकोटीनामनन्त विष्णुसन्निधौ ॥१४१
पञ्चमे च तथा भागे सविभागो यथार्थत ।
पितृदेव मनुष्याणा कोटीनाञ्चोपदिश्यते ॥१४२
ब्राह्मणेभ्य प्रदायाग्र य सुहृद्भिम सहाश्नुते ।
स प्रेत्य लभते स्वर्गमन्नदान समाचरन् ॥१४३

सर्व प्रथम आदि मे जब कि अर्चा का आरम्भ कर देव को अर्घ्य देना चाहिए। इसके अनन्तर विलेपन देवे। इसके पश्चात् पुष्पाजलि देवे और क्रमशः

धूप और उपहार के लिये फल आदि समर्पित करने चाहिए। इसके उपरान्त जल के अन्दर स्नान करावे—मार्जन तथा आचमन करावे। जल को अभिमन्त्रित करे तथा तीर्थ का परिकल्पन करना चाहिए। इस तरह से अघमर्षण सूक्त से नित्य ही तीन बार करना चाहिए ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ महान् आत्मा वालों ने स्नान में यह इतना चरित कहा है। ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों को मन्त्रवत् स्नान करना चाहिए। केवल शूद्र को चुप चाप ही नमस्कार के साथ स्नान बताया गया है ॥ १३९ ॥ अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ है और तर्पण करना पितृ यज्ञ होता है। होम करना दैवयज्ञ होता है तथा बलि देना भौत यज्ञ है। अतिथियों का अर्चा-सत्कार करना नृयज्ञ होता है ॥१४०॥ गौओं के गोष्ठ में इस सबका करना दशगुना फल वाला होता है। अग्न्यागार में यदि यह सब किया जावे तो शत गुना फल प्रद होता है। जो सिद्ध क्षेत्र हैं—तीर्थ हैं तथा देवतायतन हैं उन में देवार्चन आदि करने से सहस्र शत कोटि गुना फल प्रद होता है एवं भगवान् विष्णु की सन्निधि में किया जावे तो अनन्त गुना फल देने वाला हुआ करता है ॥ १४१ ॥ तथा पञ्चम भाग में यथार्थ रूप से पितृ-देव-मनुष्य और कीटियों का विभाग करे—ऐसा उपदेश दिया जाता है ॥ १४२ ॥ सबसे पूर्व ब्राह्मणों को प्रदान कर के जो अपने सुहृदों के साथ अशन किया करता है वह इस तरह अन्न का दान करने वाला मनुष्य मर कर स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है ॥ १४३ ॥

पूर्वं मधुरमश्नीयाल्लवणाम्लौ च मध्यत.।
कटुतिक्तकषायांश्च पयश्चैव तथान्तत ॥१४४

शाकञ्च रात्रौ भूमिष्ठमत्यन्तञ्च विवर्जयेत्।
न चैकरसतेवायां प्रसह्येत कदाचन ॥१४५

अमृत ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पय· स्मृतम्।
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम् ॥१४६

अमावसी वसेद्यत्र एकहायनमेव वा।
तत्र श्रीश्चैव लक्ष्मीश्च वसते नात्र संशयः ॥१४७

उदरे गार्हपत्याग्निः पृष्ठदेशे तु दक्षिण ।
आस्ये आहवनीयोऽग्नि सत्ये सर्वञ्च मूर्द्धनि ॥१४८
य पञ्चाग्नीनिमान्वेद आहिताग्निः स उच्यते ।
शरीरमापः सोमञ्च विविधञ्चान्नमुच्यते ॥१४९
प्राणो ह्यग्निस्तथादित्यस्त्रिभोक्ता एक एव तु ।
अन्न बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च ॥१५०
भवत्येतत्परिणतौ समामव्याहत सुखम् ।
हस्तेन परिमार्ज्याथ कुर्यात्ताम्बूलभक्षणम् ॥१५१
श्रवणञ्चेतिहासस्य तत्कुर्यात्सुसमाहितः ।
इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमके नयेत् ॥१५२
ततःसन्ध्यामुपासीत स्नात्वा वै पश्चिमा नर. ।
एतद्वा दिवसे प्रोक्तमनुष्ठान मया द्विज ॥१५३
आचार य. पठेद्विद्वाञ्शृणुयात्स दिव व्रजेत् ।
आचारादिधर्मकर्त्ता केशवो हि स्मृतो द्विज ॥१५४

सबसे पूर्व जो मधुर पदार्थ हो उसका अशन करे और मध्य में लवणाम्लों का भोजन करना चाहिए। जो कटु—तिक्त तथा कषाय स्वाद वाले हों उन्हें बाद मे खावे और सबसे अन्त में पय का पान करे ॥ १४४ ॥ रात्रि मे शाक का अशन करे और जो भूमिष्ठ हो उसका विशेष रूप से वर्जन कर देना चाहिए। कभी भी एक ही रस का सेवन नहीं करना चाहिए ॥ १४५ ॥ ब्राह्मण का अन्न अमृत के तुल्य माना गया है—क्षत्रिय का अन्न दुग्ध के समान बताया गया है—वैश्य का जो अन्न होता है वह अन्न ही होता है तथा शूद्र का अन्न रुधिर के तुल्य कहा गया है ॥ १४६ ॥ जहाँ पर अमावासी वास करता है अथवा एक हायन निवास करता है वहीं पर श्री और लक्ष्मी नित्य निवास किया करती है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ १४७ ॥ उदर में गार्हपत्याग्नि है और पृष्ठ देश मे दक्षिणाग्नि है मुख में आहवनीय अग्नि है तथा सत्य मे मूर्द्धा में सबका निवास रहता है ॥ १४८ ॥ जो इन पाँच अग्नियों को जानता है वह आहिताग्नि कहा जाता है। शरीर—आप और सोम विविध

अघ कहा जाता है ॥ १४६ ॥ प्राण—अग्नि तथा आदित्य ये तीन भोक्त एव ही होता है। भूमि का अन्न मेरे बल के लिये है। जलों का-अग्नि और प्रविल का भी बल के लिये होता है ॥ १५० ॥ यह समास और व्याहृत सुए परिणति (परिपाक) में होता है। हाथ से परिमार्जन करके ताम्बूल का भक्षण करना चाहिए ॥ १५१ ॥ इसके उपरान्त पूर्णतया सावधान होते हुए इतिहास श्रवण करना चाहिए। षष्ठ और सप्तम भाग को इतिहास-पुराणादि के श्रवण पठन आदि के द्वारा व्यतीत करना चाहिए ॥ १५२ ॥ इनके अनन्तर अर्था दिवस के जो सात भाग बताये गये हैं उनका ऊपर में बताये हुए क्रम से उप योग किये जाने पर फिर पश्चिम सन्ध्या की वन्दना स्नान करके करनी चाहिए हे द्विज ! इस प्रकार से मैंने दिवस का पूरा अनुष्ठान बता दिया है। जो विद्वा इस दिन भर के अनुष्ठान को पढता है या श्रवण करता है वह दिव्य लोक को जाया करता है। हे द्विज ! इस आचार आदि धर्म का जो करने वाला है वह तो केशव ही बतलाया गया है ॥१५३॥१५४॥

११६–धर्म-सार कथन

धर्मसारमहं वक्ष्ये संक्षेपाच्छृणु शङ्कर ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सूक्ष्मं सर्वपापविनाशनम् ॥१
श्रुतं धर्मं बलं धैर्य्यं सुखमुत्साहमेव च ।
शोको हरति वै नृणां तस्माच्छोकं परित्यजेत् ॥२
धर्मंदारा कर्मलोकाः कर्मसम्बन्धिबान्धवाः ।
कर्माणि प्रेरयन्तीह पुरुषं सुखदुःखयोः ॥३
दानमेव परो धर्मो दानात्सर्वमवाप्यते ।
दानं स्वर्गश्च राज्यञ्च दद्याद्दानं ततो नरः ॥४
एकतो दानमेवाहुः समग्रवरदक्षिणम् ।
एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ॥५
तपसा ब्रह्मचर्य्येण यज्ञैः स्नानेन वा पुनः ।
धर्मस्य नाशका ये च ते वै निरयगामिनः ॥६

ये च होमजपस्नानदेवतार्चनतत्परा ।
सत्यक्षमादयायुक्तास्ते नरा. सर्वगामिनः । ७

ब्रह्माजी ने कहा—हे शङ्कर ! अब मैं संक्षेप में धर्म का सार बतलाता हूँ उसका तुम श्रवण करो। यह धर्म का सार अत्यन्त सूक्ष्म है और भुक्ति तथा मुक्ति के प्रदान करने वाला एव सब प्रकार के पापों का नाश कर देने वाला होता है ॥१॥ शोक बहुत ही बुरी वस्तु है, इससे ज्ञान, धर्म बल, धैर्य और सुख एव उत्साह इन सबका हरण हो जाया करता है अर्थात् शोक से ये सब नष्ट हो जाते हैं। अतएव शोक का परित्याग कर देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि शोक को कभी भी न करे ॥२॥ ये कर्म ही पत्नियाँ हैं, कर्म ही लोक हैं कर्म ही सम्बन्धी और बान्धव हैं। इस संसार मे सुख तथा दुःख मे पुरुष को कर्म ही प्रेरित किया करते हैं ॥३॥ दान करना सबसे बड़ा परम धर्म होता है। दान करने से संसार में सभी कुछ की प्राप्ति की जाया करती है। दान ही स्वर्ग है और दान ही राज्य है अर्थात् दान से स्वर्ग तथा राज्य की प्राप्ति हुआ करती है। अतएव मनुष्य को दान अवश्य ही देना चाहिये ॥४॥ एक ओर तो समग्र श्रेष्ठ दक्षिणा से युक्त दान है और एक ओर भय से भीति (डरा हुआ) प्राणी के प्राणों का रक्षण है ॥५॥ तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और स्नान के त्यागने से जो धर्म के नाश करने वाले हैं वे मनुष्य निश्चय ही नरक के गामी हुआ करते हैं। ॥६॥ जो मनुष्य होम, जप, स्नान, देवों का अर्चन इन सत्कर्मों मे सदा परायण रहा करते हैं और सत्य, क्षमा और दया से युक्त होते हैं वे मनुष्य अवश्य ही स्वर्ग के गमन करने वाले होते हैं ॥७॥

न दाता सुखदु खानां न च हर्त्तास्ति कश्चन ।
स्वकृतान्येव भुञ्जन्ते दु.खानि च सुखानि च ॥८
धर्मार्थं जीवितं येषां दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
सन्तुष्टः को न शक्नोति फलमूलैश्च वर्तितुम् ॥९
सर्व एव हि सौख्येन सङ्कटान्यवगाहते ।
इदमेव हि लोभस्य कार्य्यं स्यादतिदुष्करम् ॥१०

लोभात्क्रोध प्रभवति लोभाद्द्रोह प्रवर्त्तते ।
लोभान्मोहश्च माया च मानो मत्सर एव च ॥११
रागद्वेषानृतक्रोधलोभमोहमदोज्झित ।
य स शान्त पर लोक याति पापविवर्जित ॥१२
देवता मुनयो नागा गन्धर्वा गुह्यका हर ।
धार्मिक पूजयन्तीह न धनाढ्य न कामिनम् ॥१३
अनन्तबलवीर्य्येण प्रज्ञया पौरुषेण वा ।
अलभ्य लभते मर्त्यस्तत्र का परिवेदना ॥१४

सुखों और दु खो का देने वाला या इनके हरण करने वाला कोई भी नहीं है । मनुष्य अपने ही किये हुए कर्मों के अनुसार चाहे वे पहिले जन्म-न्तरो में किये हों या इसी जन्म के हो—सुख-दु खो का भोग किया करते हैं ॥८॥ जिनका जीवन ही धर्म के लिये होता है वे सभी दु खों का नाश कर दिया करते हैं । कौन सन्तुष्ट पुरुष फल और मूलो के द्वारा जीवन निर्वाह नही कर सकता है? ॥९॥ सभी सुख मे सङ्कटो का अवगाहन करते हैं । यह ही लोभ का अत्यन्त कठिन कार्य है ॥१०॥ लोभ से क्रोध होता है और लोभ से ही द्रोह प्रवृत्त हुआ करता है । लोभ ही एक ऐसा महान् दोष है जिससे मोह, माया, मान और मत्सर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥११॥ वही पुरुष शान्त होता है जो राग, द्वेष, मिथ्या, क्रोध, लोभ, मोह और मद से दूर रहता है अर्थात् इनका त्याग जिसने कर दिया है तथा जो शान्ति से सम्पन्न होता है पाप से रहित होकर परलोक में सद्गति प्राप्त किया करता है ॥१२॥ हे हर ! देवता, मुनि-गण, नाग, गन्धर्व और गुह्यक गण ये सभी लोग यहाँ इस लोक म धर्मनिष्ठ पुरुष ही का पूजन किया करते हैं, धन से सम्पन्न तथा कामी पुरुष की कोई भी पूजा नहीं करता है ॥१३॥ अपने अनन्त बल और वीर्य से, प्रज्ञा से अथवा पुरुषार्थ से मनुष्य अलभ्य पदार्थ को प्राप्त किया करता है । इसमें फिर परि-देवना (पश्चात्ताप) क्या करना है ? ॥१४॥

सर्वसत्वदयात्यर्थं सर्वेन्द्रियविनिग्रह ।
सर्वत्रानित्यबुद्धित्वं श्रेय परमिद स्मृतम् ॥१५

पश्यन्निवाग्रतो मृत्युं यो धर्मं नाचरेन्नरः ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥१६
भ्रूणहा ब्रह्महा गोघ्न पितृहा गुरुतल्पगः ।
भूमि सर्वगुणोपेतां दत्त्वा पापैः प्रमुच्यते ॥१७
न गोदानात्परं दान किञ्चिदस्तीह मे मतिः ।
या गौर्न्यायार्जिता दत्ता कृत्स्नं तारयते कुलम् ॥१८
नान्नदानात्परं दान किञ्चिदस्ति वृषध्वज ।
अन्नेन धार्यते सर्वं चराचरमिदं जगत् ॥१६

समस्त प्राणियों पर अत्यन्त दया करना तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों का विशेष रूप से नियन्त्रण रखना और सभी में अनित्यता की बुद्धि का रखना ही परम श्रेय बताया गया है ॥१५॥ अपने सामने मृत्यु को खड़ी हुई तय्यार देखकर भी जो मनुष्य धर्म का आचरण नहीं किया करता है उसका यहाँ इस लोक में जन्म ग्रहण करना भी बकरी के गले में होने वाले स्तन की भाँति ही बिल्कुल व्यर्थ होता है। किसी किसी बकरी के कण्ठ में एक स्तन होता है जिससे दूध नहीं निकलता है और वह बेकार ही होता है ॥१६॥ जो भ्रूण (गर्भस्थ बालक) की हत्या करने वाला है, ब्राह्मण की हत्या करने वाला है, गौ का हनन करने वाला, पिता के मारने वाला और गुरु की पत्नी के साथ गमन करने वाला है वह समस्त गुणों से सम्पन्न भूमि का दान करके पापों से छुटकारा पाया करता है ॥१७॥ इस संसार में गोदान से उत्तम अन्य कोई भी दान नहीं होता है—ऐसी मेरी मति है। जो न्याय से अर्जित की हुई गौ का दान किया जाता है वह गो-दान पूर्ण कुल का उद्धार कर दिया करता है ॥१८॥ अन्न के दान का भी बड़ा माहात्म्य है। इससे बड़ा भी अन्य कोई दान नहीं होता है। हे वृषध्वज ! अन्न से ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् धारण कि जाता है ॥१६॥

कन्यादानं वृषोत्सर्गस्तीर्थसेवा श्रुतं तथा ।
हस्त्यश्वरथदानानि मणिरत्नवसुन्धरा ॥२०
अन्नदानस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
अन्नात्प्राणा बलं तेजश्चान्नाद्वीर्यं धृतिः स्मृतिः ॥२१

कूपवापीतडागादि आरामाणि च कारयेत् ।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥२२
साधूना दर्शन पुण्य तीर्थादपि विशिष्यते ।
कालेन फलते तीर्थं सद्य. साधुसमागम: ॥२३
सत्य दमस्तप. शौच सन्तोपश्च क्षमार्जवम् ।
ज्ञान शमो दया दानमेप धर्म. सनातन. ॥२४

कन्या का दान देना, वृषोत्सर्ग तीर्थों का सेवन करना, श्रुत, हाथी, घोडा और रथ का दान तथा मणि, रत्न एव भूमि का दान देना ये सभी महान् से महान् दान भी अन्न के दान की सोलहवी कला के समान भी नही हुआ करते हैं। अन्न से प्राणो की रक्षा होती है, बल की वृद्धि होती है, तेज बढता है और अन्न से ही वीर्याभिवृद्धि तथा स्मृति हुआ करते है अतएव यह दान परम महत्वशाली होता है ॥२०।२१॥ कुआ, बावडी, तालाब आदि का निर्माण एव उद्यान की रचना भी अवश्य ही करानी चाहिए। इनमे मनुष्य अपने इक्कीस कुलो का उद्धार करके अन्त मे विष्णु लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२२॥ साधु-सन्त पुरुषों का दर्शन परम पुण्यप्रद होता है जो कि तीर्थों के सेवन से भी अधिक कहा जाता है। तीर्थों का सेवन तो समय आने पर ही फल दिया करता है किन्तु साधु पुरुषो का समागम तुरन्त ही फल दिया करता है ॥२३॥ सत्य, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, आर्जव (सीधा भाव), ज्ञान, शम, दया और दान ये सब सनातन धर्म कहे गये हैं ॥२४॥

११७—युग-धर्म कथन

मुनिभिश्चरिता धर्मा भक्त्या व्यास मयोदिता: ।
यैर्विष्णुस्तुष्यते चैव सुखादिपरिचारका ॥१
तर्पणेन च होमेन सन्ध्याया वन्दनेन च ।
आप्यते भगवान् विष्णुर्धर्मकामार्थमोक्षद ॥२
धर्मो हि भगवान् विष्णु पूजाविष्णुस्तु तर्पणम् ।
होम. सन्ध्या तथा ध्यान धारणा सकल हरि: ॥३

प्रलयं जगतो वक्ष्ये तत्सर्वं शृणु शौनक ।
चतुर्युगसहस्रन्तु कल्पमेकाब्जदिनं स्मृतम् ॥४
कृतत्रेताद्वापरादियुगावस्था निबोध मे ।
कृते धर्मश्चतुष्पाच्च सत्यं दानं तपो दया ॥५
धर्मपाता हरिश्चेति सन्तुष्टा ज्ञानिनो नराः ।
चतुर्वर्षसहस्राणि नरा जीवन्ति वै तदा ॥६
कृतान्ते क्षत्रियैर्विप्रा विट्शूद्राश्चजिता द्विजैः ।
धूरश्वातिबलो विष्णू रक्षांसि च जघान ह ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास ! भक्तिभाव से मुनियों के द्वारा समाचरण किये गये धर्म मैंने बतलाये हैं जिन धर्मों से भगवान् विष्णु की तृप्ति होती है और सुखादि के परिचारक होते हैं ॥१॥ तर्पण करने से, होम करने से और सन्ध्या के समय में वन्दना करने से धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष के प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु प्राप्त किये जाते हैं ॥२॥ भगवान् विष्णु का ही स्वरूप धर्म होता है। पूजा विष्णु है और तर्पण भी विष्णु है। होम, सन्ध्या-वन्दन एवं ध्यान और धारणा ये सभी हरि के ही स्वरूप हैं ॥३॥ श्री सूतजी ने कहा हे शौनक ! अब हम इस जगत् की प्रलय का वर्णन करते हैं। उस सबका तुम श्रवण करो। एक सहस्र सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग इन चारों युगों का एक कल्प होता है जो कि ब्रह्मा का एक दिन हुआ करता है ॥४॥ अब कृत-युग, त्रेता, द्वापर आदि युगों की अवस्था मुझसे सुन समझ लो। कृतयुग में धर्म के चारों पाद होते हैं। वे चार पाद सत्य, दान, तप और दया ये ही होते हैं। ॥५॥ धर्म का पालन करने वाले हरि हैं। ज्ञानी मनुष्य सन्तुष्ट रहा करते हैं। उस समय कृतयुग में मनुष्य चार हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं अर्थात् मनुष्यों की आयु उस युग में चार सहस्र वर्ष की हुआ करती है ॥६॥ कृतयुग के अन्त में क्षत्रियों के द्वारा विप्र, वैश्य और शूद्र जीत लिये गये। द्विजों में अति बलवान् शूर विष्णु ने राक्षसों का हनन किया था ॥७॥

त्रेतायुगे त्रिपाद्धर्मः सत्यदानदयात्मकः ।
नरा यज्ञपरास्तस्मिंस्तथा क्षत्रोद्भवं जगत् ॥८

रक्तो हरिर्नरै पूज्यो नरा दशशतायुषः ।
तत्र विष्णुर्भीमरथ क्षत्रिया राक्षसानहन् ॥६
द्विपादविग्रहो धर्मः पीताताञ्चाच्युते गते ।
चतु शतायुषो लोका द्विजक्षत्रोद्भवा. प्रजाः ॥१०
तत्र दृष्ट्वाल्पबुद्धीश्च विष्णुर्व्यासस्वरूपधृक् ।
तदेक तु चतुर्वेद चतुर्धा व्यभजत् पुनः ॥११
शिष्यानध्यापयामास समस्तान् तान् निबोध मे ।
ऋग्वेदमथ पैलन्तु सामवेदञ्च जैमिनिम् ॥१२
अथर्वाण सुमन्तु तु यजुर्वेद महामुनिम् ।
वैशम्पायनसञ्ज्ञन्तु पुराण सूतमेव च ।
अष्टादश पुराणानि यो वेत्ति हरिरेव हि ॥१३
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च ।
वशानुचरितञ्चैव पुराण पञ्चलक्षणम् ॥१४

त्रेता युग में धर्म के तीन ही पाद रह गये थे। और वे तीन धर्म के पाद सत्य, दान और दया ये थे। उस समय में मनुष्य यज्ञों के करने में तत्पर रहते थे तथा यह सम्पूर्ण जगत् क्षत्रोद्भव हो गया था। ८॥ हरि का रक्त वर्ण था जो कि मनुष्यो के द्वारा पूजा के योग्य थे। मनुष्यो की आयु इस युग में एक सहस्र वर्ष की होती थी। उस समय में भीमरथ विष्णु थे और क्षत्रियो ने राक्षसों का हनन किया था ॥६॥ द्वापर युग मे धर्म दो पादो के शरीर वाला था। भगवान् अच्युत् उस समय में पीत वर्ण के थे। मनुष्यों की आयु इस युग में चारसौ वर्ष की थी और प्रजा, द्विज तथा क्षत्रियो से उद्भव प्राप्त करने वाली थी ॥१०॥ उस समय में मनुष्यो को अल्प बुद्धि वाले देखकर भगवान् विष्णु ने महर्षि व्यास के स्वरूप को धारण किया था। उन एक महर्षि व्यास देव ने चारों वेदों के रूप मे वेद का विभाजन किया था ॥११॥ उन चारो वेदो को सम्पूर्ण रूप से शिष्यो को पढाया था। उनको भी अब तुम समझ लो। ऋग्वेद को तो पैल को पढाया था और सामवेद जैमिनि नामक शिष्य को पढाया था। अथर्वण वेद सुमन्तु को पढाया था तथा यजुर्वेद महामुनि को पढाया था।

वैशम्पायन के साथ सूतजी को पुराण का अध्यापन कराया था। जो अठारह पुराणों का ज्ञान रखता है वह साक्षात् हरि ही है ॥१२।१३॥ पुराण के पाँच लक्षण होते हैं—उनमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तरों का वर्णन और वंशानुचरित होते हैं ॥१४॥

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा।
भविष्यन्नारदीयञ्च स्कान्दं लिङ्गं वराहकम् ॥१५
मार्कण्डेयं तथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्तमेव च।
कौर्मं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनन्तरम् ॥
अष्टादशसमुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम् ॥१६
अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।
आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम् ॥१७
तृतीयं स्कन्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं स्यान्नन्दीश्वरभाषितम् ॥१८
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम्।
कपिलं वामनञ्चैव तथैवोशनसेरितम् ॥१९
ब्रह्माण्डं वारुणञ्चाथ कालिकाह्वयमेव च।
माहेश्वरं तथा साम्बमेव सर्वार्थसञ्चयम् ॥
पराशरोक्तमपरं मारीचं भार्गवाह्वयम् ॥२०
पुराणं धर्मशास्त्रञ्च वेदास्त्वङ्गानि यन्मुने।
न्यायः शौनक मीमांसा आयुर्वेदार्थशास्त्रकम् ॥
गन्धर्वश्च धनुर्वेदो विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ॥२१

पुराणों के नाम ये हैं—ब्राह्म (ब्रह्मपुराण)—पाद्म (पद्म पुराण)—वैष्णव (विष्णु पुराण)—शैव (शिव पुराण)—भागवत—भविष्यत्—नारदीय—स्कान्द (स्कन्द पुराण)—लिङ्ग—वराहक—मार्कण्डेय—आग्नेय (अग्नि पुराण)—कौर्म (कूर्म पुराण)—मात्स्य—गरुड—वायवीय (वायु पुराण) ये अष्टादश पुराण हैं जिनमें अठारहवां ब्रह्माण्ड पुराण है ॥ १५ ॥१६ ॥ इनके अतिरिक्त भी उपपुराण हैं जो मुनियों के द्वारा कहे गये हैं। सबसे आदि का नारसिंह

पुराण है जिसको सनत्कुमारों ने कहा है, वह भी दूसरा पुराण है। तीसरा स्कन्द पुराण कुमार के द्वारा कथित है। चौथा शिव धर्म नाम वाला पुराण है जो नन्दीश्वर के द्वारा भाषित हुआ है ॥ १७ ॥ १८ ॥ दुर्वासा के द्वारा कथित आश्चर्य और इसके अनन्तर नारद के द्वारा उक्त पुराण है। कपिल—वामन और उशना के द्वारा कथित पुराण है ॥ १९ ॥ ब्रह्माण्ड—वारुण और कालिका नामक पुराण है। माहेश्वर—साम्ब—सर्वार्थसञ्चय—पराशर के द्वारा कथित पुराण—मारीच और भार्गव नाम वाला पुराण है ॥ २० ॥ पुराण—धर्मशास्त्र—वेद के अङ्ग हे शौनक मुने ! न्याय—मीमांसा और आयु॰ र्वेदार्थ शास्त्र—गन्धर्व शास्त्र—धनुर्वेद ये सब मिल कर अठारह विद्याएँ बताई गईं हैं ॥२१॥

द्वापरान्तेन च हरिर्गुरुभारमपाहरत् ।
एकपादस्थिते धर्मे कृष्णत्वञ्चाच्युते गते ॥२२
जनास्तदा दुराचारा भविष्यन्ति च निर्दयाः ।
सत्त्व रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ॥
कालसञ्चोदितास्तेऽपि परिवर्त्तन्त आत्मनि ॥२३
प्रभूतञ्च यदा सत्त्व मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।
तदा कृतयुगं विद्यात् ज्ञाने तपसि यद्रत ॥२४
यदा कर्मसु काम्येषु शक्तिर्यशसि देहिनाम् ।
तदा त्रेता रजभूतिरिति जानीहि शौनक ॥२५
यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भश्च मत्सरः ।
कर्मणाश्चापि काम्याना द्वापरं तद्रजस्तमः ॥२६
यदा सदानृत तन्द्रा निद्रा हिंसादिसाधनम् ।
शोकमोहौ भय दैन्य स कलिस्तमसि स्मृत ॥२७
यस्मिन् जना कामिन. स्यु शश्वत् कटुकभाषिणः ।
दस्युत्कृष्टा जनपदा वेदाः पापण्डदूषिता. ॥२८

द्वापर युग के अन्त में भूमि के बहुत भारी भार को भगवान् हरि ने दूर किया था जब कि धर्म का केवल एक ही पाद यहाँ पर स्थित रहा था

उस समय में भगवान् अच्युत् ने कृष्णावतार धारण किया था ॥ २२ ॥ उस समय में मनुष्यों के आचार बहुत दूषित हो गये थे। मनुष्यों में दया बिल्कुल नहीं रहेगी और पुरुषों में सत्व—रज और तम ये गुण दिखलाई दिया करते हैं। वे सभी काल से सम्प्रेरित होकर आत्मा में परिवर्तित हो जाते हैं ॥२३॥ जिस समय सत्व का बाहुल्य रहता है और मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ उसी प्रकार के होते हैं उस समय कृतयुग जानना चाहिए मनुष्य उस समय ज्ञान तथा तपस्या में रत रहा करते हैं ॥ २४ ॥ जिस समय में देहधारियों की रति काम्य कर्मों में शक्ति मन में हुआ करती है उस समय त्रेता युग होता है। हे शौनक! इसे रजो गुण की उत्पत्ति या वैभव ही समझना चाहिए ॥ २५ ॥ जिस समय में लोभ—असन्तोष-मान—दम्भ—मत्सर और केवल कामना से युक्त-कर्म ही होते हैं उसे द्वापर युग समझो। इसमें रजोगुण और तमोगुण की ही प्रधानता रहा करती है ॥ २६ ॥ जिस समय में सदा मिथ्या—तन्द्रा—निद्रा, और हिंसा आदि के साधन होते हैं तथा शोक—मोह—भय—दैन्य हुआ करते हैं वह कलियुग कहा गया है इसमें केवल तमो गुण ही रहा करता है ॥ २७ ॥ जिस समय में मनुष्य कामी और सदा कटुभाषी हो जाते हैं। जन पद दस्युओं के द्वारा उत्कृष्ट होते हैं और वेद पाषण्ड के द्वारा दूषित हो जाया करते हैं। ये सब कलियुग का प्रभाव है ॥२८॥

राजानश्च प्रजाभिक्षा. शिश्नोदरपराजिताः।
अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ॥२९
तपस्विनो ग्रामवासाः न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः।
ह्रस्वकाया महाहाराश्चौर्यास्तु साधवः स्मृताः ॥३०
त्यक्ष्यन्ति भृत्याश्च पतिं तापसस्त्यक्ष्यति व्रतम्।
शूद्राः प्रतिग्रहिष्यन्ति वैश्यस्तपपरायणः ॥३१
उद्विग्नाः सन्ति च जनाः पिशाचसदृशाः प्रजाः।
अन्यायभोजनेनाग्निदेवतातिथिपूजनम् ॥३२
करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पित्र्युदकक्रियाम्।
स्त्रीपराश्च जनाः सर्वे शूद्रप्रायाश्च शौनक ॥३३

बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ।
शिरःकण्डूयनपरा श्राज्ञा भेत्स्यन्ति भत्सिता ॥३४
विष्णुं न पूजयिष्यन्ति पाषण्डोपहता जना. ।
कलेर्दोषनिधेर्विप्रा अस्ति ह्येको महागुण ॥३५
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य महाबन्ध परित्यजेत् ।
कृते यज्ञादिना विष्णु त्रेतायां जपतः फलम् ॥३६
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ।
तस्माद् ध्येयो हरिर्नित्य ध्येय. पूज्यश्च शौनक ॥३७

कलियुग में राजा लोग प्रजाजनों से भिक्षा की याचना करते हैं और ये सभी शिश्न तथा उदर की पूर्ति में ही परायण रहने वाले होते हैं। बटु लोग अर्थात् ब्रह्मचारी व्रत रहित, शौच विहीन—भिक्षु और कुटुम्बी होंगे ॥ २६ ॥ जो तपस्वी नामधारी पुरुष होंगे वे ग्रामों के अन्दर निवास करने वाले हो जायेंगे। जो संन्यास धारण करने वाले लोग हैं वे महान् धन के लालची हो जायेंगे। साधु गण वे ही कहलायेंगे जिनके शरीर का आकार छोटा होगा—अधिक आहार करने वाले और चोरी करने वाले होंगे ॥ ३० ॥ भृत्य लोग अपने स्वामियों को उस समय में त्याग कर दिया करेंगे। तापस-गण अपने व्रतों को छोड़ दिया करेंगे। शूद्र लोग दान ग्रहण किया करेंगे। वैश्य लोग तपस्या में परायण होंगे ॥ ३१ ॥ सभी मनुष्य उद्वेग से युक्त रहेंगे और सारी प्रजा बिलावों के तुल्य हो जायगी। अन्याय के भोजन द्वारा लोग अग्नि—देवता और अतिथियों का पूजन करेंगे। जब कलियुग प्राप्त होगा तो पितृगण की कोई भी उदक क्रिया नहीं करेगा। हे शौनक ! कलियुग में सभी मनुष्य स्त्रियों में ही परायण और शूद्र प्राय हो जायेंगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ लोगों के सन्तान अत्यधिक होंगी और वे सब भाग्य हीन हुआ करेंगे। स्त्रियाँ ऐसी अभागिनी होंगी कि अपने शिरों को खुजलाने में तत्पर रहेंगी और भर्त्सित होकर बड़ों की आज्ञा का खण्डन किया करेंगी ॥ ३४ ॥ लोगों में पाखण्ड इतना हो जायगा कि उससे उपहत होकर वे विष्णु का पूजन नहीं किया करेंगे हे विप्रगण ! इस दोषों से दूषित कलियुग में एक ही महान् गुण

तज्जाया मनसा वान्छन्तद्द्रव्यं वाप्यसंशयः ।
गर्दभो जायते जन्तुर्मित्रस्यैवापमानकृत् ॥१४

इसके अनन्तर अगुली—नेत्र—नासिका—अग्र बल आदि उपाङ्ग प्रकट होते हैं जो कि अङ्गों से उत्पन्न हुआ करते हैं। इसके अनन्तर नख आदि की उत्पत्ति तथा निर्माण हो जाता है ॥ ८ ॥ त्वचा—रोम और फिर केश उत्पन्न हुआ करते हैं। इन सबके निर्माण हो जाने पर मनुष्य नीचे की ओर मुख वाला होकर स्थित रहा करता है। जब दशम मास का आरम्भ होता है तो यह उत्पन्न होता है अर्थात् गर्भाशय से बाहिर होता है ॥ ९ ॥ जैसे ही वह जीवात्मा यहाँ लोक में देह धारण कर उत्पन्न होता है वैसे ही वैष्णवी माया जो कि अत्यन्त मोहन करने वाली है उसे आवृत्त कर लिया करती है। यह प्राणी इस लोक में आकर बचपन—कुमारावस्था—यौवन और वृद्धता को क्रम से प्राप्त करके पूर्ण उम्र समाप्त कर देता है और इसके पश्चात् उसकी मृत्यु प्राप्त होती है। इस प्रकार से यह मानव सत्-असत् धर्म को प्राप्त किया करता है। इस प्रकार का यह संसार का एक चक्र है जिसमें जीवात्मा घड़ी के यन्त्र की भाँति भ्रमित होता रहता है। उत्पन्न हुआ—उम्र भोगी—मर गया—कर्म फल भोगे भले बुरे जैसे भी हो और फिर जन्म लिया—यही चक्र गति है ॥ १० ॥ ११ ॥ नरकों से कर्मानुसार भोग भोगलेने के पश्चात् अपनी अवधि समाप्त करके यह जीवात्मा फिर यहाँ पापयोनियों में जन्म ग्रहण किया करता है। हे बुध ! पतित पुरुष से प्रतिग्रह लेकर यह अधो योनियों में जाया करता है ॥ १२ ॥ याचक नरक से प्रति मुक्त होकर कृमि होता है। जो द्विज उपाध्याय होकर व्यलीक किया करता है वह कुत्ते की योनि में जन्म ग्रहण करता है ॥ १३ ॥ उसकी जाया को मन से इच्छा करता है या उसके द्रव्य को मन में प्राप्त करने की चाह रखता है तो बिना किसी संशय के गधे की योनि में जन्म लेता है जो जन्तु अपने मित्र का अपमान करता है वह भी गधा होता है ॥१४॥

पितरौ पीडयित्वा तु कच्छपत्वञ्च जायते ।
भर्त्तुं पिण्डमुपाश्रस्तो वञ्चयित्वा तमेव य. ॥१५

सोऽपि मोहसमापन्नो जायते वानरो मृतः ।
न्यासापहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते क्रमिः ॥१६
असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षसः ।
विश्वासहर्त्ता च नरो मीनयोनौ प्रजायते ॥१७
यवधान्यानि संहृत्य जायते मूषको मृतः ।
परदाराभिमर्षात्तु वृको घोरोऽभिजायते ॥१८
भ्रातृभार्य्याप्रसङ्गत्वे कोकिलो जायते नरः ।
गुर्वादिभार्य्यागमनात्सूकरो जायते नरः ॥१६
यज्ञदानविवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत्क्रमिः ।
देवतापितृविप्राणामदत्वा यो समश्नुते ॥२०
प्रमुक्तो नरकाद्वापि वायसः सम्प्रजायते ।
ज्येष्ठभ्रात्रपमानाच्च क्रौञ्चयोनौ प्रजायते ॥२१

जो अपने माता-पिता को उत्पीडित किया करता है वह कछुआ होकर लोक मे जन्म लिया करता है । स्वामी के पिण्ड से उपाश्रित होकर उसी को जो वञ्चित किया करता है वह भी मोह के समापन्न होने पर मृत होने के पश्चात् वानर की योनि मे उत्पन्न हुआ करता है । जो किसी के न्यास (धरोहर) का अपहरण करने वाला है वह नरक से विमुक्त होकर अर्थात् पहिले नरक की पीडा का भोग भोगकर फिर शेष भोग को भोगने के लिये कृमि होकर इस लोक मे जन्म लिया करता है ॥१५।१६॥ जो असूया (निन्दा) करने वाला पुरुष है वह नरक की यातना भोगकर फिर शेष कर्मों के फल की पीडा भोगने के लिये राक्षस हुआ करता है । जो किसी को विश्वास देकर फिर उसका घात किया करता है वह मीन (मछली) की योनि प्राप्त करता है ॥१७॥ जो किसी के यव तथा धान्यो का संहार करता है वह मरकर मूषक (चूहा) हुआ करता है । जो पराई स्त्री के साथ अभिमर्ष किया करता है वह घोर वृक (भेडिया) होकर उत्पन्न होता है ॥१८॥ अपने भाई की भार्या के साथ प्रसङ्ग करने पर मनुष्य कोकिल की योनि में जन्म लेता है । गुरु आदि की पूजनीय भार्या के गमन करने से सूकर की योनि मे जन्म ग्रहण किया करता है ॥१६॥ यज्ञ, दान

और विवाहों में जो विघ्न उपस्थित किया करता है वह कृमि होता है। जो देवता, पितृगण और विप्रों को समर्पण न करके स्वयं ही पहिले खा लिया करता है वह पहिले तो नरक की यातना भोगता है और पीछे कौआ होकर जन्म ग्रहण किया करता है। अपने ज्येष्ठ भाई के अपमान करने से वह मनुष्य क्रौञ्च की योनि में जन्म प्राप्त किया करता है॥२०।२१॥

शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते।
तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तःकीटको भवेत्॥२२
कृतघ्नः कृमिकः कीटः पतङ्गो वृश्चिकस्तथा।
अशस्त्रं पुरुषं हर्त्ता नरः सञ्जायते खरः॥२३
कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहन्ता च जायते।
भोजनञ्चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः॥२४
हृत्वान्नञ्चैव मार्जारस्तिलहृच्चैव मूषिकः।
घृतं हृत्वा च नकुलः काको मद्गुरमामिषम्॥२५
मधु हृत्वा नरो दंशः पूपं हृत्वा पिपीलिकः।
अपो हृत्वा तु पापात्मा वायसः सम्प्रजायते॥२६
हृते काष्ठे च हारीतः कपोतो वा प्रजायते।
हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते॥२७
कार्पासिके हृते क्रौञ्चो वह्निहर्त्ता बकस्तथा।
मयूरो वर्णकं हृत्वा शाकपत्रञ्च जायते॥२८

जो कोई शूद्र वर्ण का हो और किसी ब्राह्मणी के साथ गमन करता है तो इस पाप का फल भोगने के लिये वह किसी की योनि में जन्म लिया करता है। उस योनि सन्तति का उत्पादन कर फिर काष्ठ के अन्दर रहने वाला कीट (कीड़ा) हुआ करता है॥२२॥ जो कोई कृतघ्न अर्थात् किये हुए उपकार को मटियामेट कर देता है वह कृमि, कीट-पतङ्ग और विच्छू की योनि प्राप्त किया करता है। जो बिना अस्त्र वाले पुरुष का हनन किया करता है वह खर (गधे) की योनि में जन्म धारण करता है॥२३॥ स्त्री के वध को करने वाला, बालक का हनन करने वाला भी कृमि की योनि प्राप्त किया करता है। जो कोई भोजन

की चोरी करता है वह मक्षिका (मक्खी) की योनि में उत्पन्न होता है ॥२४॥ अन्न का हरण करने वाला मार्जार (बिलाव) और तिलों का हर्त्ता मूषिक होता है। घृत की चोरी करने वाला नकुल (न्योला) तथा मुद्ग और आमिष का चोर काक (कौआ) हुआ करता है ॥२५॥ मधु (शहद) का हरण करने वाला दंश और पूप (पूआ) का हर्त्ता पिपीलक (चीटा) होता है। जल का हर्त्ता बड़ा पापी होता है और वह वायस (कौआ) होकर जन्म ग्रहण किया करता है। ॥२६॥ काष्ठ की चोरी से हारीत (एक पक्षी का नाम) अथवा कपोत (कबूतर) होता है। जो कोई सुवर्ण के पात्र की चोरी करता है वह कृमि की योनि में उत्पन्न होता है ॥२७॥ कार्पासिक अर्थात् कपास की वस्तु हरण करने से क्रौञ्च और वह्नि के हरण से वक (बगुला)—वर्णक के हरण से मयूरी तथा शाक पत्र ' हरण से भी मोरनी होता है ॥२८॥

जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्रपहृन्नरः ।
छुछुन्दरिः शुभान्गन्धान् शश हृत्वा शशो भवेद् ॥२६
षण्ढ कलापहरणे काष्ठहृत्तृणकीटक ।
पुष्पं हृत्वा दरिद्रस्तु पंगुर्यानकहृन्नर ॥३०
शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः ।
गृहहृन्नरकान्गत्वा रौरवादीन्सुदारुणान् ॥३१
तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्हा च तरुणा व्रजेत् ।
एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णादिहारिणाम् ॥३२
विद्यापहारी मूकश्च गत्वा च नरकान्बहून् ।
असमिद्धे हुते चाग्नौ मन्दाग्नि समजायत ॥३३
परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्म्मादिघातनम् ।
नैष्ठुर्य्यं नैर्घृण्यत्वञ्च परदारोपसेविनाम् ॥३४
परस्वहरणाशौच देवतानाञ्च कुत्सनम् ।
निकृत्य वञ्चन नृणां कार्पण्यञ्च नृणां नरः ।
उपलक्षणादि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु ॥३५

दया भूतेषु संवाद परलोकं प्रतिक्रिया।
सत्य हितार्थमुक्तिश्च वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥३६
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिसेवन साधुसंयमः।
सत्क्रियाद्यसन मैत्री स्वर्गस्य लक्षरण विदुः।
अष्टाङ्गयोगविज्ञानात्प्राप्नोत्यात्यन्तिक फलम् ॥३७

रक्त वस्तु का व्युपहर्त्ता नर जीता हुआ जीवकला को प्राप्त होता है। शुभ गन्ध युक्त पदार्थों का अपहरण करने से छछुंदर होता है और शश के हरण से शश ही होता है ॥२६॥ कला के अपहरण से मनुष्य पण्ड होता है तथा काष्ठ के हरण से तृण का कीट हुआ करता है। जो पुष्पों की चोरी करता है या हरण करता है वह मनुष्य दरिद्री होता है। यावक का हरण करने वाला पँगला होता है ॥३०॥ शाक के हरण करने वाला हारीत और तोय (जल) के हरण करने वाला चातक पक्षी होता है। जो किसी के गृह का हरण करता है वह रौरव आदि महान् दारुण नरकों में जाकर घोर यातना भोगता है। तृण, गुल्म, लता, वल्ली के त्वक् का हर्त्ता या हनन करने वाला मानव जड वृक्ष की योनि को प्राप्त होता है। यही गो और स्वर्ण आदि को हरण करने वालों को देखा गया है ॥३१।३२॥ विद्या का अपहरण करने वाला मूक (गूँगा) होता है जो पहिले बहुत से नरकों की यातनाऐं भोग लेता है। असमिद्ध अर्थात् बिना समिधाओं वाली अग्नि में हवन करने पर मन्दाग्नि का रोग उत्पन्न हो जाता है ॥३३॥ जो पराई स्त्रियों का सेवन करने वाले मनुष्य हैं—जो पराई निन्दा किया करते हैं—जो कृतघ्न होते हैं और जो पराई मर्यादा के घात करने वाले है—जो निष्ठुरता रखते हैं और जिनमें विघृणत्व होता है—जो पराये धन के हरण करने से अपवित्र हैं—जो देवताओं की बुराई किया करते हैं। निकृत्तन करके मनुष्यों का जो वञ्चन किया करते हैं तथा जिन मनुष्यों में कृपणता होती है इन सबको इस बात का उपलक्षण समझ लेना चाहिये कि पापों का फल भोगने के लिए ऐसे ये लोग पहिले नरकों की यातनाऐ भोगकर फिर शेष रहे पाप फल को भोगने के लिये बाद में यहाँ लोक में उत्पन्न हुए हैं ॥३४।३५॥ प्राणियों पर दया, सम्वाद, परलोक के लिए प्रतिक्रिया का करना, सत्य भाषण

उथा सत्य व्यवहार, हित के सम्पादन करने वाली उक्ति, वेदों के प्रामाण्य का दर्शन, गुरु, देव, ऋषि, सिद्धों का सेवन, साधु संयम, सत्क्रिया अर्थात् अच्छे कर्मों के करने का व्यसन, मित्र भावना, ये सब स्वर्ग के उपलक्षण हैं अर्थात् इनसे यह समझ लेना चाहिए कि ऐसे प्राणी स्वर्ग के सुख की अवधि समाप्त करके ही यहाँ शेष सुख भोगने को और पर जन्म के लिये सत्कर्म करने को उत्पन्न हुए हैं। आठ अङ्गों वाले योग के विशेष ज्ञान होने से आत्यन्तिक फल मनुष्य प्राप्त करता है ॥३६।३७॥

१२०—अष्टाङ्ग योग कथन

वक्ष्ये साङ्गं महायोगं भुक्तिमुक्तिकरं परम् ।
सर्वपापप्रशमनं भक्त्यानुपठितं शृणु ॥१
ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति निवर्त्तते ।
दत्तात्रेयो ह्यलर्काय इममाह महामतिः ॥२
अहमित्यङ्कुरोत्पन्नो ममेति स्कन्धवान्महान् ।
गृहक्षेत्राश्च शाखाश्च यत्र दाराभिपल्लवः ॥३
धनधान्ये महापात्रे पापमूलोऽतिदुर्गमः ।
विधिवत्सुखदान्त्यर्थी जातो ज्ञानमहातरुः ॥४
छिन्नो विद्याकुठारेण ते गता लयमीश्वरे ।
प्राप्य ब्रह्मरस पीत नीरजस्कमकण्टकम् ॥५
प्राप्नुवन्ति परा प्राशा सुखनिर्वृतिमेव च ।
मूर्त्तेन्द्रियलय नून न त्वं राजन् न चाप्यहम् ॥६
न तन्मात्रादिकं वाचा नैवान्तःकरण तथा ।
क वा पश्यामि राजेन्द्र प्रधानमिदमावयोः ॥७

सूतजी ने कहा—अब मैं अङ्गों के सहित महायोग को बतलाता हूँ जो कि परम भुक्ति और मुक्ति—इन दोनों का देने वाला है। यह समस्त पापों को शान्त करने वाला होता है। इसे मैं अनुपठित करता हूँ तुम भक्ति के साथ इसका श्रवण करो ॥१॥ मम अर्थात् यह मेरा है—यही सम्पूर्ण दुःखों का मूल

है। मेरा कुछ नहीं है—यही भाव निवृत्ति का मूल होता है। महान् मति वाले धीमान् दत्तात्रेय ने अलर्क के लिए इसी को बतलाया था ।२।। अहम् (मैं) इस अङ्कुर से यह आरम्भ में उत्पन्न एक वृक्ष जैसा ही है। अहं के अङ्कुर से उत्पन्न वृक्ष का 'मम' अर्थात् मेरा यह स्कन्ध अर्थात् तना होता है। गृह और क्षेत्र आदि इसकी शाखाएँ हैं और दारा आदि इस वृक्ष के पत्ते हैं ।।३।। धन और धान्य रूपी महान् पात्र में यह पाप मूल अर्थात् जिसकी जड़ पाप ही होता है, अत्यन्त दुर्गम होता है। विधि पूर्वक सुख और शान्ति के लिये यही ज्ञान का एक महान् वृक्ष भी उत्पन्न हो गया है ।।४।। वह पाप मूल महा वृक्ष विद्या रूपी कुठार से छिन्न हो जाता है फिर वे मनुष्य रजोगुण से रहित अकारक पीत ब्रह्मरस को प्राप्त करके ईश्वर में लय को प्राप्त हो गये हैं ।।५।। परम प्राज्ञ जो पुरुष हैं वे सुख निवृत्ति को (परमानन्दमय सुख) प्राप्त किया करते हैं। हे राजन् मूर्त इन्द्रियों के लय को न तो प्राप्त हो सकते और न मैं भी उसे पा सकता हूँ ।।६।। वाणी से तन्मात्रादिक और अन्त करण का लय नहीं है। हे राजेन्द्र ! अथवा किसको देखते हो। हम दोनों में यह प्रधान है ।।७।।

मूत परेऽह्नि क्षेत्रज्ञ मजातोऽय गुणात्मक ।
एकत्वेऽपि पृथग्भावस्तथा क्षेत्रात्मनो नृप ।।८
ज्ञानपूर्ववियोगोऽसौ ज्ञाने नष्टे च योगिन ।
सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्य पुन त गुणै ।।९
तद्गृह यत्र वसति तद्भोज्य येन जीवति ।
यन्मुक्तये तदेवोक्त ज्ञानाज्ञानेन चान्यथा ।।१०
भरभागेन पुण्यानामपुण्यानाञ्च पार्थिव ।
पर्संख्यानाञ्च नित्यानां क्षय स्वकरणात्तथा ।।११
अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
यमा पञ्चाथ नियमा शौच द्विविधमीरितम् ।।१२
सन्तोषस्तपसा शान्तिर्वासुदेवार्चन दम ।
आसन पद्मकाद्युक्त प्राणायामो मरुज्जय ।।१३
प्रत्यक्ष त्रिविध सोऽपि पूरकुम्भकरेचकं ।
लघुर्यो दशमात्रस्तु द्विगुण स तु मध्यम ।।१४

मृत दूसरे दिन में यह क्षेत्रज्ञ गुणात्मक हो गया। हे नृप! एकत्व होने पर भी क्षेत्रात्मा का पृथग्भाव होता है ॥८॥ यह वियोग ज्ञान पूर्वक होता है। ज्ञान नष्ट हो जाने पर योगी की वही मुक्ति होती है। हे पुन! गुणों के द्वारा तेरा ब्रह्म के साथ ऐक्य और अनैक्य होता है ॥९॥ वही गृह है जहाँ पर वास करता है और वही भोज्य है जिसके द्वारा जीवित रहता है। मुक्ति के लिये वही कहा गया है जो ज्ञानाज्ञान से अन्यथा है। १०॥ हे पार्थिव! भव (संसार) के भोग से पुण्यों और अपुण्यों का तथा कर्त्तव्यों का जो नित्य है न करने से क्षय होता है ॥११॥ अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (दान न लेना या संग्रह न करना) ये पाँच नियम हैं। शौच (शुद्धि) दो प्रकार की होती है ॥१२॥ सन्तोष—तप के द्वारा शान्ति—भगवान् वासुदेव का अर्चन ये दम कहे जाते हैं। पद्मक आदि आसन बताये गये हैं और वायु का जय प्राप्त करना ही प्राणायाम है ॥१३॥ प्रत्येक प्राणायाम पूरक—कुम्भक और रेचक के भेद से तीन प्रकार का होता है। जो प्राणायाम लघु होता है वह दश मात्रा वाला होता है। इससे जो दुगुना होता है वह मध्यम है ॥१४॥

त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तम स उदाहृतः।
जपध्यानयुतो गर्भो विपरीतत्वभक्षकः। १५
प्रथमे जनयेत्स्वप्न मध्यमेन च वेपथुः।
विपाक हि तृतीयेन जाता दोषास्त्वनुक्रमात् ॥१६
आसनस्थ तु युञ्जीत कृत्वा च प्रणव हृदि।
पार्ष्णिभ्या लिङ्गवृषणौ स्पर्शन्नेकाग्रमानस ॥१७
रजसा तमसो वृत्ति सत्त्वेन रजसस्तया।
निरुध्य निश्चलो वृत्ति स्थितो युञ्जीत योगवित् ॥१८
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य प्राणादीन्मन एव च।
निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमात् ॥१९
प्राणायामा दशाष्टौ च धारणा सा विधीयते।
द्वे धारणे स्मृतो योगो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥२०

प्राङ्नाड्या हृदये चात्र तृतीया च तथोरसि ।
कण्ठे मुखे नासिकाग्रे नेत्रे भ्रूमध्यमूर्धसु ॥२१
किञ्चित्तस्मात्परस्मिंश्च धारणा दशधा स्मृता ।
दशैता धारणा प्राप्य प्राप्नोत्यक्षररूपताम् ॥२२

जिनमें लघु से तिगुनी मात्राएँ होती हैं वह उत्तम प्राणायाम कहा गया है। इस प्राणायाम के गर्भ अर्थात् मध्य में जप तथा ध्यान होना चाहिए, इस प्रकार से जप एवं ध्यान युक्त गर्भ वाला प्राणायाम विपरीतत्व के भक्षण करने वाला होता है ॥१५॥ प्रथम प्राणायाम मे स्वच्न का जनन होता है मध्यम प्राणायाम के द्वारा वेपथु अर्थात् कम्प होता है। तथा तृतीय प्राणायाम से विपाक होता है। इस अनुक्रम से ये दोष हुआ करते हैं ॥१६॥ हृदय मे प्रणव का ध्यान करके आसन पर स्थित होकर योग करना चाहिए। दोनों पाणियो से जननेन्द्रिय एवं वृषणो का स्पर्श करते हुए आसन पर अपनी स्थिति करनी चाहिए और मन को पूर्णतया एकाग्र कर लेवे ॥१७॥ रजोगुण के द्वारा तमोगुण की वृत्ति को और सत्त्व गुण के द्वारा तमोगुण को निरुद्ध करके अपनी वृत्ति को पूर्णतया निश्चल करके योग के वेत्ता पुरुष को अपनी स्थिति बना कर ही योग साधन करना चाहिये ॥१८॥ अपनी समस्त इन्द्रियो को उन इन्द्रियो के विषयो से—प्राणादि को एवं मन को पूर्णतया निगृहीन करके समवाय के द्वारा प्रत्याहार क्रम से करना चाहिए ॥१६॥ इस तरह से अठारह प्राणायाम जब किये जाते हैं तो वह धारणा विहित होती है अर्थात् उसे ही धारणा कहा जाता है। तत्त्व के जानने वाले योगियो के द्वारा इस प्रकार से दो धारणाओं को ही योग कहा गया है ॥२०॥ पहिले नाडी में फिर हृदय में और तीसरी उर स्थल मे—कण्ठ मे—मुख मे—नासिका के अग्र भाग मे—नेत्र मे—भ्रू मध्य और मूर्धा मे कुछ उससे परे म इस प्रकार से धारणा दश प्रकार की बनाई गई हैं। इन दश धारणाओं को प्राप्त करके योगाभ्यास करने वाला अक्षर रूपता को प्राप्त होता है ॥२१।२२॥

यथाग्निरग्नौ सक्षिप्तस्तथात्मा परमात्मनि ।
ब्रह्मरूप महापुण्यमामित्येकाक्षर जपेत् ॥२३

अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम् ।
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम् ॥२४
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्थूलदेहविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जरामरणवर्जितम् ॥२५
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पृथिव्या मलवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाय्वाकाशविवर्जितम् ॥२६
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सूक्ष्मदेहविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्थानास्थानविवर्जितम् ॥२७
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्गन्धमात्रविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः श्रोत्रत्वक्परिवर्जितम् ॥२८

जिस तरह से अग्नि अग्नि में संक्षिप्त होता है वैसे ही आत्मा परमात्मा में संक्षिप्त होता है। इस प्रकार से महान् पुण्यमय ब्रह्म रूप "ओम्"—इस एक अक्षर का जाप करना चाहिए ॥२३॥ इस 'ओम्' में अकार, उकार और मकार ये तीन अक्षर होते हैं। इन तीनों अक्षरों से मिलकर 'ओम्'—इस एक अक्षर की रचना होती है जो ब्रह्म स्वरूप परम ओङ्कार संज्ञा वाला होता है ॥२४॥ मैं ब्रह्म स्वरूप परं ज्योति हूँ और इस स्थूल देह से विशेष रूप से वर्जित हूँ। मैं परब्रह्म ज्योति स्वरूप जरा (वृद्धता) और मरण से रहित हूँ ॥२५॥ मैं ज्योति रूप परब्रह्म पृथिवी के मल से वर्जित हूँ तथा वायु, आकाश आदि से भी रहित हूँ ॥२६॥ मैं ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म सूक्ष्म देह से भी रहित और स्थानास्थान से वर्जित हूँ। मैं ज्योति रूप परब्रह्म गन्ध मात्र से वर्जित तथा श्रोत्र एवं त्वचा से वर्जित हूँ ॥२७।२८॥

अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जिह्वाघ्राणविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राणापानविवर्जितम् ॥२९
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्व्यानोदानविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरज्ञानपरिवर्जितम् ॥३०
अहं ब्रह्म परं ज्योतिस्तुरीयं परमं पदम् ।
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ॥३१

नित्यशुद्धबुद्धयुक्तमहमानन्दमद्वयम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ज्ञानरूपो विमुक्तये ॥३२
इत्यष्टाङ्गो मया योग उक्तः शौनक मुक्तिदः ।
नित्यनैमित्तिकं प्राप्त्वा लयं प्राकृतबन्धना. ॥३३
उत्पद्यन्ते हि संसारे नैकं प्राप्त्वा परात्मनाम् ।
विमुच्यते विमुक्तश्च ज्ञानादज्ञानमोहित. ॥३४
ततो न म्रियते दुःखी न रोगी न च बन्धवान् ।
न पापैर्युज्यते योगी नरके न विपच्यते ॥३५

मैं परब्रह्म ज्योति स्वरूप जिह्वा और प्राण से रहित तथा प्राण एवं अपान से भी वर्जित हूँ ॥२९॥ मैं ब्रह्म हूँ और ज्योति स्वरूप वाला हूँ तथा व्यान–उदान एवं अज्ञान से परिवर्जित हूँ ॥३०॥ उस समय में ऐसा ही ध्यान करना चाहिए कि मैं नित्य शुद्ध एवं बुद्ध तथा अद्वय आनन्द स्वरूप हूँ और मैं ज्योति रूप परब्रह्म ज्ञान के स्वरूप वाला हूँ जो विमुक्ति के योग्य पात्र हूँ । मैं परब्रह्म ज्योति के रूप वाला देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहङ्कार से वर्जित हूँ और परम पद को प्राप्त होने वाला हूँ ॥३१।३२॥ सूतजी ने कहा— यम, नियम, ध्यान, धारणा आदि आठ अङ्गों वाला यह योग हे शौनक ! मैंने तुम्हारे सामने भली भाँति वर्णन कर दिया है, यह मुक्ति के प्रदान करने वाला है । प्राकृत बन्धन नित्य तथा नैमित्तिक लय को प्राप्त कर संसार में उत्पन्न होते हैं । एक परमात्मा को प्राप्त करके यह अज्ञान से मोहित जीवात्मा ज्ञान से अज्ञान–विमुक्त होकर विमुक्ति प्राप्त किया करता है ॥३३।३४॥ अतएव योगी न मरता है, न दुःखित होता है, न रोगयुक्त होता है तथा न बान्धवों को पापों से युक्त किया करता है और न नरक में ही विपच्यमान होता है ॥३५

गर्भवासे स नो दुःखी स स्यान्नारायणोऽव्ययः ।
भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो भगवान्भुक्तिमुक्तिदः ॥३६
ध्यानेन पूजया जप्यैः सम्यक्स्तोत्रैर्यतव्रतैः ।
यज्ञैर्दानैश्चित्तशुद्धिस्तया ज्ञानञ्च लभ्यते ॥३७

प्रणवादिकमन्त्रैश्च जप्यैर्मुक्तिं गता द्विजाः ।
इन्द्रोऽपि परमं स्थानं गन्धर्वाप्सरसो वराः ॥३८
प्राप्ता देवाश्च देवत्वं मुनित्वं मुनयो गताः ।
गन्धर्वत्वञ्च गन्धर्वा राजत्वञ्च नृपादयः ॥३९

योगी पुरुष कभी अपनी माता के गर्भवास में दुःख नहीं भोगता है। उसे तो अव्यय भगवान् नारायण प्राप्त हो जाते हैं जो कि अनन्य भक्ति के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले हैं। ॥३६॥ ध्यान के द्वारा, पूजा से, जाप, स्तोत्र, पाठ, यतव्रत, यज्ञ, दान इनके द्वारा चित्त की शुद्धि होती है और भक्ति के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। ॥३७॥ द्विजगण प्रणव आदि के मन्त्र जपों के द्वारा मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। इन्द्र ने भी परम पद प्राप्त किया है तथा परम श्रेष्ठ गन्धर्व एवं अप्सरायें प्राप्त की हैं। देवगण ने इसी के बल से देवत्व की प्राप्ति की है एवं मुनियों ने मुनित्व को, गन्धर्वों ने गन्धर्वत्व तथा नृपगण ने राजत्व को प्राप्त किया है ॥३८।३९॥

१२१—विष्णु भक्ति कीर्तन

विष्णुभक्तिं प्रवक्ष्यामि यया सर्वमवाप्यते ।
यथा भक्त्या हरिस्तुष्येत्तथा नान्येन केनचित् ॥१
महतः श्रेयसो मूलं प्रसवः पुण्यसन्ततेः ।
जीवितस्य फलं स्वादु नियतिस्मरणं हरेः ॥२
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिसाधनभूयसी ।
ते भक्ता लोकनाथस्य नामकर्मादिकीर्त्तने ॥३
मुञ्चन्त्यश्रूणि सहर्षाद्ये प्रहृष्टतनूरुहाः ।
जगद्धातुर्महेशस्य ज्ञानद चरणद्वयम् ॥४
इह नित्यक्रिया कुर्युः स्निग्धा ये वैष्णवास्तु ते ।
यद्भाक्षर न शृण्वन्ति तथा भगवतेरितम् ॥५
प्रणामपूर्वकं भक्तया यो वदेद्वैष्णवो हि सः ।
तद्भक्तजनवात्सल्यं पूजयंश्चानुमोदनम् ॥६

तत्कथाश्रवणे प्रीतिः श्रवणं सफलं भवेत् ।
येन सर्वात्मना विष्णौ भक्त्या भावो निवेशितः ॥७
विश्वेश्वरकृताद्विप्रान्महाभागवतो हि सः ।
स्वयमभ्यर्चनञ्चैव यो विष्णुञ्चोपजीवति ॥८

श्री सूतजी ने कहा—अब हम भगवान् विष्णु की भक्ति के विषय में वर्णन करते हैं जिसके द्वारा सभी कुछ प्राप्त किया जाया करता है। भगवान् हरि जितने भक्ति के द्वारा सन्तुष्ट हुआ करते हैं वैसे अन्य किसी से भी सन्तुष्ट एवं प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ १ ॥ निरन्तर नियत रूप श्री हरि का स्मरण करना महान् श्रेय का मूल—पुण्य सन्तति का प्रसव और जीवन का स्वाद युक्त फल होता है ॥ २ ॥ अतएव शुभ पुरुषों के द्वारा भक्ति के साधनों से सम्पन्न सेवा बतलाई गई है। वे भक्त लोग समस्त लोकों के स्वामी भगवान् के नाम तथा कर्मों के कीर्तन में अपने आँसुओं का आवावेश में मग्न होकर त्याग किया करते हैं। गुणगान करने में तथा नाम—संकीर्तन में भगवान् के भक्तों का बहुत अधिक हर्षोद्गम होता है और उसमें उस समय उनका शरीर पुलका- मान हो जाया करता है। जगती तल के धाता महेश के दोनों चरण ज्ञान के प्रदान करने वाले हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ जो परम स्निग्ध विष्णु के भक्त हैं वे ब्रह्मा क्षर का श्रवण न करते हुए यहाँ इसी प्रकार से नित्य क्रिया करते हैं जैसा कि भगवान् के द्वारा कहा गया है ॥ ५ ॥ जो प्रणाम पूर्वक बोलता है वही विष्णु का भक्त वैष्णव है। जो इस तरह से पूजन किया करता है उनका भगवान् अनुमोदन करते हैं और उन भक्तों पर भगवान् का परम वात्सल्य होता है ॥ ६ ॥ भगवत्कथा के श्रवण करने में जो पूर्णतया प्रीति होती है तो वह श्रवण करना सफल हुआ करता है। तात्पर्य यह है कि प्रेम के बिना भगवत्कथा के केवल सुन लेने मात्र से वह फल नहीं मिलता है जोकि वास्तव में उससे मिलना चाहिए। जिसने सर्वात्म स्वरूप से भक्ति-भाव पूर्वक भगवान् विष्णु में अपना भाव निवेशित कर दिया है वह विश्वेश्वर कृत विप्र से महा- भागवत् होता है जो स्वयं अभ्यर्चन करके विष्णु को उपजीवित किया करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छोऽपि वर्त्तते ।
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स याति परमां गतिम् ॥६
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः ।
पुनाति भगवद्भक्तश्चण्डालोऽपि यद्दृच्छया ॥१०
दयां कुरु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत् ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतद् व्रतं हरेः ॥११
मन्त्रयाजिसहस्रेभ्य सर्ववेदान्तपारगः ।
सर्ववेदान्तवित्कोटचा विष्णुभक्तो विशिष्यते ॥१२
एकान्तिनः स्ववपुषा गच्छन्ति परमं पदम् ।
एकान्तेन समो विष्णुस्तस्मादेषां परायणः ॥१३
यस्मादेकान्तिनः प्रोक्तास्तद्भागवतचेतसः ।
प्रियाणामपि सर्वेषां देवदेवस्य सुप्रियः ॥१४

यह भगवान् की भक्ति आठ प्रकार की हुआ करती है जिसमें म्लेच्छ भी भाग लिया करता है अर्थात् भक्ति करने का नीच से नीच का भी पूर्ण अधिकार है। भक्ति करने वाला म्लेच्छ भी विप्रों का शिरोमणि—मुनि और श्रीमान् है तथा वह परम गति को प्राप्त किया करता है ॥ ६ ॥ उसको जो भी कुछ दिया जाता है वह ग्राह्य होता है अथवा उससे भी ग्रहण करने के योग्य सभी कुछ हुआ करता है। चाहे वह चाण्डाल क्यों न हो यदि भगवान् का भक्त है तो वह यह इच्छा से पवित्र कर दिया करता है क्योंकि उसमे भगवान् की भक्ति की विशेषता होती है ॥१०॥ जो भगवत्प्रपन्न है उस पर दया करो। जो 'मैं तेरा ही हूँ'—ऐसा बोलता है उन समस्त प्राणियों को भगवान् अभय प्रदान किया करते हैं—ऐसा हरि का व्रत है ॥ ११ ॥ सहस्रों मन्त्रों द्वारा यजन करने वालों से और जो सम्पूर्ण वेदान्त के पारगामी विद्वान् हैं उनमें तथा समस्त वेदान्त के ज्ञाता से विष्णु भक्त करोड़ गुना विशिष्ट होता है ॥ १२ ॥ जो एकान्त में रहते हैं वे अपने ही शरीर से परम पद जाया करते हैं। एकान्त के समान विष्णु होते हैं इसलिये एकान्त निवास में परायण होना चाहिए ॥ १३ ॥ जो एकान्त में रहने वाले हैं वे भगवान् में चित्त को

सलग्न रखने वाले हुआ करते हैं। वे लोग जो नितान्त एकान्त निवास कर भगवद्भजन—स्मरण और नाम—सङ्कीर्तन किया करते हैं वे सभी के प्रिय होकर भी देवों के देव भगवान् विष्णु के तो अत्यन्त ही सुप्रिय हुआ करते हैं ॥ १४ ॥

आपत्स्वपि सदा यस्य भक्तिरव्यभिचारिणी ।
या प्रीतिरधिका विष्णौ विषयेष्वनपायिनी ॥१५
विष्णुं सस्मरत. सा मे हृदयान्नोपसर्पति ।
दृढभक्तोऽपि वेदादिसर्वशास्त्रार्थपारग. ॥१६
यो न सर्वेश्वरे भक्तस्त विद्यात् पुरुषाधमम् ।
नाधीतवेदशास्त्रोऽपि न कृतोऽध्वरसम्भवः ।
यो भक्ति वहते विष्णौ तेन सर्वं कृत भवेद् ॥१७
यज्वन क्रतुमुख्याना वेदाना पारगा अपि ।
न ता यान्ति गति भक्ता या यान्ति मुनिसत्तमाः ॥ १८
यः कश्चिद् वैष्णवो लोके मिथ्याचारोऽप्यनाश्रमी ।
पुनाति सकलान् लोकान् सहस्रांशुरिवोदित ॥१९
ये नृशंसा दुरात्मान पापाचाररतास्तथा ।
तेऽपि यान्ति पर स्थान नारायणपरायणाः ॥२०
दृढा जनार्दने भक्तिर्यदैवाव्यभिचारिणी ।
तदा कियत् स्वर्गसुख सैव निर्वाण हेतुकी ॥२१

जिस मनुष्य की सदा आपत्ति के समयो मे भी अव्यभिचारिणी भगवान् मे भक्ति हुआ करती है और जो प्रीति भगवान् विष्णु में अधिक होती है वह विषयो मे अनपायिनी होती है। जो भगवान् को छोडकर कभी अन्यत्र चित्त की वृत्ति नही जाती है वही अव्यभिचारिणी भक्ति कहलाती है। जिसकी प्रीति विष्णु के चरणो मे होती है उसका मन कभी भी विषयो मे जाया ही नहीं करता है। विष्णु का सस्मरण करने वाले की वह मेरी भक्ति ऐसी ही होती है कि कभी भी हृदय मे अन्यत्र कहीं भी नही जाया करती है। जो भगवान् विष्णु का परम दृढ भक्त होना है वह भी वेद आदि समस्त शास्त्रो के अर्थों का पार

गामी हुआ करता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो पुरुष भगवान् सर्वेश्वर मे भक्ति नही रखने वाला है उसको मनुष्यो म सबसे अधम ही समझना चाहिए। ऐसा पुरुष भले ही वेदशास्त्र आदि सब कुछ पढा हुआ भी क्यो न हो किन्तु उसे कुछ भी वेदादि क पढन वाला नही समझना चाहिए। ऐसा पुरुष अध्वरादि करने पर भी यज्ञादि क नही करने वाले के ही तुल्य होता है। जिसने भगवान् विष्णु म भक्ति की है उसने सभी कुछ वेदादि का अध्ययन और यज्ञादि का यजन पूरा कर लिया है—यही समझना चाहिए ॥ १७ ॥ प्रमुख ऋतुओ के करन वाल और वेदो के पारगामी पुरुष भी उस उत्तम गति की प्राप्ति नही किया करत हैं जिस परमोत्तम गति को भक्त मुनिगण प्राप्त किया करत हैं ॥ १८ ॥ जो कोई वैष्णव अर्थात् भगवान् विष्णु का भक्त लोक में होता है वह चाहे मिथ्याचारी भी हो और किसी भी उचित आश्रम मे रहने वाला न हो तो भी वह विष्णु का भक्त उदित होने वाले सूर्य की भाँति समस्त लोको को पवित्र किया करता है ॥ १६ ॥ जो परम नृशंस (क्रूर) दुष्ट आत्मा वाले तथा पापो के आचरण करने वाले हो और नारायण म परायण रहन वाल हो तो वे भी नारायण की भक्ति भाव के प्रभाव के कारण परम पद को प्राप्त किया करत हैं ॥ २० ॥ जब भगवान् जनादन में सुदृढ भक्ति होती है तो वही भक्ति अव्यभिचारिणी भक्ति कही जाती है। जब ऐसी भगवान् विष्णु मे दृढ भक्ति हो जाती है तो उसके लिए स्वर्ग का सुख क्या वस्तु है और कितना महत्व रखन वाला है? अर्थात् कुछ भी नहीं है। विष्णु की अव्यभिचरित न होने वाली एक मात्र भक्ति ही निर्वाण (मोक्ष) पद का प्रदान करन वाली होती है ॥२१॥

भ्राम्यता तत्र समारे नराणा कमदुर्गमे।
हस्तावलम्बने ह्येको दृष्टस्तुष्टो जनादन ॥२
न शृणोति गुणान् दिव्यान् देवदेवस्य चक्रि
स नरो बधिरो ज्ञेया सर्वधर्मबहिष्कृत ॥२३
नाम्नि सकीर्तित विष्णोर्यस्य पुसो न जा
शरीर पुलकाद्भासि तदभवन्नुणपोपमम् ॥

यस्मिन् भक्तिर्द्विजश्रेष्ठ मुक्तिरप्यचिराद्भवेत् ।
निविष्टमनसां पुंसां सर्वथा वृजिनक्षयम् ॥२५
स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥२६
अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥२७
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं स गच्छति ।
विप्रेन्द्र प्रतिजानीहि विष्णुभक्तो न नश्यति ॥२८

मनुष्यों के कर्मों के दुर्गम इस संसार में भ्रमण करने वाले पुरुषों को हाथ का अवलम्बन देने में एक परम प्रसन्न होने वाले भगवान् जनार्दन प्रभु जब कृपा करते हैं तो अपने हाथ का अवलम्ब प्रदान करके कर्मों के इस गहन संसार से भी उद्धार कर दिया करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा नहीं होता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य देवों के देव भगवान् विष्णु के दिव्य गुणों का श्रवण नहीं करता है उस मनुष्य को समस्त धर्मों से बहिष्कृत होने वाला बधिर ही जानना चाहिए ॥ २३ ॥ भगवान् विष्णु के शुभ नामों के सङ्कीर्तन होने पर जिस पुरुष का शरीर रोमाञ्चित नहीं होता है वही कुणप के समान होता है ॥ २४ ॥ हे द्विजो में श्रेष्ठ ! जिस मनुष्य में विष्णु की सुदृढ़ भक्ति होती है उसकी मुक्ति भी तुरन्त ही हो जाती है। भगवान् में निविष्ट मन रखने वाले पुरुषों के सर्वथा पापों का क्षय हो जाया करता है ॥ २५ ॥ कर्मों के दण्ड की व्यवस्था करने वाले यमराज जिस समय अपने दूतों को पाश हाथों में लेकर जीवात्माओं के लाने के लिये प्रस्तुत होते हुए देखते हैं उस समय में वह यमराज उन अपने दूतों के कान में चुपके से कहा करते हैं कि देखो, तुम इस बात को अच्छी तरह समझ लेना मैं अन्य सभी मनुष्यों को दण्ड देने का स्वामी हूँ किन्तु जो वैष्णव लोग हैं उन पर मेरा कुछ भी प्रभुत्व नहीं है अतएव तुम लोग उनको बिल्कुल ही छोड़ देना जो भगवान् मधुसूदन की प्रपत्ति प्राप्त कर चुके हो अर्थात् वैष्णव बन गये हों। तुम विष्णु-भक्तों को बिल्कुल भी मत छेड़ना ॥ २६ ॥ वह दुराचरण करने वाला भी है और

ारा फिर अनन्य भक्त बन कर भजन करने लगा है तो उसे भी दुष्ट, दुराचारी । समझ कर पूर्ण साधु ही मानना चाहिए क्योंकि भले ही मेरी भक्ति करने ह पूर्व उसने चाहे जितना दुराचरण किया हो किन्तु ज्योंही उसने मेरे भजन ा अनन्य भाव से समाश्रय ग्रहण किया है वैसे ही यह भली भाँति व्यवसित हो गया है अर्थात् आगे भविष्य मे कोई भी बुरा आचरण न करने का निश्चय कर लिया है ।। २७ ।। भगवान् ने अर्जुन से कहा था कि मेरी अनन्य भाव से भक्ति करने वाला पुरुष शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाया करता है और उसका यह फल होता है कि उसे शाश्वत (सर्वदा रहने वाली) शान्ति प्राप्त हुआ करती है। हे विप्रेन्द्र! भगवान् ने अर्जुन से कहा था कि यह प्रतिज्ञा है कि विष्णु का भक्त कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता है ।।२८।।

धर्मार्थकामः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा हरौ ।।२९
दैवी ह्येषा गुणमयी हरेर्माया दुरत्यया ।
तमेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।३०
किं यज्ञाराधने पुंसां सिध्यते हरिमेधसः ।
भक्त्यैवाराध्यते विष्णुर्नान्यत्तत्रापि कारणम् ।।३१
न दानैर्विविधैर्दत्तैः पुष्पैर्नैवानुलेपनैः ।
तोषमेति महात्मासौ यथा भक्त्या जनार्दनः ।।३२
संसारविषवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
कदाचित्केशवे भक्तिस्तद्भक्तैर्वा समागमः ।।३३
पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वकष्टलभ्येषु सदैव सत्सु ।
भक्तयैकलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यै कलाभे क्रियते प्रयत्नः ।।३४
आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः ।
वैष्णवो मत्कुले जातः स नः सन्तारयिष्यति ।।३५

अर्थ—अर्थ और काम के प्राप्त कर लेना उसके लिये क्या बड़ी बात है? उसके हाथ में तो मुक्ति भी स्थित हो रहा करती है। जिसके हृदय में भगवान् हरि में स्थिर रहने वाली भक्ति होती है जो कि इन समस्त जगतों का

प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी बन जाया करता है ॥ २९ ॥ माया गुणमयी अर्थात् त्रिगुणात्मिका है और बहुत ही दुरत्यय इसको जान लेना और त्याग देना बहुत ही कठिन है। जो लोग उन्हीं भगवान् हरि की शरण ग्रहण किया करते हैं वे ही इस दैवी माया से तर जाया करते हैं अन्यथा इससे छूटना महान् दुस्तर कार्य है ।३०। वर्णों के यजन द्वारा आराधना करने से पुरुषों को कुछ भी सिद्धि नहीं होती है। जो भगवान् हरि की ही भक्ति किया करते हैं और उनके चरणों में ही अपनी बुद्धि को लगा देते हैं उनका ही कल्याण होता है क्योंकि भगवद्भक्ति ही के द्वारा भगवान् की आराधना की जाया करती है इसके अतिरिक्त उनकी आराधना करने का तथा सन्तुष्ट करने का अन्य कोई भी कारण नहीं है ॥ ३१ ॥ बहुत से प्रचुर दानों के द्वारा—पुष्पों के समर्पण से और अनुलेपनों से भगवान् जनार्दन कभी भी तोष को प्राप्त नहीं हुआ करते हैं जैसे कि यह महान् आत्मा वाले प्रभु अनन्य भक्ति से प्रसन्न होते हैं ॥ ३२ ॥ इस संसार रूपी विष वृक्ष के दो फल अमृत के तुल्य हुआ करते हैं उनमें एक तो भगवान् केशव में सुदृढ़ भक्ति है और दूसरा भगवान् के भक्तों के साथ समागम प्राप्त करना है। अन्यथा यह संसार पूर्णतया विषैला एक वृक्ष के ही समान होता है जो सर्वनाश किया करता है। भगवद्भक्ति और सन्तों का सत्सङ्ग ये दो ही इसमें आकर उत्तम श्रेय के सम्पादक फल प्राप्त किये जा सकते हैं ॥ ३३ ॥ पत्र—पुष्प—फल और तोय में तथा अष्टक लभ्य सदा सत्पुरुषों में भक्ति के द्वारा प्राप्त करने के योग्य पुराण पुरुष में मुक्ति रूप एक के लाभ में प्रयत्न किया जाता है ॥ ३४ ॥ (जिस कुल में कोई भी भगवान् विष्णु का भक्त वैष्णव उत्पन्न हो जाता है उसके पितृगण बहुत ही प्रसन्न होते हैं और उसके पितामह आदि सब हर्ष से नृत्य किया करते हैं कि हमारे वंश में वैष्णव पैदा हो गया है यह हम सबका उद्धार कर देगा ॥३५॥)

अज्ञानिनः सुरवर समधिक्षिपन्तो यत्पापिनोऽपि
शिशुपालसुयोधनाद्या ।
मुक्तिं गता स्मरणमात्रविधूतपापा. क संशय :परमभक्तिमता
जनानाम् ॥३६

सकलमुनिभिराद्यश्चिन्त्यते यो हि सिद्धो निखिलहृदि
निविष्टं वेत्ति यः सर्वसाक्षी ।
तमजममृतमीशं वासुदेवं नतोऽस्मि त्वभयमरणहीनं
नित्यमानन्दरूपम् ।।३७
निखिलभुवननाथं शाश्वतं सुप्रसन्नं ह्यतिविमलविशुद्धं
निर्गुणं भावपुष्पैः ।
सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं विशतु हृदयपद्मे
सर्वसाक्षी चिदात्मा ।।३८
एवं मयोक्तं परमप्रभावमाद्यन्तहीनस्य परस्य विष्णोः ।
तस्माद्विचिन्त्यः परमेश्वरोऽसौ विमुक्तिमार्गेण नरेण सम्यक् ।।३९
बोधस्वरूपं पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं विमलं विशुद्धम् ।
सञ्चिन्त्य विष्णुं परमद्वितीयं कस्तत्र योगी न लयं प्रयाति ।।४०

अज्ञानी पुरुष भी केवल विष्णु—भक्ति के प्रभाव से सुरवर के भी ऊपर पहुँच जाते हैं । जो महापापी शिशुपाल और सुयोधन आदि थे वे भी भगवान् के स्मरण मात्र से पापों का नाश कर मुक्ति को प्राप्त हो गये थे । जो भगवान् विष्णु की परम भक्ति करने वाले भक्तजन हैं उनके मोक्ष प्राप्त करने में तो क्या संशय हो सकता है ? अर्थात् उनके मुक्त होने में तनिक भी सन्देह नहीं है ।। ३६ ।। जो भगवान् का चिन्तन करता है वह समस्त मुनियों में प्रथम है और वह सिद्ध है, जो सबके हृदयों में विराजमान् प्रभु सभी कुछ को जानता है वह सबका साक्षी है उस अज—अमृत—ईश भगवान् वासुदेव को प्रणाम करता हूँ जो भय और मरण से रहित है—नित्य एवं आनन्द स्वरूप है ।। ३७ ।। वह समस्त भुवनों का स्वामी है—निरन्तर रहने वाला है—सुप्रसन्न स्वरूप वाला है—अत्यन्त विमल—विशुद्ध और निर्गुण है । वह सुन्दर और सबके उदित करने वाला है उसकी मैं भावरूपी पुष्पों के द्वारा पूजा करता हूँ । वह सबका साक्षी—ज्ञान स्वरूप मेरे हृदय में प्रवेश करें । ।। ३८ ।। इस प्रकार से आदि एवं अन्त से हीन परात्पर भगवान् विष्णु के परम प्रभाव को मैंने बतला दिया है । अतएव विमुक्ति के मार्ग प्राप्त करने की

इच्छा वाले पुरुष को भली भाँति ऐसे परमेश्वर का सदा चिन्तन करना ।। ३९ ।। ज्ञान के स्वरूप वाले—सूर्य के तुल्य तेज एवं वर्ण वाले—विमल—विशुद्ध—पुराण पुरुष—परम एवं अद्वितीय भगवान् का चिन्तन करके कौन-सा ऐसा योगी है जो लय को प्राप्त नहीं होता है ? अर्थात् सभी को मोक्ष प्राप्त हो जाया करता है ।।४०।।

इमं स्तवं यः सततं मनुष्यः पठेद्व तद्वत्प्रयतः प्रशान्तः ।
स धौतपाप्मा विततप्रभावः प्रयाति लोकं विततं मुरारेः ।।४१
यः प्रार्थयत्यर्थमशेषसौख्य धर्मञ्च कामञ्च तथैव मोक्षम् ।
स सर्वमुत्सृज्य परं पुराणं प्रयाति विष्णुं शरणं वरेण्यम् ।।४२
विभुं प्रभुं विश्वधरं विशुद्धमशेषसंसारविनाशहेतुम् ।
यो वासुदेवं विमलं प्रपन्नः स मोक्षमाप्नोति विमुक्तसङ्गः ।।४३

इस स्तव को जो मनुष्य पूर्णतया प्रयत्न और प्रशान्त होकर निरन्तर पढ़ता है वह अपने सम्पूर्ण पापों को धो डालने वाला तथा वितत प्रभाव वाला हो जाया करता है एवं वह मुरारि के विशद लोक की प्राप्ति किया करता है ।। ४१ ।। जो अत्यन्त एवं सम्पूर्ण सुखों की प्रार्थना करता है तथा धर्म—अर्थ काम और मोक्ष की चाह किया करता है वह इन सबका त्याग कर परम पुराण—वरेण्य एवं शरण (रक्षक) भगवान् की सन्निधि में प्राप्त हो जाता है ।। ४२ ।। विभु (सर्वत्र व्यापक)—प्रभु (करने न करने और अन्यथा करने में समर्थ सबके स्वामी)—विश्व को धारण करने वाले—विशुद्ध स्वरूप और इस सम्पूर्ण संसार की रचना के विनाश करने के कारण स्वरूप एवं विमल भगवान् वासुदेव की शरणागति प्राप्त कर लेता है वह सङ्ग से विमुक्त होकर मोक्ष (संसार के जीवन—मरण के बारम्बार आवागमन से छुटकारा पाकर भगवान् के स्वरूप में लय हो जाना) को प्राप्त कर लेता है ।।४३।।

१२२—वेदान्त सांख्य सिद्धान्त ब्रह्मज्ञान

वेदान्तसांख्यसिद्धान्तब्रह्मज्ञानं वदाम्यहम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विष्णुरित्येव चिन्तयन् ।।१

सूर्य्येन्दुव्योम्नि वह्नौ च ज्योतिरेकं त्रिधा स्थितम् ।
यथा सर्पिः शरीरस्थ गवां न कुरुते बलम् ।
निर्गतं कर्मसयुक्तं दत्त तासां महाबलम् ॥२
तथा विष्णुः शरीरस्थो न करोति हितं नृणाम् ।
विनाराधनया देवः सर्वगः परमेश्वरः ॥३
आरुरुक्षुमतीनां तु कर्मज्ञानमुदाहृतम् ।
आरूढयोगवृक्षाणां ज्ञान त्यागं परं मतम् ॥४
ज्ञातुमिच्छति शब्दादीन्रागद्वेषोऽथ जायते ।
लोभमोहः क्रोध एतैर्युक्तः पापं नरश्चरेत् ॥५
हस्तावुपस्थमुदरं वाक्चतुर्थी चतुष्टयम् ।
एतत्सुसयतं यस्य स विप्रः कथ्यते बुधः ॥६
परवित्तं न गृह्णाति न हिंसा कुरुते तथा ।
नाक्षक्रीडारतो यस्तु हस्तौ तस्य सुसयतौ ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब हम आप सब लोगों को वेदान्त और सांख्य दर्शनों के सिद्धान्त स्वरूप ब्रह्मज्ञान को बतलाते हैं। मनुष्य को ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि मैं ही परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म एव विष्णु हूँ ॥१॥ सूर्य, इन्दु (चन्द्र) व्योम और वह्नि मे एक ही तेज है जो तीन प्रकार का होकर स्थित हो रहा है। जिस प्रकार से घृत दूध मे रहते हुए गौओ के शरीर में ही रहा करता है किन्तु गौओ को बल नही दिया करता है। शरीर से दुग्ध के रूप मे निकल कर और घृत के सच्चे स्वरूप में प्राप्त होकर वही जब गौओ को दिया जाता है तो महान् बल प्रदान किया करता है ॥२॥ इसी तरह सबके शरीरो मे रहने वाला भी भगवान् विष्णु जो कि अन्तर्यामी स्वरूप से सर्वत्र चराचर में विद्यमान है, कोई भी मनुष्य का हित नही किया करता है। वह देवदेव सबमे गमन करने वाला अर्थात् सर्वत्र विद्यमान है तो भी वह परमेश्वर बिना आराधना के किये मानवो की भलाई नही करता है। भली-भाँति जब उस सर्वत्र व्यापक प्रभु की आराधना भक्ति-भाव से अनन्य होकर की जाया करती है तो इस जीवात्मा का पूर्ण कल्याण वह किया करते हैं ॥३॥ जिन-

मति आरुरुक्ष होती है उनके लिये कर्मज्ञान बतलाया गया है और जो योग के वृक्ष पर समारूढ़ हैं उन मानवों के लिये त्याग और ज्ञान को सबसे परम माना गया है ॥४॥ जो शब्दादि इन्द्रियों के विषयों को जानना चाहता है अर्थात् विषयों मे लिप्त रहता है उसे राग और द्वेष समुत्पन्न हो जाया करते हैं और फिर वह लोभ, मोह तथा क्रोध—इनसे युक्त होकर मनुष्य पाप का आचरण किया करता है ॥५॥ मनुष्य की चार इन्द्रियाँ बहुत ही प्रबल हैं—दोनों हाथ, उपस्थ (जननेन्द्रिय), उदर और चौथी वाणी। जिसकी ये चारों सुसयत होती हैं वही बुध वस्तुतः विप्र कहा जाया करता है ॥६॥ जो कभी भी पराये धन को ग्रहण नहीं किया करता है तथा किसी भी समय में हिंसा का कर्म भी नहीं किया करता है और अक्ष-क्रीडा अर्थात् जूआ के खेल में रति नहीं रखता है अर्थात् जूआ नहीं खेलता है उस पुरुष के दोनों हाथों को भली-भाँति सयत यानी सयम म रहने वाले माने जाते हैं ॥७॥

परस्त्रीवर्जनरतस्तस्योपस्थ सुसयतम् ।
अलोलुपमिद भुङ्क्ते जठर तस्य सयतम् ॥८
सत्य हित मित ब्रूते यस्माद्वाक्तस्य सयता ।
यस्य सयतान्येतानि तस्य कि तपसाध्वरै ॥९
भ्रुवोर्मध्ये स्थिता बुद्धि विषयेषु युनक्ति य ।
जीवो जाग्रदवस्थायामेवमाहुर्विपश्चित ॥१०
हृदि स्थित स तमसा मोहितो न मरत्यपि ।
यदा तस्य कुता वेत्ति सुपुप्तिरिति कथ्यते ॥११
जाग्रतो तस्य न स्त्री न मोहो न भ्रमस्तथा ।
उत्पद्यते न जानाति शब्दार्थविषयान्वशी ॥१२
इन्द्रियाणि समाहृत्य विषयेभ्यो मनस्तथा ।
बुद्धयाऽहङ्कारमपि च प्रकृत्या बुद्धिमेव च ॥१३
सयम्य प्रकृतिश्चापि चिच्छक्त्या केवले स्थित ।
पश्यत्यात्मनि चात्मानमात्मानमुपकारकम् ॥१४

चिद्रूपममृतं शुद्धं निष्क्रियं व्यापकं शिवम् ।
तुरीयायामवस्थायामास्थितोऽसौ न संशयः ॥१५

पराई स्त्री से संयोग जिसने कभी नहीं किया है और पर स्त्री से सर्वदा वर्जित रहा करता है उस पुरुष का उपस्थ सुसंयत होता है । जो लोलुप न होकर ही शरीर की रक्षा के लिये ही खाता है उसका उदर सुसंयत कहा जाता है ॥८॥ जो सदा सत्य, हित और मित बोला करता है उसकी वाणी सुसंयत होती है । जिसकी ये चारों सुसंयत हों उसे यज्ञ-योगादि और तपश्चर्या करने की क्या आवश्यकता है ?॥९॥ जो भ्रूओं के मध्य में स्थित बुद्धि को विषयों में युक्त किया करता है वह जीव जाग्रत् अवस्था में ही होता है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१०॥ जब हृदय में स्थित होकर वह तम से मोहित होता हुआ कहीं भी नहीं जाता है उस समय में उसकी सुषुप्ति की अवस्था होती है ॥११॥ जाग्रत् दशा में भी उसे न स्त्री का ज्ञान रहता है—न कोई मोह ही होता है तथा किसी भी प्रकार का भ्रम भी नहीं होता है । उस दशा में अपने ही मन में ऐसा रहता है कि शब्दार्थ विषयों का भी उसे कुछ ज्ञान नहीं रहा करता है । अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को विषयों से हटाकर तथा मन को भी सब ओर से खींचकर, बुद्धि में अहङ्कार को और प्रकृति से बुद्धि को संयत करके एवं अपनी चित् शक्ति के द्वारा प्रकृति को संयमित करके केवल आत्मा में स्थित होकर अपनी आत्मा में उपकार करने वाली आत्मा का दर्शन करता है, वह चिद्रूप, अमृत, शुद्ध, निष्क्रिय, व्यापक और शिव स्वरूप वाला है । उस समय में यह तुरीय अवस्था में ही आस्थित होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१२॥ ॥१३॥१४॥१५॥

पुर्य्यष्टकस्य पद्मस्य पत्राण्यष्टौ च तानि हि ।
साम्यावस्था गुणकृता प्रकृतिस्तत्र कर्णिका ॥१६
कर्णिकायां स्थितोदेवो देहे चिद्रूप एव हि ।
पुर्य्यष्टकं परित्यज्य प्रकृतिञ्च गुणात्मिकाम् ।
यदा याति तदा जीवो याति मुक्तिं न संशय ॥१७
प्राणायामो जपश्चैव प्रत्याहारश्च धारणा ।
ध्यानं समाधिरित्येते षड्योगस्य प्रमाणकाः ॥१८

पापक्षये देवतानां प्रीतिरिन्द्रियसंयमः ।
जपध्यानयुतो गर्भे विपरीतस्त्वगर्भकः ॥१६
षट्त्रिंशन्मातृकः श्रेष्ठश्चतुर्विंशतिमातृकः ।
मध्यो द्वादशमात्रं तु ओङ्कारं सततं जपेत् ॥२०
वाचके प्रणये जाते वाच्य ब्रह्म प्रसीदति ।
ॐ नमो विष्णवे । षडक्षरश्च जप्यो गायत्री द्वादशाक्षरा ॥२१

अष्ट दल वाले पद्म को पुरी में वे आठ पत्र ही गुणों की की हुई साम्य अवस्था होती है। उसमे प्रकृति ही कर्णिका है ॥१६॥ उसमें कर्णिका देव स्थित हैं और देह चिद्रूप ही है। उस पुर्यष्टक का परित्याग करके जिस समय में गुणात्मिका प्रकृति को प्राप्त करता है उस समय में जीव मुक्ति को प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१७॥ प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये छै योग के प्रसाधक होते हैं ॥१८॥ पापों के क्षय होने पर देवताओं मे प्रीति होती है। यह इन्द्रियों का संयम है। गर्भ में जप और ध्यान से युक्त होता है। अगर्भक इसके विपरीत होता है ॥१९॥ छत्तीस मात्रा वाला श्रेष्ठ होता है—चौबीस मातृक मध्यम होता है और बारह मात्रा वाला तीसरी श्रेणी का होता है। निरन्तर ओङ्कार का जप करना चाहिए ॥२०॥ ब्रह्म के वाचक प्रणव के ज्ञान हो जाने पर उसका वाच्य ब्रह्म प्रसन्न होता है। "ओ नमो विष्णवे"—इस छः अक्षर वाले मन्त्र का जप करना चाहिए। गायत्री बारह की होती है ॥२१॥

सर्वेषामिन्द्रियाणां तु प्रवृत्तिर्विषयेषु च ।
निवृत्तिर्मनसा तस्या प्रत्याहारः प्रकीर्त्तितः ॥२२
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः समाहृत्य हितो हि सः ।
सहसा सह बुद्धया च प्रत्याहारेषु संस्थितः ॥२३
प्राणायामैर्द्वादशभिर्यावत्कालकृतो भवेत् ।
यस्तावत्कालपर्य्यन्तं मनो ब्रह्मणि धारयेत् ॥२४
तस्यैव ब्रह्मणा प्रोक्तं ध्यान द्वादश धारणाः ।
तुष्येत नियतो युक्तः समाधिः सोऽभिधीयते ॥२५

ध्यायन्न चलते यस्य मनोभिर्ध्यायते भृशम् ।
प्राप्तयावधिकृत काल यावत्सा धारणा स्मृता ॥२६

ध्येये सक्त मनो यस्य ध्येयमेवानुपश्यति ।
नान्य पदार्थ जानाति ध्यानमेतत्प्रकीर्त्तितम् ॥२७

ध्येये मनो निश्चलता याति ध्येय विचिन्तयन् ।
यत्तद्ध्यान पर प्रोक्त मुनिभिर्ध्यानचिन्तकैं ॥२८

समस्त इन्द्रियो की विषयों मे प्रवृत्ति होती हैं उसम मन और इन्द्रियो की जो निवृत्ति होती है उसी को प्रत्याहार कहा गया है। विषयो से इन्द्रियो तथा मन का प्रत्याहरण अर्थात् निवृत्त कर लेना यानी हटा लेना ही इसका शब्दार्थ होता है ॥२२॥ इन्द्रियो को इन्द्रियो के अर्थों से यानी विषयो से समाहरण करके स्थित रहने वाला वह सहसा बुद्धि के साथ प्रत्याहारो मे सस्थित होता है ॥२३॥ बारह प्राणायामा के द्वारा जितने समय तक वह स्थित रहता है उतने समय तक मन को ब्रह्म मे धारण करे ॥२४॥ उसी अवस्था को ब्रह्म का ध्यान बताया गया है । बारह धारणा हैं । जब नियत एव युक्त पुरुष प्राप्त करता है तो उसको ही समाधि कहा जाता है ॥२५॥ इस प्रकार से ब्रह्म का ध्यान करते हुए जिसका मन चलित नही होता है और मन के द्वारा खूब अच्छी तरह ध्यान किया करता है । जब तक प्राप्तव्य का अवधि का काल होता है तब तक ध्यान का बना चले जाना ही धारणा कही जाती है ॥२६॥ ध्यान करने के योग्य जो लक्ष्य होता है वह ध्येय कहा जाता है, उस ध्येय मे जिसका मन सक्त होता है और जो मन केवल ध्येय को ही देखा करता है उस अपने ध्येय के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं जानता है उसको ही ध्यान कहते हैं ॥२७॥ अपने ध्येय का विशेष रूप से चिन्तन करते हुए जब उस ध्येय म मन निश्चलता अर्थात् स्थिर भाव को प्राप्त हो जाता है तो उस ध्यान का ध्यान के चिन्तन करने वाले मुनियो ने परमोत्तम ध्यान बतलाया है ॥२८॥

ध्येयमेव हि सर्वत्र ध्येयस्तन्मयता गत ।
पश्यति द्वैतरहित समाधि सोऽभिधीयते ॥२९

ध्यान करता हुआ योगी भक्ति को प्राप्त करने वाला होता है ॥४०॥ कुछ योगीजन आत्मा के द्वारा आत्मा को ध्यान रूपी नेत्र से देखा करते हैं। दूसरे सांख्य की बुद्धि (ज्ञान) से तथा अन्य लोग (योगीजन) इस योग के द्वारा देखते हैं। ॥४१॥ ब्रह्म के प्रकाश करने वाला ज्ञान भव (संसार) के बन्धनों का विशेष रूप से भेदन करने वाला है। चित्त की एकाग्रता का हो जाना ही योग होता है और मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है—इसमें लेशमात्र भी कोई संशय नहीं है ॥४२॥

जितेन्द्रियात्मकरणो ज्ञानहंसो हि यो भवेत् ।
स मुक्तः कथ्यते योगी परमात्मान्यवस्थितः ॥४३
आसनस्थानविषया न योगस्य प्रसाधकाः ।
विलम्बजनका सर्वे विस्तरा. परिकीर्त्तिता. ॥४४
शिशुपाल. सिद्धिमाप स्मरणाभ्यासगौरवात् ।
योगाभ्यासं प्रकुर्वन्तः पश्यन्त्यात्मानमात्मना ॥४५
सर्वभूतेषु कारुण्य विद्वेष विषमेषु च ।
लुप्तशिश्नोदरादिश्च कुर्वन् योगी विमुच्यते ॥४६
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांस्तु न जानाति नरो यदा ।
काष्ठवद् ब्रह्मसंलीनो योगी मुक्तस्तदा भवेत् ॥४७
सर्ववर्णाः स्त्रियः सर्वाः कृत्वा पापानि भस्मसात् ।
ध्यानाग्निना च मेधावी लभन्ते परमां गतिम् ॥४८
मन्थनाद् दृश्यते ह्यग्निस्तद्वद् ध्यानेन वै हरिः ।
ब्रह्मात्मनोर्यदैकत्व स योगश्चोत्तमोत्तमः ॥४९
वाह्यरूपेण मुक्तिस्तु चान्तस्थो, स्याद्यमादिभिः ।
साङ्ख्यज्ञानेन योगेन वेदान्तश्रवणेन च ॥५०
प्रत्यक्षतात्मनो या हि सा मुक्तिरभिधीयते ।
अनात्मन्यात्मरूपत्वमसतः सत्स्वरूपता ॥५१

इन्द्रियों को जीतकर आत्म करण जो ज्ञान हंस होता है वह परमात्मान्यवत् स्थित योगी मुक्त कहा जाता है ॥४३॥ आसन, स्थान और विषय योग

विधूम इव दीप्तार्चिरादीप्त इव दीप्तिमान् ।
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे हृत्पद्म आत्मनात्मनि ॥४
श्रोत्रादीनि न पश्यन्ति स्व स्वमात्मानमात्मना ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च क्षेत्रज्ञस्तानि पश्यति ॥५
यदा प्रकाशते ह्यात्मा पटे दीपो ज्वलन्निव ।
ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः ॥६
यथादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च महाभूतानि पञ्चकम् ॥७
मनोबुद्धिरहङ्कारमव्यक्तं पुरुषं तथा ।
प्रसंख्याय पराव्याप्तो विमुक्तो बन्धनैर्भवेत् ॥८

श्री भगवान् ने कहा—अब हम भगवद्गीता का सार तुमको बतलाते हैं जो कि पहिले भगवान् श्रीकृष्ण ने भारत के युद्धस्थल में अर्जुन को बतलाया था। आठ यम-नियम-ध्यान-धारणा आदि अङ्गों वाले योग से युक्त आत्मा सम्पूर्ण वेदान्त का पारगामी आत्म लाभ हो पर है तथा आत्म भेद आदि पवित्र अन्य नहीं। रूप आदि से हीन देह और अन्तःकरण आदि नीरस है ॥१।२॥ विभ्रम से रहित प्राण है मैं सुगुप्त हूँ—ऐसा प्रतीत होता है। दुःख आदि और संसार आदि के सम्बन्ध से मैं आत्मा नहीं हूँ ॥३॥ धूम रहित दीप्त अग्नि की भाँति, दीप्तिमान् आदीप्त की तरह और आकाश में वैद्युत (बिजली से सम्बन्ध रखने वाली) अग्नि के समान हृत्पद्म आत्मा में आत्मा के द्वारा श्रोत्रादिक आत्मा में अपनी आत्मा को नहीं देखते हैं। सबको जानने वाला, सब कुछ को देखने वाला जो क्षेत्रज्ञ है वह ही उनको देखा करता है ॥४।५॥ पट में जलते हुए दीप की भाँति जिस समय में आत्मा प्रकाश किया करता है, पाप कर्मों के क्षय से मनुष्यों को ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ॥६॥ जिस तरह से आदर्श (शीशा) तल प्रख्य में आत्मा से आत्मा को देखता है उसी प्रकार से इन्द्रियों इन्द्रियों के अर्थों को, पाँच महाभूतों को, मन, बुद्धि, अहङ्कार को, अव्यक्त और पुरुष को देखता है और पराव्याप्ति में प्रकर्ष के लिये बन्धनों से विमुक्त हो जाता है ॥७।८॥

को प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए ॥१८॥ शौच (शुद्धि) दो प्रकार का होता है। बाह्य शौच मिट्टी और जल से होता है तथा आन्तरिक शौच शुद्ध भाव के रखने से होता है। जो कुछ स्वतः ही बिना किसी प्रयत्न के यदृच्छा से प्राप्त हो जावे उसी से सन्तुष्ट हो जाना सन्तोष कहलाता है और यह अक्षय सुख होता है ॥१९॥ मन तथा समस्त इन्द्रियों की जो एकाग्रता होती है यही सबसे श्रेष्ठ परम तप है। कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों के द्वारा जो शरीर का शोषण किया जाता है वह भी तपस्या होती है।२०। बुध लोग द्वारा वेदान्त शत रुद्रीय और प्रणव आदि का जो जाप तथा पठन होता है वह सत्व की शुद्धि करने वाला पुरुषों का होता है उसे स्वाध्याय कहते हैं ॥२१॥

स्तुतिस्मरणपूजादिवाङ्मनःकायकर्मभिः ।
अनिश्चला हरौ भक्तिरेतदीश्वरचिन्तनम् ॥२२
आसनं स्वस्तिकं प्रोक्त पद्ममर्द्धासन तथा ।
प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम् ॥२३
इन्द्रियाणां विचरतां विपयेषु त्वसत्स्विव ।
नियम प्रोच्यते सद्भि प्रत्याहारस्तु पाण्डव ॥२४
मूर्त्तामूर्त्तब्रह्मरूपचिन्तन ध्यानमुच्यते ।
योगारम्भे मूर्त्तहरिममूर्त्तमपि चिन्तयेत् ॥२५
अग्निमण्डलमध्यस्थो वायुर्देवश्चतुर्भुज. ।
शाङ्ख चक्रगदापद्मयुक्त कौस्तुभसयुतः ॥२६
वनमाली कौस्तुभेन यतोऽह ब्रह्मसज्ञक ।
धारणेत्युच्यते चेय धार्य्यते यन्मनोलये ॥२७
ऽ ब्रह्म त्यवस्थान समाधिरभिधीयते ।
ब्रह्मास्मि वाक्याच्च ज्ञानान्मोक्षो भवेन्नृणाम् ॥२८
ान्दचैतन्य लक्षयित्वा स्थितस्य च ।
म. ऽ ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्मपदार्थयोः ॥२९

स्तुति, प्रभु का स्मरण, परमात्मा का अर्चन आदि को ·ीरिक कर्मों के द्वारा करना तथा हरि में अनिश्चल भक्ति

विधिना या भवेद्धिसा सा त्वहिंसा प्रकीर्तिता ।
सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियञ्च नानृत ब्रूयादेष धर्म. सनातनः ॥१५
यच्च द्रव्यापहरण चौर्याद्वाथ वलेन वा ।
स्तेय तस्यानाचरण अस्तेय धर्मसाधनम् ॥१६
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्याग ब्रह्मचर्य्यं प्रचक्ष्यते ॥१७
द्रव्याणामप्यनादानमापत्स्वपि तथेच्छया ।
अपरिग्रहमित्याहुस्त प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥१८
द्विधा शौच मृज्जलाभ्या वाह्यं भावावयान्तरम् ।
यदृच्छालाभतस्तुष्टि सन्तोष सुखमक्षयम् ॥१९
मनसश्चेन्द्रियाणाञ्च ऐकाग्रय परम तप. ।
शरीरशोषण वापि कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥२०
वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजप बुधा ।
सत्त्वशुद्धिकर पु सा स्वाध्याय परिचक्षते ॥२१

यागादि मे विधि का अङ्ग जो भी कोई हिंसा बताई गई है वह हिंस
न होकर सदा अहिंसा ही कही गई है । सदा सत्य भाषण करना चाहिए औ
वह सत्य भी सबको श्रोत्र सुख देने वाला प्रिय हो ऐसा ही बोले । जो सत्य भं
अप्रिय हो तो उसे कभी न बोलना चाहिए । ऐसा प्रिय भी कभी न कहे ज
मिथ्या है—यह ही सनातन (सर्वदा से चले आने वाला) धर्म होता है ॥१५
चौर कर्म के द्वारा या बल पूर्वक जो पराये द्रव्य का आहरण करता है व
स्तेय कहा जाता है । उस स्तेय कर्म का न करना ही अस्तेय होता है और अस्त
का आचरण ही धर्म का एक साधन होता है अर्थात् यह भी धर्म का एक अ
होता है ॥१६॥ दश प्रकार के धर्म के अङ्गो मे एक अस्तेय भी है । कर्म,
और वाणी से सभी अवस्थाओ मे सर्वदा और सर्वत्र जो मैथुन का त्याग
देता है उसी को ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥१७॥ आपत्ति के समय मे भी द्र
के द्रव्यों का जो न लेना है उसी को अपरिग्रह कहते हैं उसको अर्थात् परि

को प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए ॥१८॥ शौच (शुद्धि) दो प्रकार का होता है। बाह्य शौच मिट्टी और जल से होता है तथा आन्तरिक शौच शुद्ध भाव के रखने से होता है। जो कुछ स्वतः ही बिना किसी प्रयत्न के यदृच्छा से प्राप्त हो जावे उसी से सन्तुष्ट हो जाना सन्तोष कहलाता है और यह अक्षय सुख होता है ॥१६॥ मन तथा समस्त इन्द्रियों की जो एकाग्रता होती है यही सबसे श्रेष्ठ परम तप है। कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों के द्वारा जो शरीर का शोषण किया जाता है वह भी तपस्या होती है।२०। बुध लोग द्वारा वेदान्त शत रुद्रीय और प्रणव आदि का जो जाप तथा पठन होता है वह सत्व की शुद्धि करने वाला पुरुषों का होता है उसे स्वाध्याय कहते हैं ॥२१॥

स्तुतिस्मरणपूजादिवाङ्मनःकायकर्मभिः ।
अनिश्चला हरौ भक्तिरेतदीश्वरचिन्तनम् ॥२२
आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासनं तथा ।
प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम् ॥२३
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वसत्स्विव ।
नियमः प्रोच्यते सद्भिः प्रत्याहारस्तु पाण्डव ॥२४
मूर्त्तामूर्त्तब्रह्मरूपचिन्तनं ध्यानमुच्यते ।
योगारम्भे मूर्त्तहरिममूर्त्तमपि चिन्तयेत् ॥२५
अग्निमण्डलमध्यस्थो वायुर्देवश्चतुर्भुजः ।
शङ्खचक्रगदापद्मयुक्तः कौस्तुभसंयुतः ॥२६
वनमाली कौस्तुभेन यतोऽहं ब्रह्मसंज्ञकः ।
धारणेत्युच्यते चेयं धार्य्यते यन्मनोलये ॥२७
अहं ब्रह्म त्ववस्थानं समाधिरभिधीयते ।
अहं ब्रह्मास्मि वाक्याच्च ज्ञानान्मोक्षो भवेन्नृणाम् ॥२८
अद्वयानन्दचैतन्यं लक्षयित्वा स्थितस्य च ।
ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म अहं ब्रह्मपदार्थयोः ॥२६

भगवान् की स्तुति, प्रभु का स्मरण, परमात्मा का अर्चन आदि को वाणी, मन और शारीरिक कर्मों के द्वारा करना तथा हरि में अनिश्चल भक्ति

का करना ही ईश्वर का चिन्तन कहा जाता है ॥२२॥ आसनों में स्वस्तिकास पद्मासन और अर्द्धासन कहे गये हैं। प्राणायाम का तात्पर्य यह है कि स्वदेह जो प्राण वायु है उसका आयाम अर्थात् उसका निरोध किया जाता है ॥२३ असत् विषयों से विचरण करने वाली इन्द्रियों का रोकना ही सत्पुरुषों के द्वा नियम कहा जाता है। विषयों से मन आदि का प्रत्याहरण करने अर्थात् हटा को ही योग में प्रत्याहार हे पाण्डव ! कहा जाता है ॥२४॥ मूर्त तथा अमू स्वरूप वाले ब्रह्म का जो चिन्तन किया जाता है उसी को ध्यान कहते हैं योगाभ्यास के प्रारम्भ काल में हरि के मूर्त स्वरूप को तथा उनके अमू स्वरूप का भी चिन्तन करना चाहिए ॥२५॥ अग्नि-मण्डल के मध्य में स्थि चार भुजाओं वाले वासुदेव हैं जो शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म इन चारों आयुध से युक्त हैं और कौस्तुभ से समन्वित हैं ॥२६॥ वनमाली और कौस्तुभ से युक्त मैं ह ब्रह्म की संज्ञा वाला हूँ—इस तरह से मनोलय में जो धारण किया जाया करत है इसीलिये इसको योग में धारणा कहा जाया करता है ॥२७॥ मैं ही ब्रह्म हू इस प्रकार का जो अवस्थान है उसी को समाधि कहा जाता है। 'अहं ब्रह्मास्मि' —अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ इस तरह के वाक्य से और इस प्रकार के ज्ञान से मनुष्यों का मोक्ष होता है ॥२८॥ श्रद्धा से स्थित आनन्द चैतन्य का लक्ष्य करके मैं ब्रह्म हूँ, ब्रह्म मैं ही हूँ और ब्रह्म और अहं पदार्थों में ब्रह्म ही है ॥२९॥

१२४- प्राणेश्वर मंत्र विधान

प्राणेश्वर गारुडञ्च शिवोक्तं प्रवदाम्यहम्।
स्थानान्यादौ प्रवक्ष्यामि नागदष्टो न जीवति ॥१

चितावल्मीकशैलादौ कूपे च विवरे तरौ ।
दष्टे रेखात्रय यस्य प्रच्छन्न स न जीवति ॥२

षष्ठ्याञ्च कर्कटे मेषे मूलाश्लेषामघादिषु ।
नक्षत्रोत्रिगले मर्म्मौ शङ्खकर्णोदरादिषु ॥३

दण्डी शस्त्रधरो भिक्षुर्नग्नादि कालदूतक. ।
मर्म्म बाहौ च श्रोणायां पृष्ठे च न हि जीवति ॥४

पूर्वं दिनपतिर्भुङ्क्ते अर्द्धयाम ततोऽपरे ।
शेषा ग्रहा प्रतिदिन पट्सख्यापरिवर्त्तनैः ॥५
नागभोग क्रमाज्ज्ञेयो रात्रौ वाणविवर्त्तनैः ।
शेषोऽर्क. फणिपश्चन्द्रस्तक्षको भौम ईरितः । ६
कर्कोटोज्ञो गुरु पद्मो महापद्मश्च भार्गवः ।
शङ्ख. शनैश्चरो राहुः कुलिकश्चाहयो ग्रहा. ॥७
रात्रौ दिवा सुरगुरोर्भोगि स्यादमरान्तक ।
शङ्खो कालो दिवा राहु कुलिकेन सह स्थित ।
यामार्द्धे सन्धिमध्य. वेला कालवतीञ्चरेत् ॥८

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं शिव के द्वारा कथित प्राणेश्वर गारुड को कहता हूँ। सबके आदि मे मैं उन स्थानो के विषय मे बतलाता हूँ जहाँ पर नाग के द्वारा काटे जाने पर मनुष्य जीवित नही रहा करता है ॥१॥ चिता अर्थात् श्मशान भूमि, वल्मीक अर्थात् सर्प के रहने की बाँबी और पर्वत आदि मे, कूप मे और वृक्ष के छिद्र अर्थात् खोखर मे दश करने पर जिसकी प्रच्छन्न तीन रेखाएँ हो वह कभी जीवित नही रहता है ॥२॥ षष्ठी तिथि मे, कर्क, मघ मूल, आश्लेषा और मघा आदि नक्षत्रो मे, कक्षा, श्रोणि, गला, सन्धि भाग, शखकर्ण और उदर आदि मे दशी, दण्ड धारण करने वाला, भिक्षु और नग्न आदि मुख, बाहु, ग्रीवा (गरदन) और पृष्ठ में दशन किये जाने पर जीवित नही रहता है ॥३।४। पहिले दिनपति सूर्य भोग करता है जिसका समय अर्द्ध प्रहर होता है। इसके उपरान्त शेष ग्रह प्रति दिन छैः सख्या के परिवर्त्तनो से भोग किया करते है ॥५॥ रात्रि मे बाण के विवर्त्तनो के द्वारा क्रम से नाग भोग जानना चाहिए। शेष नाग अर्क (सूर्य) है, फणिप चन्द्रमा है और तक्षक को भौम कहा गया है ॥६॥ कर्कोट को बुध तथा पद्म को गुरु (बृहस्पति) और महापद्म को शुक्र, शङ्ख शनैश्चर और कुलिक राहु कहा जाता है। इस रीति से ये ग्रह होते है ॥७॥ रात्रि-दिन मे अमरान्तक सुर गुरु के भोग मे होता है। शङ्ख का काल दिवस है और राहु कुलिक के साथ स्थित रहता है। याम के अर्द्ध मे सन्धि मे संस्थित होता हुआ कालवती वेला का सञ्चरण किया करता है ॥८॥

वाणद्विषड्वह्निवाजियुगभूरेकमागतः ।
दिवा षड्वेदनेत्राद्रिपञ्चत्रिमानुपात्रकं. ।।९
पादाङ्गुष्ठे पादपृष्ठे गुल्फे जानुनि लिङ्गके ।
नाभौ हृदि स्तनपुटे कण्ठे नासापुटेऽक्षिणि ।
कर्णयोश्च भ्रुवो शङ्खे मस्तके प्रतिपत्क्रमात् ।।१०
तिष्ठेच्चन्द्रश्च जीवेश पुंसो दक्षिणभागके ।
कायस्य वामभागे तु स्त्रिया वायुवहात्करात् ।
भ्रमवत्त्वत्कृतो मोहो निवर्त्तेत च मर्दनात् ।।११
आत्मनः परमं बीजं हंसाख्यं स्फटिकामलम् ।
ज्ञातव्यं विषपापघ्नं बीजं तस्य चतुर्विधम् ।।१२
बिन्दुपञ्चस्वरयुतमाद्यमुक्तं द्वितीयकम् ।
षष्ठारूढं तृतीयं स्यात्सविसर्गं चतुर्थकम् ।१३
ॐ कुरु कुन्दे स्वाहा ।
विद्या त्रैलोक्यरक्षार्थं गरुडेन धृता पुरा ।।१४
वध्येष्मुर्नागनागाना मुखेऽथ प्रणवं न्यसेत् ।
गले कुरु न्यसेद्धीमान् कुन्दे च गुल्फयोः स्मृतः ।
स्वाहा पादयुगे चैव युगहा न्यास ईरितः ।।१५

पाँच, दो, छै, तीन, सात, चार और एक भाग से दिन में छै, चार, दो सात, पाँच, तीन मानुपातों के द्वारा पैर के अँगूठे में, पाद पृष्ठ में, गुल्फ में, जानु (घुटना) में लिङ्ग में नाभि में, हृदय में, स्तन पुट में, कण्ठ में, नासापुट में नेत्र में, कानों में, भ्रुवों में, शङ्ख में और मस्तक में प्रतिपदा के क्रम से पुरुष के दक्षिण भाग में चन्द्र स्थित रहता है और वह नहीं जीवित रहता है। स्त्री के शरीर के वाम भाग में जो वायु वह कर से मर्दन करने से भ्रमवत्त्व कृत मोह दूर हो जाया करता है ।।९।१०।११।। स्फटिक के समान निर्मल हंस नाम वाला आत्मा का परम बीज जान लेना चाहिए। उसका विष और पाप का हनन करने वाला बीज है और उसके चार प्रकार हैं ।।१२।। बिन्दु पञ्च स्वर से युक्त आद्य और द्वितीय बताया गया है, तृतीय षष्ठारूढ होता है तथा

चतुर्थ विसर्ग से समन्वित होना है ॥१३॥ "ॐ कुरु कुन्दे स्वाहा"—यह मन्त्र विद्या का स्वरूप है। प्राचीन समय में गरुड ने इस विद्या को धारण किया था ॥१४॥ नागो के वध करने की इच्छा वाले पुरुष को मुख में प्रणव का न्यास करना चाहिए। इसके अनन्तर फिर धीमान् पुरुष को गले में 'कुरु'—इनका न्यास करना चाहिए। "कुन्दे"—इस पद का न्यास दोनों गुल्फो में बताया गया है। और 'स्वाहा'—इसका न्यास दोनों पदों में युग का हनन करने वाला कहा गया है ॥१५॥

गृहेऽपि लिखितो यत्र तन्नागा सन्त्यजन्ति च।
सहस्रमन्त्र जप्त्वा तु कर्णे सूत्र धृत तथा ॥१६
यद्गृहे शर्करा जप्ता क्षिप्ता नागास्त्यजन्ति तम्।
जप्तलक्षस्य जप्याद्धि सिद्धि प्राप्ता सुरासुरै ॥१७
ॐ सुवर्णरेखे कुक्कुटविग्रहरूपिणि स्वाहा।
एवञ्चाष्टदले पद्मे दले वर्णयुग लिखेत्।
नामैतद्वारिधाराभि स्नातो दष्टो विष त्यजेत् ॥१८
ॐ पक्षि स्वाहा।
अँगुष्ठादि कनिष्ठान्त करे न्यस्याथ देहके।
के वक्ने हृदि लिङ्गे च पादयोर्गरुड. स हि ॥१९
नाक्रामन्ति च तच्छाया स्वप्नेऽपि विषपन्नगा।
यस्तु लक्ष जपेच्चास्या स दृष्ट्वा नाशयेद्विषम् ॥२०
ॐ ह्रौ ह्रौ ह्रौ भिरुण्डायै स्वाहा।
षण्णं जप्ता त्विय विद्या दष्टकस्य विष हरेत्। २१

जिस घर मे भी यह लिखा हुआ रहता है उस गृह को भी नाग त्याग दिया करते हैं। इसका महान् प्रभाव होता है। इस मन्त्र का एक सहस्र बार जाप करके कान मे सूत्र को धारण करे ॥१६॥ जिस घर मे इस उपर्युक्त मन्त्र से शर्करा को अभिमन्त्रित करके उसका प्रक्षेप किया जावे तो उस घर को नाग स्वयं ही त्याग कर चले जाया करते हैं। इस मन्त्र का एक लाख जाप करने पर इस जाप से सुर और असुरो ने सिद्धि की प्राप्ति की है ॥१७॥ दूसरे मन्त्र

का स्वरूप "ॐ सुवर्ण रेखे कुक्कुट विग्रह रूपिणि स्वाहा" यह है। इस प्रकार से अष्ट दल वाले पद्म के दल में दो वर्णों को लिखना चाहिए। इस नाम से जल की धाराओं से स्नान कराये जाने पर जिस पुरुष का दशन किया गया है उसका विष नष्ट हो जाता है ॥१८॥ तीसरे मन्त्र का स्वरूप यह है—"ॐ पक्षि स्वाहा" अँगूठे से कनिष्ठिका पर्यन्त कर में न्यास करके देहक में, के मुख में, हृदय और लिङ्ग में तथा दोनों पदों में न्यास करे। वह निश्चय ही गरुड है ॥१९॥ बड़े-बड़े विषधारी सर्प भी उसकी छाया को स्वप्न में भी कभी आक्रान्त नहीं किया करते हैं। जो पुरुष इस मन्त्र का एक लाख जाप कर लेता है उसमें भी इसके प्रभाव से ऐसी शक्ति समुत्पन्न हो जाया करती है कि वह सर्प दष्ट पुरुष को देख कर ही उसके विष का नाश कर दिया करता है ॥२०॥ चतुर्थ मन्त्र का स्वरूप यह है—"ॐ ह्रौं ह्रीं ह्रौं भिरुण्डायै स्वाहा"। इस मन्त्र की विद्या को कान में जाप करके सुना देने पर ही जिसको सर्प ने काटा है उसका विष नष्ट हो जाता है ॥२१॥

अ आ न्यसेत्तुपादाग्रे इ ई गुल्फेऽथ जानुनि।
उ ऊ ए ऐ कटितटे ओ नाभौ हृदि औ न्यसेत् ॥२२
वक्त्रे अमुत्तमाङ्गे अः न्यसेच्च हंससंयुता।
हंसो विषादि च हरेज्जप्ता ध्यातोऽथ पूजितः ॥२३
गरुडोऽहमिति ध्यात्वा कुर्याद्विषहरीं क्रियाम्।
हं मन्त्र गात्रविन्यस्त विषादिहरमीरितम् ॥२४
न्यस्य हंस वामकरे नासामुखनिरोधकृत्।
मन्त्रो हरेद्दष्टकस्य त्वङ्मांसादिगत विषम् ॥२५
स वायुना समाकृष्य दष्टाना गरल हरेत्।
ततो न्यसेद्दष्टकस्य नीलकण्ठादि संस्मरेत् ॥२६
पीत प्रत्यङ्गिरामूल तण्डुलाद्भिर्विषापहम्।
पुनर्नवाफलिर्नाना मूलं चक्रमीदृशम् ॥२७
मूल शुक्लबृहत्यास्तु कर्कोटिचा गैरिकर्णिकम्।
अङ्घ्रिघृष्ट घृतोपेत लेपोऽयं विषमर्दनः ॥२८

अ और आ इसका न्यास पाद के अग्र भाग में करे तथा इ ई इसका गुल्फ में और इसके अनन्तर जानु (घुटने) में उ ऊ का न्यास करे तथा ए ऐ का कटि तट में, 'ओ' का न्यास नाभि में और औ का न्यास हृदय में करना चाहिए ॥२२॥ ह स से संयुत मुख में और उत्तमाङ्ग में 'अ'—इसका न्यास करें। यह हंस जाप किया हुआ, ध्यान किया हुआ और समर्चित होता हुआ सम्पूर्ण विष आदि का नाश कर दिया करता है। मैं स्वयं ही गरुड़ हूँ—ऐसा ध्यान करके ही विष के हरण कर देने वाली क्रिया को करना चाहिए। इस मन्त्र को जिस समय में गात्र में विन्यस्त किया जाता है तो वह विष आदि के हरण करने वाली कही जाने वाली विद्या है ॥२३॥२४॥ वाम कर में हंस का न्यास करके नाक और मुख का निरोध करने वाला होता है। यह मन्त्र दष्ट किये हुए पुरुष के त्वचा और मांस आदि में प्राप्त होने वाले विष का नाश कर देना है। ॥२५॥ वह वायु के द्वारा समाकर्षण करके दष्ट किये हुए पुरुष के गरल का उस हरण करना चाहिए। दष्ट पुरुष के शरीर में न्यास करे और उस समय में नीलकण्ठ आदि का स्मरण करना चाहिए ॥२६॥ चावलों के जल के साथ प्रत्यङ्गिरा की जड़ का पान करने से विष का अपहरण हो जाता है। फिर पुनर्नवा (साठ), फलिनी और चक्राङ्क के मूल का भी इसी प्रकार से पान करना चाहिए ॥२७॥ शुक्लबृहती का मूल, कर्कोटी के साथ गैरिक शिला को जल के साथ घिस कर उसका लेप करने से विष का मर्दन हो जाता है ॥२८॥

विषवृद्धि न प्रजेच्च उष्णं पिबति यो घृतम् ।
पञ्चाङ्गन्तु शिरीषस्य मूलं गृञ्जनजं तथा ॥२९
सर्वाङ्गलेपतश्चापि पानाद्वा विषहृद्भवन् ।
ॐ ह्रीं गोनसादिविषहृत् ॥३०
हृल्ललाटविसर्गान्ति ध्यात वश्यादिहृद्भवेत् ।
न्यस्त यानी वशेत् कन्या कुर्य्यान्मदजनाविलाम् ॥३१
जप्त्वा सप्ताष्टसाहस्रं गरुत्मानिव सर्वंग ।
यदि स्याच्छु निधारी च वश्यास्त्री च समाप्नुयात् ।
विषहृत्स्यात् यथानत्व मुनेर्वाममय ते ध्रुवम् ॥३२

जो उष्ण घृत का पान करता है उसके विष की वृद्धि नही हुआ करती है। शिरीष वृक्ष के पाँचो अङ्ग अर्थात् मूल, फल, पत्ता, पुष्प और छाल और गाजर के मूल को लेकर सब अग पर लेप करने से अथवा पान करने से विष का हरण होता है। 'ॐ ह्रौं'—यह मन्त्र गोनस आदि के विष का हरण करने वाला है ॥२९॥३०॥ हृदय, ललाट और विसर्ग के अन्त पर्य्यन्त ध्यान करने पर वश्य आदि के करने वाला होता है। यदि इसका योनि मे ध्यान किया जावे तो कन्या को वशीभूत कर देता है और उसे मद जल से आविल अर्थात् उन्मत्त कर देता है ॥३१। स ठ सात सहस्र इस मन्त्र का जाप करने से गरुड की भाँति सर्वत्र गमन करने वाला हो जाता है, कवि और श्रुतिधारी हो जाया करता है तथा स्त्री को वश्य बनाकर प्राप्त करता है। यह विष का हरण करने वाला व्यास मुनि का कथा रत्न आपको बतला दिया है ॥३२॥

१२५--सुदर्शन पूजा विधान

सुदर्शनस्य पूजा मे वद शङ्खगदाधर।
ग्रहरोगादिक सर्वं यत्कृत्वा नाशमेति वै ॥१
सुदर्शनस्य चक्रस्य शृणु पूजा वृषध्वज।
स्नानमादौ प्रकुर्वीत पूजयेच्च हरिं तत ॥२
मूलमन्त्रेण वं न्यास मूलमन्त्र शृणुष्व च।
सहस्रार हु फट् नमो मन्त्र प्रणवपूर्वक ॥
कथित' सर्वदुष्टाना नाशको मन्त्रभेदक ॥३
ध्यायेत् सुदर्शन देव हृदि पद्मेऽमले शुभे।
शङ्खचक्रगदापद्मधर सौम्य कीरिटिनम् ॥४
आवाह्य मण्डले देव पूर्वोक्तविधिना हर।
पूजयेत् गन्धपुष्पाद्य रुपचारैर्महेश्वर ॥५
पूजयित्वा जपेन्मन्त्र शतमष्टोत्तर नर।
एव य. कुरुते रुद्र चक्रस्यार्चनमुत्तमम् ॥६
सर्वरोगविनिर्मुक्तो विष्णुलोक समाप्नुयात्।
एतत्स्तोत्र जपेत्पश्चात् सर्वव्याधिविनाशनम् ॥७

श्री रुद्र ने कहा—हे शङ्ख और गदा के धारण करने वाले भगवन् ! अब आप कृपाकर सुदर्शन की पूजा बतलाइये जिसके करने से ग्रह रोग आदि समस्त नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥१॥ भगवान् श्री हरि ने कहा—हे वृषध्वज ! अब आप सुदर्शन चक्र की पूजा जो मैं आपको बतलाता हूँ उसका आप श्रवण करो। सबसे प्रथम स्नान करना चाहिए फिर हरि की अर्चना करे ॥२॥ इसके उपरान्त मूल मन्त्र के द्वारा न्यास करना चाहिए। अब मूल मन्त्र को सुनो। पहिले प्रणव (ओम्) लगा कर 'सहस्रारं हु फट् नम.' यह मूल मन्त्र है। यह मन्त्रो का भेदन करने वाला समस्त दुष्टो का नाश करने वाला मन्त्र बता दिया गया है ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर परम शुभ विशुद्ध हृदय में सुदर्शन देव का ध्यान करना चाहिए। सुदर्शन का स्वरूप शङ्ख—चक्र—गदा और पद्म को धारण करने वाला किरीट धारी और सौम्य होता है ॥ ४ ॥ इस स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। हे हर ! मण्डल मे सुदर्शन देव का आवाहन करके पूर्व मे जो बताई विधि से हे महेश्वर ! गन्ध अक्षत पुष्प आदि पूजन के आवश्यक उपचारो के द्वारा सुदर्शन का पूजन करना चाहिए ॥ ५ ॥ इस तरह से पूजन करने के पश्चात् अष्टोत्तर शत मन्त्र का जाप करे। हे रुद्र ! जो इस प्रकार से सुदर्शन चक्र के उत्तम पूजन को करता है वह सब प्रकार के रोगों से विमुक्त होकर अन्त मे भगवान् विष्णु के लोक की प्राप्ति किया करता है। इसके पीछे सब व्याधियो के विनाश करने वाले सुदर्शन के स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥

नम सुदर्शनायैव सहस्रादित्यवर्चसे।
ज्वालमालाप्रदीप्ताय सहस्राराय चक्षुषे ॥८
सर्वदुष्टविनाशाय सर्वपातकमर्दिने।
सुचक्राय विचक्राय सर्वमन्त्रविभेदिने ॥९
प्रसवित्रे जगद्धात्रे जगद्विध्वंसिने नम.।
पालनार्थाय लोकाना दुष्टासुरविनाशिने ॥१०
उग्राय चैव सौम्याय चाण्डाय च नमो नम.।
नमश्चक्षुःस्वरूपाय ससारभयभेदिने ॥११

मायापञ्जरभेत्रे च शिवाय च न नमो नम ।
ग्रहातिग्रहरूपाय ग्रहाणा पतये नमः ॥१२
कालाय मृत्यवे चैव सीमाय च नमो नम ।
भक्तानुग्रहदात्रे च भक्तगोप्त्रे नमो नमः ॥१३
विष्णुरूपाय शान्ताय चायुधाना धराय च ।
विष्णुशस्त्राय चक्राय नमो भूयो नमो नम ॥१४
इति स्तोत्र महापुण्य चक्रस्य तव कीर्तितम् ।
य. पठेत्परया भक्त्या विष्णु लोक स गच्छति ॥१५
चक्रपूजाविधि यश्च पठेद्रुद्र जितेन्द्रिय. ।
स पाप भस्मसात्कृत्वा विष्णुलोकाय कल्पते ॥१६

भगवान् सुदर्शन देव के लिये मेरा नमस्कार है। जो सुदर्शन भगवान् सहस्र सूर्य के समान वर्चस वाले हैं। ज्वालाओं की माला से दीप्ति समन्वित, सहस्र और चक्षु स्वरूप वाले भगवान् के लिये नमस्कार है ॥ ८ ॥ समस्त दुष्टों के विनाश करने वाले, तथा सम्पूर्ण पातकों को मर्दन करने वाले, समस्त मन्त्रों को विशेष रूप से भेदन करने वाले, विभक्त एवं सुचक्र के लिये हमारा नमस्कार है ॥ ९ ॥ इस जगत् को प्रसून करने वाले, जगत् को धारण करने वाले और जगत् का विध्वंस करने वाले भगवान् सुदर्शन देव के लिये प्रणाम है। लोकों को पालन करने के हेतु अवतीर्ण होने वाले, और दुष्ट असुर के विनाश करने वाले मत्युग्र स्वरूप वाले तथा सौम्य स्वरूप से युक्त और चक्षु रूप वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है। ग्रहों को अभिभूत करने को ग्रहरूप वाले, ग्रहों के स्वामी श्री सुदर्शन देव के लिये नमस्कार है। वस्तु के स्वरूप वाले और संसार के भय को भेदन करने वाले देव के लिये नमस्कार है ॥१०॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ माया के पञ्जर को भेदन करने वाले और शिव स्वरूप वाले देव को नमस्कार है। काल रूप, मृत्यु, भीम स्वरूप वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है अपने भक्तों पर कृपा करने वाले, भक्तों की रक्षा करने वाले देव को बारम्बार नमस्कार है ॥ १३ ॥ विष्णु के सदृश स्वरूप वाले—परम शान्त, आयुधों के धारण करने वाले, विष्णु के शस्त्र स्वरूप सुदर्शन चक्र भगवान्

को पुनः पुनः नमस्कार है ॥ १४ ॥ यही सुदर्शन चक्र का महा स्तोत्र है जिसे आपके समक्ष में बता दिया गया है। जो इसको नित्य ही परम भक्ति भाव से पढ़ता है वह विष्णु लोक को चला जाता है ॥ १५ ॥ हे रुद्र! जो कोई भी जितेन्द्रिय होकर चक्र की पूजा विधि में पढ़ता है वह अपने सब पापों को भस्म करके विष्णु लोक की प्राप्ति किया करता है ॥१६॥

१२६—हयग्रीव पूजा विधान

पुनर्देवार्चनं ब्रूहि हृषीकेश गदाधर।
शृण्वतो नास्ति तृप्तिर्मे गदतस्तव पूजनम् ॥१
हयग्रीवस्य देवस्य पूजनं कथयामि ते।
तच्छृणुष्व जगन्नाथो येन विष्णुः प्रतुष्यति ।२
मूलमन्त्रं महादेव हयग्रीवस्य वाचकम्।
प्रवक्ष्यामि परं पुण्य तदादौ शृणु शङ्कर ।३
ॐ ह्रौ क्ष्रौ शिरसे नम इति प्रणवरायुत.।
अय नवाक्षरो मन्त्रः सर्व विद्याप्रदायक ॥४
अस्याङ्गानि महादेव तान् शृणुष्व वृषध्वज।
ॐ क्षां हृदयाय नम । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहायुक्तं शिरः,
प्रोक्तं क्षं वषट् तथा ॥५
ओंकारयुक्ता देवस्य शिखा ज्ञेया वृषध्वज।
ॐ क्षैं कवचाय हुं वं कवच परिकीर्त्तितम् ॥६
ॐ क्षौ नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्र देवस्य कीर्त्तितम्।
ॐ ह्र अस्त्राय फट् अस्त्र देवस्य कीर्त्तितम् ॥७

श्री रुद्र देव ने कहा—हे हृषीकेश! हे गदाधर! आप पुनः किसी देव के अर्चन के विषय में बतलाइये। मुझे अभी श्रवण करने से पूर्ण तृप्ति नहीं हुई है यद्यपि आपने सुदर्शन के पूजन करने का विधान कृपा करके मुझे बतला दिया है ॥१॥ भगवान् हरि ने कहा—अब हम आपको हयग्रीव देव के पूजन को बतलाते हैं उसको आप सुनें। इससे जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु परम प्रसन्न

होते हैं ॥ २ ॥ हे महादेव ! मूल मन्त्र ह्रौं हयग्रीव का वाचक है। मैं उसे बतलाता हूँ। यह परम पुण्यमय है। हे शङ्कर ! सबसे आरम्भ में इसका ही न्यास अवश्य करें ॥ ३ ॥ प्रणव (ओम्) से युक्त अर्थात् आदि में 'ॐ'—यह लगा कर "ह्रौं क्षीं शिरसे नमः" यह नौ अक्षरों वाला मन्त्र है जोकि समस्त विद्याओं के प्रदान करने वाला है ॥ ४ ॥ हे महादेव ! हे वृषध्वज ! इस मन्त्र के अङ्ग बताये जाते हैं उन्हें सुनो। न्यास इस प्रकार से हैं—ॐ क्षां हृदयाय नमः। ॐ क्षीं शिरसे स्वाहा ॐ क्षूं शिरसे वषट् ॥ ५ ॥ हे वृषध्वज ! हयग्रीव देव की शिखा ओंकार से युक्त जाननी चाहिए। ॐ क्षूं कवचाय हुम्—यह कवच कहा गया है ॥ ६ ॥ ॐ क्षौं नेत्र त्रयाय वौषट्—यह देव का नेत्र बताया गया है ॐ क्षः अस्त्राय फट्—यह देव का अस्त्र कीर्तित किया गया है ॥ ७ ॥

पूजाविधिं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु।
आदौस्नात्वा तथाचम्य ततो यागगृहं व्रजेत् ॥८
ततः प्रविश्य विधिवत् कुर्यादि शोषणादिकम्।
यं क्षों रमिति बीजैश्च कठिनीकृत्य लमिति ॥९
अण्डमुत्पाद्य च ततः ओंकारेणैव भेदयेत्।
अण्डमध्ये हयग्रीवमात्मानं परिचिन्तयेत् ॥१०
शङ्खकुन्देन्दुधवलं मृणालरजतप्रभम्।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम् ॥११
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालासमन्वितम्।
सुरक्तं सुकपोलञ्च पीताम्बरधरं विभुम् ॥१२
भावयित्वा महात्मानं सर्वदेवैः समन्वितम्।
अङ्गमन्त्रैस्ततो न्यासं मूलमन्त्रेण वै तथा ॥१३
ततश्च दर्शयेन्मुद्रां शङ्खपद्मादिकां शुभाम्।
ध्यायेद् ध्यात्वाऽर्चयेद्विष्णुं मूलमन्त्रेण शङ्कर ॥१४

अब मैं हयग्रीव पूजा का विधान बतलाता हूँ उसे मुझ से श्रवण करो। सब से आदि में स्नान करे फिर आचमन करे और इसके उपरान्त यागगृह में

जाना चाहिए ।८। फिर वहाँ प्रवेश करके विधिके साथ शोषण आदि कर्म करे। य क्षौ र —इन बीजो से कठिनी करण करके र इससे अण्ड का समुत्पादन करके फिर ओंकार से ही भेदन करना चाहिए। उस अण्ड के मध्य में हयग्रीव देव का और अपनी आत्मा का चिन्तन करे ॥ ९ ॥ १० ॥ हयग्रीव देव का स्वरूप ऐसा है जिसका कि ध्यान करना चाहिए। हयग्रीव का वर्ण शख— कुन्द पुष्प और चन्द्र के सदृश धवल है, मृणाल के पराग के तथा रजत के समान श्वेत है। शङ्ख–चक्र–गदा और पद्म इन चारो आयुधो के धारण करने वाले हैं–चार भुजाओ से संयुत हैं ॥ ११ ॥ किरीट और कुण्डलो के धारण करने वाले हैं तथा वनमाला से भूषित वक्षःस्थल वाले हैं। इनके कपोल रक्त वर्ण वाले हैं तथा पीताम्बर को पहिने हुए हैं ऐसे विभु का रूप है ॥ १२ ॥ समस्त देवगण से युक्त महान् आत्मा वाले प्रभु हयग्रीव हैं—ऐसा ही उनका ध्यान करना चाहिए। इसके पश्चात् अङ्ग मन्त्रो तथा मूल मन्त्र के द्वारा न्यास करे ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर शङ्ख–पद्म आदि शुभ मुद्राओ को दिखाकर ध्यान करे फिर हे शङ्कर ! मूल मन्त्र के द्वारा विष्णु का समर्चन करना चाहिए ॥ १४ ॥

ततश्चावाहयेद्रुद्र देवता आसनस्य याः ।
ॐ हयग्रीवासनस्य आगच्छत च देवताः ॥१५

आवाह्य मण्डले तास्तु पूजयेत्स्वस्तिकादिके ।
द्वारे धातुर्विधातुश्च पूजा कार्या वृषध्वज ॥१६

समस्तपरिवाराय अच्युताय नम इति ।
अस्य मध्येऽर्चनं कार्यं द्वारे गङ्गाञ्च पूजयेत् ॥१७

यमुनाञ्च महादेवी शङ्खपद्मनिधी तथा ।
गरुडं पूजयेदग्रे मध्ये शक्तिञ्च पूजयेत् ॥१८

आधाराख्या महादेव तत कूर्मं समर्चयेत् ।
अनन्त पृथिवी पश्चाद् धर्मज्ञानौ ततोऽर्चयेत् ॥
वैराग्यमथ चैश्वर्यमाग्नेयादिषु पूजयेत् ॥१९

अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यादींस्तु पूर्वत. ।
सत्त्व रजस्तमश्चैव मध्यदेशेऽथ पूजयेत् ॥२०
नन्दं नालञ्च पद्मञ्च मध्ये चैव प्रपूजयेत् ।
अर्कसोमाग्निसंज्ञानां मण्डलानां हि पूजनम् ॥
मध्यदेशे प्रकर्त्तव्यमिति रुद्र प्रकीर्त्तितम् ॥२१

इसके अनन्तर जो आसन के देवता हैं उनका आवाहन करना चाहिए। ॐ हयग्रीवासन के देवताओ आद्ये ॥ १५ ॥ उन सब देवगणों का आवाहन करके फिर स्वस्तिक आदि मण्डल में उन सबका पूजन करना चाहिए। हे वृष-ध्वज ! द्वार पर धाता और विधाता का यजन करे ॥ १६ ॥ समस्त परिवार वाले भगवान् अच्युत् के लिये नमस्कार है—इस अर्थ वाले मन्त्र के द्वारा इसके मध्य मे अर्चन करे और द्वार पर गङ्गा का पूजन करना चाहिए ॥ १७ ॥ महादेवी यमुना तथा शङ्ख-पद्म निधि और गरुड का आगे पूजन करे और मध्य में शक्ति का यजन करना चाहिए ॥ १८ ॥ हे महादेव ! आधाराहृव्या का यजन कर फिर कूर्म का समर्चन करे। अनन्त—पृथिवी के यजन के अनन्तर धर्म और ज्ञान का अर्चन करना चाहिए। आग्नेयादि दिशाओं मे वैराग्य एवं ऐश्वर्य का यजन करे ॥ १९ ॥ अधर्म–अज्ञान–अवैराग्य और अनैश्वर्य आदि का पूर्व मे यजन करे। इसके उपरान्त सत्त्व–रज और तम का मध्य देश मे पूजन करना चाहिए ॥ २० ॥ नन्द—नाल और पद्म को मध्य मे प्रपूजित करे। अर्क—सोम और अग्नि संज्ञा वाले मण्डलो का यजन करना चाहिए। हे रुद्र ! इन सबका पूजन मध्य देश मे ही करने का विधान बतलाया गया है ॥२१॥

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रियायोगे वृषध्वज ।
प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहाः शक्तयो ह्यमूः ॥२२
पूर्वादिषु च पत्रेषु पूज्याश्च विमलादयः ।
अनुग्रहा कर्णिकायां पूज्या श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ॥२३
प्रणवाद्यं नमोऽन्तैश्च चतुर्थ्यन्तैश्च नामभिः ।
मन्त्रैरेतैर्महादेव आसनं परिपूजयेत् ॥२४

स्नानगन्धप्रदानेन पुष्पधूपप्रदानतः ।
दीपनैवेद्यदानेन आसनस्यार्चनं शुभम् ॥२५

कर्त्तव्यं विधिनाऽनेन इति हर प्रकीर्त्तितम् ।
ततश्चावाहयेत् देवं हयग्रीवं सुरेश्वरम् ॥२६

वामनासापुटेनैव आगच्छन्तं विचिन्तयेत् ।
आगच्छतः प्रयोगेण मूलमन्त्रेण शङ्कर ॥२७

आवाहनं प्रकर्त्तव्य देवदेवस्य शङ्खिनः ।
आवाह्य मण्डले तस्य न्यासं कुर्यादतन्द्रितः ॥२८

हे वृषध्वज ! विमला—उत्कर्षिणी—ज्ञाना—क्रियायोग में प्राह्वी—सत्या—ईशाना और अनुग्रहा ये शक्तियाँ हैं । पूर्वादि दिशाओं में दलो मे इन उपर्युक्त विमला आदि शक्तियों का पूजन करना चाहिए । जो मनुष्य अपने परम श्रेय प्राप्त करने की कामना रखते हैं उनको अनुग्रह शक्ति का पद्म की कर्णिका मे यजन करना चाहिए । हे महादेव ! प्रणव आदि में और नमः—यह अन्त मे लगाकर नामो के आगे चतुर्थी विभक्ति जोड़कर इन्हीं मन्त्रो के द्वारा आसन का पूजन करे ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ स्नान—गन्ध प्रदान कर पुष्प—धूप प्रदान करे और फिर दीप तथा नैवेद्य के समर्पण के द्वारा आसन का शुभ अर्चन करे ॥ २५ ॥ हे हर ! इसी विधि से पूजन करे—यह सब कीर्त्तित कर दिया है । इस सबके करने के पश्चात् फिर सुरेश्वर भगवान् हयग्रीव देव का आवाहन करना चाहिए ॥ २६ ॥ वाम नासापुट के द्वारा ही आगमन करने वाले भगवान् का ध्यान करे । हे शङ्कर ! मूल मन्त्र के प्रयोग के द्वारा आते हुए शङ्खधारी देवों के देव का आवाहन करना चाहिए । आवाहन करके फिर आनन्दित होते हुए मण्डल मे उसका न्यास करे ।२७।।२८।

न्यासं कृत्वा च तत्रस्थं चिन्तयेत्परमेश्वरम् ।
हयग्रीव महादेव सुरासुरनमस्कृतम् ॥२९

इन्द्रादिलोकपालैश्च संयुत विष्णुमव्ययम् ।
ध्यात्वा प्रदर्शयेन्मुद्राः शङ्खनमादिकाः शुभाः ॥३०

पाद्यार्घाचमनीयानि ततो दद्याच्च विष्णवे।
स्नापयेच्च ततो देवं पद्मनाभमनामयम् ॥३१
देव संस्थाप्य विधिवद्वस्त्रं दद्याद् वृषध्वज।
ततो ह्याचमनं दद्यादुपवीतं ततः शुभम् ॥३२
ततश्च मण्डले रुद्र ध्यायेद्देवं परमेश्वरम्।
ध्यात्वा पाद्यादिकं भूयो दद्याद्देवाय शङ्कर ॥३३
दद्याद् भैरवदेवाय मूलमन्त्रेण शङ्कर।
ॐ क्षां हृदयाय नम अनेन हृदयं यजेत् ॥३४
ॐ क्षीं शिरसे नमश्च शिरसः पूजनं भवेत्।
ॐ क्षूं शिखायै नमश्च शिखामनेन पूजयेत् ॥३५
ॐ क्षैं कवचाय नमः कवचं परिपूजयेत्।
ॐ क्षौं नेत्राय नमश्च नेत्रञ्चानेन पूजयेत् ॥३६
ॐ क्षः अस्त्राय नम इति अस्त्रञ्चानेन पूजयेत्।
हृदयञ्च शिरश्चैव शिखाञ्च कवचं तथा ॥३७
पूर्वादिषु प्रदेशेषु ह्येतांस्तु परिपूजयेत्।
कोणेष्वस्त्रं यजेद्रुद्र नेत्रं मध्ये प्रपूजयेत् ॥३८

वहाँ पर संस्थित देव का ध्यान करके महान् देव सुरों के स्वामी एवं सुरासुरों के द्वारा वन्दित परमेश्वर हयग्रीव का ध्यान करे ॥ २९ ॥ भगवान् हयग्रीव शङ्ख आदि सौम्य चिन्हों से समन्वित एवं अव्यय स्वरूप वाले विष्णु हैं—ऐसा ध्यान करके शङ्ख चक्र आदि परम शुभ मुद्राओं को दिखलावे ॥३०॥ फिर विष्णु के लिये पाद्य अर्घ्य और आचमनीय समर्पित करे। इसके उपरान्त आमय से रहित पद्म नाभ देव का स्नापन कराना चाहिए ॥ ३१ ॥ हे वृष-ध्वज ! इस प्रकार से विधि के सहित देव की संस्थापना करके वस्त्र देवे। फिर आचमन और इसके पश्चात् उपवीत समर्पित करे ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त मण्डल में परमेश्वर रुद्र देव का ध्यान करना चाहिए। ध्यान के पश्चात् हे शङ्कर ! फिर देव के लिये पाद्यादिक का समर्पण करे ॥ ३३ ॥ हे शङ्कर ! मूल मन्त्र के द्वारा भैरव देव के लिये देवे। " ॐ क्षां हृदयाय नम " इस मन्त्र

हृदय मे यजन करे ॥ ३४ ॥ "ॐ क्षी शिरसे नम "—इस से शिर का
जन होता है। " ॐ क्षू शिखायै नम "—इस मन्त्र के द्वारा शिखा का
जन करे ॥ ३५ ॥ "ॐ क्षैं कवचाय नम "—इससे कवच को पूजे। "ॐ
ौं नेत्राय नम "—इससे नेत्र का पूजन करे ॥ ३६ ॥ "ॐ क्ष अस्त्राय
म "—इसस अस्त्र का यजन करे। हृदय—शिर—शिखा तथा कवच इनका
वं आदि प्रदेशो मे परिपूजन करना चाहिए। हे रुद्र! कोणो मे अस्त्र का और
मध्य म नेत्र का पूजन करे ॥३७॥३८॥

पूजयेत्परमा देवी लक्ष्मी लक्ष्मीप्रदा शुभाम् ।
शङ्ख पद्म तथा चक्र गदा पूर्वादितोऽर्चयेत् ॥३९
खड्गञ्च मुशल पाशमकुश सशर धनु ।
पूजयेत् पूर्वतो रुद्र एभिमन्त्रं स्वनामकै ॥४०
श्रीवत्स कौस्तुभ माला तथा पीताम्बर शुभम् ।
पूजयेत्पूर्वतो रुद्र शङ्खचक्रगदाधरम् ॥४१
ब्रह्माण नारद सिद्ध गुरु परगुरु तथा ।
गुरोश्च पादुके तद्वत्परमस्य गुरोस्तथा ॥४२
इन्द्र सवाहन वाथ परिवारयुत तथा ।
अग्नि यम निर्ऋतिञ्च वरुण वायुमेव च ॥४३
सोममीशाननागञ्च ब्रह्माण परिपूजयेत् ।
पूर्वादि चोर्ध्वपर्यन्त पूजयेद् वृषभध्वज ॥४४
वज्र शक्ति तथा दण्ड खड्ग पाश ध्वज गदाम् ।
त्रिशूलचक्रपद्मं च आयुधान्यथ पूजयेत् ॥४५
विष्वक्सेन ततो देवमैशान्या दिशि पूजयेत् ।
एभिर्मन्त्रैर्नमोऽन्तैश्च प्रणवाद्यै वृषध्वज ॥४६
पूजा कार्या महादेव ह्यनन्तस्य वृषध्वज ।
देवस्य मूलमन्त्रेण पूजा कार्या वृषध्वज ।
गन्ध पुष्प तथा धूप दीप नैवेद्यमव च ॥४७

लक्ष्मी के प्रदान करने वाली परम शुभा देवी लक्ष्मी का पूजन करे और
पूर्वादि में शंख, पद्म, गदा और चक्र का यजन करना चाहिए ॥३९॥ हे रुद्र!

खड्ग, मुशल, पाश, अंकुश, शर सहित धनुष इनका अपने नाम वाले इन मन्त्रों से पूर्व में पूजन करे ॥४०॥ श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, शुभ पीताम्बर और शंख, चक्र, गदाधर का पूर्व में पूजन करे ॥४१॥ ब्रह्मा, नारद, सिद्ध, गुरु, परगुरु, गुरु की पादुकाऐं और इसी भाँति परम गुरु की पादुकाऐं, सवाहन इन्द्र जो कि अपने सम्पूर्ण परिवार से समन्वित हो, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, नाग और ब्रह्मा का पूजन करना चाहिए। हे वृषध्वज ! पूर्व आदि दिशा से ऊर्ध्व पर्यन्त पूजन करे ॥४२॥४३॥४४॥ वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश ध्वज, गदा, त्रिशूल, चक्र, पद्म इन समस्त वरायुधों का यजन करना चाहिए ॥४५॥ इसके उपरान्त ऐशानी दिशा में विष्वक्सेन देव का पूजन करे। हे वृषध्वज ! इन मन्त्रों से जिनके आदि में 'ॐ' और अन्त में 'नमः'—इसको संयुक्त करके करे। हे महादेव ! भगवान् अनन्त की पूजा करनी चाहिए। देव की मूल मन्त्र के द्वारा ही पूजा करे। पूजा में गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य समर्पित करे ॥४६॥४७॥

प्रदक्षिणं नमस्कारं जप्यं तस्मै समर्पयेत् ।
स्तुवीत चानया स्तुत्या प्रणवाद्यं वृषध्वज ॥४८
ॐ नमो हयशिरसे विद्याध्यक्षाय वै नम ।
नमो विद्यास्वरूपाय विद्यादात्रे नमो नम. ॥४९
नम शान्ताय देवाय त्रिगुणायात्मने नमः ।
सुरासुरनिहन्त्रे च सर्वदुष्टविनाशिने ॥५०
सर्व लोकाधिपतये ब्रह्मरूपाय वै नमः ।
नमश्चेश्वरवन्द्याय शङ्खचक्रधराय च ॥५१
नम आद्याय दान्ताय सर्वसत्त्वहिताय च ।
त्रिगुणायागुणायैव ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणे ।
कर्त्रे हर्त्रे सुरेशाय सर्वगाय नमो नम ॥५२
इत्येवं संस्तव कृत्वा देवदेवं विचिन्तयेत ।
हृत्पद्मे विमले रुद्र शङ्खचक्रगदाधरम् ॥५३

ॐ हां आत्मतत्त्वाय विद्यातत्त्वाय ह्रीं तथा ।
ॐ हूँ शिवतत्त्वाय स्वाहा हृदा स्यात् श्रोत्रवन्दनम् ॥२
भस्मस्नानं तर्पणञ्च ॐ हां यां स्वाहा सर्वमन्त्रकाः ।
सर्वे देवाः सर्वमुनिर्नमोऽन्तो वौषडन्तकः ।
स्वधान्ताः सर्वपितरः स्वधान्ताश्च पितामहाः ॥३
ॐ हां प्रपितामहेभ्यस्तथा मातामहादयः ।
हां नमः सर्वमातृभ्यस्ततः स्यात्प्राणसंयमः ॥४
आचाम मार्जनञ्चाथो गायत्रीञ्च जपेत्ततः ।
ॐ हां तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि तन्नो रुद्र
प्रचोदयात् ॥५
सूर्य्योपस्थापनं कृत्वा सूर्य्यमन्त्रैः प्रपूजयेत् ।
ॐ हां ह्रीं हूं हैं ह्रौं हः शिवसूर्य्याय नमः ।
ॐ हं खखोल्काय सूर्य्यमूर्त्तये नमः ।
ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्य्याय नमः ।
दण्डिने पिङ्गले त्वतिभूतानि नियमं स्मरेत् ।
अग्न्यादौ विमलेशानमाराध्य परमं सुखम् ॥६
यजेत्पद्माञ्च रां दीप्तां रीं सूक्ष्मां रूं जयाञ्च रें ।
भद्राञ्च रैं विभूतिं रों विमलां रौममोधिकाम् ॥७
रं विद्युताञ्च पूर्वाद्यौ रो मध्ये रं सर्वतोमुखीम् ।
अर्कासन सूर्य्यमूर्त्ति ह्रां ह्रूं सः सूर्य्यमर्च्चयेत् ॥८

श्री सूतजी ने कहा—हम अब धर्म कामादि का साधन स्वरूप भगवान् शिव का अर्चन बतलाते हैं। प्रथम आदि में और अन्त में स्वाहा संयुक्त करके तीन मन्त्रों से आचमन करना चाहिए ॥१॥ ॐ हां आत्म तत्त्वाय स्वाहा—ॐ ह्रीं विद्या तत्त्वाय स्वाहा—ॐ हूं शिव तत्त्वाय स्वाहा—इन मंत्रों के द्वारा हृदय से श्रोत्र वन्दन करे ॥२॥ ॐ हां यां स्वाहा—ये सभी मन्त्र हैं। इनसे भस्म स्नान और तर्पण करे। वौषट् अन्त में लगाकर तथा नमः—इसे संयुक्त करके समस्त देवगण, सब मुनिगण को नमस्कार करना चाहिए। समस्त पितरों

को स्वधा अन्त मे लगाकर तथा पितामहों को भी स्वधा अन्त मे लगाकर नम-स्कार करना चाहिए ॥३॥ ॐ हा प्रपिता महेभ्य.—इस मन्त्र से तथा इसी प्रकार मातामहादिक को हा नम ' इस मन्त्र से सब माताओं के लिये प्रणाम करे। इसके अनन्तर प्राणो का सयम करना चाहिए ॥४॥ आचमन, मार्जन, और इसके अनन्तर गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए। यह गायत्री मन्त्र निम्नलिखित है—"ॐ हा तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्"—यह गायत्री का स्वरूप है ॥५॥ फिर सूर्य का उपस्थान करके सूर्य मन्त्रों के द्वारा पूजन करना चाहिए। ये मन्त्र ये हैं—'ॐ हा ही हू है हौ ह शिव सूर्याय नमः। ॐ ह खखोल्काय सूर्य मूर्तये नम.। ॐ ह्रा ह्रो सः सूर्याय नम.'। इन्ही मन्त्रो के द्वारा यजन करे। दण्डी के लिये पिङ्गल मे अनि-भूत निर्गम का स्मरण करे। अग्नि आदि दिशा मे परम शुभ स्वरूप विमलेशान की समाराधना करे ॥६॥ फिर रा पद्मा का—री दीप्ता को—रु सूक्ष्मा को—ः जया को—रैं भद्रा को—रो विभूति को—रौ अमोघिका विमला को—र विद्युता को पूजित करे और पूर्वादि मे इसका यजन करना चाहिए। मध्य मे 'रो' और 'र' को सर्वतोमुखी का यजन करे। अर्क का आसन और सूर्य की मूर्ति का तथा 'हा ह्र स.' इससे सूर्य का अर्चन करना चाहिये ॥७।८॥

ॐ आ हृदयार्काय च शिर शिखाय च भूर्भुवः स्वरोम् ॥९

ज्वालिनी हू कवचस्य चास्त्र राज्ञीश्च दीक्षिताम् ।
यजेत्सूर्य्यंहृदा सर्वान्सो साम मन्त्र मङ्गराम् ॥१०

व बुध वृ बृहस्पति भ भार्गव श शनैश्चरम् ।
र राहु क यजेत् केतु ॐ तेजश्चण्डमर्च्चयेत् ॥११

सूर्य्यमभ्यर्च्य चाचम्य कनिष्ठातोऽङ्गकान्न्यसेत् ।
हा हो शिरो हू शिखा हैं वर्म्म हौं च नेत्रकम् ।
होऽस्त्र शक्तिस्थिति कृत्वा भूतशुद्धि पुनर्न्यसेत् ॥१२

अर्घ्यपात्र तत कृत्वा तदद्भि प्रोक्षयेद् यजेत् ।
आत्मान पञ्चसस्यञ्च हो शिवाय तना बहि ॥१३

द्वारे नन्दिमहाकालौ गङ्गा च यमुनाऽथ गीः ।
श्रीवत्स वास्त्वधिपति ब्रह्माणञ्च गणं गुरुम् ॥१४
शक्तयनन्तौ यजेन्मध्ये पूर्वादौ धर्मकादिकम् ।
अधर्माद्यश्च वह्न्यादौ मध्ये पद्मस्य कर्णिके ।
वामा ज्येष्ठा च पूर्वादौ रौद्री काली शिवा सिता ॥१५

'ॐ हृदयायापि च शिरः शिखाय च भूर्भुवः स्वरोम्"—यह मन्त्र का स्वरूप है । ज्वालिनी हूं—कवच का और दीक्षिता राज्ञी—अस्त्र यजन करे । सूं हृदय से सों सोम का, भं मङ्गल का, बं बुध का, बृं बृहस्पति का, भं भार्गव (शुक्र) का, शं शनैश्चर का, रं राहु का, कं केतु का और ॐ तेजः इस प्रकार से सबका यजन करना चाहिए ॥९॥१०॥११॥ इस विधि से सूर्यदेव की अभ्यर्चना करके आचमन करे और फिर कनिष्ठा से अङ्गों का न्यास करे । हां हीं शिर का, हुं शिखा का, हैं वर्म का, हौं नेत्र का, हः अस्त्र का न्यास करके शक्ति की स्थिति करे और फिर भूत शुद्धि का न्यास करना चाहिए ॥१२॥ इसके अनन्तर अर्घ्य का पात्र करके उसके जलों से प्रोक्षण करे तथा यजन करे । पद्म पर संस्थित आत्मा का और फिर बाहिर हौं शिवाय इससे यजन करे । द्वार में नन्दी और महाकाल, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, श्री वत्स, वास्तुका अधिपति, ब्रह्मा, गण, गुरु, शक्ति—अनन्त इन सबका यजन करना चाहिए । मध्य में पूर्वादि दिशा में धर्मादिका, वह्नि आदि दिशा में अधर्म आदि का, पद्म की कर्णिका के मध्य में वामा, ज्येष्ठा तथा पूर्वा आदि दिशा में काली, शिवा, सिता का यजन करे ॥१३॥१४॥१५॥

ॐ ह्रौं कलविकरिण्यै बलविकरिणी ततः ।
बलप्रमथिनी सर्वभूतानां दमनी ततः ॥१६
मनोन्मनी यजेदेता. पीठमध्ये शिवाग्रतः ।
शिवासनमहामूर्तिं मूर्तिमध्ये शिवाय च ॥१७
आवाहनं स्थापनञ्च सन्निधानं निरोधनम् ।
सकलीकरणं मुद्रादर्शनं चार्घ्यपाद्यकम् ॥१८
आचामाभ्यङ्गमुद्वर्त्तं स्नानं निर्मञ्छनं चरेत् ।
वस्त्रं विलेपनं पुष्पं धूपं दीपं चरुं ददेत् ॥१९

आचामं मुखवासञ्च ताम्बूलं हस्तशोधनम् ।
छत्रचामरोपवीत परमीकरणं चरेत् ॥२०
रूपकल्पनकैकत्वे जपो जपसमर्पणम् ।
स्तुतिर्नतिहृं दाद्यंश्च ज्ञेयं नामाङ्गपूजनम् ॥२१
अग्नीश रक्षो वायव्ये मध्ये पूर्वादितन्त्रकम् ।
इन्द्रादयांश्च यजेच्चण्डं तस्मै निर्माल्यमर्पयेत् ॥२२

"ॐ ह्रीं कलविकरिण्यै"—इस मन्त्र से कलविकरिणी—बल विकरिणी—फिर बल प्रमथिनी और सर्व भूतों की दमनी तथा मनोन्मनी का यजन करे। इन सबका पीठ के मध्य मे शिव के ही आगे करे। मूर्ति के मध्य मे शिवासन महामूर्ति का शिव के लिये आवाहन, स्थापन, सन्निधान, निरोधन, सकलीकरण, मुद्राओं का दर्शन और अर्घ्य तथा पाद्य करे ॥१६।१७।१८॥ फिर आचमन, अभ्यंग, उद्वर्तन, स्नान और निर्मञ्छन करना चाहिये। इसके अनन्तर वस्त्र, विलेपन, पुष्प, धूप, दीप और चरु समर्पित करे ॥१९॥ आचमन, मुखवास, ताम्बूल, हाथों को शोधन, छत्र, चामर, उपवीत और परमीकरण करे ॥२०॥ रूप की कल्पना के एकत्व मे जप करे तथा उस जाप को समर्पित करे। स्तुति, नमस्कार और हृदाद्य के द्वारा नामाङ्ग पूजन करे ॥२१॥ अग्नि, ईशान, नैऋत्य, वायव्य, पूर्व आदि तन्त्र से इन्द्रादि का यजन करे अर्थात् समस्त दिक्पालों का अपनी-अपनी दिशा के अनुसार पूजन करना चाहिए। चण्ड का यजन कर उसके लिये निर्माल्य का समर्पण करे ॥२२॥

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिते ॥२३
यत्किञ्चित् कर्म हे देव सदा सुष्कृतदुष्कृतम् ।
तन्मे शिवपदस्थस्य क्षयं कुरु यशस्कर ॥२४
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ।
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च ॥२५
यत् कृतं यत् करिष्यामि तत् सर्वं सुकृतं तव ।
त्वं त्राता विश्वनेता च नान्यो नाथोऽस्ति मे शिव ॥२६

अथान्येन प्रकारेण शिवपूजा वदाम्यहम् ।
गण सरस्वती नन्दी महाकालोऽथ गङ्गया ॥२७
यमुना तु वास्त्वधिपो द्वारि पूर्वादितस्त्विमे ।
इन्द्रादयाः पूजनीयाश्च तत्त्वानि पृथिवी जलम् ॥२८
तेजो वायुर्व्योमगन्धौ रसरूपे च शब्दक ।
स्पर्शो वाक् पाणिपादौ च पायूपस्थ श्र तित्वचौ ॥२९
चक्षुर्जिह्वा घ्राणमनोबुद्धिश्चाहं प्रकृत्यपि ।
पुमान् रागो द्वेषविद्ये कालाकालौ नियत्यपि ॥३०
माया च शुद्धविद्या च ईश्वरश्च सदाशिव ।
शक्ति शिवश्च तान् ज्ञात्वा मुक्तो ज्ञानी शिवो भवेत् ॥३१
य शिव स हरिर्ब्रह्मा सोऽहं ब्रह्मास्मि मुक्तित ॥३२

इसके अनन्तर प्रार्थना करे, आप गुह्यातिगुह्य के रक्षा करने वाले हैं। आप मेरे द्वारा किये हुए जाप को अङ्गीकार करें। हे देव ! आपके यहाँ संस्थित होने पर आपके प्रसाद से मुझे सिद्धि हो जावे ॥२३॥ हे देव ! जो कुछ भी दुष्कृत से भी दुष्कृत सदा मैंने किया है, हे शङ्कर ! उस मेरे सबको क्षीण कर दीजिये क्योंकि इस समय से मैं आपके चरणों की शरण में स्थित हूँ ॥२४॥ भगवान् शिव दाता हैं, शिव ही सबका भोग करने वाले हैं, यह सम्पूर्ण जगत् भी शिव का ही स्वरूप है शिव की सर्वत्र जय होती है, जो शिव है वही मैं हूँ ॥२५॥ जो कुछ मैंने किया और जो कुछ भी भविष्य में करूँगा वह सभी आपका ही सुकृत है। आप ही त्राण करने वाले हैं और इस विश्व के नायक हैं। हे शिव ! मेरा अन्य कोई नाथ नहीं है ॥२६॥ इसके अनन्तर अब अन्य प्रकार से शिव की पूजा को बतलाते हैं। गण सरस्वती, नन्दी, महाकाल, गङ्गा, यमुना, वास्त्वधिप इन सबका द्वार पर पूर्वादि दिशा के क्रम से यजन करे। इन्द्र आदि का भी पूजन करना चाहिए। तत्त्वों को बतलाते हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, व्योम, गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ, श्रुति, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, मन, बुद्धि, अहङ्कार, प्रकृति ये चौबीस तत्त्व हैं। पुमान्, राग-द्वेष, विद्या, कालाकाल, नियति, माया, शुद्ध विद्या,

ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव उनको जानकर मुक्त ज्ञानी शिव होता है। जो शिव है वही हरि और ब्रह्मा है। मुक्ति के प्राप्त होने से वह मैं भी ब्रह्म हूँ ॥२७ से ३२॥

भूतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि यया शुद्धः शिवो भवेत् ।
हृत्पद्म सद्यो मन्त्रः स्यान्निवृत्तिश्च कला इड़ा ॥३३
पिङ्गला द्वे च नाड्यौ च प्राणोऽपानश्च मारुतौ ।
इन्द्रदेहो ब्रह्मदेहश्चतुरस्रञ्च मण्डलम् ॥३४
वज्रेण लाञ्छितं दीप्तमेकोद्घातगुणाः शराः ।
हृत्स्थानसातूणहर्न शतकोष्ठप्रविस्तरम् ॥३५
ॐ ह्रीं प्रतिष्ठायै हुं हः फट् ॐ ह्रं विधायै ह्र हः फट् ।
चतुरशीतिकोटीनामुच्छ्रयं भूमितन्त्रकम् ।
तन्मध्ये भववृक्षञ्च आत्मानञ्च विचिन्तयेत् ॥३६

अब मैं भूतशुद्धि को बतलाता हूँ जिसके द्वारा शुद्ध होकर शिव हो जाता है। हृदय कमल, सद्योमन्त्र निवृत्ति होती है। कलाइडा और पिङ्गला ये दो नाड़ी हैं, प्राण और अपान दो मारुत हैं, इन्द्र देह और ब्रह्म देह यह चतुरस्र मण्डल हैं ॥३३।३४॥ वज्र से लाञ्छित और दीप्त है, एकोद्घात गुण वाले शर हैं, हृत्स्थान सातूणहन शतकोष्ठ विस्तार वाला है ॥३५॥ "ॐ ह्रीं प्रतिष्ठायै हुं हः फट् ॐ ह्रं विधायै ह्र हः फट्"—यह मन्त्र का स्वरूप है। चौरासी करोड़ों का उच्छ्रय भूमि तन्त्र है। उसके मध्य में इस संसार के वृक्ष को और अपने आपको चिन्तन करे अर्थात् ध्यान करना चाहिए ॥३६॥

अधोमुखी तत पृथ्वी तत्तत् शुद्धं भवेद् ध्रुवम् ।
वामादेवो प्रतिष्ठा च सुषुम्ना धारिका तथा ॥३७
समानोदानवरुणौ देवता विष्णुकारणम् ।
उद्घाताश्च गुणं वेदाः श्वेता ध्यानं तथैव च ॥३८
एवं कुर्यात्कण्ठपद्ममर्द्धं चन्द्राख्यमण्डलम् ।
पद्माङ्कितं द्विशतक कोटिविस्तीर्णवान्स्मरेत् ॥३९

चतुर्नवत्युच्छ्रयञ्च आत्मानञ्च ह्यधोमुखम् ।
तासु स्थानञ्च पद्मञ्च अघोरो विद्ययान्वितः ॥४०

इसके अनन्तर इस पृथ्वी को नीचे की ओर मुख वाली देखे तो वह सभी शुद्ध हो जाता है। वामा देवी—प्रतिष्ठा, सुषुम्ना तथा धारिका, समानोदान और वरुण दो देवता हैं, विष्णु कारण, उद्धता और गुण है तथा वेद श्वेत हैं—इसी प्रकार का ध्यान करना चाहिए ॥३७।३८॥ इस प्रकार से कण्ठ पद्म को अर्ध चन्द्राख्य मण्डल ध्यान करे। पद्म से अङ्कित दो सौ करोड़ विस्तार वाला स्मरण करे ॥ ३९ ॥ चौरानवे उच्छ्रय वाली और नीचे की ओर मुख वाली आत्मा को ध्यान मे करे। उनमें स्थान और पद्म है तथा विद्या से समन्वित अघोर है ॥४०॥

नाभ्योष्ठया हस्तिजिह्वा व्यानो नागोऽग्निदेवता ।
रुद्रहेतुस्त्रिरुद्धातास्त्रिगुणा रक्तवर्णकम् ॥४१
ज्वालाकृते त्रिकोणञ्च चतुःकोटिशतानि च ।
विस्तीर्णञ्चसमुत्सेध रुद्रतत्त्व विचिन्तयेत् ॥४२
ललाटे तु तत्पुरुष शक्तिर्यः शाद्वलं बुधाः ।
कूर्मश्च कृकरो वायुर्देव ईश्वरकारणम् ॥४३
द्विरुद्धातगुणो द्वौ च वृपं षट्कोणमण्डलम् ।
बिन्दुङ्कितञ्चाष्टकोटिविस्तीर्णञ्चोच्छ्रयस्तथा ।
चतुर्दशाधिक कोटि वायुतत्त्वं विचिन्तयेत् ॥४४
द्वादशान्ते सरसिजे शान्त्यतीतास्तथेश्वराः ।
कुहुश्च शङ्खिनी नाड्यो देवदत्तो धनञ्जयः ॥४५
शिखेशानकारणञ्च सदाशिव इति स्मृतः ।
गुणे एकस्तयोद्धातं शुद्धस्फटिकवत् स्मरेत् ॥४६
षोडश कोटिविस्तीर्णं पञ्चविंशति चोच्छ्रयम् ।
वर्त्तुलं चिन्तयेद्धाम भूतशुद्धिरुदाहृता ॥४७
गणगुर्वीजगुरुः शक्त्यनन्तो च धर्मक- ।
ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यस्ततः पूर्वादिपत्रके ॥४८

अधोर्द्ध वदने द्वे च पद्मकर्णिककेशरम् ।
वामाद्या आत्मविद्या च सदा ध्यायेत् शिवाख्यकम् ।
तत्त्वं शिवासने मूर्तिर्ह्रौं ह्रौं विद्यादेहाय नमः ।।४६

नाभि भोष्ठ से युक्त हस्ति जिह्वा, व्यान, नाग, अग्नि देवता, रुद्रहेतु, तीन उद्धाता, तीन गुण, रक्त वर्ण, ज्वालाकृत में त्रिकोण और चार सौ करोड विस्तार वाला समुत्सेध है—ऐसा रुद्र तत्त्व है यह ध्यान करे ।।४१।४२। ललाट मे तत्पुरुष शक्ति है जो बुधों के द्वारा शाब्दल कही जाती है । कूर्म और कृकर नाम वाली वायु है तथा ईश्वर कारण देव है ।।४३।। दो उद्धात गुण हैं और दो वृष हैं, षट्कोण वाला मण्डल है । विन्दु से अङ्कित आठ करोड़ विस्तार से युक्त उच्छ्रय है । इस प्रकार से चौदह करोड अधिक वायु तत्त्व का विचिन्तन करना चाहिए ।।४४।। द्वादशान्त कमल में शान्ति से भी अतीत ईश्वर हैं । कुहू और शङ्खिनी नाड़ियाँ हैं । देवदत्त और धनञ्जय नाम वाले वायु हैं । शिखेशान कारण सदा शिव कहे गये हैं । गुण मे एक उद्धात शुद्ध स्फटिक मणि के समान उनका स्मरण करना चाहिए ।।४५।४६।। सोलह करोड़ विस्तार से युक्त, पचीस उच्छ्रय वाला और वर्तुलाकार वह धाम है—ऐसा ध्यान करना चाहिए । यह भूत शुद्धि बतला दी गई है ।।४७।। गण गुरु, बीज गुरु, शक्ति अनन्त, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यों के सहित पूर्वादि पत्रो मे दो अधोवदन और ऊर्ध्ववदन, पद्म, कर्णिका, केशर, वामा आदि और आत्मविद्या यह सब शिव नाम वाले हैं इनका सदा ध्यान करना चाहिए । शिवासन पर तत्त्व मूर्त्ति है । उसका "ह्रौं ह्रौं विद्यादेहाय नमः"—यह मनन का स्वरूप है ।।४८।४६।।

बद्धपद्मासनासीनः सितः षोडशवर्षकः ।
पञ्चवक्त्रः कराग्रैः स्वैर्दशभिश्चैव धारयन् ।।५०
अभयप्रसादशक्ति शूलं खट्वाङ्गमीश्वरः ।
दक्षैः करैर्वामकैश्च भुजगञ्चाक्षसूत्रकम् ।
डमरुकं नीलोत्पलं बीजपूरकमुत्तमम् ।।५१
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिस्त्रिनेत्रो हि सदाशिवः ।
एवं शिवार्च्चनध्यानी सर्वदा कालवर्जितः ।।५२

द्वाहोरात्रिचारेण त्रीणि-वर्षाणि जीवति।
दिनद्वयस्य चारेण जीवेद्वपद्वय नर ॥५३
दिनत्रयस्य चारेण वर्षमेक स जीवति।
नाकाले शीतले मृत्युरुष्णे चैव तु कारके ॥५४

सदाशिव भगवान् का स्वरूप इस प्रकार का है। पद्मासन बाँधकर बैठे हुए है, सित वर्ण है और सोलह वर्ष की आयु है। पाँच मुख हैं, अपने दश करो के अग्र भागो म विभिन्न आयुधो को धारण किये हुए हैं ॥५०॥ दाहिने भाग के हाथों मे अभय दान—प्रसाद—शक्ति—शूल और खड्वाङ्ग ईश्वर ने धारण कर रक्खे हैं। तथा वाम भाग के करो मे भुजग—अक्षसूत्र—डमरू—नीलोत्पल और उत्तम बीज पूरक धारण करने वाले हैं ॥५१॥ भगवान् सदाशिव इच्छा, ज्ञान और क्रिया की शक्ति से सम्पन्न हैं तथा तीन नेत्रो से युक्त है। इस प्रकार से शिव की अर्चना और उनका ध्यान करने वाला पुरुष सर्वदा ही काल से वर्जित रहता है ॥५२॥ यहाँ अहोरात्र के चार से मनुष्य तीन वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है। दो दिन के चार से दो वर्ष और तीन दिन के चार से एक वर्ष जीवित रहता है। अकाल—शीतल और उष्णकाल में मृत्यु नही होती है ॥ ५३॥५४ ॥

१२९-शिवजी की पवित्रारोहण विधि

पवित्रारोहण वक्ष्ये शिवस्याशिवनाशनम्।
आचार्य्य साधक कुर्य्यात्पुत्रक समयो हर ॥१
संवत्सरकृता पूजा विघ्नेशो हरतेऽन्यथा।
आषाढे श्रावणे माघे कुर्य्याद्भाद्रपदेऽपि वा ॥२
सौवर्णरौप्यताम्रश्च सूत्र कार्पासिक क्रमात्।
क्षौम कृतादौ सगृह्य कन्यया कर्त्तितश्च यत् ॥३
त्रिगुण त्रिगुणीकृत्य तत कुर्य्यात्पवित्रकम्।
ग्रन्थयो वामदेवेन सत्येन क्षालयेच्छिद्र ॥४
अघोरेण तु सशोध्य बद्धस्तत्पुरुषाद्भवेत्।
धूपयेदीशमन्त्रेण तन्तुदेवा इति स्मृता. ॥५

ओंकारश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नाग शिखिध्वज. ।
रविर्विष्णु शिव. प्रोक्तः क्रमात्तन्तुषु देवताः ॥६
अष्टोत्तरशत कुर्यात्पञ्चाशत्पञ्चविंशतिम् ।
रुद्रोऽहन्तमादि विज्ञेय मानञ्च ग्रन्थयो दश ॥७

श्री हरि ने कहा—अब पवित्रारोहण के विषय में बतलाते हैं जोकि सब के आशिव (अमङ्गल) को नाश करने वाला है। हे हर! साधना करने वाला आचार्य को करना चाहिए। समय पर पुत्र को करना चाहिए ॥ १ ॥ अन्यथा विघ्नों के ईश संवत्सर में की हुई पूजा का हरण कर लिया करते हैं। आषाढ—श्रावण—माघ अथवा भाद्रपद मास में यह कर्म करना चाहिए ॥ २ ॥ सुवर्ण से निर्मित, चाँदी का बनाया हुआ, ताम्र से विरचित सूत्र हो या क्रम से कपास के द्वारा इसका निर्माण कराया जावे। कुशादि में सग्रह करके रक्खे और यह किसी कन्या के द्वारा काता हुआ होना चाहिए ॥ ३ ॥ पहिले इस सूत्र को तीन गुना करे और फिर उसे त्रिगुणित करके पवित्रा की रचना करनी चाहिए। वामदेव मन्त्र से उसकी ग्रन्थियाँ लगावे तथा सत्य के द्वारा हे शिव! उसका क्षालन करे ॥ ४ ॥ अघोर मन्त्र से इसका सशोधन करके तत्पुरुष से बद्ध करे। ईश मन्त्र से इसको धूप देवे। ये तन्तु देव कहे गये है ॥ ५ ॥ इन तन्तुओं के ओंकार—चन्द्रमा—वह्नि—ब्रह्मा—नाग—शिखिध्वज-रवि—विष्णु—शिव ये क्रम से देवता होते हैं ॥ ६ ॥ अष्टोत्तर शत—पचास या पचीस बनावे। मैं रुद्र हूँ, उसको आदि जाने तथा उसका मान भी जानना चाहिए, ग्रन्थियाँ दश होती हैं ॥७॥

चतुरंगुलान्तरालाः स्युर्ग्रन्थिनामानि च क्रमात् ।
प्रकृतिः पौरुषी वीरा चतुर्थी चापराजिता ॥८
जया च विजया रुद्रा अजिता च सदाशिव ।
मनोन्मनी सर्वमुखी द्व्यंगुलागुलतोऽथवा ॥९
रञ्जयेत् कुंकुमाद्यैस्तु कुर्य्यादगन्धैः पवित्रकम् ।
सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां शुक्लपक्षे तथेतरे ॥१०

क्षीरादिभिश्च संस्नाप्य लिङ्गं गन्धादिभिर्यजेत् ।
दद्याद्गन्धपवित्रन्तु आत्मने ब्रह्मणे हर ॥११
पुष्पं गन्धयुतं दद्यान्मूलेनेशानगोचरे ।
पूर्वे च दण्डकाष्ठन्तु उत्तरे चामलकीफलम् ॥१२
मृत्तिका पश्चिमे दद्याद्दक्षिणे भस्मभूतयः ।
नैर्ऋते ह्यगुरु दद्याच्छिखामन्त्रेण मन्त्रवित् ॥
वायव्यां सर्षपं दद्यात्कवचेन वृषध्वज ॥१३
गृहं सवेष्ट्य सूत्रेण दद्याद्गन्धपवित्रकम् ।
होमं कृत्वाऽग्नये दत्वा दद्याद्भूतबलिं तथा ॥१४

इन ग्रन्थियों में चार अगुल का अन्तर रहना चाहिए क्रम से ग्रन्थियों के नाम ये होते हैं—प्रकृति–पौरुषी–वीरा–चौथी अपराजिता—जया विजया—पद्मा और अजिता, हे सदा शिव ! मनोन्मनी और सर्वमुखी हैं। अथवा दो दो अंगुल से इनकी रचना करे ॥ ८ ॥ ९ ॥ इन ग्रन्थियों को कुंकुम आदि के द्वारा रञ्जित करे तथा गन्ध से पवित्र करे। सप्तमी अथवा त्रयोदशी तिथि में, शुक्ल पक्ष में तथा अन्य पक्ष में इनकी रचना करे ॥ १० ॥ हे हर ! लिङ्ग का दूध आदि से संस्नपन कराके फिर गन्धाक्षतादि से यजन करना चाहिए। आत्मा और ब्रह्मा के लिए गन्ध पवित्र को देवे ॥ ११ ॥ ईशान दिशा में गन्ध से युक्त पुष्प मूल मन्त्र से समर्पित करे। पूर्व दिशा में दण्ड काष्ठ देवे और उत्तर में आंवले के फल को अर्पित करना चाहिए ॥ १२ ॥ पश्चिम दिशा में मृत्तिका देवे और दक्षिण में भस्म की भूति देवे। नैर्ऋत्य कोण में अगुरु देवे। हे वृषध्वज ! मन्त्रों के वेत्ता को शिखा मन्त्र के द्वारा वायव्य कोण में सर्षप (सरसों) देवे और कवच के द्वारा अर्पण करे ॥ १३ ॥ सूत्र से गृह को संवेष्टित करके गन्ध पवित्र को अर्पण करे। फिर होम करे और अग्नि को देकर भूत बलि देनी चाहिए ॥१४॥

आमन्त्रितोऽसि देवेश गणैः सार्द्धं महेश्वर ।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि ह्यत्र सन्निहितो भव ॥१५

निमन्त्रचानेन तिष्ठेत्तु कुर्वन्गीतादिक निशि ।
मन्त्रितानि पवित्राणि स्थापयेद्देवपार्श्वत. ॥१६
स्नात्वादित्य चतुर्दश्यां प्राग्रुद्रञ्च प्रपूजयेत् ।
ललाटस्थ विश्वरूप ध्यात्वात्मानं प्रपूजयेत् ॥१७
अस्त्रेण प्रोक्षितान्येव हृदयेनार्चितान्यथ ।
संहितामन्त्रितान्येव धूपितानि समर्पयेत् ॥१८
शिवतत्त्वात्मक चादौ विद्यातत्त्वात्मक ततः ।
आत्मतत्त्वात्मक पश्चाद्देवकास्य ततोऽर्चयेत् ॥
ॐ ह्रौ शिवतत्त्वाय नम । ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वाय नम. ।
ॐ ह्रा आत्मतत्त्वाय नमः ॥१६
ॐ ह्रा ह्री ह्रूँ क्षौं सर्वतत्त्वाय नमः ।
ॐ कालात्मना त्वया देव यद् दृष्ट मामके विधौ ॥
कृत क्लिष्ट समुत्सृष्ट हुत गुप्तञ्च यत्कृतम् ।
सर्वात्मनाऽऽत्मना शम्भो पवित्रेण त्वदिच्छया ॥
ॐ पूरय पूरय मखव्रत तन्नियमेश्वराय सर्वतत्त्वात्मकाय
सर्वकारणपालिताय ॐ ह्रा ह्री ह्रूँ ह्रैं ह्रौ शिवाय नम ॥२०
पूर्वेरनेन यो दद्यात्पवित्राणां चतुष्टयम् ।
दत्त्वा वह्नौ पवित्रञ्च गुरवे दक्षिणा दिशेद् ॥
बलि दत्त्वा द्विजान्भोज्य चण्ड प्राच्यं विसर्जयेत् ॥२१

इसके उपरान्त यह प्रार्थना करे—हे देवों के ईश ! हे महेश्वर ! आप का अपने गणों के साथ आमन्त्रण किया जाता है मैं आपका कल प्रात काल के समय में पूजन करूँगा सो आप यहाँ पर ही सन्निहित होकर विराजमान होवें ॥ १५ ॥ इस भाँति इससे निमन्त्रण देकर रात्रि में गीत-गान आदि करते हुए स्थित रहे। पवित्राओं को अभिमन्त्रित करके देव के समीप में ही स्थापित करना चाहिए ॥ १६ ॥ स्नान करके आदित्य का और चतुर्दशी में प्रथम रुद्र का पूजन करना चाहिए। ललाट में संस्थित विश्व रूप का ध्यान करके आत्मा का यजन करे ॥ १७ ॥ अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षण किये हुए, हृदय मन्त्र से अर्चित,

सहिता से मन्त्रितों को धूपित करके फिर समर्पित करे ।। १८ ।। आदि में शिव तत्त्वात्मक को, फिर विद्या तत्त्वस्वरूप को और पीछे आत्म तत्त्वात्मक को और इसके अनन्तर देव कारुण्य की अर्चना करनी चाहिए । इसके मन्त्र ये हैं—" ॐ हौं शिव तत्त्वाय नमः, ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वाय नमः, ॐ हां आत्मतत्त्वाय नमः " ।। १९ ।। ' ॐ हा हीं हूं हौं सर्वतत्त्वाय नमः ' ' ओम् काल स्वरूप आपने हे देव ! मेरे द्वारा सम्पन्न विधि-विधान में जो भी कुछ देखा है । मैंने जो विलष्ट किया है या उत्सृष्ट कर दिया है, होम किया है और जो किया हुआ गुप्त रह गया है, हे शम्भो ! सबकी आत्मा, आत्मा से पवित्र के द्वारा आपकी इच्छा से इसे पूर्ण कर देवें । यह मन्त्र कहे—" ॐ पूरय-पूरय मख व्रत तन्नियमेश्वराय सर्वतत्त्वात्मकाय सर्व कारण पालिताय ॐ हा ह्रीं हूं हैं हौं शिवाय नमः " । पूर्वों के द्वारा इस मन्त्र से जो चार पवित्रार्थों को समर्पित करता है और वह्नि को पवित्रा देकर फिर गुरु चरण की सेवा में दक्षिणा अर्पित करे । फिर बलि देकर द्विजों को भोजन करावे और चण्ड का समर्चन करके विसर्जन कर देवे ।।२०।।२१।।

१३०—विष्णु भगवान् का पवित्रारोहण

पवित्रारोपणं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं हरेः ।
पुरा देवासुरे युद्धे ब्रह्माद्याः शरणं ययुः ।।
विष्णुश्च तेषां देवाना ध्वज ग्रैवेयक ददौ ।।१
एतौ दृष्ट्वा विलङ्घन्ति दानवानब्रवीद्धरिः ।
विष्णूक्ते ह्यब्रवीन्नागो वासुकेरनुजस्तदा ।।२
वृणीत च पवित्राख्यं वरञ्चेदं वृषध्वजं ।
ग्रैवेयं हरिदत्तं तु तन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ।।
इत्युक्ते तेन देवास्तान्नाम्ना च तद्वरं ददौ ।।३
प्रावृट्काले तु ये मर्त्या नार्चिष्यन्ति पवित्रकैः ।
तेषा सात्वमरी पूजा विफला च भविष्यति ।।
तस्मात् सर्वेषु देवेषु पवित्रारोहणं क्रमात् ।।४

प्रतिपत्पौर्णमास्यान्ता यस्य या तिथिरुच्यते।
द्वादश्यां विष्णवे कार्यं शुक्ले कृष्णेऽथवा हर ॥५
व्यतीपातेऽयने चैव चन्द्रसूर्यग्रहे शिव।
विष्णवे वृद्धिकार्ये च गुरोरागमने तथा॥
नित्य पवित्रमुद्दिष्टं प्रावृट्काले त्ववश्यकम् ॥६
कौषेयं पट्टसूत्रं वा कार्पासं क्षौममेव वा।
कुशसूत्रं द्विजानां स्याद्राज्ञां कौषेयपट्टकम् ॥७
वैश्यानाञ्चौर्णकं क्षौमं शूद्राणां नववल्कजम्।
कार्पासं पद्मजञ्चैव सर्वेषां शस्तमीश्वर ॥८

श्री हरि ने कहा—अब हरि का भुक्ति और मुक्ति का प्रदान करने वाला पवित्रारोहण का वर्णन करते हैं। पहिले देवासुर संग्राम में जिस समय युद्ध हो रहा था घबड़ा कर ब्रह्मा आदि समस्त देवगण शरण में गये थे। भगवान् विष्णु ने उन देवगणों को ध्वज और ग्रैवेयक प्रदान किया था॥ १॥ इन दोनों को देख कर विमर्द्दन करते हुए दानवों से हरि ने कहा। विष्णु के कहने पर वासुकि का अनुज (छोटा भाई) नाग उस समय में बोला था॥ २॥ हे वृषध्वज! यह पवित्रा नाम वाला वर वृणीत कीजिए। हरि के द्वारा प्रदान किया हुआ ग्रैवेय लोक में उसके नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त करेगा। उसके द्वारा यह कहने पर उन देवों को नाम से वह वरदान दिया था॥ ३॥ वर्षा ऋतु में जो मनुष्य पवित्राओं के द्वारा अर्चन नहीं करेंगे उन मनुष्यों की सांवत्सरी (वार्षिक) पूजा विफल हो जायगी। इसलिये समस्त देवों में क्रम से पवित्रारोहण करना परम आवश्यक है॥ ४॥ प्रतिपदा से लेकर पौर्णमासी तिथि तक जिसकी भी जो विधि कही जाती है। शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्ष में हे हर! द्वादशी तिथि में भगवान् विष्णु के लिये यह पवित्रारोहण करना चाहिए॥ ५॥ हे शिव! व्यतीपात—अयन—चन्द्रमा-सूर्य्य के ग्रहण के अवसर पर—वृद्धि के कार्य्य के समय पर तथा गुरु के आगमन पर भगवान् विष्णु के लिये प्रावृट् काल में पवित्रारोहण नित्य ही आवश्यक रूप से होना चाहिए। ॥ ६॥ पवित्राओं के निर्माण करने के लिये कौषेय, पट्ट सूत्र, कपास का सूत्र

या क्षौम सूत्र होना चाहिए। द्विजों को कुश सूत्र होना चाहिए और राजाओं को यौधेय या पट्ट सूत्र होता है ॥ ७ ॥ वैश्य वर्ग वाले मनुष्यों के लिये ऊन का सूत्र क्षौम और शूद्रों के लिये नवीन वल्कल से होने वाला होना चाहिए। हे ईश्वर! कपास से रचित और पद्मज सूत्र सभी के लिये प्रशस्त कहा गया है ॥८॥

ब्राह्मण्या कर्त्तितं सूत्रं त्रिगुणं त्रिगुणीकृतम्।
ओंकारोऽथ शिवः सोमो ह्यग्निर्ब्रह्मा फणी रविः ॥९
विघ्नेशो विष्णुरित्येते स्थितास्तन्तुषु देवताः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिसूत्रे देवताः स्मृताः ॥१०
सौवर्णे राजते तन्त्रे वैणवे मृण्मये न्यसेत्।
अंगुष्ठेन चतुःषष्टिः श्रेष्ठं मध्य तदर्द्धतः ॥११
तदर्द्धा तु कनिष्ठा स्यात् सूत्रमष्टोत्तरं शतम्।
उत्तमं मध्यमञ्चैव कन्यस पूर्ववत् क्रमात् ॥१२
उत्तमोऽङ्गुष्ठमानेन मध्यमो मध्यमेन तु।
कन्यसे च कनिष्ठेन अंगुल्या ग्रन्थयः स्मृताः ॥
विमाने स्थण्डिले चैव एतत्सामान्यलक्षणम् ॥१३
शिवोद्भूत पवित्रन्तु प्रतिमायाञ्च कारयेत्।
हृन्नाभिऊरुमानेन जानुभ्यामवलम्बिनी ॥१४
अष्टोत्तरसहस्रेण चत्वारो ग्रन्थयः स्मृताः।
षट्त्रिंशच्च चतुर्विंश द्वादश ग्रन्थयोऽथवा ॥१५
उत्तमादिषु विज्ञेयाः पर्वभिर्वा पवित्रकम्।
चर्चितं कुंकुमेनैव हरिद्राचन्दनेन वा ॥१६

ब्राह्मणी के द्वारा कात कर तैयार किया हुआ सूत्र तिगुना हो और फिर उसे त्रिगुणित करे। ओंकार—शिव—सोम—अग्नि—ब्रह्मा—फणी—रवि—विघ्नेश और विष्णु ये इतने सब उन पवित्रा के तन्तुओं में देवता होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये त्रिसूत्र में देवता बताये गये हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ सौवर्ण (सुवर्ण से रचित), राजत (चाँदी से निर्मित) वैणव (वेणु अर्थात् बाँस से

निर्मित) और सूत्रमय तन्त्र में न्यास करे। अंगूठे से चौसठ सबसे श्रेष्ठ होता है, इससे आधा परिमाण वाला मध्यम श्रेणी का होता है ॥ ११ ॥ इससे भी आधे परिमाण वाला सबसे कनिष्ठ श्रेणी का होता है। अष्टोत्तर शत सूत्र उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ पूर्व की भाँति क्रम से हुआ करता है ॥ १२ ॥ अंगुष्ठ के मान से जो बनाया जाता है वह उत्तम होता है, मध्यमा के द्वारा मध्यम और कनिष्ठा अंगुलि से जो किया जाता है वह कनिष्ठ होता है, इस प्रकार से इसकी ग्रन्थियाँ कही गई हैं। विमान में और स्थण्डिल में करे—यही इनका साधारण लक्षण होता है ॥ १३ ॥ त्रियोद्धृत पवित्रा को तो प्रतिमा में ही करावे। हृदय, नाभि और ऊरुओं के परिमाण से जानुओं तक लटकने वाली पवित्रा होनी चाहिए। अष्टोत्तर सहस्र से चार ग्रन्थियाँ बताई गई हैं। अथवा छत्तीस, चौबीस और बारह ग्रन्थियाँ होती हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ अथवा पर्वों से पवित्रा उत्तम-मध्यम और कनिष्ठ समझ लेने चाहिए। इनका पूजन कुंकुम से अथवा हरि चन्दन के द्वारा करना चाहिए ॥१६॥

सोपवासं पवित्रन्तु पात्रस्थमधिवासयेत्।
अश्वत्थपत्रपुटके अष्टदिक्षु निवेशितम् ॥१७
दण्डकाष्ठं कुशाग्रञ्च पूर्वे सङ्कर्षणेन तु।
रोचनाकुंकुमेनैव प्रद्युम्नेन तु दक्षिणे ॥१८
युद्धार्थी भलसिद्ध्यर्थमनिरुद्धेन पश्चिमे।
चन्दनं नीलयुक्तञ्च तिलभस्माक्षतं तथा ॥
आग्नेयादिषु कोणेषु श्रियादीना क्रमान्न्यसेत् ॥१९

उपवास पूर्वक पवित्रा को एक पात्र में संस्थित करके उसका अधिवास करना चाहिए। अश्वत्थ (पीपल) के पत्रों के पुटक (दोना) में आठ दिशाओं में उसे निवेशित करे ॥ १७ ॥ पूर्व दिशा में सङ्कर्षण के द्वारा दण्ड काष्ठ और कुशा के अग्र भाग का—दक्षिण दिशा में रोचना कुंकुम से ही प्रद्युम्न से—पश्चिम दिशा में जो युद्ध के करने वाला हो और फल की सिद्धि के लिये करे—चन्दन, नील से युक्त, तिल तथा भस्माक्षत को आग्नेयादि कोणों में श्रियादि का क्रम से न्यास करना चाहिए ॥१९॥

१३१–रक्त पित्त रोग का निदान

अथातो रक्तपित्तस्य निदानं प्रवदाम्यहम् ।
भृशोष्णातिक्तकट्वम्ललवणादिविदाहिभिः ॥१
कोद्रवोद्दालकैश्चान्यैस्तद्युक्तैरतिसेवितैः ।
कुपितं पैत्तिकैः पित्तं द्रवं रक्तञ्च मूर्च्छति ॥२
तौ मिथस्तुल्यरूपत्वमागम्य व्याप्नुवंस्ततनुम् ।
पित्तरक्तस्य विकृतेः संसर्गाद् दूषणादपि ॥३
गन्धवर्णानुवृत्तेषु रक्तेन व्यपदिश्यते ।
प्रभवत्यसृजः स्थानात्प्लीहतो यकृतश्च तत् ॥४
शिरोगुरुत्वमरुचिः शीतेच्छा धूमकोऽम्लकः ।
छर्दितच्छर्दितबैभत्स्य कासः श्वासो भ्रमः क्लमः ॥५
लोहितो न हितो मत्स्यगन्धास्यत्वञ्च विज्वरे ।
रक्तहारिद्रहरितवर्णता नयनादिषु ॥६
नीललोहितपीतानां वर्णानामविवेचनम् ।
स्वप्ने उन्मादवमित्वं भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥७

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—अब रक्तपित्त नाम वाले रोग का निदान बतलाते हैं। यह रोग अत्यन्त उष्ण, तिक्त, कटु, अम्ल (खट्टा) और लवण आदि विदाही पदार्थों के तथा कोद्रव, उद्दालक और अन्य इसी प्रकार के कहे हुए पदार्थों के अत्यधिक सेवन करने से और पित्त गुण पदार्थों से पित्त कुपित हो जाता है तथा वह द्रव पित्त और रक्त को मूर्च्छित कर देता है ॥ १ ॥ २ ॥ वे सब आपस में तुल्य स्वरूपता को प्राप्त होकर शरीर में व्याप्त होते हुए विकृत रूप में पित्तरक्त में तथा संसर्ग के दूषण से गन्ध और वर्ण में अनुवृत्त होने पर रक्त के नाम से ही उसका व्यपदेश किया जाता है। वह असृज के स्थान से तिल्ली और यकृत् से उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके होने से सिर का भारीपन—रुचि का न होना—शीत की इच्छा, धूमक, अम्लक—छर्दि—छर्दि वैभत्स—खाँसी—श्वास—भ्रम—क्लम—प्रहित—मत्स्य गन्ध जैसा मुख का

होना—ज्वर के अभाव में लाल हल्दी का सा और हरे वर्ण का होना—नेत्र आदि में नील, लोहित और पीत वर्णों का विवेचना न करना, स्वप्न में उन्माद के धर्म वाला होना ये सभी होते हैं या हो जायंगे ॥५॥६॥७॥

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते ॥८
ऊर्ध्वं साध्यं कफाद्यस्मात्तद्विरेचनसाधितम् ।
बह्वौषधस्य पित्तस्य विरेको हि वरौषधम् ॥९

अनुबन्धी कफो यत्र तत्र तस्यापि शुद्धिकृत् ।
कषाया स्वादवो यस्य विशुद्धौ श्लेष्मला हिता ॥१०
कटुतिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफावहा ।
अधो याप्यश्च नायुष्मास्तत्प्रच्छर्दनसाधकम् ॥११

अल्पौषधश्च पित्तस्य वमनं नवमौषधम् ।
अनुबन्धिवलो यस्य शान्तपित्तनरस्य च ॥१२
कषायश्च हितस्तस्य मधुरा एव केवलम् ।
कफमारुतसंसृष्टमसाध्यमुपनामनम् ॥१३

असह्यं प्रतिलोमत्वादसाध्यादौषधस्य च ।
न हि संशोधनं किञ्चिदस्य च प्रतिलोमिनः ॥१४
शोधनं प्रतिलोमश्च रक्तपित्तेऽभिसर्जितम् ।
एवमेवोपशमनं संशोधनमिहेष्यते ॥१५

संसृष्टेषु हि दोषेषु सर्वथा छर्दनं हितम् ।
तत्र दोषोऽन्न गमनं शिवास्त्र इव लक्ष्यते ॥
उपद्रवाश्च विकृति फलतस्तेषु साधितम् ॥१६

नाक—नेत्र—कान और मुख से ऊपर तथा मेढ्र—योनि और गुदा से नीचे समस्त रोमों के छिद्रों के द्वारा यह कुपित होकर प्रवृत्त हुआ करता है । ॥ ८ ॥ ऊपर के भाग में जो रोग होता है वह साध्य हुआ करता है क्योंकि वह कफ से होता है और विरेचन कराने से साधित होता है । बह्वौषध पित्त

प्रतत कासवेगे च ज्योतिषामिव दर्शनम् ।
कफादुरोऽल्परुङ्मूर्ध्नि हृदयं स्तिमितं गुरु ॥८
कण्ठे प्रलेपमदन पीनसच्छर्द्यरोचकाः ।
रोमहर्षो घनस्निग्धश्लेष्मणश्च प्रवर्त्तनम् ॥९
युद्धाद्यैः साहसैस्तैस्तैः सेवितैरयथाबलम् ।
उरस्यन्तःक्षतो वायुः पित्तेनानुगतो बली ॥१०
कुपितः कुरुते कासं कफं तेन सशोणितम् ।
पीतं श्यावञ्च शुष्कञ्च ग्रथितं कुपितं बहु ॥११
ष्ठीवेत्कण्ठेन रुजता विभिन्नेनेव चोरसा ।
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ॥१२
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडा हि तापिना ।
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यकम्पवान् ॥१३
परावत इवोत्कूजन्पार्श्वशूली ततोऽस्य च ।
कफाद्यैर्वमनं पक्तिबलवर्णश्च हीयते ॥१४

जिस समय मे काम (खांसी) का बहुत अधिक वेग होता है तो उसमे ज्योतियो का दर्शन-सा हुआ करता है । कफ से वक्षः स्थल में थोड़ी पीडा होती है, माथे मे दर्द और हृदय स्तिमित हो जाता है ॥ ८ ॥ कण्ठ मे प्रलेप और पीडा-पी नस, छर्दि और अरोचक, रोम हर्ष तथा घना और चिकना: कफ की प्रवृत्ति ये सब होते हैं ॥ ९ ॥ युद्ध आदि उन,उन साहसिक कार्यों के करने से यथा बल न होने के कारण उर मे अन्दर क्षत हो जाता है तथा पित्त से अनुगत वायु बलवान् हो जाता है ॥ १० ॥ वह कुपित वायु खाँसी उत्पन्न कर देता है और उससे कफ में रुधिर आने लगता है वह पीत—श्याव (काला)—शुष्क—ग्रथित और बहुत ही कुपित हो जाता है ॥ ११ ॥ उर स्थल के विभिन्न होने के समान रुज युक्त कण्ठ से उस कफ को थूका करता है । इसमे तीक्ष्ण सुइयो से चुभने के समान पीडा युक्त और शूल वाला मनुष्य हो जाता है ॥ १२ ॥ दुःख के स्पर्श करने वाले शूल मे भेदन जैसी पीडा होती है और बहुत ताप का अनुभव हुआ करता है । शरीर के पर्वो मे भेदन—ज्वर—श्वास—

तृष्णा—निस्वरता और कम्प वाला मनुष्य होता है ॥ १३ ॥ कबूतर की तरह कास वाला मनुष्य उत्कूजन करता है और उसकी पसलियों में शूल होता है। इसके अनन्तर खाँसी वाले पुरुष को कफ आदि से वमन हो जाया करता है तथा उसकी शक्ति-बल और वर्ण का क्षय होता रहता है ॥१४॥

क्षीणस्य सासृङ्मूत्रत्वं श्वासपृष्ठकटिग्रहः ।
वायुप्रधानाः कुपिता धातवो राजयक्ष्मणः ॥१५
कुर्वन्ति यक्ष्मायतने कासं ष्ठीवेत्कफं ततः ।
पूतिपूयोपमं पीतं मिश्रं हरितलोहितम् ॥१६
सुप्यते तुद्यत इव हृदयं पचतीव च ।
अकस्मादुष्णशीतेच्छा बह्वशित्वं बलक्षयः ॥१७
स्निग्धप्रसन्नवक्त्रत्वं श्रीमद्दर्शननेत्रता ।
ततोऽस्य क्षयरूपाणि सर्वाण्याविर्भवन्ति च ॥१८
इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ।
याप्यो वा बलिनां तद्वत्क्षतजोऽपि नवौ तु तौ ॥१९
सिद्ध्येतामपि सामर्थ्यात्साध्यादौ च पृथक्क्रमः ।
मिश्रा याप्याश्च ये सर्वे जरसः स्थविरस्य च ॥२०
कासश्वासक्षयच्छर्दिस्वरसादादयो गदाः ।
भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तां त्वरया जयेत् ।२१

जब यह इस तरह अत्यन्त क्षीण हो जाता है तो उसको रक्त के सहित पेशाब होता है। श्वास का रोग, पृष्ठ भाग और कमर में पीड़ा होती है। राजयक्ष्मा रोग के बन जाने से उसकी समस्त धातुऐं वायु की प्रधानता वाली होकर अत्यन्त कुपित हो जाती हैं ॥ १५ ॥ जब यक्ष्मा रोग का स्थान होता है तो उसमें खाँसी होती है और फिर वह कफ को थूकता रहता है। वह कफ भी दुर्गन्ध से युक्त मवाद के तुल्य पीले रङ्ग का हरे और लोहित रङ्ग से मिला हुआ होता है ॥ १६ ॥ इस दशा में उसका हृदय सुप्त तथा तुद्यमान सा होकर पचता सा रहता है। अचानक ही कभी गर्मी और कभी शीत की इच्छा होती है। ऐसा रोगी अधिक खाने वाला होता है और उसके बल का ह्रास हो जाया

महता महता दीनो नादेन श्वसिति क्वथन् ।
उद्धूयमानः संरब्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥१४

श्वास से पीडित पुरुष शयन करता हुआ बड़ी ही कठिनाई और क्लेश से सोता है। जब घबरा उठता है तो वह बैठा हो जाता है उसी समय में उसे कुछ स्वस्थता प्रतीत होती है। उसकी आँखें ऊपर को चढ जाती हैं और ललाट प्रदेश में पसीना हो जाया करता है। वह अत्यन्त ही आर्त्ति से उत्पीडित हो जाता है ॥६॥ विशेष रूप से सूखे हुए मुख वाले उस पुरुष को बार-बार श्वास चलता है और कम्प से युक्त वह उष्णता की आकांक्षा किया करता है। मेघों से होने वाले जल, शीत और पूर्व की वायु और श्लेष्मा बढाने वाली वस्तुओं से यह श्वास का रोग अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१०॥ जो बलवान् मनुष्य होता है उसका यह तमक श्वास कुछ साध्य तथा हटाये जाने के योग्य होता है। ज्वर मूर्च्छा वाले का प्रथम प्रकार का श्वास शीतोपचारों से शमित नहीं होता है ॥११॥ कास और श्वास वाला शीर्ण मर्मों के छेदन की पीडा से युक्त, पसीने के साथ मूर्च्छित हो जाने वाला, आनाद वाला, वस्ति भाग में दाह के अनुभव वाला, नीचे की ओर दृष्टि रखने वाला, चढी हुई आँखों वाला, स्निग्ध और रक्त लोचन वाला, सूखे हुए मुख वाला, प्रलाप (अनर्थक वचन) करने वाला, दैन्य से युक्त, नष्ट कान्ति वाला, चेतना से शून्य बहुत-बहुत ध्वनि के साथ अत्यन्त दीन होता हुआ कठिनाई से श्वास लेता है। उद्धूयमान और संरब्ध सर्वदा मत्त ऋषभ की भाँति रहता है ॥१२।१३।१४॥

प्रनष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रान्तनयनाननः ।
श्रक्ष्णं समाक्षिपन्बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥१५
शुष्ककण्ठो मुहुश्चैव कर्णशङ्खशिरोऽतिरुक् ।
यो दीर्घमुच्छ्वसित्यूर्ध्वं न च प्रत्याहरत्यधः ॥१६
श्लेष्मावृतमुखस्रोत: क्रुद्धगन्धवहार्दितः ।
ऊर्ध्वंदिग्वीक्षते भ्रान्तमक्षिणी परितः क्षिपन् ॥१७
मर्मसु छिद्यमानेषु परिदेवी निरुद्धवाक् ।
एते सिद्ध्येयुरव्यक्ता व्यक्ताः प्राणहरा ध्रुवम् ॥१८

जिसका ज्ञान और विज्ञान एक दम नष्ट हो गया है और जो विशेप रूप से भ्रान्त नेत्रों तथा मुख वाला है। प्रक्ष को समाक्षिप्त करता हुआ बद्ध मूत्र एव वर्चम वाला है। जिसकी वाणी विशीर्ण प्राय हो गई है ॥१५॥ गला सूखा हुआ है और बार-बार कान—शङ्ख और शिर मे अत्यन्त पीडा होती है। जो बहुत लम्बा ऊपर को श्वास तो लेता है किन्तु नीचे की ओर फिर प्रत्याहरण नही किया करता है ॥१६॥ श्लेष्मा (कफ) से आवृत मुख तथा स्रोत्र वाला है—क्रुद्ध वायु से पीडित है, अपनी आँखो को सब ओर फेंकता हुआ ऊपर की दिशा मे ही देखता है और भ्रान्त-सा रहता है ॥१७॥ मम स्थानों मे छिद्यमान होकर अत्यन्त परिवेदन करने वाला है जो बोलने म असमर्थ सा होकर बोलता हुआ रुक जाता है। ये सब अव्यक्त सिद्ध होते हैं व्यक्त निश्चय ही प्राणो के हरण करने वाले होते हैं ॥१८॥

१३४--हिक्का रोग निदान

हिक्कारोगनिदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु ।
श्वासैकहेतु प्राग्रूप सख्या प्रकृतिसश्रया ॥१
हिक्का भक्ष्योद्भवा क्षुद्रा यमला महतीति च ।
गम्भीरा च मरुत्तत्र त्वरयाऽयुक्तिसेवितै ॥२
रूक्षतीक्ष्णखराशान्तैरन्नपानै प्रपीडित ।
करोति हिक्का मरुतो मन्दशब्दा क्षुधानुगाम् ।
सम सन्ध्यान्नपानेन या प्रयाति च सान्नजा ॥३
आयासात्पवन क्रुद्ध क्षुद्रा हिक्का प्रवर्त्तयेत् ।
जत्रुमूलात्परिसृता मन्दवेगवती हि सा ॥४
वृद्धिमायासता याति भुक्तमात्रे च मार्दवम् ।
चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का सप्रवर्त्तते ॥५
परिणामा मुखे वृद्धि परिणामे च गच्छति ।
कम्पयन्ती शिरो ग्रीवा यमला ता विनिर्दिशेत् ॥६
प्रलापच्छर्द्यतीसारनेत्रविप्लुतजृम्भिता ।
यमला वेगिनी हिक्का प[illegible]

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत ! अब हम हिक्का (हिचकी) रोग के निदान के विषय मे बतलाते हैं। तुम इसका श्रवण करो। इस रोग का प्राग्रूप श्वास के हेतु वाला ही होता है। इसकी संख्या प्रकृति के समय वाली है ॥१॥ हिक्का भक्ष्य से उत्पन्न होने वाली—क्षुद्रा—यमला—महती और गम्भीरा होती है। अयुक्त सेवन किये हुए त्वरा के साथ रूक्ष—तीक्ष्ण—खर—असात्म्य अन्न और पानी के द्वारा प्रपीड़ित होने वाला वायु हिक्का को उत्पन्न कर देता है। यह मन्द शब्द वाली सुरानुगा होती है और सम सन्ध्याश पान से जो चलती है वह अन्नजा होती है ॥ २॥३ ॥ आयास से क्रुद्ध होने वाला वायु क्षुद्र हिचकी को उत्पन्न कर देता है। यह हिचकी जत्रु के मूल से परिसृत होती हुई मन्द वेग वाली वह होती है ॥४॥ यह आयास (श्रम) से वृद्धि को प्राप्त हो जाती है और भोजन करने मात्र से मृदुता को प्राप्त होती है। चिरकाल से यमल वेगों के द्वारा जो हिचकी सम्प्रवृत्त होती है मुख में परिणाम वाली परिणाम मे वृद्धि को प्राप्त होती है। शिर और ग्रीवा को कम्पित करती हुई जो हिचकी होती है उस हिक्का को यमला कहते हैं ॥५।६॥ प्रलाप—छर्दि—प्रतीसार—नेत्र विप्लुत और जृम्भा वाली हिचकी यमला और वेग वाली तथा परिणाम से सयुत होती है ॥७॥

ध्वस्तभ्रूशङ्खयुग्मस्य श्रुतिविप्लुतचक्षुषः ।
स्तम्भयन्ती तनुं वाचं स्मृतिं संज्ञाञ्च मुञ्चती ॥८

तुदन्ती मार्गमाणस्य कुर्वती मर्मघट्टनम् ।
पृष्ठतो नमनं साऽऽस्यं महाहिक्का प्रवर्तते ॥९

महाशूला महाशब्दा महावेगा महाबला ।
पक्वाशयाद्वा नाभेर्वा पूर्ववत्सा प्रवर्त्तते ॥१०

तद्रूपा सा महत्कुर्याज्जृम्भणाङ्गप्रसारणम् ।
गम्भीरेण निदानेन गम्भीरां तु सुसाधयेत् ॥११

आद्ये द्वे वर्जयेदन्ये सर्वलिङ्गाञ्च वेगिनीम् ।
सर्वस्य सञ्चितामस्य स्थविरस्य व्यवायिनः ॥१२

व्याधिभि: क्षीणदेहस्य भक्तच्छेदकृशस्य च ।
सर्वेऽपि रोगा नाशाय नत्वेव शीघ्रकारिण. ।
हिक्काश्वासौ यथा तौ हि मृत्युकाले कृतालयौ ॥१२

भ्रूशङ्ख के युग्म को ध्वस्त जिसका कर दिया है और श्रुति विप्लुत चक्षु वाला जो हो गया है ऐसे पुरुष के शरीर को स्तम्भित करती हुई वाणी-स्मृति और सज्ञा को छुडा देने वाली, मार्गमाण का तोदन करने वाली तथा मर्मों का दाहन करती हुई होती है और पीछे से जिसमें नमन हो है प्रायं । वह महा हिक्का होकर प्रवृत्त होती है । ८।९॥ इस हिचकी में महान् शूल होता है और यह महान् शब्द वाली होती है, बहुत अधिक वेग वाली तथा महान् बल से सयुत होती है। यह पक्वाशय से अथवा नाभि से उठकर पूर्व की भांति ही प्रवृत हुआ करती है ॥१०॥ इस रूप वाली हिचकी जो होती है यह अभाई और अङ्ग का प्रस्तरण अधिक किया करती है गम्भीर नाद से गम्भीर उसको सुसाधित करे ॥११॥ आद्य जो दो हैं उनको दर्जित करे और अन्य जो होती हैं वे सब लिङ्गो से वेग वाली होती है । सबकी सञ्चित को तथा व्यथायी घृद्ध, व्याधियों से क्षीण देह वाले, भक्तच्छेद से कृश पुरुष के सभी रोग नाश करने वाले हुआ करते हैं किन्तु इस प्रकार से शीघ्र देह के नाश करने वाले नही होते हैं जिस तरह स हिचकी और श्वास ये दो रोग देह को नष्ट करने वाले होते हैं क्योंकि ये दोनो तो मृत्यु के समय मे भी हर एक के समुत्पन्न हो जाने वाले ही होते है । जब मौत होने को होती है तो ऊर्ध्व श्वास चलने लगता है और हिचकी आकर ही प्राण पखेरू प्रयाण किया करते हैं ॥१२।१३॥

१३५--यक्ष्मा रोग का निदान

अथातो यक्ष्मरोगस्य निदान प्रवक्ष्याम्यहम् ।
अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगम ॥१
राजयक्ष्मा क्षय शोषो रोगराडिति कथ्यते ।
नक्षत्राणा द्विजानाञ्च राज्ञोऽभूद्यद्य पुरा ।
यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मत ॥२

देहौपधक्षयकृतेः क्षयान्ते सम्भवेच्च सः ।
रसादिशोषणाच्छोषो रोगराडिति राजवान् ॥३
साहसं वेगसरोध. शुक्रौज स्नेहसक्षय· ।
अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतवः ॥४
तैरुदीर्णोऽनिलः पित्तं व्यर्थश्चोदीर्य्य सर्वतः ।
शरीरसन्धिमाविश्य ताः सिरा· प्रतिपीडयन् ॥५
मुखानि स्रोतसां रुद्धा तथैवातिविसृज्य वा ।
मध्यमूर्ध्वमधस्तिर्य्यग्यथा मञ्जनयेद् द ॥६
रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भृशं ज्वरः ।
प्रसेको मुखमाधुर्य्यं मार्दवं वह्निदेहयो ॥७

भगवान् श्री धन्वन्तरि ने कहा—अब इसके अनन्तर हम यक्ष्मा रोग के निदान को बतलाते हैं। यह यक्ष्मा रोग ऐसा होता है जिसके साथ पीछे लगे हुए बहुत से रोग हुआ करते हैं और इसके होने के पहिले भी कितने ही रोग हो जाया करते हैं। इस तरह पहिले और पीछे अनेक रोगों को साथ लेकर ही यह महान् यक्ष्मा नाम वाली व्याधि मनुष्य को हुआ करती है। यह राजयक्ष्मा रोग क्षय और मनुष्य का शोषण करने वाला होता है इसीलिये समस्त रोगों का यह राजा है—ऐसा ही कहा जाया करता है। इसका नाम राजयक्ष्मा इसी· लिये पड़ा है कि यह पहिले समय में नक्षत्रों, द्विजों और राजाओं को ही होता था। जो राजा है और यक्ष्मा है—इसी से राजयक्ष्मा नाम धारी यह रोग हुआ है ॥१॥२॥ देह और औषध का क्षय करने वाला यह होता है तथा क्षय जब हो जाता है तो उसके अन्त में यह समुत्पन्न होता है। इससे रसादि सभी का पूर्णतया शोषण होता है इसी कारण से इसको शोष भी कहते हैं। रोगों का यह राजा है इसी से 'राज'—शब्द इसके नाम के साथ में लगा हुआ है ॥३॥ इस राजयक्ष्मा महान् व्याधि के उत्पन्न होने के चार मुख्य हेतु हुआ करते हैं। उनके नाम हैं—साहस अर्थात् करने न करने के योग्य हर काम में बुरी तरह से पिल पड़ने की हिम्मत करना—वेग संरोध अर्थात् भूख-प्यास और मलादि का उत्सर्ग करने आदि के जो वेग शरीर में हुआ करते हैं उनका रोक कर रखना यह

दूसरा इस रोग की उत्पत्ति का हेतु होता है। वीर्य, ओज और स्नेह का शरीर से क्षीण हो जाना भी इसका एक हेतु होता है। अन्न-पान की विधि का त्याग कर देने से भी यह दुर्बलता होकर रोग पैदा हो जाया करता है ॥३॥४॥ इन उपर्युक्त चारों प्रकार के कारणों से वायु उदीर्ण हो जाता है और वह पित्त को उदीर्ण कर देता है फिर वह शरीर की सन्धि में प्रवेश करके समस्त शिराओं को पीड़ित करता हुआ सभी स्रोतों के मुखों का रोध कर देता है और उसी प्रकार से सर्वत्र अति विमूढ़ होकर ऊर्ध्व भाग, मध्य भाग, अधोभाग और तिर्यग्भाग में हृदय को व्यथा उत्पन्न कर दिया करता है ॥५॥६॥ होने वाले इस रोग का जो प्रारम्भ में स्वरूप बनता है वह यह है कि जुकाम होता है और फिर उसी प्रतिश्याय में अत्यन्त अधिक तेज ज्वर हो जाता है। प्रसेक, मुख का मिठास और वह्नि तथा देह का मार्दव होता है ॥७॥

लौल्यमागन्निपानादौ शुचावशुचिवीक्षणम् ।
मक्षिकातृणकेशादिपातः प्रायोऽन्नपानयोः ॥८

हृल्लासच्छर्दिररुचिरश्नतोऽपि बलक्षय ।
पाण्योरवेक्षा पादास्यशोफोऽक्ष्णोरतिशुक्लता ॥९

बाह्वोः प्रतोदो जिह्वाया काये वैभत्स्यदर्शनम् ।
स्त्रीमद्यमांसप्रियता घृणिता मूर्द्धगुण्ठनम् ॥१०

नखकेशास्थिवृद्धिश्च स्वप्ने चाभिभवो भवेत् ।
पतङ्गकृकलासाहिकपिश्वापदपक्षिभिः ॥११

केशास्थितुषभस्मादिराशौ समधिरोहणम् ।
शून्यानां ग्रामदेशानां दर्शनं शुष्यतोऽम्भसः ।
ज्योतिर्दिवि पतन्तीनां ज्वलतां च महीरुहाम् ॥१२

पीनसश्वासकासाश्च स्वरमूर्द्धरुजोऽरुचि ।
ऊर्ध्वं विशोषसंशोषावधश्छर्दिश्च कोष्ठगे ॥१३
स्थिते पार्श्वे च रुग्दोषे सन्धिगे भवति ज्वरः ।
रूपाण्येकादशैतानि जायन्ते राजयक्ष्मणः ॥१४

मार्ग और अन्न–पान आदि में चञ्चलता तथा शुचि में अशुचिता का देखना—मक्षिका–तृण और केशादि का पात प्रायः अन्न और पान में होता है ॥८॥ हृल्लास–छर्दि—अरुचि और अस्नात होने पर भी अन्न की क्षीणता—पाणि–ऊरु—वक्ष स्थल—पाद–मुख–कुक्षि–नेत्र इन शरीर के अङ्गों में अत्यन्त शुक्लता हो जाना ये सब चिह्न इस रोग में हो जाया करते हैं ॥९॥ दोनों बाहुओं में प्रतोद अर्थात् पीड़ा तथा जिह्वा और शरीर में बीभत्सता का दिखलाई देना—स्त्री प्रसङ्ग, मदिरा पान की ओर दिल का झुकाव होना, घृणिता, मूर्द्ध गुण्ठन, नाखून–केश और अस्थि की वृद्धि, इस प्रकार के स्वप्न देखना जिनमें अपना अभिमान हो, कृकलास, सर्प, बन्दर और पक्षियों का पतन देखना केश, अस्थि, तुष, भस्म तथा वृक्ष पर समाधिरोहण देखना, शून्य ग्राम देशों का तथा जल की सूखा का देखना, दिन में तारों का दिखलाई देना और दावाग्नि से जलते हुए वृक्षों का देखना ये सब इस रोग से पीड़ित मनुष्य को हुआ करता है ॥१०॥११॥१२॥ पीनस–श्वास–खाँसी–स्वरमूर्द्धस्वर–अरुचि–ऊर्ध्व नि.श्वास–संशोष—अधश्छर्दि कोश्रगन होते हैं ॥१३॥ पार्श्व भागों में और सन्धियों में पीड़ा का होना और ज्वर का रहना भी इस रोग में होता है। राजयक्ष्मा महान् रोग के एकादश रूप हुआ करते हैं ॥१४॥

तेषामुपद्रवान् विद्यात्कण्ठध्वंसमथो रुजः ।
जृम्भाङ्गमर्दनिष्ठीवबह्निमान्द्यास्यपूतिता ॥१५
तत्र वाताच्छिर. पार्श्वशूलञ्च साङ्गमर्दनम् ।
कण्ठरोध स्वरभ्रंशो पित्तात्पादांसपाणिषु ॥१६
दाहोऽतिसारोऽसृक्छर्दिर्मुखगन्धो ज्वरो मद. ।
कफादरोचकच्छर्दिकासार्द्धाङ्गगौरवम् ॥१७
प्रसेक: पीनस श्वास स्वरभेदोऽल्पवह्निता ।
दोषैर्मन्दानलत्वेन सोपलेपाः कोष्ठगाः ॥१८
स्रोतोमुखेषु रुद्धेषु धातुषु स्वल्पकेषु च ।
विदाहो मनस स्थाने मलञ्चैव च पक्वता. ॥१९

पच्यते कोष्ठ एवान्नमम्लयुक्तं रसैर्युतम् ।
प्रायोऽस्य क्षयभागाना नैवान्नं चाङ्गपुष्टये ॥२०
रसो ह्यस्य न रक्ताय मांसाय कुरुते तु तत् ।
उपस्तब्धः समन्ताच्च केवल वर्तते क्षयो ॥२१

उनके जो उपद्रव होते हैं उनको समझ लेना चाहिए, कण्ठ के ध्वंस करने वाली पीड़ा, जँभाई का आना, शरीर के अङ्गों का टूटना, निष्ठीवन, अग्नि की मन्दता, मुख में दुर्गन्ध का रहना यह सब इस व्याधि मे रोगी को हुआ करता है ॥१५॥ उसमे जब वात का प्रकोप होता है तो उससे शिर मे और पार्श्व भागों में शूल अधिक होता है—शरीरावयवो मे टूटन होती रहा करती है। गला पक जाता है, स्वर का भ्रंश हो जाया करता है। जब पित्त का प्रकोप होता है तो पैर, कन्धे और हाथो मे दाह होता है—दस्त होते हैं-रक्त गिरता है—छर्दि–मुख में प्यास, ज्वर और मद हो जाते हैं। कफ का प्रकोप इस रोग मे होता है तो इसमे अरोचकता, छर्दि, खाँसी और अर्द्धाङ्ग में भारापन हो जाता है ॥१६।१७॥ अशोफ, पीनस, श्वास, स्वरभेद, अग्नि का कम होना ये सब लक्षण इन दोषों से हो जाया करते हैं। वायु के मन्द हो जाने से शोष (सूजन) रोग और कफ की उल्बणता हो जाती है। इसमे समस्त स्रोतों के मुख रुक जाया करते हैं और शरीर की सभी धातुएँ स्वल्प हो जाया करती हैं। मन में विशेष दाह होता है। इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से उपद्रव हो जाया करते हैं। ॥१८।१९॥ कोष्ठ में जो अन्न पहुँचता है वह अम्ल से संयुत रसों के द्वारा परिपाक को प्राप्त हुआ करता है किन्तु इस रोग वाले पुरुष के सभी भाग क्षीण हो जाते हैं। इसलिये उसका खाया हुआ अन्न अङ्गों की पुष्टि नहीं किया करता है। ॥२०॥ जो भी भुक्त पदार्थ का रस बनता है उससे न तो फिर आगे चलकर रक्त ही बनता है और न मांस बना करता है। सब ओर से उपस्तब्ध होकर अर्थात् पोषण की सभी क्रियाओं के रुक जाने पर वह केवल क्षय वाला ही होता रहता है ॥२१॥

लिङ्गेष्वल्पेष्वतिक्षीण व्याधौ षट्करणादयम् ।
वर्जयेत्साध्यवेदेव सर्वेष्वपि ततोऽन्यथा ॥२२

दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च क्षयात्सर्वस्य मेदसाम् ।
स्वरभेदो भवेत्तस्य क्षामो रूक्षश्चल स्वर ॥२३
शूकपर्णाभकण्ठत्व स्निग्धोष्णोपशमोऽनिलात् ।
पित्तात्तालुगले दाह शोषो भवति सन्ततम् ॥२४
लिम्पन्निव कफै कण्ठ मुख घुरघुरायते ।
स्वय विरुद्धै सर्वैस्तु सर्वलिङ्गै क्षयो भवेत् ॥२५
धूमायतीव चात्यर्थमुदेति श्लेष्मलक्षणम् ।
कृच्छ्रसाध्या क्षयाश्चात्र सर्वैरल्पञ्च वर्जयेत् ॥२६

जब ये चिह्न स्वल्प स्वरूप म होते हैं तभी यह अत्यन्त क्षीणता प्राप्त करने लगता है । इस व्याधि म यटकरण क्षय होता है । इसलिये उसको सभी से वर्जित होना चाहिए और क्षीणता से बचने के लिये साधन करने चाहिये, अन्यथा यह परिणाम होता है कि इन समस्त दोषों के अलग–अलग या सबके मिल जाने पर कुपित हो जाने से मेदो का क्षय हो जाता है । उसका स्वर भेद होता है और इसका रोगी अत्यन्त क्षाम—रूक्ष एव चल स्वर वाला हो जाया करता है ॥२२।२३॥ शूकपर्ण के समान कण्ठ हो जाता है तथा वात से स्निग्धता, एव उष्णता का उपशमन हो जाया करता है । पित्त के प्रकोप से तालु और गले मे बडा भारी दाह होता है और निरन्तर शोषण होता रहा करता है ।२४ कफ के प्रकोप से उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो गला लिप्त सा हो रहा है और मुख म कफ की घुरघुराहट सवदा होती रहा करती है । इन समस्त दोषो के प्रतिकूल हो जाने पर सभी प्रकार के चिह्न उसको हो जाते हैं और उस रोगी का क्षय होता रहता है ॥२५॥ उसे अत्यन्त धुँआ से घुटन की भाँति अनुभव होता है यही श्लेष्मा के लक्षण उसको प्रकट होकर किया करते हैं । ये क्षय इस प्रकार के हैं जो बहुत ही कठिनाई से साध्य हुआ करते हैं । इनमें सभी को अल्पो से वर्जित कर देना चाहिए ॥२६॥

१३६—अतीसार रोग का निदान

अतीसारग्रहण्योश्च निदान वच्मि सुश्रुत ।
दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च भयाच्छोकाच्च पविध ॥१

अतीसारः स सुतरां जायतेऽत्यम्बुपानतः ।
विशुष्कान्नवसास्नेहतिलपिष्टविरूढकैः ॥२
मद्यरुक्षातिमात्रादिदिवसादिपरिश्रमात् ।
कृमिभ्यो वेगरोधाच्च तद्विधैः कुपितानिलः ॥३
विभ्रंसयत्यधो रक्तं हत्वा तेनैव चानलम् ।
व्यापद्याग्निशकृत्कोष्ठपुरीषद्रवतादयः ॥४
प्रकल्पतेऽतीसारस्य लक्षणं तस्य भाविनः ।
भेदो हृद्गुदकोष्ठेषु गात्रस्वेदो मलग्रहः ॥५
आध्मानमविपाकश्च तत्र वातेन विज्वरम् ।
स्वल्पाल्पं शब्दशून्याढ्यं विरुद्धमुपवेश्यते ॥६
रुक्षं सफेनमस्वच्छं ग्रथितं वा मुहुर्मुहुः ।
तथा दग्ध्वा गुदामासं पिच्छिलं परिकर्तयन् ।
सशुष्कभ्रष्टपायुश्च हृष्टरोमा विनिःश्वसन् ॥७

भगवान् श्री धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत ! अब हम अतीसार और ग्रहणी रोगों के निदान अर्थात् मूल कारण को बतलाते हैं । ये रोग तीनों व्यस्त दोषों के प्रकोप से तथा सबके मिश्रित होकर प्रकुपित होने से, भय के कारण से और शोक से उत्पन्न होने वाला छः प्रकार का होता है ॥१॥ यह जो अतीसार होता है वह सुतरां अत्यधिक जल के पीने से हो जाया करता है । विशेष रूप से शुष्क अन्न, वसा, स्नेह, तिल, पिष्ट और विरूढकों से यह हो जाता है ॥२॥ मद्य, रूक्ष, अत्यधिक मात्रा आदि और दिवस के आदि में परिश्रम से, कृमियों के उत्पन्न होने से तथा वेगों के रोक लेने से और इसी प्रकार के अन्य कारणों से वायु कुपित हो जाता है ॥३॥ ऐसा कुपित हुआ वायु उसी के द्वारा अग्नि का हनन करके रक्त को नीचे की ओर विभ्रंसित कर देता है । व्यापादित करके अग्नि मल कोष्ठ और पुरीष की द्रवता आदि कर दिया करता है ॥४॥ होने वाले उसका लक्षण अतीसार कहा जाता है । हृदय, गुदा और कोष्ठों में भेदन, गात्र स्वेद और मल ग्रह हो जाता है ॥५॥ उसमें वात से आध्मान, अविपाक, विज्वर और स्वल्पाल्प शब्द शून्यता से युक्त विरुद्ध उपविष्ट होता है ॥६॥ रूक्ष,

निकाल दिया करता है । शीघ्र ही उष्ण और अविष्टम्भ को वायु निवारण कर दिया करता है ॥ ११ ॥ वात और पित्त इन दोनों दोषों के प्रकोप से जो रोग उत्पन्न होता है उसमें समान ही लक्षण भी हुआ करते हैं और इसी भाँति शोक के कारण होने वाले रोग में होता है । संक्षेप में यह अतीसार साम और निराम दो प्रकार का होता है अर्थात् एक तो ऐसा अतीसार होता है जिसमें साथ ही आम (कच्चा अपरिपक्व रस) हुआ करता है और दूसरा बिना आम वाला होता है ॥ १२ ॥ जो आम से युक्त अतीसार होता है उसमें मल दुर्गन्ध से युक्त होता है और आटोप, विष्टम्भ, आर्त्ति (पीड़ा) और प्रसेक से युक्त रहा करता है । इसके विपरीत बिना आम वाला है । जल में कोई भी मज्जित नहीं होता है ॥ १३ ॥ अतीसार के हो जाने पर जो इसके निवारण करने के लिये विशेष यत्न करने वाला नहीं होता है वह ग्रहणी रोग का शिकार बन जाया करता है । अधिक समय तक अतीसार के रहने पर पाचन करने वाली जो अग्नि होती है उसका निर्वाण अर्थात् समाप्ति हो जाता है ॥१४॥

सामं शकृन्निरामं वा जीर्णं येनातिसार्यते ।
सोऽतिसारोऽतिसरणादाशुकारी स्वभावतः ॥
सामशीर्णमजीर्णेन जीर्णे पक्वं तु नैव च ॥१५
चिरकृद्ग्रहणीदोषः सञ्चयञ्चोपवेशयेत् ।
स चतुर्धा पृथग्दोषैः सन्निपाताच्च जायते ॥१६
प्राग्रूपं तस्य सदनं चिरात्पचनमम्लकः ।
प्रसेको वक्त्रवैरस्यमरुचिस्तृट्क्लमो भ्रमः ॥१७
आनद्धोदरता छर्दिः कर्णक्ष्वेडोऽन्त्रकूजनम् ।
सामान्यलक्षणं कार्श्यं धूमकस्तमको ज्वरः ॥१८
मूर्च्छा शिरोऽविष्टम्भः श्वयथुः करपादयोः ।
तन्द्रानिलात्तालुशोषस्तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥
पार्श्वोरुवङ्क्षणग्रीवारुजा तीक्ष्णविसूचिका ॥१९
रसेषु गृद्धिः सर्वेषु क्षुत्तृष्णापरिकर्तिका ।
जग्धं जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यं समश्नुते ॥२०

कच्चे अपरिपक्व रस आम से युक्त मल अथवा आम से रहित जीर्ण जिसके द्वारा प्रसारित किया जाता है वह अतीसार अति सारण करने से आशुकारी स्वभाव से ही हुआ करता है। साम अर्थात् आम से युक्त जीर्ण होता है और वह अजीर्ण ही हुआ करता है। जब वह जीर्ण हो जाता है पक्व नहीं होता है ॥ १५ ॥ चिरकाल तक अतीसार के रहने पर ग्रहणी का दोष समुत्पन्न हो जाता है और यह सञ्ज्ञ को उपवेष्टित किया करता है। यह सग्रहणी का रोग भी चार प्रकार का होता है। वात–पित्त–कफ इन तीनों दोषों के प्रकोप से अलग अलग होने वाले तीन भेद हैं और एक भेद वह होता है जिसमें तीनों दोषों का सन्निपात होता है ॥ १६ ॥ इस ग्रहणी का प्राक् रूप जो होता है उसमें शरीर के अङ्गों में सादन हुआ करता है, और बहुत देर में थोड़ा पचन हुआ करता है। इसमें प्रत्येक मुख की विरसता—अरुचि—प्यास और श्रम होता है ॥ १७ ॥ उदर में आवद्धता—छर्दि और कानों में गुनगुनाहट का रहना बराबर रहा करता है। इस व्याधि का साधारण लक्षण यह है कि शरीर में कृशता रहती है। धूमक–तमक ज्वर—मूर्च्छा—शिर और ऊरुओं में विष्टम्भ—स्वमथु हाथ तथा पैरों में होना है। वात से जब यह रोग होता है तो उसमें तन्द्रा रहा करती है—तालु में शोषण होता है—आँखों के सामने अँधेरा और कानों में आवाज होती रहा करती है। पार्श्व भाग—ऊरु में वक्षण—गरदन में पीड़ा और अति तीक्ष्ण विसूचिका होती है ॥ १८ ॥ १९ ॥ समस्त रोगों में जब वृद्धि होती है तो क्षुधा और तृष्णा का परिकीर्तन हो जाता है। जब जीर्ण होता है तो आध्मान को भी जीर्ण कर दिया करता है। मुक्त होने पर स्वास्थ्य का लाभ किया करता है ॥२०॥

वाताद्धृद्रोगगुल्मार्शः प्लीहपाण्डुत्वसज्जिता ।
चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तुन्दारं शब्दफेनवत् ॥
पुनः पुनः सृजेद्वर्चः पायुरुच्छ्वासकासवान् ॥२१
पीतेन पीतनीलाभं पीताभं सृजति द्रवम् ।
अत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः ॥२२

श्लेष्मणा पच्यते दुःखे मलश्छर्दिररोचकाः ।
आस्योपदाहनिष्ठीवकासहृल्लासपीनसाः ॥२३
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरुम् ।
उद्गारो दुष्टमधुरः सदनं संप्रहर्षणम् ॥२४
सम्भिन्नश्लेष्मसंश्लिष्टगुरुवर्चः प्रवर्त्तनम् ।
अकृशस्यापि दौर्बल्यं सर्वजे सर्वदर्शनम् ॥२५

वात से हृद्रोग—गुल्म—अर्श—प्लीहा—पाण्डु और असक्तिता होती है। चिरकाल पर्यन्त दुःख का अनुभव हुआ करता है। द्रव (ढीला)—शुष्क—तुन्दार शब्द और झागों से युक्त बार-बार वायु वर्च का उत्सृजन किया करता है और वह उच्छ्वास और खाँसी के उपद्रवों से वह व्यक्ति समन्वित होता है ॥२१॥ पित्त से पीली और नीली आभा वाले द्रव का उत्सर्ग किया करता है और अत्यन्त खट्टी डकारों से युक्त—हृदय और कण्ठ में दाह—अरुचि और तृषा से पीड़ित रहता है ॥ २२ ॥ श्लेष्मा से मल पचता है और छर्दि तथा अरोचकता होती है। मुख में दाह—निष्ठीव—खाँसी—हृल्लास और पीनस हो जाते हैं ॥ २३ ॥ हृदय स्त्यान और उदर स्तिमित तथा भारी मालूम होता है। दाष युक्त मधुर डकार होती हैं—शरीर में पीड़ा और सम्प्रहर्षण होता है। ॥ २४ ॥ सम्भिन्न कफ से संश्लिष्ट जब होता है तो गुरु वर्च की प्रवृत्ति होती है। शरीर कृश नहीं होने पर भी कमजोरी का अनुभव होता है। सभी दोषों से युक्त रोग में सब लक्षण और उपद्रवों का दर्शन हुआ करता है ॥२५॥

१३७-मदात्यय रोग का निदान

वक्ष्ये मदात्ययादेश्च निदानं मुनिभाषितम् ।
तीक्ष्णाम्लरूक्षसूक्ष्माश्च्यव्यवायाशुकरं लघु ॥१
विकाशि विशदं मद्यं मेदसोऽस्माद्विपर्ययः ।
तीक्ष्णोदयाश्च दिव्युक्ताश्चित्तोपतापिनो गुणाः ॥२
जीवितान्ताः प्रजायन्ते विशेषोत्कर्षवर्त्तिनः ।
तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्मद्यान्मान्द्यदीनौजसो गुणाः ॥३

इच्छा किया करता है ॥ ७ ॥ मरण से भी परतर दशा को प्राप्त हो जाने वाला यह पापी धर्म—अधर्म, सुख—दुःख, मान—अपमान, हित—अहित को कुछ भी नहीं जानता है और क्रोध तथा मोह से आर्त्त होकर शोक मोहादि से युक्त हो जाता है। समोद के मोह की मूर्च्छा मे अपस्मार के सहित अर्थात् स्मरण और ज्ञान की शक्ति को खोते हुए नीचे की ओर भूमि पर गिर जाया करता है। अधिक भोजन करने वाले और आहार किये हुए बलवान् लोग अत्यन्त मद युक्त नहीं हुआ करते हैं ॥८॥९॥

वातादिपित्तत्कफात्सर्वैर्भवेद्रोगो मदात्यय ।
सामन्यलक्षण तेषा प्रमोहो हृदयव्यथा ॥१०
विभेदप्रतत तृष्णा सौम्यो ग्लानिज्वरोऽरुचि ।
पुरोविबन्धस्तिमिर कास श्वास प्रजागर. ॥११
स्वेदोऽतिमात्र विष्टम्भ श्वयथुश्चित्तविभ्रमः ।
स्वप्नेनैवाभिभवति न चोक्तश्च स भाषते ॥१२
पित्ताद्दाहज्वरस्वेदो मोहो नित्यश्च हृद्भ्रमः ।
श्लेष्मणश्छर्दिहृल्लासनिद्रा चोदरगौरवम् ॥१३
सर्वजे सर्वलिङ्गत्व ज्ञात्वा मद्य पिवेत् य ।
सर्वञ्च रुचिरश्चास्य मतिध्व सकविक्रिये ॥१४
भवेता पायिन काष्ठे द्रव्ये तस्याविशेषत. ।
मारुताच्छ्लेष्मनिष्ठीवकण्ठशोषोऽतिनिद्रता ॥१५
शब्दासहत्व तच्चित्तविक्षेपोऽङ्ग हि वातरुन् ।
हृत्कण्ठरोग सम्मोह श्वासतृष्णावतिज्वरा ॥१६
निवर्त्तयस्तु मद्येभ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत् ।
विकारैर्विलश्यते या तु न स शारीरमानसैः ॥१७

वात—पित्त और कफ इन समस्त दोषो से यह मदात्यय रोग हुआ करता है। इस व्याधि का साधारण लक्षण यही होता है कि इस रोग वाले मनुष्यो को प्रकृष्ट मोह और हृदय म व्यथा हो जाता है ॥ १० ॥ विभेदन का विस्तार—तृष्णा—सौम्य—ग्लानि—ज्वर—अरुचि—पुरोविबन्ध—तिमिर—

खाँसी—श्वास—प्रजागरण—स्वेद और अत्यधिक विष्टम्भ—अयथुचित्त में—विभ्रय—स्वप्न की भाँति अभिभव से युक्त होना ये सभी लक्षण मदात्यय रोग में हो जाते है और इस रोग वाले पुरुष से कुछ कहा भी जावे तो वह कुछ भी बोलता नहीं है ॥ ११ ॥ पित्त के प्रकुपित होने से जो रोग होता है उसमें दाह-ज्वर स्वेद (पसीना)—मोह और नित्य ही हृदय में भ्रम होता है। कफ में जो यह रोग उत्पन्न होता है उसमें इस रोग के रोगी को छर्दि—हुल्लास—निद्रा-पेट में भारापन होता है। सभी दोषों से प्रकोप के कारण जब यह रोग होता है तो सभी दोषों के लक्षण दिखलाई दिया करते हैं—यह जान कर ही जो मद्य पीता है उसकी मति का ध्वंस करने वाली विक्रिया में इसको सभी कुछ रुचिर प्रतीत हुआ करता है। इसके पीने वाले व्यक्ति को काष्ठ और द्रव्य भी विशेषता प्रतीत नहीं होती है। वायु से श्लेष्मा—निष्ठीव—कण्ठ शोष और अति निद्रा का आना—शब्द को सहन न करना—चित्त विक्षेप—अङ्ग में वात पीडा—हृत्काष्ठ रोग—सम्मोह—श्वास—तृष्णा—वमन और ज्वर होते हैं ॥१२॥ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो मद्य से निवृत्त हो जाता है वह जितात्मा और पूर्व बुद्धि वाला होता है और वह शारीरिक एवं मानसिक विकारों से क्लेशित नहीं होता है ॥१७॥



गरुड़ महापुराण

उत्तरार्ध



(प्रेतकल्प)

१—धर्म कथन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१
धर्मदृढवद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः ।
क्रतुकुसुमो मोक्षफलः स जयति कल्पद्रुमो विष्णुः ॥२
भवत्प्रसादादवैकुण्ठत्रैलोक्यं सचराचरम् ।
मया विलोकितं सर्वमुत्तमाधममध्यमम् ॥३
भूर्लोकात् सत्यपर्यन्तं पुरं याम्यं विना प्रभो ।
भूर्लोकः सर्वलोकानां प्रचुरः सर्वजन्तुभिः ॥४
मानुष्यं तत्र भूतानां भुक्तिमुक्त्यालयं शुभम् ।
अतः सुकृतिनां लोको न भूतो न भविष्यति ॥५
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥६
मानुषत्वं लभेत् कस्मात् मृत्युं प्राप्नोति तत् कथम् ।
क्रियते कः सुरश्रेष्ठ देहमाश्रित्य कुत्रचित् ॥७

भगवान् श्री नारायण को प्रणाम करके, नरों मे परमोत्तम नर को
[प्रण]ाम करके, भगवती सरस्वती का अभिवादन करके तथा भगवान् श्री व्यास

देव को प्रणाम करके फिर जय'—इस शब्द का उच्चारण करना चाहिए ॥१॥ जो भगवान् विष्णु कल्पद्रुम के सदृश हैं उनकी जय हो इस कल्पद्रुम वृक्ष का दृढ धर्म से बद्ध होने वाला मूल है—वेद ही इस कल्पद्रुम के स्कन्ध है और पुराण रूपी शाखाओं से यह सम्पन्न है। जो क्रतु किये जाते हैं वे ही इस कल्पद्रुम के कुसुम हैं और परम पुरुषार्थ मोक्ष ही इसका सर्वोत्तम फल है ॥ २ ॥ श्री तार्क्ष्य ने कहा—मैंने आपके प्रसाद से वैकुण्ठ लोक–त्रैलोक्य, चर और अचर के सहित सब देख लिया है जो कि उत्तम–मध्यम और अधम है। हे प्रभो ! भूलोक से सत्य लोक पर्यन्त सभी का अवलोकन किया है किन्तु याम्यपुर अर्थात् यमराज के नगर को नहीं देखा है। यह भूलोक समस्त जन्तुओं से सभी लोकों से प्रचुर है ॥ ३ ॥ ४ ॥ यह मनुष्य लोक मानुष जीवन प्राणियों के भोग और मोक्ष का परम शुभ स्थान है। अतएव सुकृत करने वालों का लोक ऐसा उत्तम है जो कभी न हुआ है और न भविष्य में भी कभी होगा ॥ ५ ॥ देवगण सब मिल कर गीतों का गायन किया करते हैं कि जो लोग इस परम पवित्र भारतवर्ष की भूमि के भाग में उत्पन्न हुए हैं वे परम धन्य अर्थात् महाभाग्यशाली हैं। स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) के फलों के अर्जन करने के लिये अर्थात् प्राप्त करने के वास्ते देवगण भी अपने देवत्व का त्याग कर पुनः भारतवर्ष में मनुष्य जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥ ६ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! यह मानुष जीवन किससे प्राप्त होवे और फिर कैसे मृत्यु को प्राप्त होता है ? कहीं पर देह का आश्रय ग्रहण करके क्या किया जावे ? ॥७॥

मृते क्व यान्तीन्द्रियाणि ह्यस्पृश्य स कथं भवेत् ।
स्वकर्माणि कृतानीह कथं भोक्तुं प्रसर्पति ॥८

प्रसादं कुरु मे मोहं छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
विनतागर्भसम्भूत काश्यपस्तव वाहनः ॥९

इति प्रीततरो भूत्वा कथयस्व यथातथम् ।
यमलोके कथं यान्ति विष्णुलोके च मानवाः ॥
प्रेतमुक्तिप्रदं मार्गं कथयस्व प्रसादतः ॥१०

वैनतेय महाभाग शृणु सर्वं यथातथम् ।
प्रीत्या कथयतो यस्मात् सुहृदस्ति भवान् मम ॥११
परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य वै ।
अरण्ये निर्जने देशे भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः ॥१२
हीनजातौ प्रजायन्ते रत्नानामपहारकाः ।
य यं काममभिध्यायेत् स तल्लिङ्गोऽभिजायते ॥१३
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥१४

मनुष्य के मृत हो जाने पर इसकी समस्त इन्द्रियाँ कहाँ चली जाया करती हैं और यह स्पर्श न करने के योग्य कैसे हो जाता है ? अपने किये हुए कर्मों का भोग करने के लिये कैसे गमन किया करता है ? आप मुझ पर प्रसन्न होइये और इस मेरे अज्ञान जनित मोह का पूर्णतया छेदन करने के लिये आप योग्य होते हैं। विनता के गर्भ से समुत्पन्न काश्यप आपका वाहन है। इसलिये अधिक प्रसन्न होकर ठीक-ठीक कहने की कृपा कीजिएगा। ये मानव यमलोक में तो कैसे जाया करते हैं और विष्णु के लोक में किस प्रकार से पहुँचा करते हैं ? आप प्रसन्नता पूर्वक प्रेत भाव से मुक्ति प्रदान करने वाला मार्ग क्या है—इसको बतलाइये ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे महान् भाग्यशालिन् ! हे वैन तेय ! आप मेरे परम सुहृत हैं इस कारण से मैं तुमको परम प्रीति के साथ यह सभी बतलाता हूँ उसका तुम ठीक-ठीक श्रवण करो ॥ ११ ॥ जो पुरुष किसी दूसरे की स्त्री का अपहरण किया करते हैं या किसी ब्रह्मस्व अर्थात् ब्राह्मणों की सम्पत्ति का हरण करते हैं ये किसी निर्जन वन में ब्रह्मराक्षस हुआ करते हैं । १२ ॥ जो मनुष्य रत्नों का अपहरण करते हैं वे किसी हीन (नीच) जाति वाले के यहाँ जन्म लिया करते हैं। जिस-जिस कामना का अभिध्यान किया करता है वह उसी के लिङ्ग से युक्त उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ यह आत्मा तो नित्य एवं अविनाशी है। इसको शास्त्र छेदन नहीं किया करते हैं और अग्नि इसका दाह नहीं कर सकता

है । जल इसको क्लेदित नहीं करता है तथा वायु इसका शोषण नहीं किया करता है ॥ १४ ॥

वक्चक्षुर्नासिके कर्णौ गुदो मूत्रपुरीषयोः ।
अण्डजादिकजन्तूना छिद्राण्येतानि सर्वशः ॥१५
नाभेस्तु मूर्द्धपर्य्यन्तमूर्ध्वच्छिद्राणि चाष्ट वै ।
सन्तः सुकृतिनो मर्त्या ऊर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति ते ॥१६
अधश्छिद्रेण ये यान्ति ते यान्ति विगतिं नराः ।
मृताहाद्वार्षिक यावद्यथोक्तविधिना खग ॥१७
कार्य्याणि सर्वकर्माणि निर्धनैरपि मानुषैः ॥१८
देहे यत्र वसेज्जन्तुस्तत्र भुङ्क्ते शुभाशुभम् ।
मनोवाक्कायजं नित्यं तत्र तत्र खगेश्वर ॥१९
मृतः सुखमवाप्नोति मायापाशैर्न बध्यते ।
पाशबद्धनरस्येह विकर्मणि मनो भ्रमेत् ॥२०

वाक्–चक्षु–नासिका–दोनों कान–गुदा और मूत्र त्याग करने वाली इन्द्रिय ये सभी अण्डज आदि जन्तुओं के छिद्र मात्र ही होते हैं ॥ १५ ॥ नाभि से लेकर मस्तक पर्यन्त ऊपर के भाग मे आठ छिद्र हुआ करते हैं। जो सन्त एवं पुण्यात्मा पुरुष होते हैं इन ऊर्ध्व छिद्रों के मार्ग से ही जाया करते हैं ॥ १६ ॥ नीचे के छिद्रों के मार्ग से जो जाते हैं वे मनुष्य विगति को प्राप्त होते हैं। हे खग ! जिस दिन मे मृत्यु हो उस दिन से वर्ष पर्यन्त जितने भी कर्म होते हैं वे सब कर्म यथावत् उक्त विधि के अनुसार निर्धन मनुष्यों के द्वारा भी मृतक के अवश्य ही करने चाहिए ॥ १७ ॥ १८ ॥ जिस देह मे भी यह जन्तु निवास किया करता है वहाँ पर ही शुभ और अशुभ का भोग किया करता है। हे खगेश्वर ! मन–वाणी और शरीर से समुत्पन्न सबको यहाँ–वहाँ पर ही नित्य भोग किया करता है ॥ १९ ॥ मृतात्मा सुख को प्राप्ति किया करता है और माया के पाशों से बद्ध नहीं होता है। जो पाशों से बद्ध मनुष्य होता है यहाँ पर उसका मन विकर्म मे भ्रमण किया करता है ॥२०॥

२—जन्मान्तर गति कथन

एवं ते कथितं तार्क्ष्यं जीवितस्य विचेष्टितम् ।
मनुष्याणां हितार्थाय प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥१
चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदैश्च जन्तवः ।
अण्डजाः स्वेदजाश्चैव ह्युद्भिज्जाश्च जरायुजाः ॥२
एकविंशतिलक्षाणि ह्यण्डजाः परिकीर्त्तिताः ।
स्वेदजाश्च तथैवोक्ता उद्भिज्जाश्च क्रमेण तु ॥३
जरायुजास्तथाऽसंख्या मानुषाद्याः प्रचक्षते ।
सर्वेषामेव जन्तूनां मानुषत्वं हि दुर्लभम् ॥४
पञ्चेन्द्रियनिधानं तु बहुपुण्यैरवाप्यते ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ह्यन्त्यजजातयः ॥५
रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड़ एव च ।
कैवर्त्तभेदभिल्लाश्च सप्त ताश्चान्त्यजातयः ॥६
म्लेच्छतुम्बविभेदेन जातिभेदाश्चपोदश ।
जन्तूनामिह सर्वेषां भेदाश्चैव सहस्रशः ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! इस प्रकार से हमने तुमको जीवित प्राणी का विचेष्टित बतला दिया है जोकि मनुष्यों के हित सम्पादन करने के लिये और प्रेतत्व से छुटकारा पाने के लिये होता है ॥ १ ॥ चौरासी लाख योनियाँ हैं । उनमे चार प्रकार के जन्तुगण जन्म ग्रहण किया करते हैं—कुछ तो उन चार प्रकार के जन्तुओं में अण्डे से जन्म लेने वाले अण्डज होते हैं । कुछ स्वेदज जीव हैं जिनका जन्म स्वेद (पसीना) से हो हुआ करता है । कुछ उद्भिज्ज होते हैं जो जमीन से उद्भेदन कर वृक्षादि के रूप मे जन्म लेते हैं । और चौथी प्रकार के वे जन्तु हैं जो जरा मे लिपटे हुए अर्थात् जेर से *ढके हुए उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य आदि हैं । ये जरायुज कहे जाते हैं* ॥ २ ॥ इनमें इक्कीस लाख अण्डज जन्तु बताये गये हैं । उसी प्रकार से स्वेदज और उद्भिज्ज भी क्रम से कहे गये हैं । जो जरायुज मनुष्य आदि हैं वे असंख्य कहे

जाते हैं। इन समस्त प्रकार के जन्तुओं में मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ यह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का निधान मनुष्य जन्म बहुत अधिक पुण्यों के संचय से प्राप्त हुआ करता है। इस मनुष्य योनि में भी ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य—शूद्र और अन्त्यज ये जातियाँ होती हैं।५। अन्त्यज जातियाँ ये सात जातियाँ मानी गई है—रजक (धोबी)—चर्मकार (चमार)—नट—वरुड़—कैवर्त्त—भेद और भील ये उनके नाम हैं ॥ ६ ॥ म्लेच्छ और तुम्ब के विशेष भेद से जातियों के भेद तेरह होते हैं। यहाँ पर समस्त जन्तुओं के सहस्रों भेद होते हैं ॥७॥

आहारो मैथुनं निद्रा भय क्रोधस्तथैव च।
सर्वेषामेव जन्तूनां विवेको दुर्लभः परः ॥८
एकपादादिरूपैश्च दश भेदा हि मानवाः।
कृष्णसारो मृगो यत्र धर्मदेशः स उच्यते ॥९
ब्रह्माद्या देवताः सर्वे मुनयः पितरः खग।
धर्मः सत्यञ्च विद्या च तत्र तिष्ठन्ति सर्वदा ॥१०
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठा प्राणिनां मतिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥११
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्त्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥१२
मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधकम्।
द्वयोर्न साधयेदेकं तेनात्मा वञ्चितो ध्रुवम् ॥१३
इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्षमीहते।
कर्त्तुं लक्षाधिपती राज्यं राज्येऽपि सकलचक्रवर्त्तित्वम् ॥१४

आहार (भोजन करना)—मैथुन (स्त्री जाति के साथ रमण करना) निद्रा (नींद लेना)—भय और कोप ये सभी जन्तुओं को हुआ करते हैं किन्तु विवेक का होना परम दुर्लभ होता है ॥ ८ ॥ एक पाद आदि रूपों से मानवों के दश भेद होते हैं। जहाँ पर कृष्ण सार मृग होता है वह धर्म का देश कहा जाता है ॥ ९ ॥ हे खग ! ब्रह्मा से आदि लेकर सम्पूर्ण देवगण, सब मुनि मण्डल और पितृगण—धर्म—सत्य और विद्या ये सब वहाँ पर ही सर्वदा

स्थित रहा करते हैं ।। १० ।। प्राणियों को समस्त भूतों में श्रेष्ठ माना जाता है और प्राणियों में भी जो मति (बुद्धि) के उपयोग से जीवन बिताने वाले हैं वे श्रेष्ठ होते हैं । उन बुद्धिमानों में भी मनुष्य श्रेष्ठ होता है और नरों में भी ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ।। ११ ।। ब्राह्मणों में जो विद्वान् विद्या सम्पन्न होता है वह श्रेष्ठ होता है । विद्वानों में भी कृत बुद्धि श्रेष्ठ है तथा कृत बुद्धियों में कर्त्ता (करने वाले) और कर्त्ताओं में ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं ।। १२ ।। यह मनुष्य योनि में जन्म प्राप्त करना क्योंकि स्वर्ग और मोक्ष का प्रसाधक है । इन दोनों में से जिसने किसी भी एक की साधना नहीं की है जिसने निश्चय ही मनुष्य जन्म ग्रहण करके भी अपनी आत्मा का प्रवञ्चन ही किया है ।।१३।। मनुष्य का स्वभाव होता है कि जिसके पास सौ रुपये होते हैं वह सहस्र की इच्छा करता है और जिसके पास सहस्र हो जाते हैं वह लक्ष का अधिपति होना चाहता है जो लक्ष का स्वामी बन जाता है वह एक विशाल राज्य प्राप्त करने की इच्छा रखता है और राज्य भी प्राप्त हो जावे तो चक्रवर्ती सम्राट् बनने की लालसा हृदय में हुआ करती है ।।१४।।

चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरत्वलाभे सकलसुरपतित्वम् ।
भवितु सुरपतिरूर्ध्वगतित्वं तथापि न निवर्त्तते तृष्णा ।।१५
तृष्णया चाभिभूतस्तु नरकं प्रतिपद्यते ।
तृष्णामुक्तास्तु ये केचित्स्वर्गवासं लभन्ति ते ।।१६
आत्माधीन पुमान् लोके सुखी भवति निश्चितम् ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च तद्गुणाः ।।
तथा च विषयाधीनो दुःखी भवति निश्चितम् ।।१७
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीनाहताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ।।१८
पितृमातृमयो बाल्ये यौवने दयितामयः ।
पुत्रपौत्रमयः पश्चान्मूढो नात्ममयः क्वचित् ।।१९
लोहदारुमयैः पाशैः पुमान्बद्धो विमुच्यते ।
पुत्रदारमयैः पाशैर्बद्धो नैव प्रमुच्यते ।।२०

मृत्योर्न मुच्यते मूढो बालो वृद्धो युवापि वा ।
सुखदुःखाधिको वापि पुनरायाति याति च ॥२१

एक साम्राज्य का अधीश्वर मानव सुरत्व के पाने की अभिलाषा करता है तथा सुरत्व के पद की प्राप्ति हो जाने पर सुर पति इन्द्र के पद की चाहना उत्पन्न होती है । सुरपति के पद को भी पाकर उर्ध्वगति होने की इच्छा जागृत हो जाती है और यह तृष्णा बढ़ती हुई चली जाया करती है और इस तृष्णा की शान्ति नहीं हुआ करती है ॥ १५ ॥ तृष्णा से अभिभूत जन्तु नरक की प्राप्ति करता है । जो इस पिशाचिनी तृष्णा से कोई मुक्त होते हैं वे स्वर्ग का निवास प्राप्त किया करते हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष इस लोक में आत्माधीन हैं वही निश्चित् रूप से सुखी होता है । शब्द—स्पर्श—रूप—रस और गन्ध ये उसके गुण होते हैं । जो पुरुष विषयों के अधीन होता है वह निश्चित रूप से दुःखी होता है ॥ १७ ॥ कुरङ्ग (हिरण)—मातङ्ग (हाथी)—पतङ्ग—भृङ्ग (भौंरा) और मीन (मछली) ये पाँचों एक-एक ही विषय में इतने उन्मत्त होकर सेवन करने वाले होते हैं किन्तु मनुष्य एक ही ऐसा प्रमादी होता है कि जो पाँचों इन्द्रियों से पाँचो विषयों के सेवन में निमग्न रहा करता है तो यह क्यों नहीं हनन किया जावे ॥ १८ ॥ यह मानव बचपन में तो पिता-माता के वात्सल्य में डूबा रहता है—यौवन में पत्नी के प्रणय पाश में बद्ध हो जाता है । इसके पश्चात् वार्धक्य में पुत्र-पौत्रादि के स्नेह में डूबा रहता है । इसे अपने पूरे जीवन में आत्मामय होने का कोई भी अवसर ही नहीं होता है अर्थात् आत्म चिन्तन कभी भी नहीं किया करता है ॥ १९ ॥ लौह और काष्ठ की पाशों से बँधा हुआ भी पुरुष विमुक्त हो जाया करते हैं किन्तु यह पुत्र और पत्नी की पाश ऐसी हैं कि इनसे बँधा हुआ पुरुष कभी भी छुटकारा नहीं पा सकता है ॥२०॥ यह मनुष्य मूढतावश मृत्यु से कभी भी मुक्त नहीं होता है चाहे बालक हो—युवा हो अथवा वृद्ध हो । अधिक सुख या दुःख से युक्त होकर यहाँ से चला जाता है अर्थात् मर जाता है और फिर यहाँ आकर जन्म ग्रहण किया करता हैं । अर्थात् आवागमन बराबर लगा रहता है—मोक्ष नहीं होता है ॥२१॥

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एको हि भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२२

सर्वेषां पश्यतामेव मृतः सर्वं जहाति च ।
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमन्वितम् ॥२३
बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ।
गृहेष्वर्था निवर्त्तन्ते श्मशाने मित्रबान्धवाः ॥२४
शरीरं वह्निरादत्ते सुकृत दुष्कृत व्रजेत् ।
शरीर वह्निना दग्धं कृतं कर्म सहस्थितम् ॥२५
शुभं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः ।
अनस्तमित आदित्ये न दत्तं धनमर्थिनाम् ॥२६
न जानामीति तद्वित्तं प्रातः कस्य भविष्यति ।
रोरवीति धनं तस्य को मे भर्त्ता भविष्यति ॥२७
न दत्त द्विजमुख्यानां नाग्नौ तीर्थे सुहृज्जने ।
पूर्वजन्मकृतात्पुण्याद्यल्लब्ध बहु चाल्पकम् ॥२८

यह जीवात्मा अकेला ही उत्पन्न होता है और एक ही इस लोक से प्रलय को प्राप्त होता है अर्थात् मर कर भी अकेला ही चला जाता है। यह जो कुछ भी सुकृत कर्म करता है उसका फल या जो कुछ भी पाप कर्म करता है उसका कुफल भी यह अकेला ही भोगता है। इस भोग में और आवागमन में कोई भी अन्य साथी नहीं होता है ॥ २२ ॥ सभी लोगों के देखते हुए जब इसका समय आ जाता है मृत्यु को प्राप्त होकर चला जाया करता है और सभी कुछ यहीं छोड़ जाता है। उस समय में विशाल वैभव और प्राणों से भी अधिक प्रिय मित्र–बन्धु कोई भी आड़े नहीं आते हैं। मृत शरीर को काष्ठ और लोष्ठ से समन्वित कर अर्थात् दाह करके या दफना कर बान्धव लोग छोड़ कर विमुख होते हुए चले जाते हैं। उस समय में यदि कुछ धर्म का काम किया है तो वही उसके साथ जाया करता है। धन, वैभव तो घर में ही रह जाता है और मित्र तथा बान्धव श्मशान में छोड़कर वहीं से चले जाते हैं ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ इस शरीर को अग्नि ग्रहण कर नष्ट कर देती है केवल सुकृत और दुष्कृत ही जो उसने अपने जीवन में किया है साथ आया करता है। धन–बान्धव और शरीर वह्नि से जला हुआ सब नष्ट होकर केवल किया हुआ

एक मात्र कर्म साथ में रहता है ॥ २५ ॥ शुभ कर्म हो या पाप कर्म हो उसका फल अकेला ही मानव सर्वत्र भोगा करता है। सूर्य के अस्त न होने के समय में याचकों को धन का दान नहीं किया है—मैं यह नहीं जानता हूँ कि यह धन जिसका सञ्चय किया है वह कल प्रातः काल में किसका होगा ? धन भी बराबर रुदन करता है कि कल मेरा स्वामी कौन होगा ? ॥ २६ ॥ पूर्व जन्म के किये हुए पुण्य के फल से जो भी अधिक या कम धन प्राप्त किया है उसे न तो ब्राह्मणों को दान में दिया और न अग्नि की सेवा में हवन के रूप में ही समर्पित किया है—न कोई उस धन से तीर्थाटन किया और न किसी मित्र आदि के हित में ही व्यय किया या उसका विनियोग उपकारार्थ किया है ॥२८॥

तदीदृशं परिज्ञाय धर्मार्थे दीयते धनम् ।
धनेन धार्य्यते धर्मं श्रद्धायुक्तेन चेतसा ॥२९
श्रद्धाविहीनो धर्मस्तु नेहामत्र च वृद्धिभाक् ।
धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते ॥३०
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत् ।
श्रद्धया धार्य्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभि ॥३१
अकिञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवङ्गता. ।
अश्रद्धया हुत दत्त तपस्तप्त कृतञ्च यत् ॥
असदित्युच्यते पक्षिन्प्रेत्य नेह न तत्फलम् ॥३२

सो इस धन की ऐसी स्थिति का भली भाँति ज्ञान करके धर्म के लिये धन का विनियोग किया जाता है। श्रद्धा से युक्त चित्त से धन के द्वारा धर्म को धारण किया जाता है ॥ २९ ॥ जो बिना श्रद्धा के धर्म किया जाता है उससे न तो यहाँ कुछ वृद्धि होती है और न परलोक में ही उसका सहारा प्राप्त होता है। धर्म से ही अर्थ होता है और धर्म से ही काम होता है ॥३०॥ धर्म ही अपवर्ग के लिये सहायक होता है। इसलिये धर्म का आचरण करना चाहिए। श्रद्धा से धर्म धारण किया जाता है अत्यधिक धन के समूह से धर्म को अर्जित नहीं किया जाता है ॥ ३१ ॥ अकिञ्चन मुनिगण श्रद्धा वाले होने

के कारण स्वर्ग गामी हुए थे। मुनियों के पास कुछ भी धन नहीं था। धन का कुछ भी महत्व नहीं है— महत्व है श्रद्धा का—श्रद्धा ही धन-धर्म का निर्वाहक होता है। अश्रद्धा से हवन किया हुआ—तपस्या की हुई और जो कुछ भी किया गया है वह सभी असत् कहा जाता है। हे पक्षिन्! मरने के पश्चात् ऐसे हवन—दान—धर्म और तप से कुछ भी फल प्राप्त नहीं हुआ करता है। यह सब व्यर्थ ही हो जाता है ॥३२॥

३—दान फल कथन

कर्मणा केन देवेश प्रेतत्वं नैव जायते।
पृथिव्या सर्वजन्तूनां तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥१॥
शृणु वक्ष्यामि सङ्क्षेपात्क्रियाञ्चैवौर्ध्वदैहिकीम्।
स्वहस्तेनैव सा कार्या मोक्षकामैस्तु मानवैः ॥२
स्त्रीणामपि विशेषेण पञ्चवर्षाधिके शिशौ।
वृषोत्सर्गादिकं कर्म प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥३
वृषोत्सर्गादृते नान्यत्किञ्चिदस्ति महीतले।
जीवन्वापि मृतो वापि वृषोत्सर्गं करोति यः ॥
प्रेतत्वं न भवेत्तस्य विना दानैर्विना मखैः ॥४
कस्मिन्काले वृषोत्सर्गं जीवन्वापि मृतोऽपि वा।
कुर्य्यात्सुरवरश्रेष्ठ ब्रूहि मे मधुसूदन।
किं फलं तु भवेज्जन्तोः कृते श्राद्धे तु षोडशे ॥५
अकृत्वा तु वृषोत्सर्गं कुरुते पिण्डपातनम्।
नोपतिष्ठति तच्छ्रेयो दत्तं प्रेतस्य निष्फलम् ॥६
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः।
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥७

श्री गरुड़ ने कहा—हे सुरेश्वर! हे देवेश! ऐसा कौनसा कर्म है जिसके करने से प्रेतत्व की प्राप्ति नहीं होती है? आप कृपा करके मुझे यही बताइये कि जिस कर्म से पृथ्वी में समस्त जन्तुओं को प्रेतत्व न हो ॥१॥ श्री भगवान्

ने कहा—अब हम ऊर्ध्व देह से सम्बन्ध रखने वाली और्ध्व देहिकी क्रिया अर्थात् देह के नाश हो जाने पर की जाने वाली क्रिया संक्षेप में बतलाते हैं उसका श्रवण करो। मोक्ष की कामना रखने वाले मानवों को वह अपने ही हाथ से सम्पन्न करनी चाहिये ॥२॥ स्त्रियों को भी शिशु के पाँच वर्ष से अधिक हो जाने पर विशेष रूप से वृष का उत्सर्ग आदि कर्म प्रेतत्व के निवारण करने के लिये करना चाहिए ॥३॥ इसी महीतल में वृष के उत्सर्ग से अधिक अर्थात् इसके बिना अन्य कुछ भी नहीं है। जीवित रहते हुए अथवा मृत होने के बाद जो वृष का उत्सर्ग करता है उसे बिना किसी अन्य दान और मखों के ही अर्थात् यज्ञादि किये बिना ही प्रेतत्व नहीं होता है ॥४॥ गरुड़ ने कहा—हे सुरवरों में श्रेष्ठ! हे मधुसूदन! यह वृष का उत्सर्ग (त्याग) किस समय में जीवित अथवा मृत की दशा में करना चाहिए ?—यह कृपया बतलाइये। इसका जन्तु को तथा षोडश श्राद्धों के करने का क्या फल होता है ? ॥५॥ श्री कृष्ण भगवान् ने कहा—वृष के उत्सर्ग के बिना अर्थात् बिजार छोड़ने के बिना जो कोई भी पिण्डों का पातन करता है उसका कुछ भी श्रेय प्रेत को दिया हुआ नहीं होता है और वह सब निष्फल ही होता है ॥६॥ मृत्यु के ग्यारहवें दिन जिस प्रेत के लिये वृष का उत्सर्ग नहीं किया जाता है उसको प्रेतत्व सुस्थिर होता है न है उसके लिये सैंकड़ों ही श्राद्ध क्यों नहीं दिये जावें ॥७॥

पुत्रा यस्य न विद्यन्ते न माता न च बान्धवाः ।
न पत्नी न च भर्त्ता च कथं स्यादौर्ध्वदेहिकम् ॥८
केन मुक्तिं प्रपद्यन्ते नरा नार्य्यो खगाधिप ।
एतन्मे संशयं देव छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥९
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ।
येन केनाप्युपायेन पुत्रस्य जननञ्चरेत् ॥१०
सपुत्रा वा ह्यपुत्रो वा नरो नारी पतिस्तथा ।
जीवन्नेव स्वयं कुर्य्यान्मृतो ह्यक्षयमाप्नुयात् ॥११
यानि यानि च दानानि स्वयं दत्तानि मानवैः ।
तानि तानि च सर्वाणि ह्युपतिष्ठन्ति चाग्रतः ॥१२

व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च ।
स्वय हस्तेन दत्तानि देहान्ते चाक्षय फलम् ।।१३
गोभूहिरण्यवासांसि भोजनानि पदानि च ।
यत्र तत्र वसेज्जन्तुस्तत्र तत्रोपतिष्ठति ।।१४

गरुड ने कहा—जिस पुरुष के कोई भी पुत्र न हो और माता और कोई बान्धव भी न हो—पत्नी भर्त्ता आदि भी कोई न हो उसके लिए ओर्ध्व दैहिक कर्म कैसे हो सकता है ? क्योंकि इसे करने वाला तो कोई रहता ही नही है ? ।।८।। हे भगवन् ! ऐसे गतापद नर और नारी किस प्रकार से मुक्ति को प्राप्त होते हैं ? यह मेरा बहुत अधिक सशय है । कृपाकर इसका निवारण करने मे आप योग्य होते हैं ।।९।। श्री भगवान् ने कहा—जो पुत्र से रहित है उसकी तो गति होती ही नही है । उसे स्वर्ग तो प्राप्त ही नहीं होता है । किसी भी उपाय से पुत्र की उत्पत्ति तो अवश्य ही करनी चाहिए ।।१०।। जो अपुत्र है अर्थात् पुत्र से रहित होता है वह चाहे नर हो या नारी हो उसे जीवित रहते ही स्वय अपनी और्ध्व दैहिकी क्रिया कर लेनी चाहिये जिससे मृत होकर वह अक्षय पद को प्राप्त कर लेवे ।।११।। जो भी कोई दानादि मानवो के द्वारा स्वय दिये गये हैं वे सब आगे उपस्थित रहा करते हैं ।।१२।। विविध भांति के विचित्र व्यञ्जन और भक्ष्य भोज्य पदार्थ जो स्वय हाथ से दिए गए हैं वे सब देह के अन्त हो जाने पर अक्षय फल प्रदान किया करते है ।।१३।। गो, भूमि, सुवर्ण वस्त्र भोजन और पद ये सभी यह जन्तु जहाँ जहाँ पर भी वास किया करता है वहाँ वहाँ पर ही उपस्थित मिला करते हैं ।।१४।।

यावत्स्वास्थ्य शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत् ।
अस्वस्थ प्रेरितश्चान्यैर्न किंचित्कर्त्तुमुत्सहेत् ।।१५
यावत्तस्य मृतस्येह न भूत चौर्ध्वदेहिकम् ।
वायुभूत क्षुधाविष्टो भ्रमते च दिवानिशम् ।।१६
कृमिकीटपतङ्गो वा जायते म्रियतेऽपि स ।
असद्गर्भे वसेत्सोऽपि जात सद्यो विनश्यति ।।१७

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो ।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् ।
सदीप्ते भवने हि कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥१८

जब तक इस शरीर में स्वस्थता विद्यमान रहती है तभी तक धर्म का काम कर लेना चाहिए। जब यह स्वयं अस्वस्थ हो जाता है तो फिर अन्यों के द्वारा प्रेरित होकर कुछ भी करने का उत्साह नहीं किया करता है अर्थात् उस अशक्तावस्था मे इससे कुछ भी नहीं बन पड़ता है ॥१५॥ इस लोक में मृत जन्तु का जब तक और्ध्व दैहिक कर्म नहीं होता है तब तक यह क्षुधा से आविष्ट होकर वायुभूत होता हुआ रात दिन भ्रमण किया करता है ॥१६॥ अथवा कोई कृमि, कीट या पतङ्ग बनकर उत्पन्न होता है और मर जाया करता है। यह ऐसे असत् गर्भ में वास किया करता है कि तुरन्त ही विनष्ट हो जाता है ॥१७॥ अतएव जब तक यह शरीर रोगों से रहित है और जब तक बुढ़ापा इसको प्राप्त नहीं होता है, जिस समय तक इसकी इन्द्रियाँ अप्रतिहत शक्ति से सम्पन्न रहती हैं और आयु का क्षय नहीं होता है तभी तक विद्वान् और ज्ञानयुक्त पुरुष को अपनी आत्मा के कल्याण के लिए महान् प्रयत्न करना चाहिए। जब घर में अग्नि लगकर खूब प्रदीप्त हो जाती है उस समय उसे बुझाने के लिये कुएँ का खोदने का उद्यम करना क्या कर सकता है? अर्थात् वह उद्यम तो व्यर्थ सा ही होता है। जब तक कुआ तैयार होगा तब तक अग्नि सभी को भस्मसात् कर देता है ॥१८॥

४—और्ध्व दैहिक क्रिया कथन और वृषोत्सर्ग

स्वहस्तं किं फलं देव परहस्तैश्च तद्वद ।
स्वस्थावस्थैरसज्ञैर्वा विधिहीनमथापि वा ॥१
एका गौः स्वस्थचित्तस्य ह्यस्वनस्थस्य च गोशतम् ।
सहस्रं म्रियमाणस्य दत्तं चित्तविवर्जितम् ॥२
मृतस्यैव पुनर्लक्षं विधिहीनञ्च निष्फलम् ।
तीर्थपात्रसमायोगादेका वै लक्षपुण्यदा ॥३

पात्रे दत्तं खगश्रेष्ठ ह्यहन्यहनि वर्द्धते ।
दातुर्दानमपापाय ज्ञानिनां न प्रतिग्रहः ।
विषशीतापहो मन्त्रं वह्निः किं दोषभाजिनो ॥४
दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः ।
नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता ॥५
अपात्रे सा च गौर्दत्ता दातारं नरकं नयेत् ।
कुलैकविंशतियुतं गृहीतारञ्च पातयेत् ।
देहान्तरं यदावाप्य स्वहस्तसुकृतञ्च यत् ॥६
धनं भूमिगतं यद्वत्स्वहस्तेन निवेशितम् ।
तद्वत्फलमवाप्नोति ह्यहं वच्मि खगेश्वर ॥७

गरुड ने कहा—हे देव ! अपने ही हाथों से किये हुए का क्या फल होता है और दूसरों के द्वारा किये हुए का क्या फल है ? स्वस्थ अवस्था में रहते हुए या अस्वस्थ एवं सज्ञा शून्यों के द्वारा किये हुए का क्या फल है ? जो कुछ भी क्रिया जावे वह विधि से रहित हो तो उसका क्या फल होता है ?—यह कृपया सब बताइये ॥१॥ श्री कृष्ण ने कहा—जो स्वस्थ चित्त वाला हो उसकी दान की हुई एक गौ और जो अस्वस्थ चित्त वाला है उसकी दी हुई एक सौ गौ—मरने के जो निकट हो उसकी दी हुई एक हजार गौ का दान बराबर होता है क्योंकि उस समय तो उसका चित्त स्थिर ही नहीं रहता है । मृत होने पर एक लाख गौ का दान बराबर होता है । जो दान आदि विधि से रहित है वह तो बिल्कुल फल से शून्य हुआ करता है । तीर्थ और सत्पात्र के समायोग होने पर एक ही गौ का दान एक लाख गौ के दान के समान पुण्य-फल के देने वाला हुआ करता है । दान में पात्र और स्थान का बड़ा महत्त्व होता है ॥२।३॥ हे खगश्रेष्ठ ! सत्पात्र में दिया हुआ दान दिनों-दिन बढ़ा करता है । दाता का दान अपाप के लिये होता है ज्ञानियों का प्रतिग्रह नहीं होता है । विष और शीत का अपहरण करने वाला वह्नि मन्त्र होता है फिर क्या दोष है ? ॥४॥ प्रतिदिन पात्र में ही दान देना चाहिए और विशेष करके निमित्त में भी दान देवे । जो अपना श्रेय चाहता है उसे विद्वान् पुरुष को कभी भी किसी अपात्र को दान

नहीं देना चाहिए ॥५॥ यदि किसी सत्पात्रता से रहित पुरुष को गौ का दान दिया जाता है तो वह दाता को नरक मे ले जाता है। जो दान ग्रहण करता है उसके भी इक्कीस कुलों का वह पातन किया करता है। अपने हाथ से जो भी सुकृत किया गया है वह दूसरे देह मे प्राप्त होता है ॥६॥ जिस प्रकार से अपने हाथ से भूमि मे रक्खा हुआ धन प्राप्त होता है उसी तरह फल की प्राप्ति हुआ करती है। हे खगेश्वर! मैं यह बतलाता हूँ ॥७॥

अपुत्रोऽपि विशेपेण क्रियश्चौर्ध्वदेहिकीम् ।
प्रकुर्य्यान्मोक्षकामश्च निर्धनश्च विशेषतः ॥८
स्वल्पेनापि हि वित्तेन स्वयं हस्तेन यत्कृतम् ।
अक्षयं याति तत्सर्वं यथाग्न्यञ्च हुताशने ॥९
एका एकस्य दातव्या शय्या कन्या पयस्विनी ।
सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तमं कुलम् ॥१०
तस्मात्सर्वं प्रकुर्वीत चञ्चले जोविते सति ।
गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि ॥११
अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि ।
एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ वृषयज्ञं समाचरेत् ॥१२
अकृत्वा म्रियते यस्तु सपुत्रोऽपि न मुक्तिभाक् ।
अपुत्रोऽपि हि यः कुर्य्यात्सुखं याति महापथे ॥१३
अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञैर्दानैश्च विविधैरपि ।
न तां गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण या भवेत् ॥१४

जिसके कोई भी पुत्र न हो वह भी विशेष रूप से अपनी औध्र्व दैहिकी क्रिया करे। जो मोक्ष की कामना करने वाला है और विशेष रूप मे निर्धन हो उसे भी औध्र्व दैहिकी क्रिया अवश्य ही अपने आप ही करनी चाहिए ॥८॥ चाहे बहुत थोडा ही धन हो उसी से अपने आप स्वयं हाथ से जो कुछ भी किया गया है वह सब अक्षय होता है, जिस तरह अग्नि में दिया हुआ अर्थात् हवन किया हुआ घृत अक्षय होता है ॥९॥ एक को एक ही कन्या, शय्या और पयस्विनी देनी चाहिए। यदि उसका कोई विक्रय तथा विभाग करता है तो वह

स्थान कुचों का दाह किया करता है ॥१०॥ इस कारण से यह सभी कुछ अपने इस चंचल एवं अस्थिर जीवन में हो कर लेना चाहिए जिसने जीवित रहते हुए ही दान का पाथेय ग्रहण कर लिया है वह मरने के पश्चात् उस यमपुरी के महामार्ग में सुख पूर्वक गमन किया करता है ॥११॥ जैसे कोई मार्ग में खाने की सामग्री से रहित मनुष्य यात्रा में दुःखित होता है वैसे ही यह जन्तु भी दान के पाथेय से रहित होकर सदा क्लेश भोगा करता है। हे खग श्रेष्ठ ! इस प्रकार से समझ कर वृष यज्ञ का समारम्भ करना चाहिए ॥१२॥ जो इस वृषयज्ञ को न करके यों ही मृत्युगत हो जाता है वह चाहे सुन्दर पुत्र वाला भी क्यों न हो किन्तु मुक्ति को प्राप्त नहीं किया करता है। जो बिना पुत्र वाला भी हो और इस वृषयज्ञ को कर लेता है वह उस महामार्ग में सुख पूर्वक गमन किया करता है ॥१३॥ अग्निहोत्र आदि से, यज्ञों से और विविध प्रकार के दानों से भी मनुष्य उस गति को प्राप्त नहीं होता है जो गति वृषोत्सर्ग से प्राप्त हो जाती है ॥१४॥

सर्वेषामेव यज्ञानां वृषयज्ञस्तथोत्तमः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत् ॥१५
कथयस्व प्रसादेन वृषयज्ञक्रिया तथा ।
कस्मिन्काले तिथौ कस्यां विधिना केन तद्भवेत् ॥
कृत्वा किं फलमाप्नोति ह्येतन्मे वद साम्प्रतम् ॥१६
कार्त्तिकादिषु मासेषु ह्युत्तरायणगे रवौ ।
शुक्लपक्षे तथा कृष्णे द्वादश्यादिशुभे तिथौ ॥
शुभे लग्ने मुहूर्त्ते वा शुचौ देशे समाहित ॥१७
ब्राह्मणान्तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम् ।
जपहोमैस्तथा दानैः प्रकुर्य्याद्देहशोधनम् ॥१८
पूर्वेऽह्नि शुभनक्षत्रे ग्रहान्देवान्समर्चयेत् ।
होमं कुर्य्याद्यथाशक्ति मन्त्रैश्च विविधैः शुभैः ॥१९
ग्रहाणां स्थापनं कुर्य्यात्पूजनञ्च खगेश्वर ।
मातृणां पूजनं कुर्य्याद्वसोर्धाराञ्च कारयेत् ॥२०

वह्निं संस्थाप्य तत्रैव पूर्णाहोमञ्च कारयेत् ।
शालग्रामञ्च संस्थाप्य वैष्णव श्राद्धमाचरेत् ॥२१

समस्त प्रकार के यज्ञो में वृषयज्ञ सबसे उत्तम यज्ञ होता है । इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्न से वृषयज्ञ को करना चाहिये ॥१५॥ गरुड ने कहा—भगवन् ! कृपाकर वृषयज्ञ की सम्पूर्ण क्रिया का वर्णन कीजिये । किस समय मे और किस तिथि में, किस विधान से इसे किया जाता है ? इसके करने से किस फल की प्राप्ति होती है ?—यह सब अब मुझे बतलाइये ॥१६॥ श्रीकृष्ण ने कहा—कार्तिक आदि मासो मे जब कि सूर्य उत्तरायण हो जावें—शुक्ल पक्ष में अथवा कृष्ण पक्ष में द्वादशी आदि शुभ तिथि के दिन, शुभ लग्न मे और उत्तम मुहूर्त मे, किसी पवित्र स्थल मे समाहित होकर स्थित हो जाना चाहिये ॥१७॥ फिर किसी विधि के ज्ञाता शुभ लक्षणो से समन्वित ब्राह्मण को बुलवा कर जाप, होम और दानो के द्वारा सर्व प्रथम देह का शोधन करना चाहिये ॥१८॥ पुण्य दिन में और शुभ नक्षत्र में समस्त ग्रहो का तथा देवताओ का अर्चन करे । अनेक शुभ मन्त्रो के द्वारा शक्ति भर होम करना चाहिये ॥१९॥ हे खगेश्वर ! ग्रहो की स्थापना करे और उनका सविधि पूजन करे । षोडश मातृकाओ का यजन करके वसुधारा करे ॥२०॥ वहाँ पर ही अग्नि की स्थापना करके पूर्ण होम करावे । भगवान् शालग्राम को सस्थापित करके वैष्णव श्राद्ध करे ॥२१॥

वृषं सम्पूज्य तत्रैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
चतस्रो वत्सतर्यस्ता. पूर्वं सम्धिवासयेत् ॥२२
प्रदक्षिणां प्रकुर्वीत होमान्ते तु विसर्जयेत् ।
इम मन्त्रं समुच्चार्य्य ह्य त्तराभिमुखं स्थितः ॥२३
धर्मस्त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ।
वृषोत्सर्गप्रभावेण मामुद्धर भवार्णवात् ॥२४
अनेनैव वृषोत्सर्गं रुद्रकुम्भोदकेन तु ।
दर्भमूले घट स्थाप्य उदकं शिरसि न्यसेत् ॥२५
अभिषिच्य शुभैर्मन्त्रैः पावनैर्विधिपूर्वकम् ।
तेन क्रीडेति मन्त्रेण वृषोत्सर्गे कृते सति ॥२६

आत्मश्राद्ध तत कुर्य्याद्दत्वा चान्न द्विजोतमे ।
उदके चैव गन्तव्य जल तत्र प्रदापयेत् ॥२७
यदिष्ट जीवितस्यासीत्तद्द्याच्च स्वशक्तित ।
सुतृप्तो दुस्तर मार्ग मृतो याति सुखेन हि ॥२८

वहाँ पर ही उपर्युक्त समस्त क्रिया करने के पश्चात् वृष का पूजन करे और वस्त्रालङ्कारो मुसज्जित करे । चार वत्सतरियो को पहिले लाकर उनका अधिवास करे ॥२२॥ प्रदक्षिणा करे और होम के अन्त मे निम्नाङ्कित मन्त्र का उच्चारण करता हुआ उत्तर की ओर मुख करके स्थित हो विसर्जन करे । मन्त्र –आप धर्म हैं ब्रह्मा ने पहिले वृष के रूप मे आपका निर्माण किया था । अब वृषोत्सर्ग के प्रभाव स मुझको इस ससार रूपी समुद्र से उद्धार करो ॥२३।२४॥ शुभ मन्त्रो के द्वारा जो कि परम पावन मन्त्र हैं, विधि के सहित अभिषेक करे । फिर 'तेन क्रीड"—इस मन्त्र से वृषोत्सग किये जाने पर फिर अपना श्राद्ध करे और किसी श्रेष्ठ द्विज को अन्न दान करे । फिर जलाशय पर जाकर वहाँ जल देवे ॥२५।२६।२७॥ जो अपने जीवित का इष्ट हो उस पदार्थ को भी यथाशक्ति देना चाहिये । इस प्रकार से सुतृप्त होवे । ऐसा करने पर जब भी मृत होगा तो यमपुरी के महान् दुस्तर मार्ग मे परम सुख से चला जाता है । ॥ २८ ॥

यावन्न दीयते जन्तो श्राद्धञ्चैकादशाह्निकम् ।
स्वदत्त परदत्त वा नेहामुत्रोपतिष्ठति ॥२९
त्रयोदश तथा सप्त पञ्च त्रीणि यथाक्रमम् ।
पददानानि कुर्वीत श्रद्धाभक्तिसमन्वित ॥३०
तिलपात्राणि कुर्वीत त्रीणि पञ्च च सप्त वा ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्दगामेकाञ्च प्रदापयेत् ॥३१
वामे चक्र प्रकर्त्तव्य त्रिशूल दक्षिणे तथा ।
माल्य दत्वा तथैवास्य वृषमेक विसर्जयेत् ॥३२
एकोद्दिष्टविधानेन स्वाहाकारेण बुद्धिमान् ।
कुर्य्यादेकादशाह तु द्वादशाह प्रयत्नत ॥३३

सपिण्डीकरणादर्वाक्कुर्य्याच्छ्राद्धानि षोडश ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु पददानानि दापयेत् ॥३४
कार्पासोपरि सस्थाप्य ताम्रपात्रे तथाच्युतम् ।
वस्त्रेणाच्छाद्य तत्रस्थमर्घ्यं दद्याच्छुभै: फलैः ॥३५

जब तक एकादशवें दिन का श्राद्ध जन्तु को नहीं दिया जाता है चाहे वह अपने आप से ही किया जावे या दूसरे के द्वारा दिया जावे । इसके बिना यहाँ और परलोक मे उपस्थित नहीं होता है ॥२९॥ त्रयोदश तथा सात-पाँच और तीन यथा क्रम श्रद्धा-भक्ति से युक्त होकर पदो का दान करना चाहिए ॥ ॥३०॥ तीन, पाँच अथवा सात तिल के पात्र बनावे और दान करे । पीछे ब्राह्मणों को भोजन करावे और एक गो का दान करे ॥३१॥ वाम भाग में चक्र बनावे और दक्षिण मे त्रिशूल करे फिर माल्य इसको देकर एक वृष का उत्सर्ग करना चाहिए ॥३२॥ बुद्धिमान् पुरुष को एकोद्दिष्ट विधान से स्वाहाकार से एकादशाह करना चाहिए तथा फिर प्रयत्न पूर्वक द्वादशाह करे ॥३३॥ सपिण्डी कर्म करने से अर्वाक् ही षोडश श्राद्ध करे । ब्राह्मणों को भोजन करा कर उन्हे पदो का दान देवे ॥३४॥ कार्पास के ऊपर सस्थापित करके ताम्र के पात्र मे अच्युत भगवान् को वस्त्र से आच्छादित करे, शुभ फलो से वहाँ पर स्थित को अर्घ्य देवे ॥३५॥

नावमिक्षुमयी कुर्यात्पट्टसूत्रेण वेष्टितम् ।
कांस्यपात्रे घृत स्थाप्य वैतरण्या निमित्तकम् ॥३६
नावमारोहयेद्गन्तु पूजयेद्गरुडध्वजम् ।
आत्मवित्तानुसारेण तस्या दानमनन्तकम् ॥३७
भवसागरमग्नाना शोकतापोर्मिदु खिनाम् ।
धर्मप्लवविहीनाना तारको हि जनार्दन ॥३८
तिललोह हिरण्यञ्च कार्पास लवण तथा ।
सप्तधान्य क्षितिर्गाव एकैक पावन स्मृतम् ॥३९
तिलपात्राणिकुर्वीत शय्यादानञ्च कारयेत् ।
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥४०

एवं यः कुरुते तार्क्ष्य पुत्रवानप्यपुत्रवान् ।
स सिद्धिं समवाप्नोति यथा ते ब्रह्मचारिणः ।।४१
नित्यं नैमित्तिकं कुर्याद्यावज्जीवति मानवः ।
यत्किञ्चित् कुरुते धर्ममक्षयं फलमाप्नुयात् ।।४२

एक इक्षुमयी नौका की रचना करावे । यह सूत्र से वेष्टित कांसे के पात्र में वैतरणी नदी के निमित्त गुप्त स्थापित करना चाहिए ।।३८।। उस नौका से गमन करने के लिये आरूढ़ करावे और भगवान् गरुड़ध्वज का पूजन करे । अपने धन की शक्ति के अनुसार उसके अनन्त दान होते हैं ।।३९।। निष्पापों का दान करे और शय्या का दान करे । दीन, अन्ध और विशिष्टों को यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए ।।४०।। इस प्रकार से जो सम्पूर्ण विधि को साङ्ग सम्पादित किया करता है, हे तार्क्ष्य ! वह चाहे पुत्र वाला हो या अपुत्री हो, जिस तरह ब्रह्मचारी प्राप्त किया करते हैं वैसे ही सिद्धि को प्राप्त करता है ।। ।।४१।। मनुष्य जब तक जीवित रहता है उसे सभी नित्य कर्म और नैमित्तिक कर्म करने चाहिए । जो भी कुछ मनुष्य धर्म करता है उसका अक्षय फल प्राप्त किया करता है ।।४२।।

तीर्थयात्राव्रतानाञ्च श्राद्धे सांवत्सरादिके ।
देवतानां गुरूणाञ्च मातापित्रोस्तथैव च ।।४३
पुण्यं देयं प्रयत्नेन प्रत्यहं वर्द्धते खग ।
अस्मिन्पक्षे हि यः कश्चिद्भूरिदानं प्रयच्छति ।।४४
तत्तस्य चाक्षयं सर्वं वेदिकायां यथा किल ।
यथा पूज्यतमा लोके यतयो ब्रह्मचारिणः ।।४५
तथैव प्रतिपूज्यन्ते लोके सर्वे च नित्यशः ।
वरदोऽहं सदा तस्य चतुर्वक्त्रस्तथा हरः ।।४६
ते यान्ति परमाँल्लोकानिति सत्यं वचो मम ।
पौर्णमास्याञ्च रेवत्यां नीलमेकं प्रमुञ्चयेत् ।।४७
सङ्क्रान्तीनां सहस्राणि सूर्य्यपर्वशतानि च ।
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तद्वै नीलविसर्जने ।।४८

वत्सतरी प्रदातव्या ब्राह्मणेभ्यः पदानि च ।
तिलपात्राणि देयानि शिवभक्तद्विजेषु च ।।४९

तीर्थों की यात्रा—व्रत आदि को वार्षिक श्राद्ध में देवताओं के और गुरुओं के तथा माता—पिता के लिये जो किया जाता है देने के योग्य पुण्य प्रयत्न पूर्वक प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है हे खग ! इस वृषोत्सर्ग यज्ञ में जो कोई भी बहुत अधिक दान देता है उसका वह सभी अक्षय हो जाता है जिस प्रकार से वेदिका में किया हुआ कर्म अक्षय होता है। जिस तरह लोक में यति वर्ग और ब्रह्मचारी गण पूज्यतम होते हैं उसी भाँति ये दान देने वाले सभी लोक में पूजित हुआ करते हैं और मैं तथा ब्रह्मा एवं हर सदा नित्य ही उनको वरदान देने वाले होते हैं ।। ४३ ।। ४४ ।। ४५ ।। ४६ ।। वे लोग सब परम श्रेष्ठ लोकों में गमन करते हैं—यह मेरा वचन बिलकुल सत्य एवं ध्रुव है। पूर्णमासी तिथि के दिन और रेवती नक्षत्र में एक नील का विसर्जन करे ।।४७।। सहस्रों संक्रान्ति और सैकड़ों सूर्य पर्व करके जो फल प्राप्त होता है वही एक नील के विसर्जन करने का पुण्य—फल हुआ करता है ।। ४८ ।। ब्राह्मणों को वत्सतरी का दान करना चाहिए और पद भी देवे—तिलों से परिपूर्ण पात्रों का दान करे। जो ब्राह्मण शिव के भक्त हो उनको दान करे ।। ४९ ।।

उमा महेश्वरञ्चैव परिधाप्य प्रयत्नतः ।
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ।।५०
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम् ।
प्रेतत्वान्मोक्षमिच्छन्ति ये करिष्यन्ति स्वक्रियाम् ।।५१
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया स्वच्चौर्ध्वं दैहिकम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापैर्विष्णुलोकं स गच्छति ।।५२
श्रुत्वा माहात्म्यमतुलं गरुडो हर्षमागतः ।
भूयः पप्रच्छ देवेशं कृत्वा चानतकन्धरम् ।।५३

उमा और महेश्वर का प्रयत्न पूर्वक परिधान करके अलसी के पुष्प के सदृश—पीत वस्त्र धारी भगवान् अच्युत् गोविन्द को जो नमन किया करते हैं उनको कुछ भी भय नहीं होता है। जो प्रेतत्व से छुटकारा पाने की इच्छा

रखते हैं वे अपनी क्रिया को करेंगे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मैंने तुमको यह सब अपनी और्ध्व दैहिक क्रिया का पूर्ण वर्णन कर दिया है। इसका जो श्रवण करता है वह पापों से मुक्त हो जाता है और अन्त में विष्णु लोक में जाता है ॥ ५२ ॥ इसका अतीव अतुल माहात्म्य को सुनकर गरुड़ बहुत ही हर्षित हुए और फिर अपनी कन्धरा आनत करके उनने देवेश्वर से पूछा था ॥ ५३ ॥

५ – और्ध्व दैहिक कर्मादि संस्कार

भगवन्ब्रूहि मे सर्वं यमलोकस्य निर्णयम् ।
प्रमाणं विस्तरं तस्य माहात्म्यञ्च सुविस्तरम् ॥१
शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यमलोकस्य निर्णयम् ।
प्रमाणकानि सर्वाणि भुवनानि च षोडश ॥२
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः ।
यमलोकस्य चाध्वा वै अन्तरे मानुषस्य च ॥३
सुकृतं दुष्कृतं वापि भुक्त्वा लोके यथार्जितम् ।
कर्मयोगात्तदा कश्चिद् व्याधिरुत्पद्यते खग ॥४
निमित्तमात्रं तथैवा कृतकर्मानुसारतः ।
यो यस्य विहितो मृत्यु स तं ध्रुवमवाप्नुयात् ॥५
कर्मयोगात्तदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः ।
तदा भूमिगतं कुर्याद्गोमयेनोपलिप्य च ॥६
तिलान्दर्भान् विकीर्याथ मुखे रत्नं विनिक्षिपेत् ।
तुलसीसन्निधौ कृत्वा शालग्रामशिला तथा ॥७
एवं सामादिसूक्तैश्च मरणं मुक्तिदायकम् ।
नानाकाम्यर्णविशेष प्रेतप्राणसुहेतु च ॥८

का मार्ग छयासी हजार योजन के प्रमाण वाला है। इतना लम्बा इन दोनों लोकों का अन्तर होता है ॥ २ ॥ ३ ॥ इस लोक में जो भी सुकृत या दुष्कृत किया है उसका फल भोग करते हे खग ! कर्म के योग से उसे मृत्यु के प्राप्त होने के लिये कोई रोग उत्पन्न हो जाया करता है ॥ ४ ॥ किये हुए कर्म के अनुसार सभी को कुछ व्याधि आदि मृत्यु का एक निमित्त मात्र हुआ करता है। जिसको जिस भी समय में मृत्यु के आने का योग विदित है वह उसको उसी समय में निश्चित् रूप से प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ कर्मों के योग से यह शरीरधारी जीव अवश्य ही इस अपने पाँच भौतिक शरीर का त्याग किया करता है। उस समय मे जबकि इस शरीर को त्याग कर परलोक गमन का समय प्राप्त होता है गोबर से भूमि का लेपन कर उसे भूमि पर ही ले लेना चाहिए ॥ ६ ॥ इधर-उधर भूमि मे तिल और डाभों को फैला देना चाहिए और मृत्यु को प्राप्त होने वाले के मुख मे सुवर्ण डाल देना चाहिए। उसके समीप में तुलसी को रक्खे तथा भगवान् शालग्राम को विराजमान करे। इस प्रकार से सामवेद के सूक्तों का श्रवण कराते हुए जो मृत्यु होती है वह मुक्ति को प्रदान कराने वाली हुआ करती है। प्रेत के प्राण छिद्रों मे सुवर्ण की शलाकाओं का विक्षेप करे ॥७॥८॥

एका वक्त्रे तु दातव्या घ्राणयुग्मे तथा पुनः ।
अक्ष्णोश्च कर्णयोश्चैव द्वे द्वे देये यथाक्रमम् ॥६

अथ लिङ्गे तथा चैका चैका ब्रह्माण्डके क्षिपेत् ।
करयुग्मे च कण्ठे च तुलसीञ्च प्रदापयेत् ॥१०

वस्त्रयुग्मञ्च दातव्यं कुंकुमेश्चाक्षतैर्यजेत् ।
पुष्पमालायुतं कुर्य्यादन्यद्वारेण सन्नयेत् ॥११

पुत्रस्तु बान्धवैः सार्द्धं विप्रस्तु पुरवासिभिः ।
पितुः प्रेतगतं पुत्रः स्कन्धमारोप्य बान्धवैः ॥१२

गत्वा श्मशानदेशे तु प्राङ्मुखञ्चोत्तरामुखम् ।
अदग्धपूर्वा या भूमिश्चितां तत्रैव कारयेत् ॥१३

श्रीखण्डतुलसीकाष्ठसमित्पालाशसम्भवाम् ।
एवं सामादिसूक्तैश्च मरणं मुक्तिदायकम् ॥१४

एक शलाका को मुख में देवे। दो घ्राणों में देवे। आँखों में और कानों में दो दो यथाक्रम रक्खे। इसके पश्चात् एक लिङ्ग में देवे और एक को ब्रह्माण्ड में विक्षिप्त कर देवे। मृत्यु को प्राप्त होने वाले के दोनों हाथों में और कण्ठ में तुलसी रक्खे ॥ ९ ॥ १० ॥ उस मृत को दो वस्त्र धारण करवे और कुंकुम तथा अक्षतों के द्वारा उसका यजन करे। पुष्पों की मालाओं से युक्त करके उसे अन्य द्वार से भली भाँति ले जाना चाहिए ॥ ११ ॥ पुत्र को अपने बान्धवों के साथ विप्र को पुरवासियों के साथ प्रेतगत पिता को कन्धों पर आरोपित करे और इस रीति से उसे श्मशान में पहुँचावे ॥ १२ ॥ वहाँ श्मशान में पहुँच कर जो भूमि पहिले अदग्ध हो वहाँ पर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख दाह करने के लिये चिता की रचना करे ॥ १३ ॥ उस चिता में श्रीखण्ड—तुलसी काष्ठ और पलाश की समिधाओं को लगा कर निर्मित करे। इस प्रकार से सामादि सूक्तों के पाठ पूर्वक जो मृत्यु एवं दाह कर्म होता है वह मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है ॥१४॥

विमलेन्द्रियसङ्घाते चैतन्ये जडताङ्गते ।
प्रचलन्ति ततः प्राणा याम्यैर्निकटवर्त्तिभिः ॥१५
बीभत्सं दारुणं रूपं प्राणैः कण्ठसमाश्रितैः ।
फेनमुद्गिरते सोऽपि मुखं लालाकुलं भवेत् ॥१६
दुरात्मानश्च ताड्यन्ते किङ्करैः पाशवेष्टिताः ।
सुखेन कृतिनस्तत्र नीयन्ते नाकनायकैः ॥१७
दुःखेन पापिनो यान्ति यममार्गं सुदुर्गमम् ।
यमश्चतुर्भुजो भूत्वा शङ्खचक्रगदादिभृत् ॥१८
पुण्यकर्मरतान्सम्यक्स्नेहान्मित्रवदाचरेत् ।
आहूय पापिनः सर्वान्यमो दण्डेन तर्जयेत् ॥१९
प्रलयाम्बुदनिर्घोषो ह्यञ्जनाद्रिसमप्रभः ।
महिषस्थो दुराराध्यो विद्युत्तेजसमद्युतिः ॥२०

योजनत्रयविस्तारदेहो रुद्रोऽतिभीषण ।
लोहदण्डधरो भीम पाशपाणिर्दुरासदः ॥२१

जिस समय इन्द्रियों के समूह और चैतन्य में जड़ता को प्राप्त होने पर इसके पश्चात् निकटवर्ती यामों में प्राण प्रचलित हो जाते हैं ॥ १५ ॥ जिस समय में निकलने वाले प्राण कण्ठ गत होते हैं उस मृत होने वाले जन्तु का रूप बहुत ही बीभत्स और दारुण हो जाता है । उसके मुख से झाग निकलने लगते हैं और मुख में लार भर जाया करती है ॥ १६ ॥ जो दुष्ट कर्म करने वाले होते हैं वे यम के दूतों के द्वारा ताड़ित होते हैं और पाशों में बाँध लिये जाया करते हैं और जो पुण्यात्मा होते हैं वे स्वर्ग के दूतों के द्वारा बहुत ही सुख पूर्वक वहाँ से ले जाये जाया करते हैं ॥ १७ ॥ पापी लोग बहुत ही कष्ट सहन करते हुए उन यमदूतों से महान् विनाश मार्ग की यात्रा पूरी किया करते हैं । यह याम मार्ग बहुत दुर्गम होता है । वहाँ पर यमराज चार भुजाओं वाले विराजमान रहते हैं जो अपने चारों हाथों में शङ्ख—चक्र और गदा आदि आयुधों को धारण किये रहते हैं ॥ १८ ॥ जो पुण्य कर्मों में रति रखने वाली धर्मात्मा होती हैं उनमें से बहुत ही स्नेह के साथ एक मित्र की भाँति आचरण किया करते हैं । जो पापी होते हैं उन्हें उस सुदुर्गम यमराज के मार्ग में बड़े ही दुःख के साथ जाना पड़ता है और उन्हें यमराज अपने निकट बुलाकर दण्ड से तर्जित किया करते हैं ॥ १९ ॥ यमराज की ध्वनि ऐसी भयानक होती है जैसे प्रलय काल में होने वाले मेघ की गर्जना होती है । उसके शरीर की कान्ति अञ्जन गिरि के समान एक दम कृष्ण वर्ण वाली है—महिष (भैंसा) उनका वाहन है बहुत ही कठिनाई के साथ उनके सामने ठहरा जाता है तथा विद्युत् के तेज के सदृश उसके शरीर की द्युति होती है ॥ २० ॥ उसके शरीर का विस्तार तीन योजन के प्रमाण वाला है (एक योजन ४ कोश का होता है) यमराज का स्वरूप अत्यन्त रौद्र एवं भीषण होता है । हाथ में एक लोहे का दण्ड धारण किये रहते हैं—परम भयानक और पाश हाथ में रखने वाले हैं । यमराज की आकृति बहुत ही भय देने वाली होती है ॥२१॥

रक्तनेत्रोऽतिभयदो दर्शनं याति पापिनाम् ।
अंगुष्ठमात्र पुरुषो हाहा कुर्वन्कलेवरात् ॥२२
मर्दं व नीयते दूतैर्याम्यैर्वीक्षन् स्वकं गृहम् ।
निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणैर्मुक्तं जुगुप्सितम् ॥२३
अस्पृश्य जायते तूर्णं दुर्गन्धं सर्वनिन्दितम् ।
त्रिधावस्थाऽस्य देहस्य क्रिमिविड्भस्मरूपत ॥२४
को गर्वं क्रियते तार्क्ष्य क्षणविध्वंसिभिर्नरं ।
दानं वित्ताद्यो न कुर्यात्कीर्त्तिधर्मौ तथायुष ॥२५
परोपकरणं कायादसारात्सारमुद्धरेत् ।
तस्यैव नीयमानस्य दूता. सन्तजयन्ति हि ॥२६
दर्शयन्ति भयं तीव्रं नरकाणां पुन पुन ।
शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् त्वं यास्यसि यमालयम् ॥२७
कुम्भीपाकादिनरकान्त्वां नयिष्यामि माचिरम् ।
एवं वाचस्तदा शृण्वन्बन्धूना रुदितं तथा ॥२८
उच्चैर्हाहेति विलपन्नीयते यमकिङ्करैः ।
मृतस्योत्क्रान्तिसमयात्षट्पिण्डान् क्रमतो ददेत् ॥२९
मृतस्थाने तथा द्वारे चत्वरे तार्क्ष्य कारयेत् ।
विश्रामे काष्ठचयने तथा सञ्चयने च षट् ॥३०

यमराज के नेत्र रक्त वर्ण के होते हैं जिन्हे देखने से ही अत्यन्त भय लगता है। पापी लोग उन्हें देखते ही डर से काँपने लगते हैं। यह एक अँगुष्ठ मात्र कलेवर वाले यमराज के सामने जन्तु हाहाकार करने लगते हैं ॥ २२ ॥ यमराज के दूतों के द्वारा जिस समय अपने घर को देखते हुए इसे ले जाया जाता है प्राणों से मुक्त यह शरीर अत्यन्त बुरा एवं चेष्टा हीन हो जाया करता है ॥ २३ ॥ प्राणों के निकलते ही यह शरीर शीघ्र स्पर्श करने के योग्य हो जाता है। इसमें दुर्गन्ध निकला करती है और सभी को यह बहुत बुरा लगने लगता है। इस मृत शरीर की फिर तीन प्रकार की दशा होती है—कृमि-विट और भस्म ये तीन अवस्था हुआ करती हैं। कीड़े हो जाते हैं या कोई

जानवर खाकर विट् (मल) बनता है अथवा जला देने पर इस की भस्म हो जाती है ॥ २४ ॥ हे तार्क्ष्य ! एक ही क्षण मे अच्छा-भला मनुष्य विध्वस हो जाया करता है। ऐसे क्षणभर में विध्वंस को प्राप्त होने वाले मनुष्यो का गर्व करना व्यर्थ ही है। ऐसे क्षणभगुर शरीर का अभिमान क्या करना है ? जो अपने धन से दान नही करता है और इस मनुष्य शरीर की आयु से कीर्ति तथा धर्म का अर्जन नहीं करता है उस शरीर से क्या लाभ है ? इस सार शून्य शरीर से दूसरो की भलाई करना ही एक सार का संग्रह है उसे अवश्य ही करना चाहिए। इस प्रकार से यमपुरी को ले जाये जाने वाले इसको यम के दूत बुरी तरह धमकाते हैं और फटकार लगाया करते हैं ॥२५॥२६॥ वे पापियो को बारम्बार नरको का अत्यन्त तीव्र भय दिखाते हैं। वे कहा करते हैं—"अरे ओ दुष्टात्मा ! शीघ्र चल, तुझको यमराज के पुर में जाना होगा ॥ २७ ॥ हम तुझको बहुत ही शीघ्र—कुम्भीपाक आदि नरको मे ले जायेंगे"। इस तरह से यमदूतो से फटकारे खाने वाला वह अपने बियुक्त बन्धु-बान्धवो का इधर घर मे होने वाले रुदन को सुनता रहता है। यह भी जब यमदूतो के द्वारा पाश से बाँधकर बरवस ले जाया जाता है तो हाय हाय करके बहुत ऊँचे स्वर से विलाप करता है। उसे अपने शरीर को और भरे पूरे घर को जिसमे सभी परिवारी लोग हैं छोड़ते हुए महान् क्लेश होता है। मृत की उत्क्रान्ति के समय मे क्रम से छै पिंड देने चाहिए ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ जहाँ उसकी मृत्यु होती है उस स्थल पर—घर के द्वार पर—आँगन मे—बीच में जहाँ उसे विश्राम देते हैं उस स्थान पर—काष्ठो के चयन मे और संचयन मे इस तरह से छै जगह पिंड देना आवश्यक है ॥३०॥

मृत्यु तत्कारण ताक्ष्यं पट्पिण्डपरिकल्पने ।
मृतस्थाने शवो नाम तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३१
तेन भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता ।
द्वारदेशे भवेत्पान्थस्तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३२
तेन दत्तेन तुष्यन्ति गृहवास्त्वधिदेवताः ।
चत्वरे खेचरो नाम तमुद्दिश्य प्रदीयते ॥३३

तेन तत्रोपघाताय भूतकोटिः पलायते ।
विश्रामे भूतसञ्ज्ञोऽय तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३४
पिशाचा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिशिवासिनः ।
तस्य होतव्यदेहस्य नैवायोग्यत्वकारका ॥३५

हे तार्क्ष्य ! इन उपर्युक्त छै स्थलों पर पिंड देने का क्या कारण है ? उसका अब तुम श्रवण करो। मृत के स्थान पर उसका "शव" नाम होता है अतएव उस नाम से पिंड दिया जाता है ॥ ३१ ॥ इसके देने से वह भूमि तुष्ट होती है। द्वार देश में इसलिये पिंड प्रदान किया जाता है कि उसके अधिष्ठातृ देवता तुष्टि को प्राप्त होते हैं। मार्ग में वह पान्थ होता है इसलिये उसी नाम से पिंड दिया जाता है ॥ ३२ ॥ इससे गृह के वास्तु—अधिदेवता सन्तुष्ट होते हैं। आँगन में उसका खेचर नाम है अत. उसी का उद्देश्य करके पिंड पातन किया जाता है ॥ ३३ ॥ इससे वहाँ पर उपघात के लिये भूतकोटि पलायन करती है। विश्राम में यह भूत सञ्ज्ञा वाला होता है अतः इसी नाम से पिंड प्रदान किया जाता है ॥ ३४ ॥ पिशाच—राक्षस—यक्ष और अन्य जो दिशिवासी होते हैं उस होतव्य देह के अयोग्यत्व करने वाले नहीं होते हैं ॥ ३५ ॥

चितामोक्षप्रभृति च प्रेतत्वमुपजायते ।
चितायां साधकं नाम वदन्त्येके खगेश्वर ॥३६
केऽपि त प्रेतमेवाहुर्यया कल्पविदस्तथा ।
तदा हि तत्र तमपि प्रेतनाम्ना प्रदीयते ॥३७
इत्येव पञ्चपिण्डैर्हि शवस्याहुतियोग्यता ।
अन्यथा चोपघाताय पूर्वोक्तास्ते भवन्ति हि ॥३८
उत्क्रामे प्रथम पिंड तथा चार्द्धपथेन च ।
चितायां तु तृतीयं स्यात्त्रय पिंडाश्च कल्पिता ॥३९
विधाता प्रथमे पिंडे द्वितीये गरुडध्वजः ।
तृतीये यमदूताश्च प्रयोगः परिकीर्त्तित ॥४०

दत्त तृतीये पिण्डेऽस्मिन्देहदोषैः प्रमुच्यते ।
आधारभूतजीवस्य ज्वलन ज्वालयेच्चिताम् ॥४१
समृज्य चोपलिप्याथ उल्लिख्योद्धृत्य वेदिकाम् ।
अभ्युक्षीय समाधाय वह्नि तत्र विधानतः ॥४२

चिता मोक्ष आदि प्रेतत्व उपजात होते हैं अतः चिता मे कुछ लोग साधक नाम उसका हे खगेश्वर कहा करते हैं कुछ लोग उसको प्रेत ही कहते हैं ये कल्प के वेत्ता होते हैं उस समय में भी वहाँ पर 'प्रेत'—इसी नाम से पिंड का प्रदान किया जाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इस प्रकार से ये पाँच पिंड शव की आहुति की योग्यता के होने है अन्यथा ये जो पूर्व मे कहे गये हैं वे सब उपघात के लिये हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥ उत्क्रामण मे शव के उठाने के समय मे प्रथम पिंड होता है तथा दूसरा पिंड मार्ग के आधे समाप्त हो जाने पर दिया जाता है और तीसरा पिंड चिता मे समारूढ करने के समय मे दिया करते हैं । इस तरह तीन पिंड कल्पित किये जाया करते हैं । प्रथम पिंड मे विधाता—द्वितीय पिंड मे गरुडध्वज और तीसरे पिंड मे यमदूत—इस प्रकार से प्रयोग कहा गया है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इस तीसरे पिण्ड के देने पर यह देह के सम्पूर्ण दोषो से प्रमुक्त हो जाया करता है । जीव के आधार भूत इस देह को फिर अग्नि चिता मे जला दिया करता है ॥ ४१ ॥ समृजन करके—उपलेपन को और उल्लेखन करके उद्धरण करे फिर वेदिका का अभ्युक्षण वहाँ पर वह्नि का समाधान करे और विधान के सहित लावे ॥४२॥

पुष्पाक्षतैः सुसम्पूज्य देवं क्रव्यादसंज्ञकम् ।
त्व भूतकृज्जगद्योने त्व लोकपरिपालकः ॥४३
संहारकारकस्तस्मादेन स्वर्गं मृत नय ।
एव क्रव्यादमभ्यर्च्य शरीराहुतिमाचरेत् ॥४४
अर्द्धदेहे तथा दग्धे दद्यादाज्याहुति ततः ।
लोमभ्यस्त्वनुवाक्येन कुर्याद्धोम यथाविधि ॥४५
चितामारोप्य त प्रेत हुनेदाज्याहुति ततः ।
यमाय चान्तकायेति मृत्यवे ब्रह्मणे तथा ॥४६

जातवेदोमुखे देया ह्येका प्रेतमुखे तथा ।
ऊर्ध्वं तु ज्वालयेद्वह्नि पूर्वभागे चिता पुन ॥४७

अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुन. ।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलति पावक ॥४८

एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रा समन्त्रकाम् ।
ततो दाहः प्रकर्त्तव्यः पुत्रेण किल निश्चितम् ॥४९

फिर क्रव्याद संज्ञा वाले देव का पुष्प—अक्षतों से भली-भाँति पूजन
रे और प्रार्थना करे—आप ही मृत्यु के करने वाले हैं और आप इस जगत्
ी योनि हैं। आप इस समस्त लोक के परिपालक हैं ॥ ४३ ॥ आप संहार
े करने वाले हैं। इससे हमारी यह विनती है कि इस मृतक की आत्मा को
वर्ग में ले जाइये। इस रीति से क्रव्याद की अभ्यर्चना एवं प्रार्थना करके
फिर शरीर की आहुति करे ॥ ४४ ॥ जब मृतक का आधा देह जल जावे तो
ृत की आहुति देवे। 'लोमभ्यः'—इस अनुवाक से यथाविधि होम करना
ाहिए ॥ ४५ ॥ उस प्रेत को चिता पर समारोपित करके घृत की आहुतियाँ
ारा हवन करे। यम के लिये—अन्तक, मृत्यु और ब्रह्मा के लिये आहुतियाँ
ेवे ॥ ४६ ॥ एक आहुति जात वेदा (अग्नि) के मुख में देवे तथा एक प्रेत
े मुख में देनी चाहिए। इसके ऊपर अग्नि को जलावे और चिता के पूर्व भाग
े अग्नि को जलाना चाहिए ॥ ४७ ॥ इससे तुम अधिजात हुए हो सो यह
ुनः जायमान हो। यह स्वर्ग के लिये और लोक के लिये स्वाहा है अर्थात्
ाहुति समर्पित की जाती है। पावक ज्वलित होता है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार
े मन्त्र के सहित तिलों से मिश्रित घृत की आहुति देनी चाहिए। इसके अनन्तर
ाह पुत्र के द्वारा निश्चित् रूप से करना चाहिए ॥४९॥

रोदितव्य ततो गाढ एव तस्य सुखं भवेत् ।
दाहस्यानन्तरं तत्र कृत्वा सञ्चयनक्रियाम् ॥५०

प्रेतपिंडं प्रदद्याच्च दाहार्त्तिशमन खग ।
तेन दूता. प्रतीक्षन्ते त प्रेत वान्यवार्यिनम् ॥५१

दद्यादनन्तरं कार्य्यं पुत्रैः स्नानं सचेलकम् ।
तिलोदकं ततो दद्यान्नामगोत्रेण चाश्मनि ॥५२
ततो जनपदैः सर्वैर्दातव्या करताड़नी ।
विष्णुर्विष्णुरिति ब्रूयाद्गुणैः प्रेतमुदीरयेत् ॥५३

इसके पश्चात् खूब गहराई के साथ रुदन करे । इस प्रकार से उस मृतक जन्तु को सुख होता है । दाह करने के अनन्तर वहाँ पर सञ्चयन की क्रिया का सम्पादन करे ॥ ५० ॥ हे खग ! प्रेत को पिंड प्रदान करे जोकि दाह की पीड़ा का विनाश करने वाला होता है । इससे दूत प्रतीक्षा किया करते हैं उन बान्धवों के मर्यों प्रेत की अतएव इसे बाद में देना चाहिए । इसके पश्चात् पुत्रों को वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए । इसके पश्चात् नाम और गोत्र का उच्चारण करके तिलोदक देवे । घर में सब जन पदों के द्वारा करताड़नी देनी चाहिए । तीन बार विष्णु का उच्चारण करे और प्रेत के गुणों का उदीरण (बखान) करना चाहिए ॥५१॥५२॥५३॥

जनाः सर्वे समास्तस्य गृहमागत्य सर्वशः ।
द्वारस्य दक्षिणे भागे गोमयं गौरसर्षपान् ॥५४
निधाय वरुणं देवमन्तर्द्धाय स्ववेश्मनि ।
भक्षयेन्निम्बपत्राणि घृतं प्राश्य गृहं व्रजेत् ॥५५
केचिद् ्धेन सिञ्चन्ति चिन्तास्थानं खगेश्वर ।
अश्रुपातं न कुर्वीत दत्वा चाथ जलाञ्जलिम् ॥५६
श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः ।
अतो न रोदितव्यं हि क्रिया कार्य्या स्वशक्तितः ॥५७
दुग्धञ्च मृन्मये पात्रे तोयं दद्यात्दिनत्रयम् ।
सूर्येऽस्तमागते तार्क्ष्य वलम्याश्चत्वरे तथा ॥५८
वद्ध समूढहृदयो देहमिच्छन्कृतानुगः ।
श्मशानचत्वरं गेहं वीक्षन्याम्यैः स नीयते ॥५९
गर्तपिंडान्दशाहानि प्रदद्याच्च दिने दिने ।
जलाञ्जल्यः प्रदातव्याः प्रेतमुद्दिश्य प्रत्यहम् ॥६०

तावद्वृद्धिश्च कर्त्तव्या यावत्पिड दशाह्निकम् ।
पुत्रेण हि क्रिया कार्य्या भार्य्यया तदभावत ॥६१

इसके अनन्तर सभी मनुष्य जो दाह कर्म के लिये श्मशान तक गये थे समान रूप से घर पर लौट कर आवें। द्वार के दक्षिण भाग में गोबर और श्वेत सर्षप (सरसों) रख कर घर के भीतर वरुणदेव का अन्तर्धान करे। नीम के पत्रों को भक्षण करे और घृत का पान करके घर को जाना चाहिए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे खगेश्वर ! कुछ लोग दूध से चिता का सिञ्चन किया करते हैं। जलाञ्जलि देकर के फिर अश्रुपात नही करे ॥ ५६ ॥ बान्धवों के द्वारा छोड़े हुए श्लेष्माश्रुओं को प्रेत विवश होकर खाता है। इसीलिए रुदन नहीं करना चाहिए और अपनी शक्ति से समस्त क्रिया का सम्पादन करे ॥५७॥ मिट्टी के पात्र में दुग्ध और जल तीन दिन पर्य्यन्त देवे। हे तार्क्ष्य ! सूर्य के अस्त हो जाने पर चत्वरों में तथा चत्वर मे इस क्रिया को करे ॥५८॥ पाशों से बद्ध एव समूढ़ हृदय वाला भूखा हुआ होकर देह की इच्छा रखता हुआ श्मशान चत्वर और घर को देखता हुआ यम के दूतों के द्वारा ले जाया जाता है ॥५६॥ दिन-दिन में अर्थात् प्रतिदिन गर्त्त पिण्डों को दश दिन तक देवे और प्रेत का उद्देश्य करके प्रतिदिन जलाञ्जलि देनी चाहिये ॥ ६०॥ जब तक वृद्धि करे जब तक दशाह्निक कर्म होवे अर्थात् दसवें दिन में किये जाने वाली क्रिया होवे। यह सभी क्रिया पुत्र के द्वारा ही की जानी चाहिए। यदि पुत्र न होवे तो उसके अभाव में भार्या को करनी चाहिए ॥६१॥

तदभावे च शिष्येण शिष्याभाव सहोदर ।
श्मशाने चान्यतीर्थे वा जल पिडञ्च दापयेत् ॥६२
ओदनानि च सक्तूश्च शाकमूलफलादि वा ।
प्रथमेऽह्नि यद्दद्यात्तद्दद्यादुत्तरेऽहनि ॥६३
दिनानि दश पिडानि कुर्वन्त्यत्र सुतादय. ।
प्रत्यङ्ग ते विभजन्ते चतुर्भागैः खगोत्तम ॥६४
भागद्वय तु देहार्थ प्रीतिद भूतपञ्चकम् ।
तृतीय यमदूतानाश्चतुर्थेनोपजीवति ॥६५

अहोरात्रैस्तु नवभि. प्रेतो निष्पत्तिमाप्नुयात् ।
जन्तोर्निष्पन्नदेहस्य दशमे तु भवेत्क्षुधा ॥६६
न द्विजो नैव मन्त्रश्च न स्वधा वाहनाशिषः ।
नामगोत्रे समुच्चार्य्य यद्दत्तन्त्व दशाह्निकम् ॥६७
दग्धे देहे पुनर्देह प्राप्नोत्येव खगेश्वर ।
प्रथमेऽह्नि यः पिंडस्तेन मूर्द्धा प्रजायते ॥६८
ग्रीवास्कन्धौ द्वितीये तु तृतीये हृदयं भवेत् ।
चतुर्थेऽह्नि भवेत्पार्ष्णिर्नाभिर्वै पञ्चमे तथा ॥६९
षष्ठे च सप्तमे चैव कटिगुंह्यं प्रजायते ।
ऊरू चाष्ठमके चैव जान्वङ्घ्री नवमे तथा ॥७०
नवभिर्देहमासाद्य दशमेऽह्नि भवेत्क्षुधा ।
देहभूतः क्षुधाविष्टो गृहद्वारे स तिष्ठति ॥७१

यदि भार्या भी न हो तो इसके अभाव में शिष्य को क्रिया करनी चाहिये। शिष्य के अभाव में सहोदर भाई करे। समदान मे, अन्य तीर्थ मे जल और पिण्ड दान करे ॥६२॥ ओदन, सत्तू, शाक-मूल और फल प्रथम दिन मे जो खावे वही उसके दूसरे दिन मे भी खाना चाहिये ॥६३॥ यहाँ पर सुत आदि को दश दिन तक दश पिण्ड करने चाहिये। प्रतिदिन हे खगोत्तम ! चतुर्भागो मे उनका विभाग किया जाता है ॥६४॥ दो भाग तो देह के लिये होते हैं जो पाँच भूतों के प्रीति देने वाले होते हैं। तीसरा भाग यम के दूतो का होता है और चौथे से उपजीवित होता है ॥६५॥ नौ अहोरात्रो (दिन-रात्रियों) मे प्रेत निष्पत्ति को प्राप्त होता है। जब जन्तु की देह की निष्पत्ति हो जाती है तो दशम दिन में इसको क्षुधा लगा करती है ॥६६॥ उसमें द्विज, मन्त्र, स्वधा अथवा आशिष कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है। केवल नाम और गोत्र का उच्चारण करके दशवें दिन में जो भी कुछ दिया जावे हे खगेश्वर ! देह के दग्ध हो जाने पर वह प्रेत पुन. देह की प्राप्ति किया करता है। प्रथम दिन मे जो पिण्ड दिया जाता है उससे इसका मस्तक उत्पन्न होता है ॥६७॥६८॥ द्वितीय मे गरदन और कन्धे होते हैं। तीसरे मे हृदय बन जाता है। चौथे दिन

में पादिग, पाँचवें में नाभि, छटे और सातवें में कटि (कमर) और गुह्य बनते हैं। आठवें दिन में दिये हुए पिण्ड से जानु (घुटने) और पैर तथा नवम दिन में यह बन जाया करते हैं ॥६६॥७०॥ इस प्रकार से नौ पिण्डों से वह प्रेत अपने पूरे देह को प्राप्त करके दशम दिन में उसे भूख उत्पन्न हो जाती है। वह प्रेत देहधारी के स्वरूप में होकर क्षुधा से आविष्ट होता हुआ घर के द्वार पर स्थित हो जाया करता है ॥७१॥

दशमेऽहनि यः पिंडस्तं दद्यादामिषेण तु ।
यतो देह समुत्पन्नः प्रेतस्तीव्रक्षुधान्वितः ॥७२
अतस्त्वामिषवाह्य तु क्षुधा तस्य न नश्यति ।
एकादशाह द्वादशाह प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम् ॥७३
योषितः पुरुषस्यापि प्रेतशब्द समुच्चरेत् ।
दीपमन्न जल वस्त्रमन्यद्वा दीयते तु यत् ॥७४
प्रेतशब्देन यद्दत्त मृतस्यानन्ददायकम् ।
त्रयोदशेऽह्नि वै प्रेतो नीयते च महापथे ॥७५
पिण्डज देहमाश्रित्य दिवारात्रौ क्षुधान्वितः ।
मार्गे गच्छति स प्रेतो ह्यसिपत्रवनान्विते ॥७६
क्षुत्पिपासार्दितो नित्य यमदूतैः प्रपीडितः ।
अहन्यहनि स प्रेतो योजनाना शतद्वयम् ॥७७
चत्वारिंशत्तथा सप्त अहोरात्रेण गच्छति ।
गृहीतो यमपाशैस्तु जनो हाहेति रोदिति ॥७८
स्वगृह सम्परित्यज्य याम्य पुरमनुव्रजेत् ।
क्रमेण गच्छति स प्रेत पुर वैवस्वत शुभम् ॥७९

दशम दिन में जो आमिष से पिण्ड देवे तो जिससे देह समुत्पन्न हुआ है वह प्रेत तीव्र क्षुधा से युक्त हो जाता है ॥७२॥ इसलिये आमिष से आवाह्य उसकी भूख नष्ट नहीं हुआ करती है। ग्यारहवें और बारहवें दिन में वह प्रेत दो दिन खाया करता है ॥७३॥ स्त्री हो या पुरुष उसको प्रेत शब्द से ही उच्चारण करे। दीप, अन्न, जल, वस्त्र अथवा अन्य जो कुछ भी दिया जाता है, प्रेत

इस शब्द से जो कुछ भी दिया जाया करता है उससे उस मृत प्राणी को बहुत आनन्द उत्पन्न होता है। तेरहवें दिन में वह प्रेत उस यमपुरी के विशाल मार्ग में ले जाया जाता है ।।७४।७५।। पिण्डों से समुत्पन्न देह को प्राप्त कर दिन-रात भूख से युक्त प्रति पन्न के धन से संयुत उस मार्ग में वह प्रेत जाता है ।।७६।। वह नित्य ही भूख, प्यास से पीड़ित होकर यम के दूतों से सताया जाता है। प्रतिदिन वह प्रेत दो सौ योजन तक चला करता है। इस तरह सैंतालीस दिन-रात में वह चलकर जाता है। यम के पाशों से गृहीत होता हुआ वह हाहाकार करके रोया करता है ।।७७।७८।। अपने घर का त्याग करके यम के पुर को जाया करता है। इस प्रकार से क्रम से यह प्रेत धर्मराज के उस शुभ नगर को जाता है ।।७९।।

याम्य सौरिपुरं सुरेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमं।
क्रूरं क्रौञ्चपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम्।
नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं।
शीताढ्यं बहुभीति धर्मभवनं याम्यं पुरश्चाग्रतः ।।८०
त्रयोदशेऽह्नि स प्रेतो नीयते यमकिङ्करैः।
तस्मिन्मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव मर्कटः ।।८१
तथैव स व्रजन्मार्गे पुत्र पुत्र इति ब्रुवन्।
हाहेति क्रन्दते नित्यं कीदृशं तु मया कृतम् ।।८२
मानुषत्वं लभे कस्मादिति ब्रूते प्रसर्पति।
महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते ।।८३
तत्र प्राप्य न प्रदत्तं याचकेभ्यः स्वकं धनम्।
पराधीनमभूत्सर्वमिति ब्रूते स गद्गदः।
किङ्करैः पीड्यतेऽत्यर्थं स्मरते पूर्वदैहिकम् ।।८४
सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
पुराकृतं कर्म सदैव भुज्यते शरीर हे निस्तरस्व त्वया कृतम् ।।८५

वह यमराज का पुर—सौरि नगर अर्थात् सूर्यपुर—सुरेन्द्र का भवन—गन्धर्वों के शैल का आगम (आना)—क्रूर क्रौञ्च का पुर विचित्र भवनों वाला

है जहाँ बहुत-सी आपत्तियाँ भरी हुई हैं और परम दुःख देने वाला है। अनेक प्रकार के आक्रन्दों (रुदन) से पूर्ण वह पुर है जहाँ सुतप्त भवन हैं और वह रौद्र है। बराबर पानी की वर्षा होती है, शीत से युक्त, बहुत से भयों से परिपूर्ण, घाम से युक्त जिसमें भवन हैं ऐसा वह यमराज का नगर आगे मिलता है ॥८०॥ तेरहवें दिन में वह प्रेत वहाँ ले जाया जाता है और यम के दूत उसे ले जाया करते हैं। उन विशाल बड़े लम्बे मार्ग में मर्कट की भाँति पकड़ा हुआ अकेला ही जाया करता है ॥८१॥ उस मार्ग में वह जाता हुआ 'हा पुत्र ! हा पुत्र !'—इस तरह से विलाप करता हुआ और हाहाकार के स्वर में रुदन करता हुआ नित्य जाता है और कहता रहता है कि यह मैंने कैसा पाप किया है? जिससे यह कष्ट मुझे हो रहा है ॥८२॥ अब मुझे फिर वह मनुष्य शरीर कैसे प्राप्त होगा ? यही कहता हुआ वह दौड़ लगाता जाता है। बहुत ही बड़े पुण्यों के योग से यह मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ करता है ॥८३॥ मैंने इस मनुष्य के शरीर को प्राप्त करके भी याचकों को अपना धन दान में नहीं दिया था। अब तो अभी कुछ पराये अधीन हो गया है, अब मैं क्या कर सकता हूँ ?—ऐसे वह गद्गद् होकर बराबर बोलता रहा करता है। यम के दूतों के द्वारा वह खूब पीड़ित किया जाता है तब वह अपने पहिले देह की सब बातों का स्मरण किया करता है ॥८४॥ इस सुख का और दुःख का दूसरा अन्य कोई भी देने वाला नहीं है। दूसरा हमें दुःख देता है—यह विचार एक कुबुद्धि का ही होता है। यह प्राणी पहिले जन्म के किये हुए ही कर्मों का फल सदा भोगा करता है। हे शरीर ! तूने जो किया है उस सब भोग। यह सभी तेरा ही किया हुआ है ॥ ८५ ॥

मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे ।
न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं शरीर हे निस्तर यत्त्वया कृतम् ।८६
जलाशयो नैव कृतो हि निर्जने मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे ।
गोवृत्तिहेतोर्न कृतं हि गोचरं शरीर हे निस्तर यत्त्वया कृतम् ।८७
न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेददानं न च शास्त्रपुस्तकम् ।
पुरा न दृष्टो न च सेवितोऽध्वा शरीर हे निस्तर यत्त्वया कृतम् ।८८

मासोपवासैर्न च शोधितं वपुश्चान्द्रायणैर्वा नियमैश्च सुव्रतैः ।
नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं लब्धं मया पूर्वकृतैर्विकर्मभिः ॥८९

उक्तानि वाक्यानि मया नराणां मत्तः शृणुष्वावहितो हि पक्षिन् ।
स्त्रीणाञ्च देहं त्ववलम्ब्य देही ब्रवीति कर्माणि कृतानि पूर्वम् ।९०

उसे उस समय में यह ज्ञान होता है और फिर पश्चात्ताप किया करता है कि मैंने कभी कुछ भी दान नहीं दिया—मैंने अग्नि में हवन भी नहीं किया—कोई भी तपश्चर्या नहीं की कि किसी पर्वत पर या सागर तट तथा गुफा में बैठकर कुछ तप ही कर लेता । कभी मैंने गङ्गा का जैसा महा पावन जल का सेवन भी नहीं किया था । हे शरीर ! तूने जैसा भी किया है उसे अब तू भोग। ये सब तेरे ही किये हुए का फल है ॥८६॥ मैंने किसी निर्जल स्थान में कोई जलाशय नहीं बनवाया है जिसमें मनुष्य पशु और पक्षी सब जलपान कर सकते । गायों की तृप्ति के लिए मैंने गोचर भूमि भी नहीं बनाई थी हे शरीर ! तूने जैसा किया है अब उसका निस्तारा तू स्वयं ही कर ॥८७॥ मैंने नित्य कुछ भी दान नहीं किया न मैंने गौओं का आह्निक ही कभी किया था । कभी वेदों का दान नहीं किया न मैंने कभी किसी भी शास्त्र की पुस्तकों का ही दान किया है । मैंने पहिले कभी किसी का इष्ट नहीं किया और न किसी की सेवा ही की है । अब तक मैंने ऐसे मार्ग का कभी गमन नहीं किया था । हे शरीर ! तूने जैसा भी जो कुछ किया है उसका फल अब तुझे ही भोगना है ॥८८॥ मासों के उपवास के द्वारा मैंने कभी अपने शरीर का शोधन नहीं किया । मैंने चान्द्रायण आदि का नियम एवं व्रतों के करने का कष्ट नहीं उठाया था । मैंने बहुत-से दुःखों का आधार नारी के शरीर को पूर्व कृत विकर्मों से प्राप्त किया था ॥८९॥ हे पक्षिन् ! मनुष्यों के उस उत्पीडन पाने के समय में ऐसे पश्चात्ताप और दुःख से भरे शब्द होते हैं । मैंने तुमको यह सब बता दिया है । अब तुम सावधान होकर मुझसे सब श्रवण करो । यह देहधारी स्त्रियों के शरीर का अवलम्बन लेकर पूर्व में किये हुए कर्मों को बोला करता है ॥९०॥

६—यमलोक वर्णन

एवं प्रचलते प्रेतस्तत्र मार्गे खगेश्वर ।
क्रन्दितश्च च दुःखार्त्तः श्रान्तश्चाकुललोचनः ॥१
सप्तदशदिनान्येको वायुमार्गेण गच्छति ।
अष्टादशे त्वहोरात्रे पूर्वं याम्यपुरं व्रजेत् ॥२
तस्मिन्पुरवरे रम्ये प्रेतानाञ्च गणो महान् ।
पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः ॥३
पुरे तत्र स विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः ।
जायापुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्र दु:खितः ॥४
क्रन्दते करुणैर्वाक्यैस्तृषार्त्तः श्रमपीडितः ।
स्वधनं स्वसुखानीह गृहपुत्रधनानि च ॥५
भृत्यमित्राणि धान्यञ्च सर्वं शोचति वै तदा ।
क्षुधार्त्तस्य पुरे तस्मिन्किङ्करैस्तस्य चोच्यते ॥६
क्व धनं क्व सुता जाया क्व सुहृत्क्व त्वमीदृशः ।
स्वकर्मणार्जितं भुङ्क्ष्व मूढचेतश्चिरं पथि ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे खगेश्वर ! इस उपर्युक्त प्रकार से वह प्रेत यम-पुरी के मार्ग में चला करता है। वह क्रन्दन करता रहता है—दु:ख से बड़ा ही आर्त्त होता है—थक जाता है और इसके नेत्र व्याकुल हो जाया करते हैं ॥१॥ वह सत्रह दिन तक वायुमार्ग से जाता है अठारहवें दिन में फिर पूर्व याम्यपुर को जाया करता है ॥२॥ उस परम रम्य पुर में प्रेतों का एक महान् समुदाय होता है। वहाँ पर पुष्पभद्रा नाम वाली एक नदी है और एक वट का वृक्ष है, जो देखने में बहुत प्रिय लगता है ॥३॥ उस पुर में यम के किङ्करों के द्वारा उसे विश्राम प्राप्त कराया जाया करता है। वहाँ पर फिर वह प्रेत अपनी स्त्री और पुत्र आदि के सुख का स्मरण करता है और बहुत दु:खित होता है ॥४॥ करुणा से भरे हुए शब्द कहता हुआ वह वहाँ पर रोता है। प्यास से पीड़ित होता है और थकान से अत्यन्त दुःखित हुआ करता है। उस समय में वह अपने धन, अपने सुख, गृह, पुत्र, भृत्य, मित्र, धान्य और अतुल वैभव-सम्पत्ति के छूट

जाने का शोच किया करता है। उस पुर में क्षुधा से दुःखित इससे यम के दूतों के द्वारा कहा जाता है ॥५।६॥ यम के किङ्करों ने कहा—अरे ! हे मूर्ख ! गई बीती बातों का यहाँ क्या स्मरण करके यों रो रहा है। यहाँ तेरा वह कहाँ है ? न तेरे पुत्र हैं और न भार्या ही है। यहाँ तेरा कोई मित्र भी नहीं। तूने जो जैसा कर्म किया है उसे इस लम्बे मार्ग में बहुत काल पर्यन्त भोग। तू बहुत ही मूढ चित्त वाला है ॥७॥

जानासि सम्बलवश बलमध्वगानां नो सम्बलाय पतित परलोकपान्थ।
गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेवमस्मिन्मार्गे हि चात्र भवत क्रयविक्रयौ न। ८
यमगीताभय वाक्य नैव मर्त्यैः श्रुतं त्वया।
एवमुक्तस्ततः सर्वैर्हन्यमानः स मुद्गरैः ॥६
अत्र दत्तं सुतैः पौत्रैः स्नेहाद्वा कृपयाथवा।
मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत् ॥१०
तत्र नाम्ना तु राजा वै जङ्गमः कालरूपधृक्।
तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु विश्रामे कुरुते मतिम् ॥११
उदकन्चान्नसंयुक्तं भुङ्क्ते तस्मिन्पुरे गतः।
त्रिभिः पक्षैस्तथा पिण्डैस्तत्पुरं स व्यतिक्रमेत् ॥१२
सुरेन्द्रनगरे रम्ये प्रेतो याति दिवानिशम्।
ततो वनानि रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति तत्र सः ॥१३
भीषणे क्लिश्यमानश्च क्रन्दत्येव पुनः पुनः।
मासद्वयावसाने तु तत्पुरं स व्यतिक्रमेत् ॥१४

तू यह जानता है कि मार्ग में चलने वालों का बल सम्बल के ही अधीन होता है। हे परलोक के मार्ग में गमन करने वाले राहगीर ! तेरे पास सम्बल के लिये कुछ भी नहीं है। तुझे ज्ञात हो है कि इस महान् विशाल मार्ग की यात्रा तो निश्चित रूप से पूरी करनी ही है। यहाँ पर तुझे कोई भी क्रय और विक्रय करने का साधन नहीं है अर्थात् पहिले से ही कोई इस मार्ग की यात्रा

करने का मुकृत जैसा सम्बल नहीं है तो सब कुछ भी नहीं किया जा सकता है ॥८॥ अरे ओ प्राणी ! क्या तूने मनुष्य लोक में रहकर यमगीत के वाक्यों का श्रवण नहीं किया है ?" इस प्रकार से उन सब यमकिङ्करों के द्वारा कहे जाने पर वह जन्तु मुद्गरों से ताडित किया जाता है ॥६॥ यहाँ पर पुत्र तथा पौत्र आदि के द्वारा स्नेह से जो पिण्डदान किया जाता है उसी दया करके दिए हुए मासिक पिण्ड का वह भक्षण किया करता है और इसके अनन्तर सौरिपुर अर्थात् यमराज के नगर में गमन करता है ॥१०॥ वहाँ पर नाम से तो वह राजा है किन्तु वैसे जङ्गम काल के रूप को धारण करने वाला है। उसको देखकर भय से डरकर विश्राम करने में अपनी बुद्धि किया करता है ॥११॥ उस पुर में जाकर जल से युक्त अन्न का भक्षण करता है। तीन पक्षों में तीन पिण्डों से वह उस पुर में समय काटता है। सुरेन्द्र के सुरम्य नगर में प्रेत दिवा-निश जाता है। इसके पश्चात् वह भयानक वनों को देखकर क्रन्दन किया करता है ॥१२॥१३॥ बड़े भीषण परिणामों से क्लेश भोगता हुआ यह बार-बार रुदन करता है। इस तरह दो मास के अन्त तक वह उस पुर में समय काटता है ॥ १४ ॥

तृतीये मासि सम्प्राप्ते गन्धर्वनगरे शुभे ।
तृतीयमासिकं पिण्डं तत्र भुङ्क्ते स गच्छति ॥१५
शैलागमे चतुर्थे च मासि याति खगेश्वर ।
पतन्ति तत्र पाषाणा प्रेतस्योपरि पृष्ठतः ॥१६
चतुर्थमासिकं श्राद्धं भुक्त्वा तत्र सुखी भवेत् ।
स गच्छति ततः प्रेत क्रूरं मासे तु पञ्चमे ॥१७
पञ्चममासिकं पिण्डं भुङ्क्ते तत्र पुरे स्थितः ।
ऊनषाण्मासिकं क्रौञ्चे पञ्चभिः सार्द्धमासिकैः ॥१८
तत्र दत्तेन पिण्डेन श्राद्धेनाप्यायितस्ततः ।
मुहूर्त्तार्द्धं तु विश्राम्य कम्पमानः सुदुःखितः ॥१६
तत्पुरं तु परित्यज्य तर्जितो यमकिङ्करैः ।
प्रयाति चित्रनगरं विचित्रो नाम पार्थिवः ॥२०

यमस्यैवानुजः सौरिर्यत्र राज्यं प्रशास्ति हि ।
तत्र षण्मासपिण्डेन तृप्तः सन्क्रुष्यते नरः ॥२१

अब तीसरा मास आरम्भ होता है तो शुभ गन्धर्व नगर में वह जाया करता है और वहाँ तीसरे मास का पिण्ड खाता है ॥१५॥ हे खगेश्वर ! चौथे मास में शैलागम में यह प्रेत जाता है। वहाँ पर इस प्रेत की पीठ पर और ऊपर पाषाण गिरते हैं ॥१६॥ चतुर्थ मास के दिए हुए श्राद्ध को खाकर यह सुखी होता है। इसके पश्चात् वह प्रेत पाचवें मास में क्रूर को जाया करता है। ॥१७॥ उस क्रूरपुर में पाचवें मास में दिये हुए पिण्ड को खाकर सुख पाता है। इसके अनन्तर ऊन षाण्मासिक अर्थात् साढ़े पाँच मास का दिया हुआ श्राद्ध प्राप्त करता है ॥१८॥ उसमें दिये हुए पिण्ड से यह प्रेत आप्यायित (तृप्त) होता है और आधे मुहूर्त तक विश्राम करके फिर काँपता हुआ अत्यन्त दुःखित होकर उस पुर का त्याग करता है तथा यम के दूतों के द्वारा फटकारें खाता हुआ यह प्रेत चित्र नगर में जाया करता है। वहाँ विचित्र नाम वाला राजा होता है। ॥१९।२०॥ यह यमराज का ही छोटा भाई सूर्य का पुत्र है जो कि इस राज्य का शासन किया करता है। वहाँ पर फिर छः मास में होने वाले श्राद्ध के पिण्ड से तृप्ति प्राप्त करता है और वहाँ से भी यमदूतों के द्वारा इसे खींचा जाता है ॥ २१ ॥

मार्गे पुन पुनस्तस्य बुभुक्षा जायते भृशम् ।
मदीयपुत्र पौत्रो वा बान्धवः कोऽपि तिष्ठति ॥२२
ददाति कश्चिन्मा सौख्य पतित शोकसागरे ।
एव विलपतो मार्गे वार्य्यमाणस्य किङ्करैः ॥२३
आयान्ति सम्मुखास्तत्र केवर्त्तास्तु सहस्रश ।
वय त्वा तारयिष्यामो महावैतरणी नदीम् ॥२४
शतयोजनविस्तीर्णा पूयशोणितपूरिताम् ।
नानापक्षिसमाकीर्णा नानाझपशतैर्वृताम् ॥२५
येन तत्र प्रदत्ता गौर्विष्णुलोकञ्च सा नयेत् ।
न दत्ता चेत्खगश्रेष्ठ वैतरण्यां स मज्जति ॥२६

स्वस्थावस्थे शरीरे तु वैतरण्या व्रतं चरेत् ।
देया च विदुषे धेनुस्तां नदीं ततु मिच्छता ॥२७
अदत्त्वा मज्जमानस्तु निन्दति स्व स मूढधीः ।
पाथेयार्थं मया किञ्चिन्न प्रदत्तं द्विजातये ।
न तप्तं न हुतं जप्तं न स्नानं न कृतं शुभम् ॥२८

मार्ग में इसको बार-बार बहुत भूख लगा करती है और यह कहा करता है कि संसार में मेरा कोई पुत्र-पौत्र या बान्धव उपस्थित होगा तो शोक सागर में पड़ा हुआ कोई उनमें से मुझे सुख देगा, इस प्रकार से विलाप करता हुआ जाता है और यम के दूतों के द्वारा आकर्षमाण होता है। वहाँ पर सहस्रों कौवर्त्त इसके सामने आ जाया करते हैं और वे कहते हैं कि हम तुमको इन आगे आने वाली महान् वैतरणी नदी से पार करा देंगे ॥२२।२३।२४॥ यह महा वैतरणी नदी एकसौ योजन के प्रमाण वाली है। यह पूय (मवाद) और रक्त से भरी हुई होती है। इसमें अनेक प्रकार के पक्षीगण घिरे हुए रहा करते हैं और बहुत-से विशाल मत्स्य भी इसमें रहते हैं ॥२५॥ जिसने संसार में मान करके गौ का दान किया है वह गौ उस नदी से पार कराकर विष्णु लोक को ले जाया करती है। हे खगश्रेष्ठ ! यदि गौ दान नहीं दिया है तो फिर वह उस वैतरणी में मज्जित हो जाया करता है ॥२६॥ जब तक यह शरीर स्वस्थ दशा में रहे तभी वैतरणी का व्रत कर लेना चाहिए। यदि उस महा नदी वैतरणी को तर कर पार होने की इच्छा रखता है तो किसी विद्वान् सत्पात्र को धेनु का दान अवश्य ही करना चाहिए ॥२७॥ गोदान न करके उस नदी में डूबता हुआ यह मूढ उस समय अपने आप ही भूल पर पश्चात्ताप किया करता है। उस वक्त सोचता है कि पाथेय के लिए अर्थात् मार्ग में भोजन एवं सुख पाने के लिये ब्राह्मणों को मैंने कुछ भी नहीं दिया था। न मैंने कोई तप किया और न हवन तथा जाप ही किया है और न तीर्थादि का स्नान ही कभी किया है। अपने परलोक गमन के मार्ग में सुख प्राप्त करने के लिये कुछ भी सत्कर्म नहीं किया है ॥ २८ ॥

यादृशं कर्म चरितं मूढ भुङ्क्ष्वाद्य तादृशम् ।
हा दैव इति संमूढो सौपर्णेस्ताड्यते हृदि ॥२९

षाण्मासिकञ्च यच्छ्राद्धं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति ।
तार्क्ष्यं तत्र विशेषेण भोजयेच्च द्विजाञ्छुभान् ॥३०
चत्वारिंशत्तथा सप्तयोजनानां शतद्वयम् ।
प्रयाति प्रत्यहं तार्क्ष्य ह्यहोरात्रेण कंपितः ॥३१
सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुरं बद्ध्वा पदं व्रजेत् ।
तत्र भुक्त्वा प्रदत्तं यत् सप्तमासिकसम्भवम् ॥३२
तत् पुरं स व्यतिक्रम्य दुःखदं पुरमाश्रयेत् ।
महद् दुःखमनुप्राप्य स्वमार्गे याति वै पुनः ॥३३
मास्यष्टमे प्रदत्तं यत् तत्र भुक्त्वा स गच्छति ।
नवमं मासिकं भुङ्क्ते नानाक्रन्दपुरे स्थितः ॥३४
नानाक्रन्दगणान्दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणान् ।
स्वयञ्च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुःखितः ॥३५

उस प्रेत से फिर यम के किङ्कर कहते हैं—अरे मूढ ! तूने जैसे भी कर्म किये हैं अब उन सबके फलों का भोग कर। अब पछताने और रोने-धोने से क्या होता है ? यह कहते हुए यमदूतों के द्वारा बड़ी भीषणता के साथ हृदय पर ताडित किया जाता है और वह "हा देव !"—यह कहकर रोता रहता है। ॥२६॥ फिर वहाँ छः मास के दिये हुए श्राद्ध को खाकर आगे को दौड़ लगाता है। हे तार्क्ष्य ! वहाँ पर विशेष रूप से शुभ द्विजों को भोजन कराना चाहिए। ॥३०॥ यह इस तरह से दिन—रात में कंपित होता हुआ प्रतिदिन दो सौ सैंतालीस योजन जाया करता है ॥३१॥ सातवें मास के आरम्भ होने पर पद बाँधकर पुर को जाया करता है और वहाँ पर सातवें मास का दिया हुआ श्राद्ध का अशन किया करता है ॥३२॥ फिर इस पुर से निकल कर अत्यन्त दुःख देने वाले एक पुर का आश्रय लेता है। वहाँ बहुत भारी दुःख भोग कर पुनः अपने मार्ग में चलता जाया करता है ॥३३॥ आठवें मास में जो श्राद्ध दिया जाता है उसका भोजन करके फिर वह आगे जाता है। नवम मास में दिये हुए पिण्ड का अशन करके नानाक्रन्द पुर में स्थित होता है ॥३४॥ वहाँ पर क्रन्दन (रुदन) करते हुए परम सुदारुण नानाक्रन्द गणों को देखकर स्वयं शून्य हृदय वाला होता हुआ दुःखित होकर क्रन्दन किया करता है ॥३५॥

विहाय तत् पुर प्रेतो याति तप्तपुर प्रति ।
सुतप्तनगर प्राप्य दशमे मासि सोऽश्नुते ॥३६
भोजनैः पिण्डदानैस्तु दत्तैस्तत्र सुखी भवेत् ।
मासि चैकादशे पूर्णे रौद्र स्थान स गच्छति ॥३७
दशैकमासिक भुक्त्वा पयोवर्षणमिच्छति ।
मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेताना दुःखदायकाः ॥३८
न्यूनाब्दिक तु यच्छ्राद्ध तत्र भुङ्क्ते सुदुःखितः ।
सम्पूर्णे च ततो वर्षे प्रेत. शीतपुर व्रजेत् ॥३९
शीताढ्यनगरं तत्र महाशीत प्रवर्तते ।
शीतार्त्तः क्षुधितः सोऽपि वीक्षते हि दिशो दश ॥४०
अस्ति मे बान्धव. कोऽपि यो मे दु ख व्यपोहति ।
किङ्कुरास्त वदन्त्येव क्व ते पुण्य हि तादृशम् ॥४१
श्रुत्वा तेषां तु तद्वाक्य हा दैव इति भाषते :
दैवञ्च प्राकृत कर्म यन्मया मानुषे कृतम् ॥४२
एव सञ्चिन्त्य बहुशो धैर्य्यमालभते पुनः ।
चत्वारिंशद्योजनानि चतुर्युक्तानि वै तथा ॥४३
धर्मराजपुर दिव्य गन्धर्वाप्सर सकुलम् ।
चतुरशीतिलक्षैश्च मूर्त्तामूर्त्तैरधिष्ठितम् ॥४४

उस पुर का त्याग करके फिर वह प्रेत तप्तपुर की ओर जाया करता है । उस सुतप्त नगर मे पहुँच कर दशम मास मे दिये हुए श्राद्ध को खाता है । भोजन और पिंड दानो से जोकि दिये गये हैं वहाँ पर वह सुखी होता है । एकादश के पूर्ण हो जाने पर—वह प्रेत रौद्र स्थान मे जाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ फिर यह दशैक मासिक का भक्षण कर पयो वर्षण की इच्छा किया करता है । वहाँ पर मेघ वर्षा किया करते हैं जो प्रेतो को दु ख देने वाले होते हैं । ॥ ३८ ॥ *वहाँ पर न्यूनाब्दिक जो श्राद्ध होता है उसे वह अतीव दुःखित होता* हुआ खाता है । फिर वर्ष के सम्पूर्ण हो जाने पर वह प्रेत शीतपुर में जाया करता है ॥ ३९ ॥ यह शीत से युक्त नगर होता है और वहाँ पर महान् शीत

रहा करता है। शीत से दुःखित तथा क्षुधा से पीडित यह दशों दिशाओं की ओर देखा करता है ॥ ४० ॥ वह सोचता है कि मेरा कोई बान्धव है जो मेरे इस दुःख को दूर हटावे। उससे यम के दूत कहा करते हैं—"तेरा ऐसा पुण्य कहाँ है ? जो तेरी पीडा का निवारण हो"। उनके ऐसे वचन श्रवण कर के वह "हा दैव !"—यह कहकर चिल्लाता है। मैंने मनुष्य लोक में दैव और प्राकृत कर्म जो कुछ भी था वही किया है अर्थात् कोई शुभ कर्म किया ही नहीं है। इस प्रकार से बहुत-सा चिन्तन करके फिर धीरज बाँध लेता है। फिर चौवालीस योजन के विस्तार वाला धर्मराज का पुर आता है जो परम दिव्य होता है और गन्धर्व तथा अप्सराओं के गण से सकुल (घिरा हुआ) होता है। चौरासी लाख मूर्त्त और अमूर्तों से वह अधिष्ठित होता है ॥ ४० ॥ ४३ ॥ ॥ ४२ ॥ ४४ ॥

द्वादशैव प्रतीहारा धर्मराजपुरे स्थिताः।
शुभाशुभं तु यत् कर्म ते विचार्य्य पुनः पुनः ॥४५
श्रवणा ब्रह्मणः पुत्रा मनुष्याणाञ्च चेष्टितम्।
कथयन्ति तदा काले पूजताऽपूजता. स्वयम् ॥४६
नरैस्तुष्टैश्च रुष्टैश्च यत् प्रोक्तञ्च कृतञ्च यत्।
सर्वमावेदयन्ति स्म चित्रगुप्ते यमे यथा ॥४७
दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूराद्दर्शनगोचरम्।
एवञ्चेष्टास्तु ते सर्वे स्वर्भूःपातालचारिणः ॥४८
तेषां पत्नास्तथैवोग्राः श्रवणा. पृथगाह्वयाः।
एव तेषां शक्तिरस्ति मर्त्ये मर्त्योपकारिका ॥४९
व्रतैर्दानैश्च यस्तेषां पूजयेदिह मानवः।
जायन्ते तस्य ते सौम्या. सुखमृत्युप्रदायकाः ॥५०

धर्मराज पुर में बारह प्रतीहार स्थित रहा करते हैं शुभ और अशुभ जो भी कर्म मृत प्राणी (प्रेत) के होते हैं उनपर वे बार-बार विचार करके निर्णय किया करते हैं। ब्रह्मा के पुत्र श्रवण मनुष्यों के चेष्टित अर्थात् कर्म को उस समय में कहते हैं। स्वयं पूजित और अपूजित होते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

तुष्ट तथा रुष्ट मनुष्यो के द्वारा जो कहा गया है। वह सभी कुछ यम और चित्रगुप्त मे आवेदित कर देते हैं ॥ ४७ ॥ दूर से श्रवण करने का विशेष ज्ञान और दूर से देखने का प्रत्यक्ष जैसा ज्ञान का होना इनको होता है। वे सभी ऐसी चेष्टा वाले हुआ करते हैं। वे स्वर्ग भूमि और पाताल मे चरण करने वाले होते हैं ॥ ४८ ॥ उनसे सब यन्त्र भी वैसे ही उग्र हुआ करते हैं। श्रवण से इनका एक पृथक् नाम होता है। उनकी ऐसी विशेष शक्ति हुआ करती है जो मनुष्य लोक मे मनुष्यो की उपकार करने वाली होती है ॥ ४९ ॥ यहाँ पर जो मनुष्य व्रत तथा दानो के द्वारा उनकी पूजा किया करता है उसके लिये वे बहुत ही सौम्य होते हैं और सुख से मृत्यु के देने वाले हुआ करते हैं ॥५०॥

७—श्रावण गण चरित्र

एको मे सशयो देव हृदयेऽतीव वर्त्तते ।
श्रवणा कस्य पुत्राश्च कथ यमपुरे स्थिता ॥१
मानुषैश्च कृत कर्म कस्माज्जानन्ति ते प्रभो ।
कथ शृण्वन्ति ते सर्वे कस्माज्ज्ञान समागतम् ॥२
कुत्र भुञ्जन्ति देवेश कथयस्व प्रसादत ।
पक्षिराजवच श्रुत्वा भगवान् वाक्यमब्रवीत् ॥३
शृणुष्व वचन सत्य सर्वेषा सौख्यदायकम् ।
तदह कथयिष्यामि श्रवणाना विचेष्टितम् ॥४
एकीभूत यदा सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
क्षीरोदसागरे पूर्वं मयि सुप्ते जगत्पतौ ॥५
नाभिस्थोऽजस्तपस्तेपे वर्षाणि सुबहून्यपि ।
एकीभूत जगत् सृष्ट भूतग्रामञ्चतुर्विधम् ॥६
ब्रह्मणा निर्मित पूर्व विष्णुना पालित यदा ।
रुद्र सहारमूर्त्तिश्च निर्मित ब्रह्मणा तत ॥७

गरुड ने कहा—हे देव ! मेरे हृदय मे एक बडा भारी सशय होता है। ये श्रवण किसके पुत्र हैं और ये यमपुर मे क्यो रहा करते हैं ? ॥ १ ॥ हे

प्रभो ! मनुष्यों के द्वारा किये हुए कर्मों को ये कैसे जान लिया करते हैं ? यह ऐसा ज्ञान उन्हें कहाँ से आ गया है ? हे देवेश ! यह भी कृपा कर बताइये कि ये लोग कहाँ खाया करते हैं ? पक्षिराज के इस वचन को सुनकर भगवान् ने यह वाक्य कहा—॥ २ ॥ ३ ॥ श्री कृष्ण बोले—हे गरुड़ ! अब तुम मेरे सत्य वचनों का श्रवण करो जोकि सभी के लिये सुख देने वाले हैं। मैं श्रवणों के विचेष्टित को बतलाता हूँ ॥ ४ ॥ इस समस्त जगत् के पति मेरे क्षीर सागर में शयन करने पर जब यह स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) जगत् एकीभूत हो गया था अर्थात् सभी कुछ मुझ में लीन हो गया था उस समय मेरी नाभि के कमल में स्थित अज ने बहुत वर्षों तक तपश्चर्या की थी। फिर एकीभूत चार प्रकार का जगत् सृजन किया गया था जोकि भूतों का एक समुदाय था ॥ ५ ॥ ६ ॥ पहिले ब्रह्मा ने इसका निर्माण किया था और विष्णु ने इस निर्मित जगत् का पालन किया था तथा रुद्र इसके संहार करने वाली मूर्ति थी। इसके अनन्तर ब्रह्मा ने निर्माण किया था ॥७॥

वायुः सर्वगतः सृष्टः सूर्यस्तेजोविवृद्धिमान् ।
धर्मराजस्ततः सृष्टश्चित्रगुप्तेन संयुतः ॥८
सृष्ट्वैवमादिकं सर्वं तपस्तेपे तु पद्मजः ।
गतानि बहुवर्षाणि ब्रह्मणो नाभिपङ्कजे ॥९
यो यो हि निर्मितः पूर्वं तत्तत्कर्म समाचरेत् ।
कस्मिंश्चित् समये तत्र ब्रह्मलोकसमन्वितः ॥१०
रुद्रो विष्णुस्तथा धर्मः शासयन्ति वसुन्धराम् ।
न जानीमो वयं किञ्चिल्लोकवृत्तमिहोच्यताम् ॥११
इति चिन्तापराः सर्वे देवा विममृशुस्तदा ।
सञ्चिन्त्य ब्रह्मणो मन्त्रं विबुधैः प्रेरितस्तदा ॥१२
गृहीत्वा कुशपत्राणि सोऽसृजद्द्वादशात्मजान् ।
तेजोराशीन् विशालाक्षान् ब्रह्मणो वचनात्तु ते ॥१३
यो यं वदन्ति लोकेऽस्मिन् शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
प्रापयन्ति ततः शीघ्रं ब्रह्मणः कर्णगोचरे ॥१४

सर्वत्र गमन करने वाले वायु का सृजन किया गया था। तेज की निवृद्धि से युक्त सूर्य का सृजन किया था। इसके अनन्तर चित्रगुप्त से युक्त धर्मराज की सृष्टि की गई थी ॥ ८ ॥ इस प्रकार से इन सबका सृजन करके पद्मज ब्रह्मा ने तप किया था। नाभि से समुत्पन्न कमल मे ब्रह्माजी को तपस्या करते हुए बहुत-से वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥ ९ ॥ जो-जो पहिले निर्मित हुए थे वे अपना-अपना कर्म का आचरण करते थे। वहाँ पर किसी समय मे ब्रह्म लोक से समन्वित रुद्र—विष्णु तथा धर्म इस वसुन्धरा का शासन करते थे। हम सब लोक के कृत्य को कुछ भी नही जानते हैं अतएव यह बतलाओ। इस प्रकार से इस चिन्ता से युक्त समस्त देवो ने परस्पर परामर्श किया था। देवो के द्वारा प्रेरित होकर उस समय मे ब्रह्मा के मन्त्र सचिन्तन करके कुशा के पत्र लेकर बारह आत्मजो का सृजन किया था। जोकि बारह पुत्र तेज के राशिभूत थे और विशाल नेत्रो वाले थे। ब्रह्मा के वचन से वे सब इस लोक मे जो भी कोई जिसको कुछ योनता है वह शुभ हो अथवा अशुभ हो उस सबको तुरन्त वे ब्रह्मा के कानो मे पहुँचा दिया करते हैं ॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥

दूराच्छ्रवणविज्ञान दूराद्दर्शनगोचरम् ।
सर्वे शृण्वन्ति यत् पक्षिस्तेनैव श्रवणा मता ॥१५
स्थित्वा चैव तथाकाशे जन्तूनाञ्चेष्टितं तु यत् ।
तज्ज्ञात्वा धर्मराजाग्रे मृत्युकाले वदन्ति च ॥
धर्मञ्चार्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च कथयन्ति ते ॥१६
एको हि धर्ममार्गश्च द्वितीयश्चार्थमार्गकः ।
अपरः काममार्गश्च मोक्षमार्गश्चतुर्थकः ॥१७
उत्तमाधर्ममार्गेण वैनतेय प्रयान्ति हि ।
अर्थदाता विमानैस्तु अश्वैः कामप्रदायकः ॥१८
हंसयुक्तविमानैश्च मोक्षकाङ्क्षी प्रसर्पति ।
इतरः पादचारेण ह्यमिपथवनानि च ॥१९
पाषाणैः कण्टकैः क्लिष्ट पाशबद्धोऽथ याति वै ।
यः कश्चिन्मानुषे लोके श्रवणान् पूजयेदिह ॥२०

दूर से ही सभी कुछ के श्रवण करने का विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेना और दूर से ही सभी कुछ के देख लेने का विशेष ज्ञान प्राप्त करना यह इनकी विशेष शक्ति थी। हे पक्षिन् ! ये सभी कुछ सुन लिया करते हैं अतएव इनका नाम श्रवण कहा गया है ॥ १५ ॥ आकाश में ही स्थित होकर समस्त जन्तुओं के कर्मों को जान या देख लिया करते हैं और मृत्यु के समय में उन सबको धर्मराज के आगे वे बतला दिया करते हैं। वे धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष के विषय में भी सब कुछ कह दिया करते हैं ॥ १६ ॥ एक धर्म का मार्ग है—दूसरा अर्थ का मार्ग है—तीसरा काम का मार्ग है और चौथा मोक्ष का मार्ग होता है ॥ १७ ॥ हे वैनतेय ! वे सब उत्तम और अधम मार्ग से जाया करते हैं। जो अर्थ का दाता होता है वह विमानों के द्वारा गमन करते हैं। काम के प्रदायक अश्वों के द्वारा प्रयाण करते हैं। जो मोक्ष के आकाङ्क्षी होते हैं वे हंसों से युक्त विमानों के द्वारा प्रयाण किया करते हैं। इतर लोग पैरों से ही असिपत्र वनों में होकर पाषाण कण्टकों से क्लेश भोगते हुए पाश से बद्ध होकर गमन किया करते हैं। जो कोई मनुष्य इस मनुष्य लोक में श्रवणों का यजन-मार्चन करता है उसकी वर्द्धनी पक्वान्न से परिपूर्ण और जल से भरी पूरी होती है। हे खगेश्वर ! अतएव वहाँ पर मेरे साथ श्रवणों का पूजन करना चाहिए ॥१७॥१८॥१९॥२०॥

वर्द्धनी जलसम्पूर्णा पक्वान्नपरिपूरिता ।
श्रवणान् पूजयेत्तत्र मया सह खगेश्वर ॥२१
तस्याहं तत्करिष्यामि यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
सम्भोज्य ब्राह्मणान्भक्त्या एकादश शुभान्शुचीन् ॥२२
द्वादशं सकलत्रञ्च मम प्रीत्यैव पूजयेत् ।
देवैः सर्वैश्च सम्पूज्या स्वर्गं यान्ति सुखेप्सया ॥२३
तैः पूजितैरहं तुष्टश्चित्रगुप्तेन धर्मराट् ।
तैस्तुष्टैर्मत्पुरं यान्ति लोका धर्मपरायणाः ॥२४
श्रवणानाञ्च माहात्म्यमुत्पत्तिञ्चेष्टितं शुभम् ।
शृणोति पक्षिशार्दूल स च पापैर्न लिप्यते ॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा स्वर्गलोके महीयते ॥२५

उसके हित के लिये मैं वह सब कुछ कर दिया करता हूँ जोकि देवों के लिये भी—दुर्लभ होता है। परम शुभ ग्यारह ब्राह्मणों को जोकि अतीव पवित्र हों भक्ति भाव के साथ भली-भाँति भोजन करावे। बारहवें ब्राह्मण की पत्नी के सहित मेरी प्रीति के लिये ही पूजा करे। ये समस्त देवों के द्वारा सम्पूज्य होते हैं और सुख की इच्छा से स्वर्ग को जाया करते हैं। उनके पूजित होने से मुझे परम तोष होता है और चित्रगुप्त के द्वारा धर्मराट् सन्तुष्ट होते हैं। उन सबके तुष्ट होने से धर्म परायण लोग मेरे पुर में जाया करते हैं। श्रवणों के इस माहात्म्य को—उत्पत्ति को और शुभ चेष्टित को हे पक्षिशार्दूल! जो श्रवण करता है वह पापों से कभी भी लिप्त नहीं होता है। इस लोक में सम्पूर्ण सुखों का उपभोग करके अन्त में स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है ॥२१॥२२॥ ॥२३॥२४॥२५॥

८—प्रेतोद्देश्य से विविध दानों का फल

श्रवणानां वचः श्रुत्वा क्षणं ध्यात्वा पुनर्यमः।
यत्कृतञ्च मनुष्यैश्च पुण्यं पापमहर्निशम् ॥१
तत्सर्वञ्च परिज्ञाय चित्रगुप्तो निवेदयेत्।
चित्रगुप्तस्ततः सर्वं कर्म तस्मै वदत्यथ ॥२
वाचैव यत्कृतं कर्म कृतश्चैव तु कायिकम्।
मानसञ्च तथा कर्म कृतं भुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥३
एवं ते कथितं तार्क्ष्य प्रेतमार्गस्य निर्णयम्।
विश्रान्तकानि सर्वाणि स्थानानि कथितानि ते ॥४
तमुद्दिश्य ददात्यन्नं सुखं याति महाध्वनि।
दिवारात्र तमुद्दिश्य स्थाने दीपप्रदो भवेत् ॥५
अन्धकारे महाघोरे स्वपूर्त्तं लक्षवर्जिते।
दीप्तेऽध्वनि च ते यान्ति दीपो दत्तश्च यैर्नरैः ॥६
कार्त्तिके च चतुर्दश्यां दीपदानं सुखाय वै।
अथ वक्ष्यामि सक्षेपाद्यममार्गस्य निष्कृतिम् ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—यवर्गों के वचनों को सुनकर फिर क्षण मात्र ध्यान कर फिर यम, मनुष्यों के द्वारा अहर्निश में जो भी पाप और पुण्य किया है उन सबको जान कर चित्रगुप्त को निवेदन कर देता है। इसके अनन्तर चित्रगुप्त उनके समस्त कर्मों को उनसे बोलते हैं। वाणी से जो कुछ भी बुरा-भला कर्म किया है तथा शरीर के द्वारा जो भी कर्म किया गया है और मन से जो कर्म का चिन्तन किया है वह चाहे शुभ हो या अशुभ हो उसका वह प्रेत भोग किया करता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार से वहाँ पर प्रेत के भाग का निर्णय हुआ करता है और वह सब कहा जाता है। विश्रान्तक सभी स्थान तुझे बता दिये गये हैं। इसका उद्देश्य करके ही अन्न का दान किया करता है जिससे उस परम विशाल यमपुरी के मार्ग में वह सुख पूर्वक जाता है। जिन मनुष्यों ने दीपों का दान किया है वे उस महा घोर स्वपूर्ण एवं लक्ष वर्जित अन्धकार में दीप्त मार्ग में जाया करते हैं। उसी का उद्देश्य करके दीपों का दान किया जाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ कार्तिक मास में चतुर्दशी के दिन में जो दीपों का दान किया जाता है वह उस समय में सुख के लिये होता है। इसके अनन्तर मैं संक्षेप से यम के मार्ग की निष्कृति बतलाता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥

वृषोत्सर्गस्य पुण्येन पितृलोकं स गच्छति ।
एकादशाहपिण्डेन शुद्धदेहो भवेत्ततः ॥८

उदकुम्भप्रदानेन किङ्करास्तृप्तिमाप्नुयुः ।
शय्यादानैर्विमानस्थो याति मार्गे खगेश्वर ॥९

तद्दिने दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषतः ।
त्रयोदश परिस्थानि वस्तुवन्ति पदानि वै ॥१०

यो ददाति मृतस्येह जीवन्नेवात्महेतवे ।
तयाश्रितो महामार्गे वैनतेय स गच्छति ॥११

एक एवास्ति सर्वत्र व्यवहारः खगेश्वर ।
उत्तमाधममध्यानां तत्तदा वर्जनं भवेत् ॥१२

यावद्भाग्य भवेद्यस्य तावन्मार्गं प्रकीर्त्यते ।
स्वय स्वस्थेन यद्दत्त तत्राधिक्य करोति तत् ॥१३
मृते यद्बान्धवैर्दत्त तदाश्रित्य सुखी भवेत ।
इत्युक्तो वासुदेवेन गरुडस्तमथाब्रवीत् ॥१४

वृषोत्सर्ग जिसके विषय मे पहिले पूर्ण विधान बता दिया गया है। इसके पुण्य के प्रभाव से प्रेत पितृ-लोक में चला जाता है। ग्यारहवें दिन के पिंड दान से देह की शुद्धि हो जाया करती है ॥ ८ ॥ उदक के कुम्भ के प्रदान करने से किंकर लोग तृप्ति को प्राप्त हुआ करते हैं। हे खगेश्वर ! शय्या के दानो से यह प्रेत विमान मे स्थित होकर उस महान् मार्ग की यात्रा किया करता है ॥ ६ ॥ उस दिन में सभी कुछ का दान किया जाता है। बारहवें दिन मे विशेष रूप से तेरह विशेष वस्तुओ वाले परम पवित्र पदो का दान दिया जाता है ॥ १० ॥ जो यहाँ मृतक के लिये दान करता है तथा जीवित ही रहते हुए अपने लिये दान किया करता है। उसी प्रकार से आश्रित होता हुआ हे वैनतेय ! उस महामार्ग मे वह गमन किया करता है ॥ ११ ॥ हे खगेश्वर ! सर्वत्र एक ही व्यवहार होता है। उस समय मे उत्तम—मध्यम और अधमो का वर्जन हुआ करता है ॥ १२ ॥ जिसका जितना भाग्य होता है उसी प्रकार का वैसा मार्ग प्रकीर्तित किया जाता है। स्वय ही स्वस्थता की दशा मे जो दान किया है वहाँ पर वह अधिक कर देता है। मृत होने पर बान्धवो के द्वारा जो दिया गया है उसका आश्रय पाकर वह सुखी होता है। इस प्रकार से वासुदेव भगवान् के द्वारा कहे गये गरुड ने फिर उनसे कहा था।

कस्मात् पदानि यानि ते किंविधानि त्रयोदश ।
दीयन्ते देवदेवेश तद्वदस्व यथातथम् ॥१५
छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः ।
आसन भाजनञ्चैव पद सप्तविध स्मृतम् ॥१६
आतपस्तत्र यो रौद्रो दह्यन्ते येन मानवा ।
छत्रदानेन सुच्छाया जायते प्रेत तुष्टिदा ॥१७

असिपत्रवने घोरे शर्कराकण्टकैर्युते ।
अश्वारूढास्तु ते यान्ति ददति ये ह्युपानहौ ॥१८
आसनं भाजनञ्चैव यो ददाति द्विजातये ।
सुखेन भुञ्जमानस्तु पथि गच्छेच्छनैरपि ॥१९
बहुधर्मसमाकीर्णे मार्गे तौ तोयवर्जिते ।
कमण्डलुप्रदानेन सुखी भवति निश्चितम् ॥२०
मृतोद्देशेन यो दद्यादुदपात्रं तु ताम्रजम् ।
प्रपादानसहस्रस्य यत् फलं सोऽश्नुते फलम् ॥२१

गरुड ने कहा—हे देवों के भी देवेश ! वे तेरह पद क्यों दिये जाया करते हैं और वे किस प्रकार के होते हैं ? यह आप मुझे कृपा कर ठीक ठीक बताने की उदारता कीजिये ।। १५ ।। श्री कृष्ण भगवान् ने कहा—ये पद सात प्रकार के हुआ करते हैं—छत्र—उपानत्—वस्त्र—मुद्रिका—कमण्डलु—आसन और पात्र ये सात वस्तुऐं दान की होने से यह भी सात प्रकार के होते हैं ।। १६ ।। वहाँ पर जो भीषण आतप होता है जिससे मनुष्य ताप में दग्ध हो जाया करते हैं छत्र के दान से उस समय में बहुत अच्छी छाया हो जाती है जोकि प्रेत की तुष्टि को प्रदान किया करती है ।। १७ ।। वह मार्ग परम घोर है और असिपत्रवन से युक्त होता है । बालू और काँटों से भी युक्त रहा करता है उस मार्ग में जो उपानह (पाद त्राण) का दान करते हैं वे अश्व पर आरूढ़ होकर गमन किया करते हैं ।। १८ ।। जो विप्रों को आसन और पात्रों का दान करते हैं वे सुख पूर्वक खाते-पीते धीरे २ उस मार्ग की यात्रा किया करते हैं ।। १९ ।। यह मार्ग बहुत से घर्मों से समाकीर्ण होता है और जल से रहित है उसमें कमडलु के दान से प्रेत निश्चित् रूप से परम सुखी होता है । ।। २० ।। मृतक के उद्देश्य में जो ताम्र का पात्र जल से परिपूर्ण करके दान देता है उसे एक सहस्र प्रपा (प्याऊ) के दान का जो पुण्य फल होता है वह प्राप्त हो जाता है । २१॥

यमदूता महारौद्रा कराला कृष्णपिङ्गला ।
न पीडयन्ति दाक्षिण्याद्वस्त्राभरणदानतः ॥२२

सायुधा बहुरूपास्तु नामार्गे दृष्टिगोचरे ।
प्रयान्ति यमदूताश्च मुद्रिकायाः प्रदानतः ॥२३
भाजनासनदानेन ह्यामान्नैर्भोजनेन च ।
आज्ययज्ञोपवीताभ्यां पदं सम्पूर्णतां व्रजेत् ॥२४
एवं मार्गे गम्यमानस्तृषार्त्तः श्रमपीडितः ।
घटान्नदानयोगेन बन्धुदत्तेन नित्यशः ॥
महिषीरथगोदानात्सुखी भवति निश्चितम् ॥२५
मृतोद्देशेन यत् किञ्चिद्दीयते स्वगृहे विभो ।
स गच्छति महामार्गे तद्दत्तं केन गृह्यते ॥२६
गृह्णाति वरुणो दानं मम हस्ते प्रयच्छति ।
अहञ्च भास्करे देवे भास्करात्सोऽश्नुते फलम् ॥२७
विकर्मणः प्रभावेण वशच्छेदः क्षिताविह ।
सर्वे ते नरकं यान्ति यावत्पापस्य सक्षयः ॥२८

यम के दूत महान् रौद्र अर्थात् भयानक स्वरूप वाले होते हैं। ये बहुत ही कराल, कृष्ण तथा पिङ्गल वर्ण वाले हैं किन्तु वे वस्त्र तथा आभरणों के दान से दाक्षिण्य से उस प्रेत को पीड़ा नहीं दिया करते हैं ॥ २२ ॥ आयुधों के सहित—बहुत प्रकार के स्वरूपों वाले यम के दूत मुद्रिका के प्रदान करने से अमार्ग में दृष्टिगोचर नहीं होते हैं ।२३। पात्र और आसन के दान से-अमान्न और भोजन से—घृत तथा यज्ञोपवीत से पद सम्पूर्णता को प्राप्त होता है ॥२४॥ इस तरह मार्ग में गमन करता हुआ प्यास से दुःखित एवं श्रम से पीड़ा वाला प्रेत बन्धुओं के द्वारा नित्य दिये हुए घटान्न दान के योग से तथा महिषी—रथ और गोदान से निश्चित रूप से सुखी होता है ॥ २५ ॥ गरुड ने कहा—हे विभो ! मृतक का उद्देश्य करके अपने घर में जो कुछ भी दान किया जाता है वह सभी कुछ उस महान् विशाल यमपुरी के मार्ग में चला जाता है तो उसके दिये हुए किस के द्वारा ग्रहण किया जाता है ? ॥ २६ ॥ श्री कृष्ण भगवान् ने कहा—उस दिये हुए दान को वरुण देवता ग्रहण किया करते हैं और फिर मेरे हाथ में दे दिया करते हैं। मैं फिर उसको भुवन भास्कर सूर्यदेव को

दे देता हूँ और भास्वर मे उसे वह प्रेत प्राप्त किया करता है और उसका फल भोगता है ॥ २७ ॥ विकर्म के अर्थात् बुरे कर्मों के प्रभाव से यहाँ भूलोक में वश का उच्छेद अर्थात् नाश हो जाया करता है और जब तक उस बुरे कर्म द्वारा समुत्पन्न पाप का क्षय नही होता है वे सभी लोग नरको मे निवास किया करते हैं और नाना प्रकार के असह्य उत्पीडन भोगा करते हैं ॥२८॥

कस्मिंश्चित्सुखरूपेण महिषासनसंस्थितः ।
नरकान्वीक्ष्य धर्मात्मा नानाक्रन्दसमाकुलान् ॥२९
चतुरशीतिलक्षाणां नरकाणां स ईश्वरः ।
तेषां मध्ये श्रेष्ठतमन्घोरैर्याम्स्त्वेकविंशतिम् ॥३०
तामिस्रं लोहशंकुञ्च महारौरवशाल्मलीम् ।
रौरवं कुण्डलम्पूतिमृत्तिक कालसूत्रकम् ॥३१
सन्ततं लोहतोदञ्च सविष सप्रतापनम् ।
महानरक कोकोल सञ्जीवञ्च महापथम् ॥३२
अवीचिमन्धतामिस्रं कुम्भीपाक तथैव च ।
असिपत्रवनञ्चैव पतनञ्चैकविंशकम् ॥३३
येषां तु नरके घोरे गतान्यब्दशतानि वै ।
सन्ततिर्नैव विद्येत दूतत्वं ते प्रयान्ति हि ॥३४
यमेन प्रेषितास्ते वो मानुषस्य मृतस्य च ।
दिने दिने प्रगृह्णन्ति दीपमन्नं घटादिकम् ॥३५

किसी स्थान पर बडे ही सुख पूर्वक महिष के आसन पर विराजमान धर्मात्मा धर्मराज अनेक प्रकार के रुदन से समाकुल नरको को देखकर वहाँ संस्थित रहते हैं । वह चौरासी लाख नरको के अधिपति हैं । उन ढेर सारे समस्त नरकों मे सबसे ऊँची श्रेणी के प्रबलतम नरक इक्कीस होते हैं—उनके नाम ये होते हैं—तामिस्र-लोहशकु महारौरव-शाल्मली-रौरव कुण्डलम् पूति मृत्तिक-काल सूत्रक—सन्तत—लोह तोद—सविष—संप्रतापन—महानरक—कोल—सञ्जीव—महापथ—अवीचि—अन्ध तामिस्र—कुम्भीपाक—असि पत्र वन—पतन ये कुल इक्कीस हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जिनको इस

ोर नरक में सैंकड़ों वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। उनके सन्तति नहीं होती है वे
ुन कर्म के करने वाले हो जाया करते हैं ॥ ३४ ॥ वे सब यमराज के द्वारा
ेपित होकर मृत मनुष्य के प्रतिदिन दीपक—अन्न और घट आदि को ग्रहण
किया करते हैं ॥३५॥

प्रेतस्यैव प्रयच्छन्ति ह्यन्नकामस्य सत्तृपः ।
मासान्ते भोजनं पिण्डमेकमिच्छन्ति तत्र वै ॥३६
तृप्ति प्रयान्ति ते सर्वे प्रत्यहश्चैव वत्सरम् ।
एवमाविकृतैः पुण्यैः क्रमतो वत्सर व्रजेत् ॥३७
ततः सवत्सरस्यान्ते प्रत्यासन्ने यमालये ।
बहुभीतिपुरे रम्ये हस्तमात्रं समुत्सृजेत् ॥३८
दशभिर्दिवसैर्जात त देह दशपिण्डजम् ।
जामदग्नेर्यथा राम दृष्ट्वा तेजः प्रसर्पति ॥३९
कर्मज देहमाश्रित्य पूर्व देहं समुत्सृजेत् ।
अ गुष्ठमात्रः पुरुषः शमीपत्रं समारुहेत् ॥४०
व्रजस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
यथा तृणजलौकेय देही कर्मानुगोऽवशः ॥४१
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि गृह्णाति नवानि
देहि ॥४२

तृष्णा से युक्त और अन्न की कामना करने वाले प्रेत को ही दिया
करते हैं। मास के अन्त में वहाँ पर एक ि ड भोजन की इच्छा करते हैं ॥३६॥
वे सब प्रतिदिन साल भर तक तृप्ति को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के किये हुए
पुण्यों के द्वारा क्रम से एक वत्सर व्यतीत हो जाया करता है ॥ ३७ ॥ इसके
अनन्तर एक वर्ष के अन्त में यमालय के निकट आ जाने पर उस बहुत से भयो
वाले रम्य पुर में हस्त मात्र का समुत्सर्जन करे ॥ ३८ ॥ दश दिनों में दश
पिंडों मे समुत्पन्न उस देह मे श्रीराम को देख कर जमदग्नि के पुत्र परशुराम
की भाँति तेज प्रसर्पित होता है ॥ ३९ ॥ कर्मों से जन्य देह को प्राप्त कर फिर

यह पूर्व देह का त्याग कर देता है। यह एक अँगूठे के बराबर पुरुष वामी के पथ पर समारूढ हो जाता है ॥ ४० ॥ एक पैर से चलता है—स्थित होता है और एक से ही गमन किया करता है। जैसे तृणजनों का होना है वैसे ही यह देही कर्मों का अनुगमन करने वाला अवश्य हुआ करता है ॥ ४१ ॥ जैसे कोई मनुष्य अपने पुराने जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों का त्याग करके पुनः नूतन वस्त्रों को अपने शरीर पर धारण कर लिया करता है उसी भाँति यह देही जीवात्मा अपने पूर्व शरीरों का त्याग कर अन्य नवीन शरीरों को अपना आवास स्थल बनाता हुआ उन्हें धारण कर लेता है। मनुष्य के शरीर की मृत्यु भी यही वस्तु एवं स्थिति होती है। मनुष्य का देह अनित्य है और इसका त्याग अवश्य-ही होता है। आत्मा नित्य एवं अविनाशी है वह इसी तरह अपना चोला बदला करता है। ४२॥

६-यमपुर वर्णन

वायुभूतः क्षुधाविष्टः कर्मजं देहमाश्रयेत्।
तं देहं स समासाद्य यमेन सोऽपि गच्छति ॥१
चित्रगुप्तपुरं तत्र योजनानां तु विंशति।
कायस्थास्तत्र पश्यन्ति पापपुण्ये च सर्वश ।२
महादानेषु दत्तेषु गतस्तत्र सुखी भवेत्।
योजनानां चतुर्विंशत्पुरं वैवस्वतं शुभम् ॥३
लोहं लवणकार्पासं तिलपात्रञ्च ये कृतम्।
तेन दत्तेन तृप्यन्ति यमस्य पुरवासिनः ।४
तत्र गत्वा तु ते सर्वे प्रतिहारं वदन्ति हि।
धर्मध्वजप्रतीहारस्तत्र तिष्ठति सर्वदा ॥५
सप्तधान्यस्य दानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत्।
तत्र गत्वा प्रतीहारो ब्रूते तस्य शुभाशुभम् ॥६
अगारजस्या ब्रूत सत्त दुष्टातिभो जना।
पश्यन्ति च दुरात्मना यमरूपं दुरासदम् ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—यह देही जीवात्मा वायु के समान है और क्षुधा से प्राविष्ट रहता हुआ कर्मज इस देह का आश्रय लिया करता है। वह उस देह को प्राप्त कर स्थित रहता है और यम के द्वारा वह भी गमन करता है ॥१॥ वहाँ पर बीस योजन के प्रमाण वाला चित्रगुप्त पुर है। वहाँ कायस्थ जाति के लोग सम्पूर्ण पाप और पुण्य का लेखा जोखा किया करते हैं ॥२॥ महादानी के दिये जाने पर वहाँ पर गया हुआ प्राणी सुखी होता है। चौबीस योजनों के विस्तार वाला वैवस्वत शुभ पुर होता है ॥३॥ जिन्होंने लोह, लवण, कार्पास और तिलपात्र का दान किया है। उसके देने से यमराज के पुर में निवास करने वाले तृप्त हुआ करते हैं ॥४॥ वहाँ पर वे सब जाकर पहिले प्रतिहार को बोलते हैं। वहाँ पर धर्मध्वज प्रतिहार सर्वदा स्थित रहा करता है ।५। सात धान्यों के दान से धर्मध्वज प्रतिहार प्रसन्न हुआ करता है। वहाँ जाकर वह प्रतिहार उसके सब अच्छे बुरे कर्मों को बतलाता है ॥६॥ धर्मराज का जो स्वरूप है उसे सन्त और सुकृत करने वाले लोग अच्छा देखा करते हैं और दुरात्मा लोग उसी धर्मराज के रूप को बहुत ही दुरासद अर्थात् भयावह देखा करते हैं ॥७॥

तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हाहेति वदते जनः ।
कृतं दानं तु यैर्मर्त्यैर्न भयं विद्यते क्वचित् ॥८
प्राप्तं सुकृतिनं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति सूर्य्यजः ।
एष मे मण्डलं भित्वा ब्रह्मलोकं हि गच्छति ।९
दानेन सुलभो धर्मो यममार्गे सुखावहः ।
एष मार्गो विशालोऽत्र न केनाप्यनुगम्यते ॥१०
दानपुण्यं विना सम्यङ् न गच्छेद्यममन्दिरम् ।
अस्मिन्मार्गे तु रौद्रे च भीषणा यमकिङ्कराः ॥११
पाशदण्डधरा घोराः सहस्राणि च षोडश ।
एकैकस्य पुरस्याग्रे सहस्रं कथ तिष्ठति ॥१२
पापिनः प्राप्य पाच्यन्ते उदके यातनापराः ।
गृह्णन्ति मांसमामान्ते पादक्षेपं तु यद्भवेत् ॥१३

श्रोर्ध्वदेहिकदानानि यैर्न दत्तानि काश्यप ।
महाकष्टेन ते यान्ति यस्माद्दद्यानि शक्तित ।।१४

धमराज के उस परम भयानक स्वरूप को ही देखकर प्राणी भय से डरकर हाहाकार करने लगता है । जिन मनुष्यों ने दान किया है उन्हें कहीं भी कुछ भय नहीं होता है ।।८।। कोई सुकृती जन्तु जिस समय यमराज के सामने उपस्थित होता है तो उसे आया हुआ देखकर यमराज अपने स्थान से चलित हो जाते हैं कि यह मेरे मण्डल का भेदन करके ब्रह्मलोक को गमन करता है । ।।६।। दान से धर्म सुलभ होता है जो कि यमपुरी के मार्ग में सुख देने वाला हुआ करता है । यह इतना विशाल अर्थात् लम्बा मार्ग है जहाँ अन्य कोई भी अनुगमन नहीं किया करता है ।।१०।। दान पुण्य के बिना धर्मराज के मन्दिर में भली-भाँति नहीं जाया करता है । यह माग बहुत ही रौद्र होता है और इसमें महाभीषण यमराज के किङ्कर रहा करते हैं ।।११।। ये सब पाश और दड के धारण करने वाले हैं और सोलह सहस्र होते हैं । एक एक पुर के आगे एक-एक सहस्र स्थित रहते हैं ।।१२।। पापी को प्राप्त करके यातना के करने वाले जल में पातन किये जाते हैं । प्रत्येक मास के अन्त में जो पाप दोष होता है उसका ग्रहण करते हैं ।।१३।। हे काश्यप ! जिन्होंने ओर्ध्व दैहिक दान नहीं दिये हैं वे महान् कष्ट से जाया करते हैं । इसलिये ओर्ध्व दैहिक दान अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य ही देने चाहिये ।।१४।।

अदत्त्वा पशुवद्याति गृहीतो वधबन्धनैः ।
एवं कृत च सपश्येत न नरः कृतकर्मणः ।।१५
दैविकी पैतृकी योनि मानुषी वाथ नारकीम् ।
धर्मराजस्य वचनान्मुक्तिर्भवति वा ततः ।।१६
मानुष्यञ्च ततः प्राप्य सुपुत्रे पुत्रता व्रजेत् ।
यथा यथा कृत कर्म ता ता योनिं व्रजेन्नरः ।।१७
तत्तथैव हि भुञ्जानो विचरेत्सर्वलोकतः ।
अशाश्वत परिज्ञाय सर्वं लोकान्तर सुखम् ।।१८
यदा भवति मानुष्य तदा धर्मं समाचरेत् ।
कृमयो भस्म विष्ठा वा देहाना प्रकृतिः सदा ।।१९

अन्धकूपे महारौद्रे दीपहस्तः पतत्यपि ।
यदा पुण्यप्रभावेण मानुष्यं जन्म लभ्यते ॥२०
यस्तं प्राप्य चरेद्धर्मं स गच्छेत्परमां गतिम् ।
अपि जानन्वृथा धर्मं दुःखमायाति याति च ॥२१
जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजत्वम् ।
यस्तत्र पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात् ॥२२

और्ध्व दैहिक दानों को न देने वाला एक पशु की भाँति ग्रहण किया हुआ वध और बन्धनों से पूर्ण कष्ट भोगता हुआ वहाँ जाया करता है। ऐसा होने पर वह मनुष्य जिसके कर्म किये गये हैं वह सब कुछ भी नहीं देखता है। ॥१५॥ धर्मराज के वचन से दैविकी, पैतृकी, मानुषी अथवा नारकी योनि प्राप्त होती है अथवा इन सबसे छुटकारा पाकर मुक्ति हो जाती है ॥१६॥ मानुष्य अर्थात् मनुष्य योनि में जन्म पाकर सुपुत्र में पुत्रता को प्राप्त होवे। यह मनुष्य जैसा जैसा भी कर्म करता है उस-उस योनि को प्राप्त किया करता है। तात्पर्य यह है कि सर्वदा कर्मों के अनुसार ही जीवन की प्राप्ति होती है ॥१७॥ और उसी प्रकार से भोगों को भोगता हुआ सभी लोकों में वह जीवात्मा विचरण किया करता है। लोकान्तर का समस्त सुख का परिज्ञान करके जो कि शाश्वत नहीं होता है फिर जब यह मनुष्य जीवन प्राप्त करता है तो उस समय में इसे धर्म का आचरण करना चाहिए। इस मानव शरीर की सदा तीन ही गति होती हैं, वे तीन कृमि, भस्म अथवा विष्ठा ये हैं ॥१८।१९॥ महारौद्र अन्ध कूप में दीपक हाथ में लेने वाला भी पतित हो जाता है। जब महान् पुण्य का प्रभाव होता है तभी यह मनुष्य देह मिला करता है ॥२०॥ जो इसे प्राप्त करके धर्म का आचरण करता है वह परम गति को प्राप्त कर लेता है। वह सब जानता हुआ भी धर्म इत्य को व्यर्थ समझता है उसको दुःख प्राप्त रहता है और चला जाया करता है। दुःख से नितान्त निवृत्ति कभी नहीं होती है ॥२१॥ यह मानुषत्व सैकड़ों जातियों के बाद बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है अतएव

इस मनुष्य योनि को ही परम दुर्लभ बतलाया जाता है। इस मनुष्य जन्म को भी पाकर हे खग ! द्विजत्व की प्राप्ति तो और भी अधिक दुर्लभ होती है। जो मनुष्य और उनमें भी द्विज जीवन पाकर उसका यथार्थ रूप से पालन नहीं करता है और केवल अपनी इन्द्रियों के सुख में निमग्न रहता है, उसके हाथ में रखा हुआ अमृत उसके प्रमाद के कारण ही क्षरित हो जाया करता है अर्थात् उत्तम गति के प्राप्त करने का अमृत के समान सुयोग उसके हाथ से लापरवाही के कारण यों ही नष्ट हो जाया करता है। तात्पर्य यह है कि यह अति दुर्लभ मनुष्य जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है ॥२२॥

१०—प्रेत पीड़ा वर्णन

ये केचित्प्रेतरूपेण तत्र वासं लभन्ति ते।
प्रेतलोकाद्विनिर्मुक्ताः कथं भुञ्जन्ति किल्बिषम् ॥१
चतुरशीतिलक्षैश्च नरकैः पर्युपासिताः।
यमेन रक्षिताश्चैव दूतैश्चैव सहस्रशः ॥२
विचरन्ति कथं लोके नरकाच्च विनिःसृताः।
रक्षिता रक्षपालैश्च विचरन्ति दिवानिशम्।
पक्षीन्द्रेण त्विदं पृष्टो लक्ष्मीनाथोऽब्रवीदिदम् ॥३
पक्षिराज शृणुष्व त्वं यथा प्रेताश्चरन्ति ये।
परस्वहरणार्था ये परस्त्र्यन्वेषणतत्पराः ॥४
तथैव सर्वपापिष्ठा आत्मजान्वेषणे रताः।
विघ्नन्त्यपरशरीरास्ते क्षुत्पिपासार्दिता भृशम् ॥५
बन्दीगृहविनिर्मुक्ता यथा नश्यन्ति जन्तवः।
तथा नश्यन्ति ते प्रेता वर्षं कृत्वा सहोदरे ॥६
पितृद्वाराणि रुन्धन्ति तन्मार्गच्छेदनालया।
पितृमार्गांश्च गृह्णन्ति पथिकांस्तस्करा इव ॥७

गरुड ने कहा—जो कोई वहाँ पर प्रेत की अवस्था से निवास किया करते हैं वे प्रेत लोक से कैसे विनिर्मुक्त होते हैं और अपने किये हुए

पापों को किस प्रकार से भोगा करते हैं ? ॥१॥ चौरासी लाख नरकों में रहते हुए और यमराज के द्वारा रक्षित होते हुए तथा सहस्रों यम के दूतों के निरीक्षण में रहकर वे नरक से निकल कर कैसे लोक में विचरण किया करते हैं ? क्योंकि वे तो रात दिन रक्षा करने वालों के द्वारा रक्षित रहने वाले होते हैं। इस प्रकार से पक्षियों के स्वामी गरुड़ के द्वारा पूछे गये, भगवान् लक्ष्मीनाथ यह बोले—श्रीकृष्ण ने कहा—हे पक्षिराज ! जिस तरह से वहाँ प्रेतगण विचरण किया करते हैं उसको तुम अब श्रवण करो। जो पराये धन के हरण करने वाले हैं और पत्नी के अन्वेषण में तत्पर रहने वाले हैं तथा आत्मजान्वेषण में रति रखने वाले सब महा पापिष्ठ वे बिना ही शरीर वाले भूख-प्यास से पीड़ित होकर बहुत ही दु:खित होकर विचरण किया करते हैं ॥२।३।४।५॥ वर्गीगृह से विनिर्मुक्त जन्तु जिस तरह नष्ट हो जाया करते हैं उसी भाँति वे प्रेतगण भी सहोदर का वध करके नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥६॥ पितृगण के द्वारों का रोध कर दिया करते हैं तथा उनके मार्ग के छेदक हो जाते हैं। वे पितृगण के भागों को मार्ग में पथिकों को तस्करों की भाँति ग्रहण कर लेते हैं ॥७॥

स्ववेश्म पुनरागत्य मूत्रोत्सर्गं विशन्ति ते ।
तत्र स्थिता निरीक्षन्ते रोगशोकादिना जनम् ॥८
ज्वररूपेण पीड्यन्ते ह्यैकान्तरामिषेण तु ।
चिन्तयन्ति सदा तेषामुच्छिष्टादिस्वमन्थिता ॥९
आत्मजाना छल लोके भूतजातैश्च रक्षिताः ।
पिबन्ति तत्र पानीयं भोजनोच्छिष्टयोजितम् ।
सदा पापरता पापा एव पीडा प्रकुर्वते ॥१०
कथं कुर्वन्ति ते प्रेताः केन रूपेण कस्य किम् ।
ज्ञायन्ते केन विधिना जल्पन्ति न वदन्ति वा ॥११
एवं छिन्धि मनोमोहं मम चेदिच्छसि प्रियम् ।
कलिकाले हृषीकेश प्रेतत्वं जायते बहु ॥१२
स्वयुक्त पीडयेत्प्रेतः परं छिद्रेण पीडयेत् ।
जीवश्च मुक्ते स्नेह मृतो दुष्टत्वमाप्नुयात् ॥१३

रुद्रजापी धर्मरतो देवतातिथिपूजक ।
सत्यव्रतप्रियवादी च न स प्रेतैश्च पीड्यते ॥१४

अपने घर में फिर आकर वे भूम्रोत्सग में प्रवेश किया करते हैं। वहाँ पर संस्थित होकर रोग और शोक आदि के द्वारा जनों को देखा करते हैं ॥८॥ ज्वर के रूप में एकान्तरा के बहाने से पीड़ित किये जाते हैं। उच्छिष्ट आदि के स्वप्नों में स्थित होते हुए उनका सदा चिन्तन किया करते हैं ॥९॥ आत्मजों के छल को लोक में भूत जातों के द्वारा रक्षित हुए भोजन के उच्छिष्ट से योजित पानी को वहाँ पर पीते हैं। सदा पाप कर्मों में रत रहने वाले पापी इस प्रकार से पीड़ा प्राप्त किया करते हैं ॥१०॥ गरुड ने कहा—वे प्रेत पाप किस रूप से किसको वधा कैसे किया करते हैं ? वे किस विधि से आने जाते हैं और कैसे बोलते या कहा करते हैं ? हे प्रभो ! यदि मेरे प्रिय करने की कृपा करते हैं तो यह जो मेरे मन में बड़ा भारी मोह है उसका छेदन करने का अनुग्रह करें। हे हृषीकेश ! इस कलिकाल में तो बहुत से प्रेत होते हैं। श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—प्रेत अपने कुल को पीड़ा दिया करता है। दूसरे को कोई छिद्र देखकर पीड़ा दिया करता है। वह जीवित रहता हुआ तो स्नेह करता है किन्तु मरने के बाद दुष्टता को प्राप्त हो जाता है ॥११॥१२॥१३॥ जो रुद्र के मन्त्र का जाप करने वाला होता है, धर्म में रति रखने वाला है देवगण तथा अतिथियों के सत्कार एवं यजन करने वाला है और सत्य व्रत को धारण करने वाला तथा प्रिय बोलने वाला है वह प्रेतों के द्वारा कभी भी पीड़ित नहीं किया जाता है अर्थात् उक्त प्रकार के व्यक्ति पर प्रेत की पीड़ा कभी नहीं हो सकती है ॥१४॥

गायत्रीजाप्यनिरतो वैश्वदेवरतो गृही ।
श्राद्धकृत्तीर्थसेवी च न स प्रेतैश्च पीड्यते ॥१५
सर्वक्रियापरिभ्रष्टो नास्तिको देवनिन्दक ।
असत्यवादनिरतो नर प्रेतै प्रपीड्यते ॥१६
कलौ प्रतत्वमाप्नोति तार्क्ष्याशुद्धक्रियापर ।
कृतादौ द्वापर यावच्च प्रेतो नैव पीडनम् ॥१७

बहूनामेकजातीनामेकः सौख्यं समश्नुते ।
एको दुष्कृतकर्मा च ह्येकः सन्ततिवर्जितः ॥१८
एकः सपीड्यते प्रेतैरेकः पुत्रसमन्वितः ।
एकस्य पुत्रनाशः स्यात्पुत्रो न लभते सदा ॥१९
विरोधो बन्धुभिः सार्द्धं प्रेतदोषोऽस्ति तत्र वै ।
सन्ततिर्नैव दृश्येत समुत्पन्नो विनश्यति ॥
पशुद्रव्यविनाशश्च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२०
प्रकृतिश्च विवर्त्तेत विद्वेषः सह बन्धुभिः ।
अकस्माद्व्यसनप्राप्तिः स पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२१

जो गायत्री मन्त्र के जप में निरत रहा करता है और जो गृहस्थी बलि वैश्वदेव करने वाला है, श्राद्धों के करने वाला, तीर्थ का सेवी होता है वह भी कभी प्रेतों के द्वारा नहीं सताया जा सकता है ॥१५॥ जो सब प्रकार की क्रियाओं से परिभ्रष्ट होता है अर्थात् जिसमें कोई भी कर्म की क्रिया नहीं होती है—जो ईश्वर की सत्ता को नहीं मानता है, जो देवगण की निन्दा करने वाला होता है, जो सदा मिथ्या भाषण करने में ही डूबा रहा करता है अर्थात् हर समय ही असत्य झूठ बोलता है ऐसा मनुष्य प्रेतों के द्वारा सताया जाया करता है ॥१६॥ हे तार्क्ष्य ! इस कलियुग में जो अशुद्ध क्रियाओं में अहर्निश तत्पर रहा करता है वही प्रेत योनि को प्राप्त होता है। सत्ययुग और द्वापर पर्यन्त युग में कोई भी प्रेतत्व को प्राप्त नहीं होता था और न किसी को प्रपीड़ित ही किया जाता था ॥१७॥ एक जाति वाले बहुतसों का एक ही सुख प्राप्त किया करता है। कोई एक दुष्कृत कर्मों का करने वाला होता है और कोई एक ही सन्तति से रहित होता है ॥१८॥ प्रेतों के द्वारा एक सपीड़ित किया जाता है। एक पुत्र से समन्वित होता है। एक के पुत्र का नाश हो जाता है और वह सदा पुत्र की प्राप्ति नहीं किया करता है ॥१९॥ जहाँ बन्धुओं के साथ आपस में विरोध होता है वहाँ पर ही प्रेत का दोष हुआ करता है। वहाँ सन्तति भी दिखाई नहीं देती है और हो भी जाती है तो विनष्ट हो जाया करती है ॥२०॥ प्रेत से होने वाली पीडा में पशुओं का नाश और द्रव्य का विनाश हुआ करता

है। प्रकृति ही निवर्त्तित हो जाया करती है और स्वभाव के परिवर्तन होने से बन्धुओं के साथ विद्वेष हो जाया करता है। अचानक ही व्यसनों का समागम उपस्थित हो जाया करता है—यह सभी प्रेत के द्वारा की जाने वाली पीड़ा हुआ करती हैं ॥२१॥

नास्तिक्य व्रतलोपश्च महालोभस्तथैव च।
दम्भश्च कलहो नित्यं सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२२
मातापित्रोश्च हन्ता च देवब्राह्मणदूषकः।
हत्यादोषमवाप्नोति सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२३
नित्यकर्मविमुक्तश्च जपहोमविवर्जितः।
परद्रव्यापहर्त्ता च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२४
तीर्थं गत्वा परासक्तः स्वकृत्यञ्च परित्यजेत्।
धर्मकार्य्ये न सम्पत्तिः सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२५
सुभिक्षे कृषिनाशः स्याद्व्यवहारो विनश्यति।
लोके कलहकारी च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२६
मार्गे तु गच्छतश्चैव पीडयेद्वाथ मण्डली।
यश सपीड्यते प्रेतैरिति सत्य वचो मम ॥२७
हीनजातिषु सम्बन्धो हीनकर्म करोति च।
अधर्मे रमते नित्यं सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२८

प्रेत के द्वारा उत्पन्न जो पीडा होती है उसमें नास्तिक पने की भावना पैदा हो जाती है—जितने नियम एवं व्रत होते हैं वे सब छूटकर उनका एकदम लोप हो जाता है—हृदय मे एक महान् लोभ उत्पन्न हो जाया करता है—दम्भ और कलह नित्य प्रति होता है ॥ २२ ॥ प्रेत से समुत्पन्न पीडा यह किया करती है कि वह व्यक्ति अपने ही माता-पिता का हनन एव ताडन करने लगता है—देवता तथा ब्राह्मणों को दूषित किया करता है—पराये धन का अपहरण करने वाला हो जाता है ।२३। प्रेत से उत्पन्न जब पीडा किसी को होती है तो वह नित्य कर्म को छोड देता है—मन्त्रों का जाप, होम सब छोड देता है—हत्या के दोष का भागी हो जाता है ॥ २४ ॥ तीर्थों मे जाकर भी परम आसक्त

हो जाता है और अपने कृत्य को त्याग देता है—धर्म के कार्य में सम्पत्ति का विनियोग नहीं करता है—ये सब बातें तभी होती हैं जब कि किसी प्रेत के द्वारा पीडा होती है ॥ २५ ॥ प्रेत का जब किसी पर प्रभाव होता है तो उसका ऐसा नाश होता है कि सुभिक्ष में भी कृषि का नाश हो जाता है और जितना भी सद्व्यवहार होता है वह सब विनष्ट हो जाया करता है। लोक में कलह करने वाला हो जाया करता है ॥ २६ ॥ मार्ग में गमन करते हुए पीडा उत्पन्न हो जाती है अथवा प्रेतों के द्वारा मण्डलों को प्रपीडित किया जाता है। यह सब मेरा पूर्णतः सत्य कथन है ॥ २७ ॥ प्रेत के द्वारा जब किसी को पीडा होती है तो उसका हीन जाति वालों में सम्पर्क होता है और वह हीन कर्मों को किया करता है। सर्वदा अधर्म में उसकी रति होती है ॥२८॥

व्यसनैर्द्रव्यनाशः स्यादुपक्रान्तश्च नश्यति।
चौराग्निराजभिर्हानि. स पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२९
महारोगोपपत्तिश्च स्वतनोः पीड़नं तु यत्।
जाया सपीड्यते यत्र सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३०
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु धर्मकार्य्येषु चैव हि।
अभावो जायते येषा सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥३१
देवतीर्थं द्विजातीना भावशुद्धया न मन्यते।
प्रत्यक्ष वा परोक्ष वा दूपयेत्प्रेतभावतः ॥३२
स्त्रीणा गर्भविनाश स्याद्म पुष्प दृश्यते तथा।
बलाना मरण यत्र सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥३३
पुष्प प्रदृश्यते यत्र फल नैव प्रदृश्यते।
विरोधो भार्य्यया सार्द्ध सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥३४
भावशुद्धया न कुरुते श्राद्ध सावत्सरादिकम्।
स्वयमेव न कुर्वीत सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥३५

ऐसे बहुत से व्यसन लग जाया करते हैं कि उनमें अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का विनाश कर देता है और स्वयं उपक्रान्त होकर नष्ट हो जाया करता है। चोर—अग्नि और राजा के द्वारा हानि होती है—ये सभी उपद्रव

प्रेत के द्वारा की जाने वाली पीड़ा से हुआ करते हैं ।। २९ ।। किसी रोग की उत्पत्ति—अपने शरीर की पीड़ा का होना—अपनी स्त्री का सताया जाना—ये सभी बातें प्रेत के द्वारा होने वाली पीड़ा से हुआ करती हैं ।।३०।। श्रुति—स्मृति और पुराणों में तथा धर्म के कार्यों में अश्रद्धा तथा अभाव का होना जिनको हो जाता है वे सब प्रेतों के द्वारा उत्पन्न हुई पीड़ा से ही हुआ करते हैं ।। ३१ ।। देव तीर्थ और द्विजों को शुद्ध भावना से नहीं मानना और प्रत्यक्ष रूप से या परोक्ष रूप से प्रेत भाव के कारण इनको दूषित किया करता है ।। ३२ ।। स्त्रियों के गर्भ का विनाश हो जाता है तथा रजो दर्शन ही नहीं होता है । बालकों का मर जाना ये सब उपद्रव प्रेतों के द्वारा उत्पन्न होने वाली पीड़ा के कारण हुआ करते हैं ।। ३३ ।। पुष्प जहाँ दिखाई देता है वहाँ फल नहीं होता है और अपनी भार्या के साथ विरोध रहना—ये सभी प्रेत के द्वारा ही सम्भव होते हैं ।। ३४ ।। सांवत्सर श्राद्ध खाना-पूरी के लिये करता तो है किन्तु प्रेत की पीड़ा के कारण उसके भावों में शुद्धि नहीं रहा करती है । स्वयमेव कुछ भी नहीं करता है यह प्रेत पीड़ा से ही होता है ।३५।

कलहो घातकाश्चैव पुत्राः शत्रुमिवात्मजाः ।
न प्रीतिर्न च सौख्यञ्च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ।।३६

गृहे दन्तकलिश्चैव भोजने कोपसंयुतः ।
परद्रोहमतिश्चैव सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ।।३७

पित्रोर्वाक्यं न कुरुते स्वपत्नीं न च सेवते ।
परदारापकर्षी च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ।।३८

विकर्मणा भवेत्प्रेतो विधिहीनक्रियस्तथा ।
तत्काले दुष्टसंसर्गाद्वृषोत्सर्गाद्दृते तथा ।।३९

दुष्टमृत्युवशाद्वापि ह्यदग्धवपुषस्तथा ।
प्रेतत्वं जायते तार्क्ष्य पीड्यन्ते येन जन्तवः ।।४०

दाहक्रियादिलोपश्च खट्वादिमृतिदोषतः ।
प्रेतत्व सुस्थिरं तस्य वाक्चेष्टादिविवर्जितम् ।।४१

एवज्ञात्वा खगश्रेष्ठ प्रेतमुक्तिं समाचरेत् ।
यो यं न मन्यते प्रेतान्मृतः प्रेतत्वमाप्नुयात् ॥४२

जिसके यहाँ प्रेत के द्वारा पीडा दी जाती है वहाँ रात-दिन कलह रहता है और पुत्र एक शत्रु के ही समान घात करने वाले हो जाया करते हैं। न वहाँ कोई आपसी प्रीति भाव होता है और न कोई सुख ही हुआ करता है ॥ ३६ ॥ जिसके घर में दन्त कलह हो और भोजन के समय में कोप का आवेश होता हो—सदा दूसरों के साथ द्रोह करने की बुद्धि रहे—ये सभी दुष्परिणाम प्रेत के द्वारा दी हुई पीडा से हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥ जिस पर प्रेत का असर होता है वह माता-पिता के वचन का पालन कभी नहीं करता है और अपनी पत्नी में रमण नहीं करता है। ऐसा पुरुष पराई स्त्रियों के अपकर्षण किया करता है ॥ ३८ ॥ विकर्मों के कारण ही प्रेत होता है। तथा विधि से शून्य क्रिया करने वाला होता है। दुष्टों के उस समय में संसर्ग से, वृषोत्सर्ग के न करने से प्रेतत्व की प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ दुष्ट मृत्यु के कारण भी प्रेत योनि मिलती है तथा मृत के शरीर के दाह न होने के कारण भी प्रेतत्व की प्राप्ति होती है। हे तार्क्ष्य ! इसी कारण से जन्तुओं को सताया जाता है ॥ ४० ॥ दाह आदि की क्रिया का जहाँ लोप होता है तथा खाट पर ही जिसकी मृत्यु हो जाती है उसका प्रेत होना सुनिश्चित ही समझना चाहिए जो प्रेतत्व की दशा ऐसी होती है कि वाणी और चेष्टा आदि सब से शून्य हुआ करती है ॥ ४१ ॥ हे खगश्रेष्ठ ! इस तरह से जान कर प्रेत की मुक्ति करनी चाहिए। जो आदमी प्रेतों को नहीं मानता है वह मर कर स्वयं प्रेतत्व को प्राप्त हो जाता है ॥४२॥

प्रेतदोष कुले यस्य सुखं तत्र न विद्यते ।
मति प्रीति रतिर्बुद्धिर्लक्ष्मीः पञ्चविनाशनम् ॥४३
तृतीये पञ्चमे पुंसि वंशच्छेदोऽभिजायते ।
दरिद्रो निर्धनश्चैव पापकर्मा भवे भवे ॥४४
ये केचित्प्रेतरूपा विकृतमुखदृशो रौद्रदंष्ट्राः कराला
मन्यन्ते नैव गोत्रं सुतदुहितृपितृभ्रातृजायाश्च बन्धून् ।

कृत्वा काम्यञ्च रूपं सुखगतिरहिता भाषमाणा यथेष्टं
हा कष्टं भोक्तुकामा विधिवशपतिताः संस्मरन्ति स्वपापम् ।४५

जिसके कुल में प्रेत का दोष विद्यमान रहा करता है वहाँ सुख नहीं रहता है। उस कुल मे बुद्धि—प्रीति—रति—मति और लक्ष्मी इन पाँचों का विनाश हुआ करता है ॥ ४३ ॥ तीसरे तथा पाँचवें पुरुष (पीढ़ी) में वंश का उच्छेद भी हो जाया करता है और ऐसा पुरुष जन्म-जन्म में बहुत दरिद्र एवं धन से हीन तथा पाप कर्म करने वाला होता है ॥ ४४ ॥ जो कोई भी प्रेत के रूप वाले होते हैं उनके मुख और नेत्र विकृत हुआ करते हैं अर्थात् बहुत विकराल होते हैं। रौद्र (भीषण) दाढ़ों वाले होते हैं तथा बहुत कराल (भयानक स्वरूप से युक्त) होते हैं। वे अपने गोत्र को भी कुछ नहीं माना करते हैं और सुत—पुत्री—पिता—मातृजाय (भाभी) तथा बन्धुओं को भी नहीं माना करते हैं। ये लोग अपनी इच्छा के अनुरूप अपना स्वरूप बना लिया करते हैं। ये सुखमय गति से रहित होते हैं अर्थात् इनकी योनि में कुछ भी सुख नहीं मिलता है। ये प्रेत गण जो चाहें सो बोलते रहा करते हैं। ये "हाय हाय ! बड़ा कष्ट है—हम कुछ खाना चाहते हैं, भूखे हैं—भाग्य वश हम अब प्रेत योनि में आ गये हैं"—ऐसा चिल्लाते-चीखते रहते हैं और अपने किये हुए पापों का स्मरण किया करते हैं जोकि मनुष्य के रूप में रह कर किये थे ॥४५॥

११—प्रेतों का स्वरूप और चरित्र

मुक्तिं यान्ति कथं प्रेतास्तवहं प्रष्टुमुत्सुकः ।
यन्मुक्तौ च मनुष्याणां न पीडा जायते तु सा ॥१
एतैश्च लक्षणैर्देव पीडा प्रेतसमुद्भवा ।
तेषां कदाभवेन्मुक्तिः प्रेतत्वं न कथं भवेत् ॥२
प्रेतत्वे हि प्रमाणञ्च कतिवर्षाणि सङ्ख्यया ।
चिरं प्रेतत्वमाप्नोति कथं मुक्तिमवाप्नुयात् ॥३
मुक्तिं प्रयान्ति ते प्रेतास्तदहं कथयामि ते ।
यथत्कुर्वन्ति ते प्रेताः पिशाचत्वे व्यवस्थिताः ॥४

तेषां स्वरूपं वक्ष्यामि चिह्नं स्वप्नं यथातथम् ।
क्षुत्पिपासार्दितास्ते वै प्रविशेयुः स्ववेश्मनि ॥५
प्रविष्टा वायुदेहेन शयानान्स्वस्ववंशजान् ।
तत्र लिङ्गानि यच्छन्ति निर्दिशन्ति खगेश्वर ॥६
स्वपुत्रस्वकलत्राणि स्वबन्धूँस्ते प्रयान्ति वै ।
गजो हयो वृषो भूत्वा दृश्यन्ते विकृताननः ॥७

गरुड ने कहा—हे भगवन् ! ये प्रेत योनि मे रहने वाले किस तरह मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं ?—अब मैं यह आपसे पूछने के लिए उत्सुकता रखता हूं । जिनकी मुक्ति हो जाने पर फिर मनुष्यों को उनके द्वारा की हुई वह पीडा नहीं होती है ॥१॥ हे देव ! इन लक्षणों से यह ज्ञात होता है कि यह प्रेत के द्वारा उत्पन्न की हुई पीडा है तो फिर यह बताइए कि उनकी पीडा नष्ट कैसे होती है ? और मनुष्यों को प्रेतत्व किस प्रकार से नहीं होता है ? प्रेतत्व के होने पर संख्या मे कितने वर्षों का प्रमाण होता है ? जिस काल तक यदि प्रेतत्व प्राप्त करता है तो फिर उसकी मुक्ति कैसे हुआ करती है ? ॥३॥ श्री भगवान् ने कहा—वे प्रेत जैसे प्रेतत्व से छुटकारा पाया करते हैं उसे अब हम तुमको बतलाते हैं । जो-जो भी वे प्रेत किया करते हैं उनमें वे पिशाच जैसे स्वरूपित हो जाया करते हैं ॥४॥ अब हम उनका स्वरूप—चिह्न और स्वप्न सभी ठीक-ठीक बतलाते हैं । भूख और प्यास से अत्यन्त उत्पीड़ित होकर वे अपने घर में प्रवेश किया करते हैं ॥५॥ वे अपने वायु तत्व से निर्मित देह से प्रविष्ट हो जाते हैं अर्थात् इनका देह एक प्रकार का वायु जैसा ही होता है जो कि किसी को दिखलाई नहीं दिया करता है । वहां पर वे सोते हुए अपने ही वंश वालों को हे खगेश्वर ! ऐसे चिह्न दिया करते हैं कि जिनसे वे अपने प्रेतत्व का निर्देश कर देवें ॥६॥ वे अपने पुत्र, कलत्र और अपने बन्धुओं के पास जाते हैं तथा हाथी, अश्व, वृष होकर एक विकृत मुख वाले हो जाते हैं ॥७॥

शयनं विपरीतं वा आत्मानञ्च विपर्ययम् ।
उत्थितः पश्यति तु यः स प्रेतं पीड्यते भृशम् ॥८

निगडैर्बध्यते यस्तु बध्यते बहुधा यदि ।
अन्नञ्च याच्यते स्वप्ने कुरुते पापमात्मना । ९
भुञ्जमानस्तु य स्वप्ने गृहीत्वाऽन्न पलायते ।
आत्मनस्तु परस्यापि तृषार्त्तस्तु जल पिबेत् ।।१०
वृषभारोहण स्वप्ने वृषभैं सह गच्छति ।
उत्पत्य गगन याति तीर्थे याति क्षुधातुर ।।११
स्वकलत्र स्वबन्धू श्च स्वपुत्र स्वपति विभुम् ।
विद्यमान मृत पश्येत्प्रेतदोषेण निश्चितम् ।।१२
यस्त्वपो याच्यते स्वप्ने क्षुत्तृषाभ्या परिप्लुत ।
तीर्थे गत्वा ददेत्पिण्डान्प्रेतदोषैर्न सशय ।।१३
निर्गच्छन्तो गृहाद्दारान् स्वप्ने पुत्रांस्तथा पशून् ।
पितृभ्रातृकलत्राणि प्रेतदोषं स पश्यति ।।१४

जो शयन के विपरीत अथवा अपनी आत्मा का विपर्यय देखता है और उठकर देखा करता है अर्थात् स्वयं को नीचे और शय्या को अपने ऊपर में उठने के समय दिखाई देता है वह प्रेतो के द्वारा बहुत पीडित किया जाता है। ।।८।। यदि कोई बहुधा रस्सियों या जञ्जीरो से बाँधा जाया करता है और स्वप्न में अन्न की याचना जो कोई करता है—अपने द्वारा पाप करता है—स्वप्न मे खाता हुआ अपने आपको देखता है और अन्न को ग्रहण कर भाग जाता है—अपने तथा दूसरे के जल को अत्यन्त प्यास से दु खित होकर पी लेता है—जो स्वप्न म वृषभ पर सवारी किया करता है और बैलो के साथ गमन करता है—जो उछल कर आकाश म जाता है तथा भूख से उत्पीडित होकर तीर्थ मे जाता है—अपनी स्त्री को, अपने ब धुओं को, अपने पति को और विभु को, विद्यमान को मृत देखता है तो समझ लेना चाहिए कि यह सब स्वप्न में देखना प्रेत के द्वारा उत्पन्न दोष से ही निश्चित रूप से होना है ।।९।१०।११।१२।। जो स्वप्न मे भूख और प्यास से बहुत आर्त्त होकर जल की याचना किया करता है, और तीर्थ में जाकर पिण्डों का दान किया करता है ऐसा स्वप्न म देखना भी प्रेत के दोषो के कारण ही हुआ करता है—इसमे तनिक भी संशय नहीं है ।।१३।।

(
रात्रि में गृह से स्वप्न में जो निकलते हुए पुत्रों को तथा पशुओं को देखा करता है, अथवा अपने पिता को, भाई को और पत्नी को निकलते हुए देखता है—यह सब भी प्रेत के दोषों से ही होता है कि उसे इस तरह के स्वप्न दिखलाई दिया करते हैं—ऐसा समझ लेना चाहिए ।।१४।।

चिह्नान्येतानि पक्षीन्द्र गणकाय निवेदयेत् ।
कृत्वा स्नानं गृहे तीर्थे श्रीवृक्षे तर्पणञ्चरेत् ।।१५
कृष्णधान्यानि सम्पूज्य प्रदद्याद्वेदपारगे ।
सर्वविघ्नानि सन्त्यज्य मुक्त्युपायं करोति यः ।।१६
तस्य कर्मफलं साधु प्रेततृप्तिश्च शाश्वती ।
शृणु सत्यमिदं तार्क्ष्य यो ददाति स तृप्यति ।।१७
आत्मैव श्रेयसा युज्येत्प्रेतस्तृप्तिं व्रजेच्चिरम् ।
ते तृप्ताः शुभमिच्छन्ति स्वात्मबन्धुषु सर्वदा ।।१८
अन्ये पापा दुरात्मानः क्लेशयन्ति स्ववंशजान् ।
निवारयन्ति तृप्तास्ते जायमानानुपद्रवान् ।।१९
पश्चात्ते मुक्तिमायान्ति काले प्राप्ते तु पुत्रत ।
सदा बन्धुषु यच्छन्ति ऋद्धिं वृद्धिं खगाधिप ।।२०
दर्शनाद्भापणाद्यस्तु चेष्टनात्पीडनाद्गतिम् ।
न प्रापयति मूढात्मा प्रेतशापैः स लिप्यते ।।२१

हे पक्षीन्द्र ! इन समस्त चिह्नों को किसी गणक अर्थात् ज्योतिषी को बतलाना चाहिए और घर में या तीर्थ में स्नान करके श्रीवृक्ष पर तर्पण करना चाहिए ।।१५।। किसी वेद के पारगामी अर्थात् पूर्ण विद्वान् को भली-भाँति पूजन करके कृष्ण धान्य का दान करे । समस्त विघ्नों का त्याग करके जो प्रेत की मुक्ति का उपाय करता है उसे ऐसा ही करना चाहिए । उनके इस कर्म का बहुत उत्तम फल होता है और प्रेत को निरन्तर होने वाली इससे तृप्ति हो जाती है । हे गरुड ! तुम इसका अच्छी तरह से श्रवण कर लो—यह मेरा वचन बिल्कुल सत्य है । जो ऐसा दिया करता है तो वह इससे पूर्णत: तृप्त हो जाया करता है ।।१६-१७।। दान और तर्पण करने वाले की आत्मा ही श्रेय से

गायत्र्या ह्ययुत जप्त्वा दशांशेनैव होमयेत् ।
कृत्वा विष्णुबलिं पूर्वं वृषोत्सर्गादिका क्रिया ॥३२
सर्वोपद्रवहीनस्तु सर्वसौख्यमवाप्नुयात् ।
उत्तम लोकमाप्नोति ज्ञातिप्राधान्यमेव च ॥३३
पितृमातृसमो लोके नास्त्यन्यद्दैवत परम् ।
प्रभु शरीरप्रभव प्रत्यक्षदैवत पिता ॥३४
हितानामुपदेष्टा च प्रत्यक्षो गुरुदेवता ।
अन्या या देवता लोके शरीरप्रभवा मता । ३५

उस समय मे अन्य भी भूत-प्रेत अथवा पिशाचो के द्वारा वह कभी भी नहीं सताया जाया करता है जो पितृगण का उद्देश्य करके परम शुभ नारायण-बलि किया करता है उसे फिर कोई भी बाधा, पीडा नही, देती है। ॥ २९ ॥ वह समस्त पीडाओ से विमुक्त हो जाया करता है—यह मेरा वचन पूर्ण सत्य है। जहाँ पितृगण के द्वारा की हुई पीडा होती है वह अन्य किसी भी कृत्य से युक्त नही हुआ करती है ॥ ३० ॥ इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नो के द्वारा पितृगण का परम भक्त एव उनकी भक्ति में परायण होना चाहिए। नवम या दशम वर्ष मे जो पितृगण के उद्देश्य से पुरुष दश हजार गायत्री मन्त्र का जाप करके उस जप का दशम अ श होम करे और पहिले विष्णु बलि और वृषोत्सर्ग आदि की क्रिया करे तो सम्पूर्ण उपद्रवो से हीन होकर सभी प्रकार के सुखो की प्राप्ति किया करता है। अन्त मे परम उत्तम लोक की प्राप्ति करता है ज्ञाति मे प्राधान्य भी उसे प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इस ससार मे अपने माता-पिता के समान अन्य कोई भी देवता नही है। पिता इस शरीर के देने का कारण है अतएव वह प्रत्यक्ष देवता होता है। पिता न होता तो यह शरीर ही प्राप्त नही होता ॥ ३४ ॥ हितो से युक्त कर्मो के करने का उपदेश देने वाला गुरु भी प्रत्यक्ष देवता है। इनके अतिरिक्त अन्य जो लोक मे देवता हैं वे सब इस शरीर से ही होने वाले होते हैं ॥३५॥

शरीरमेव जन्तूना नरकस्वर्गमोक्षदम् ।
शरीर सम्पदो दारा सुता लोका सनातना ॥३६

यस्य प्रसादात्प्राप्यन्ते कोऽन्य· पूज्यतमस्तत· ।
एव सञ्चिन्त्य हृदये पितॄणा य· प्रयच्छति ॥
तत्सर्वमात्मना भुङ्क्ते दान वेदविदो विदु ॥३७
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते तु यः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्त· स्वयमेकस्स्वहं ब्रुवे ॥३८
अपमृत्युमृतो स्याता पिता माता च कस्यचित् ।
धर्मं तीर्थं विवाहादि श्राद्ध सावत्सर त्यजेत् ॥३६
स्वप्नाध्यायमिम यस्तु प्रेतलिङ्गेन दर्शितम् ।
य पठेच्छृणुयाद्वापि प्रेतचिह्नं न पश्यति ॥४०

यह शरीर ही मुख्यतया जन्तुओं के नरक–स्वर्ग तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला होता है । ऐसा यह उत्तम शरीर–सम्पत्ति–दारा–सुत–सनातन लोक आदि सभी कुछ जिसके प्रसाद से प्राप्त होते हैं उससे अन्य कौन सर्वाधिक पूजा के योग्य हो सकता है ? इस प्रकार से अपने हृदय मे भली-भाँति चिन्तन करके जो पितृगण के उद्देश्य से दिया करता है उस दान को सर्वात्मा के द्वारा भुक्त किया जाता है—ऐसा वेद के विद्वान् कहते हैं और समझते हैं ॥३६॥ ॥ ३७ ॥ पुन्नाम वाले नरक से जो अपने पिता का त्राण किया करता है इसलिये उसे 'पुत्र'—इस नाम से कहा गया है । मैं स्वय एक ही हूँ—ऐसा बोले ॥ ३८ ॥ किसी के माता–पिता अपमृत्यु से मृत हुए हो उसे धर्म–तीर्थ, विवाह आदि मे तथा वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए । इस स्वप्नाध्याय को जो प्रेत लिङ्ग से दिखाया गया है जो पठन–श्रवण करता है वह प्रेत चिह्न को नही देखता है ॥३६॥४०॥

१२–प्रेतत्व प्राप्ति का कारण और उनका आहार

सम्भवन्ति कथं प्रेता केन मृत्युवशङ्गता ।
कीदृक्तेषा भवेद्रूप भोजन किं भवेद्विभो ॥१
सुप्रीतास्ते कथ प्रेताः क्व तिष्ठन्ति सुरेश्वर ।
प्रगतः कृपया देव प्रश्नमेन वदस्व मे ॥२

ये केचित्पापकर्माणः पूर्वकर्मवशानुगाः ।
जायन्ते ते मृताः प्रेताः शृणुष्व त्वं वदाम्यहम् ॥३
वापीकूपतडागानि ह्यारामञ्च सुरालयम् ।
प्रपा सद्यः सुवृक्षाश्च तथा भोजनशालिकाः ॥४
पितृपैतामहं धर्मं विक्रीणाति स पापकृत् ।
मृतः प्रेतत्वमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥५
गोचरं ग्रामसीमाश्च तडागारामगह्वरम् ।
कर्षयन्ति च ये लोभात्प्रेतास्ते सम्भवन्ति हि ॥६
चाण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतात्तथा ।
दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥७

गरुड ने कहा—हे विभो ! कृपा कर अब यह बतलाइये कि ये किनके द्वारा मृत्यु गत हुए किस प्रकार से प्रेत हो जाया करते हैं ? उन प्रेतों का स्वरूप कैसा होता है और उनका भोजन क्या हुआ करता है ? ॥ १ ॥ हे सुरेश्वर ! वे प्रेतगण परम प्रसन्न किस तरह होते हैं और किस स्थान में रहा करते हैं ? हे देव ! आप प्रसन्न होते हुए मेरे इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करने की कृपा करें ॥ २ ॥ भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—जो कोई पाप कर्मों के करने वाले होते हैं और अपने पूर्व जन्म के कर्मों के वश में जो पड़े होते हैं अर्थात् पहिले जन्मों में जो बुरे-भले कर्म किये हैं उनके वश वर्त्ती होते हुए वे मृत होकर प्रेत उत्पन्न हुआ करते हैं । मैं सब बतलाता हूँ तुम इसका श्रवण करो ॥ ३ ॥ वापी (बावडी)—कूप (कुआ)—तडाग (तालाब)—आराम (बाग)—देव स्थान—प्रपा (प्याऊ)—सुन्दर फल छाया समन्वित वृक्ष और भोजनशाला इनका एवं पिता-पितामह के समय से चले आने वाले धर्म का जो स्वरूप बिगड देते हैं अर्थात् नष्ट भ्रष्ट कर दिया करते हैं वे पाप के करने वाले होते हैं और मर कर वे प्रेतत्व की योनि प्राप्त किया करते हैं और जब तक भूत सम्प्लव (महा प्रलय) होता है तब तक प्रेत योनि में रहा करते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ गोचर भूमि—ग्राम की सीमा—तालाब—आराम और गह्वर (घना जगल)—इनका जो कर्षण लोभ से किया करते हैं वे प्रेत हो जाते हैं ॥ ६ ॥ पाप युक्त

कर्म करने वालों की मृत्यु चाण्डाल से—जल से—सर्प दंशन से—ब्राह्मण से—बिजली से—दाढ़ वाले जीवों से और पशुओं से हुआ करती है। उपर्युक्त जिनकी मौत होने के कारण होते हैं वे पापी होते हैं ॥७॥

उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये।
आत्मोपघातिनो ये च विसूच्यग्निहताश्च ये ॥८
महारोगैर्मृता ये च पापरोगैश्च दस्युभिः।
असंस्कृतप्रमृताश्च विहिताचारवर्जिताः ॥९
वृषोत्सर्गादिसंस्कारैर्लुप्तैः पिण्डैश्च मासिकैः।
यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणं काष्ठं हवींषि च ॥१०
पतनं पर्वतादिभ्यो भित्तिपातेन ये मृताः।
रजस्वलादिदोषैस्तु न भूमौ म्रियते यदि ॥११
अन्तरिक्षे मृता ये च विष्णुस्मरणवर्जिताः।
सूतकादिषु सम्पर्का दुष्टशल्यमृतास्तथा ॥१२
एवमादिभिरन्यैश्च कुमृत्युवशगास्तु ये।
ते सर्वे प्रेतयोनिस्था विचरन्ति महीस्थलीम् ॥१३
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
युधिष्ठिरस्य संवादं भीष्मेण सह सुव्रत ॥
तदहं कथयिष्यामि यच्छ्रुत्वा सौख्यमाप्नुयात् ॥१४

जो उद्बन्धन के होने के कारण मृत हो जाते हैं—जो पाप के कारण से होने वाले रोगों से मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं—जो डाकू तथा चोरों के द्वारा मार दिये जाते हैं—जो असंस्कृत ही मृत्यु गत हो जाते हैं तथा अपने शास्त्र विहित आचार से रहित होते हैं। वृषोत्सर्ग के संस्कारों के लोप होने से तथा मासिक पिंडों के लुप्त हो जाने से बुभुक्षित दशा में रहते हैं—जिसके लिये शूद्र अग्नि, तृण, काष्ठ और हवि का साहित्य लाया करता है—जो पर्वत आदि समुच्च स्थान से पतन होने से मर जाते हैं तथा भीत-मकान आदि के नीचे दबकर मौत के मुंह में चले जाया करते हैं—जो रजस्वला आदि के दोषों से भूमि में नहीं मरते हैं—जो ऊपर ही अन्तरिक्ष में मृत हो जाते हैं—जो

भगवान् विष्णु के स्मरण से रहित होते हुए मर जाते हैं—सूतक आदि सम्पर्क वाले तथा दुष्ट शल्य आदि से जो मृत होते हैं—एवमादि तथा अ भी मृत्यु के हेतु जिनके ऐसे ही हुआ करते हैं वे सब कुमृत्यु के वशीभूत हो गये हैं। ऐसे कुमौत से मरने वाले सभी प्रेत योनि में स्थित होकर इस भू-मण्डल मे विचरण किया करते हैं। हे सुव्रत! अब हम तुम्हारे समक्ष मे एक परम प्राचीन इतिहास बतलाते हैं। यह युधिष्ठिर का भीष्म के साथ सम्वाद में आया था। उसे मैं तुमको श्रवण कराता हूँ। इसे सुन कर तुमको परम सुख प्राप्त होगा ॥८॥ से ॥१४॥

केन कर्मविपाकेन प्रेतत्वमुपजायते।
केनोपायेन मुच्यन्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१५
अह ते कथयिष्यामि सर्वमेतदशेषत।
यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहमेव यास्यसि सुव्रत ॥१६
येन यो जायते प्रेतो येन चैव विमुच्यते।
प्राप्नोति नरक घोर दुस्तर दैवतैरपि ॥१७
सतत श्रवणाद्धरेणो पुण्यतीर्थानुकीर्त्तनात्।
प्रेतभावा विमुच्यन्ते आपत्सु प्रेतयानिषु ॥१८
श्रूयते हि पुरा वत्स ब्राह्मण सशितव्रत।
नाम्ना सन्तप्तक. ख्यातस्तपोऽर्थे वनमाश्रित ॥१९
स्वाध्याययुक्तो होमे च योगयुक्तो दयान्वित।
स यजेरसकलान्यज्ञान्युक्त्या काल क्षिपेद्द्विजम् ॥२०
ब्रह्मचर्ये सदा युक्तो युक्तस्तपसि मार्दवे।
परलोकभये युक्तः सत्ये शौचे तु नित्यश ॥२१

धमराज राजा युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा था—हे पितामह! किस कर्म के विपाक होने से प्रेत की योनि प्राप्त हुआ करती है और वह फिर किस उपाय के करने से छूटा करती है? इसे मुझे बतलाइये। तब राजा युधिष्ठिर के इस प्रश्न को सुनकर भीष्म पितामह बोले—भीष्म ने कहा—मैं, इस तुमको पूर्ण रूप से बतलाता हूँ। हे सुव्रत! इसका श्रवण कर इस प्रकार

से फिर तुमको कभी मोह ही नहीं होगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ जिस कारण से जो कोई प्रेत हो जाता है और जिस कारण से इससे मुक्ति प्राप्त किया करता है और देवों के द्वारा भी दुस्तर घोर नरक को प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ निरन्तर भगवान् विष्णु के परम पुण्य तीर्थों के अनुकीर्तन करने से तथा श्रवण करने से प्रेत भाव से विमुक्ति हो जाती है क्योंकि प्रेत योनि परम आपत्ति स्वरूप हुआ करती है ॥१८॥ हे वत्स ! ऐसा सुना जाता है कि प्राचीन समय में पहिले संशित व्रत वाला संतप्त नाम वाला एक ब्राह्मण प्रसिद्ध था जोकि तप करने के लिये वन में आश्रय करने वाला था ॥ १९ ॥ वह स्वाध्याय से युक्त और होम में योग से संयुत—दया से समन्वित था । वह युक्ति से अपने समय का क्षेप करता हुआ समस्त यज्ञों का यजन किया करता था ॥ २० ॥ वह सर्वदा ब्रह्मचर्य में युक्त रहा करता था और माईवज्ञ तपश्चर्या में युक्त रहता था । उसे परलोक का भय रहा करता था और नित्य ही सत्य तथा शौच में स्थित रहता था ॥२१॥

युक्तो हि गुरुवाक्ये च युक्तस्त्वतिथिपूजने ।
आत्मयोगेषु यो युक्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥२२
योगाभ्यासे सदा युक्त संसारविजिगीषया ।
एववृत्तसमाचारो मोक्षाकाङ्क्षी जितेन्द्रियः ॥२३
बहून्यब्दानि विजने वने तस्य गतानि वै ।
तस्य बुद्धिस्ततो जाता तीर्थानुगमनं प्रति ॥२४
पुण्यैस्तीर्थजलैरेव शोषयिष्ये कलेवरम् ।
स तीर्थे त्वरितं स्नात्वा तपस्वी भास्करोदये ॥२५
कृतजाप्यनमस्कारो ध्यानञ्चक्रे जगद्गुरो ।
एकस्मिन्दिवसे विप्रो मार्गभ्रष्टो महातपाः ॥२६
ददर्श त्वरितो गच्छन्पञ्च प्रेतान्सुदारुणान् ।
अरण्ये निर्जने देशे कण्टके वृक्षवर्जिते ॥२७
पञ्चैतान्विकृताकारान्दृष्ट्वा वै घोरदर्शनान् ।
दृष्ट्वा सन्त्रस्तहृदयस्तिष्ठन्मीलित लोचनः ॥२८

वह गुरु के बचनों में सर्वदा युक्त रहा करता था तथा अतिथियों के पूजन में निरत रहता था। वह आत्म योगों में युक्त रहा करता था और सभी द्वन्द्वों से रहित था ॥ २२ ॥ इस संसार की विजिगीषा अर्थात् जय प्राप्त करने की इच्छा से वह सदा योगाभ्यास में युक्त रहता था। इस प्रकार के चरित्र और समाचार वाला वह मोक्ष की इच्छा वाला और विशेष रूप से इन्द्रियों को जीतने वाला था ॥ २३ ॥ इस तरह से रहते हुए उस बियावान जङ्गल में उसको बहुत-से वर्ष व्यतीत हो गये थे। इसके अनन्तर उसका विचार तीर्थों में अनुगमन करने को उत्पन्न हुआ था ॥ २४ ॥ उसने सोचा कि मैं परम पवित्र तीर्थों के जल से ही कलेवर का शोषण करूँगा। वह तीर्थ में शीघ्र स्नान करके भगवान् भास्कर के उदय काल में वह तपस्वी जप और नमस्कार करके जगद्गुरु का ध्यान किया करता था। एक दिन उस मार्ग से भ्रष्ट महा तपस्वी विप्र ने शीघ्रता से गमन करते हुए अत्यन्त दारुण पाँच प्रेतों को देखा जबकि वह उस काँटों से परिपूर्ण निर्जन वृक्षों से रहित बन में थे। ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ इन पाँचों प्रेतों को जोकि बहुत ही भयानक दिखलाई देने वाले, विकृत आकार वाले थे, देखकर वह सन्त्रस्त हृदय वाला हो गया था और अपने नेत्र मूँदकर एक ही स्थान पर स्थित हो गया था ॥२८॥

अवलम्ब्य ततो धैर्यं त्रासमुत्सृज्य दूरत ।
पप्रच्छ मधुराभाषी के यूय विकृता भृशम् ॥२९
किञ्चाशुभ कृत कर्म येन प्राप्ता स्म वैकृतम् ।
कथ वा एककर्माण प्रस्थिता कुत्र निश्चितम् ॥३०
स्वैं स्वैं कर्मभिरुत्पन्न प्रेतत्व नो द्विजोत्तम ।
परद्रोहरता सर्वे पापमृत्युवशङ्गता ॥३१
क्षुत्पिपासार्दिता नित्य प्रेतत्व समुपागता ।
हृतवाक्या वय सर्वे नष्टसंज्ञा विचेतस ।३२
न जानीमो दिश तान विदिशश्चापि दु स्थिता ।
गच्छाम कुत्र वै मूढा पिशाचा कर्मजा वयम् ॥३३

न माता न पितास्माकं प्रेतत्वं कर्मभिः स्वकैः ।
प्राप्ताः स्म सहसा तद्वै दुःखोद्वेगसमाकुलाः ॥३४
दर्शनेन च ते ब्रह्मन्ह्लादिताप्यायिता वयम् ।
मुहूर्त्तं तिष्ठ वक्ष्यामि वृत्तान्तं सर्वमादितः ॥३५

इसके अनन्तर कुछ समय में धीरज का सहारा लेकर और अपने भय को दूर कर उनसे उसने मधुर भाषण करते हुए पूछा था—आप इतने विकृत स्वरूप वाले कौन हैं ? ॥ २६ ॥ आप लोगों ने ऐसा क्या अशुभ कर्म किया था जिसके कारण से ऐसा यह विकृत स्वरूप आपको प्राप्त हुआ है ? आप लोग सभी पाँचों क्या एक ही जैसा कर्म करने वाले हैं जोकि किसी एक निश्चित स्थान पर रवाना हो रहे हैं ? आप कहाँ को प्रस्थान कर रहे हैं वह कौन-सा स्थान है ? ॥ ३० ॥ प्रेतों ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! हम सबको अपने-अपने कर्मों के ही कारण यह प्रेतत्व की योनि प्राप्त हुई है । हम सब पराये द्रोह में रति रखने वाले थे और पाप पूर्ण मृत्यु के वशगत हो गये थे ॥ ३१ ॥ अब हम सब क्षुधा और प्यास से पीड़ित नित्य ही रहा करते हैं और इस प्रेतत्व को प्राप्त हो गये हैं । हम सब हत वाक्य हैं और नष्ट संज्ञा वाले अर्थात् मूर्च्छित तथा असावधान चित्त वाले हो रहे हैं ॥ ३२ ॥ हे तात ! हम इस समय में इतने दुःखित हो रहे हैं कि दिशाओं और विदिशाओं को भी नहीं पहिचान रहे हैं । हम अब कहाँ जावें ?—इसे भी नहीं बता सकते हैं क्योंकि इसमें भी हम मूढ ही रहे हैं । हम कर्मों से उत्पन्न हो जाने वाले पिशाच हैं ॥ ३३ ॥ हमारा न कोई पिता है और न कोई माता है । हम अपने ही कर्मों से प्रेत योनि में आ गये हैं । और जब इस योनि में आ गये हैं तो सहसा दुःख के उद्वेग से परम व्याकुल हो रहे हैं । हे ब्रह्मन् ! आपके दर्शन से हम ह्लादित (प्रसन्न) और अत्यन्त तृप्त हुए हैं । मुहूर्त्त मात्र आप यहाँ ठहरिये तो हम सब आदि से अपना पूर्ण वृत्तान्त आपको बता देंगे ॥३४॥३५॥

अम पर्युषित नाम एष सूचीमुख स्मृतः ।
शीघ्रगो रोहकश्चैव पञ्चमो लेखकस्तथा ॥
एवं नाम्ना च सर्वे वै सम्प्राप्ताः प्रेतता वयम् ॥३६

प्रेतानां कर्मजातानां कथं वै नामसम्भवः ।
किञ्चित्कारणमुद्दिष्टं येन ब्रूत स्वनामकान् ॥३७
मया स्वादु सदा भुक्तं दत्त पर्युं पितं द्विजे ।
तेन पर्युं पितं नाम जातं मे ब्राह्मणोत्तम ॥३८
सूचिता बहवोऽनेन विप्रा अन्नादिकांक्षया ।
एतत्कारणमुद्दिश्य ह्येष सूचीमुखः स्मृतः ॥३९
शीघ्रं गच्छति विप्रेण याचितः क्षुधितेन वै ।
एतत्कारणमुद्दिश्य शीघ्रगोऽयं द्विजोत्तम ॥४०
एकाकी मिष्टमश्नाति दैवं पैत्र्यञ्च नित्यशः ।
ब्राह्मणानामभावेन रोहकस्तेन चोच्यते ॥४१
पुराय मौनमास्थाय याचितो विलिखन्महीम् ।
तेन कर्मविपाकेन लेखको नाम नामतः ॥४२

उन पाँचो प्रेतो मे से एक ने कहा—मेरा नाम तो पर्युं पित है मैं यह दूसरा जो है उसका नाम सूची मुख है—तीसरा शीघ्रग, चौथा रोहक मैं पाँचवाँ लेखक नाम वाला है । इस प्रकार से इन सब नामो वाले हम प्रेतत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण ने कहा—कर्म से उत्पन्न होने वाले प्रेतों के नाम कैसे उत्पन्न हुए हैं अर्थात् इनका नाम कैसे रक्खा गया है ? इसका कुछ कारण अवश्य ही होगा जिससे कि आप अपने नामो को बता रहे हैं। ॥ ३७ ॥ प्रेतराज बोला—मैंने हमेशा स्वादु युक्त भोजन किया था और जो बासी भोजन होता था वह ब्राह्मण को खिला दिया था। हे ब्राह्मणोत्तम ! इसीलिये मेरा नाम पर्युं षित पड गया है ॥ ३८ ॥ इस प्रेत ने अन्नादि की आकाङ्क्षा से बहुत से विप्रो को सूचित किया था इसी कारण का उद्देश्य करके यह सूची मुख इस नाम से कहा गया है ॥ ३९ ॥ भूखे ब्राह्मण के द्वारा जब इसने याचना की जाती तो यह शीघ्रता से चला जाया करता था । इसी कारण के उद्देश्य से हे द्विजोत्तम ! इसका नाम शीघ्रग पड गया है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणो के अभाव के कारण यह देवता और पितृगण सम्बन्धी मिष्ट पदार्थ को अकेला ही नित्य खा जाया करता था इस कारण से इसे रोहक कहा जाता

॥ ४१ ॥ यह पहिले जब याचना किया करता था तो मौन होकर भूमि पर लिखने लगता था उसी कर्म के विपाक से इसको लेखक इस नाम से कहा जाता है ॥ ४२ ॥

प्रेतत्व कर्मभावेन प्राप्य नामानि च द्विज ।
मेघाननो लेखकोऽयं रोहक पर्वतानन ॥४३
शीघ्रग. पशुवक्त्रश्च सूचक सूचिवक्त्रवान् ।
पर्युषितो वलग्रीवः पश्य रूपविपर्य्ययम् ॥४४
धृत्वा मायामय रूप विद्रुता नरकार्णवात् ।
सर्वे च विकृताकारा लम्बोष्ठा विकृतानना ॥४५
बृहच्छरीरदशना वक्रास्याः स्वेन कर्मणा ।
एतत्ते सर्वमाख्यात प्रेतत्वे कारण मया ॥४६
ज्ञानिनो हि वय सर्वे सञ्जाता दर्शनात्तव ।
यदि ते श्रवणे श्रद्धा पृच्छास्मान्यद्यदिच्छसि ॥४७
ये जीवा भुवि जीवन्ति सर्वेऽप्याहारमूलकाः ।
युष्माकमपि चाहार श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ॥४८
यदि ते श्रवणे श्रद्धा आहार श्रोतुमिच्छसि ।
अस्माक तु महाभाग शृणुष्व सुसमाहितः ॥४९

हे द्विज ! कर्मों की भावना से प्रेतत्व प्राप्त किया और नाम भी प्राप्त हुए हैं। यह लेखक मेघ के समान मुख वाला है और रोहक पर्वत के तुल्य मुख वाला है ॥४३॥ शीघ्रग का मुख पशु के समान है और सूचक सूची जैसा मुख वाला है। पर्युषित वलग्रीव है। इस तरह इन सबके रूप का विपर्यय है उसे तुम देख लो ॥४४॥ इस माया से परिपूर्ण रूप को धारण कर हम नरक के सागर से विद्रुत हुए हैं। हम सभी विकृत आकार वाले, लम्बे ओठों से युक्त और बिगडे हुए मुखों वाले हैं। हम बडे शरीर और दाँतों वाले हैं टेढ़े मुख से हम अपने ही कर्मों के कारण हैं। मैंने यह सब प्रेतत्व प्राप्त करने का कारण तुमको बतला दिया है ॥४५।४६॥ तुम्हारे दर्शन से हम सब ज्ञान वाले हो गये हैं। यदि तुमको श्रवण करने की इच्छा है और श्रद्धा है तो हमसे और कुछ

पूछिए ॥४७॥ ब्राह्मण ने कहा—इस मही मण्डल मे जो भी जीव हैं उन सभी का मूल आहार होता है क्योकि आहार के बिना कोई भी जीवित नहीं रह सकता है । अब मैं आप लोगो का भी क्या आहार है ?—यह तत्व पूर्वक श्रवण करना चाहता हूं ॥४८॥ प्रेतगण बोले—यदि तुम्हारी श्रवण करने की इच्छा है और हमारा आहार सुनना चाहते हो तो हे महाभाग ! हमारा आहार क्या होता है ?—इसे सावधान होकर सुनो ॥४६॥

कथय प्रेतराज त्वमाहारश्च पृथक् पृथक् ।
इत्युक्ता ब्राह्मणेनेदमूचु प्रेता पृथक् पृथक् ॥५०
शृणुष्वाहारमस्माक सर्वसत्वविगर्हितम् ।
यच्छ्रुत्वा गर्हसे ब्रह्मन् भूयो भूयोऽपि कुत्सितम् ॥५१
श्लेष्ममूत्रपुरीषैश्च रेचकं समलं सह ।
उच्छिष्टैश्चैव पक्वान्नं प्रेताना भोजन भवेत् ॥५२
गृहाणि त्यक्तशौचानि प्रकीर्णोपस्कराणि च ।
मलिनान्यपि भूतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५३
नास्ति शौच गृहे यस्य न सत्य न च सयम ।
पतितैर्दस्युभिर्भुं क्ते प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५४
बलिमन्त्रविहीनानि होमहीनानि यानि च ।
स्वाध्यायव्रतहीनानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५५
न लज्जा न च मर्य्यादा यत्र वै कुत्सितो गृही ।
सुराश्चैव न पूज्यन्ते प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५६
यत्र लोभो ह्यतिक्रोधा निद्रा शोको भय मद ।
आलस्य कलहो माया प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५७
भर्तृहीना च या नारी परवीर्य्यं निषेवते ।
वीर्य्यमूत्रसमायुक्त प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५८

ब्राह्मण ने कहा—हे प्रेतराज ! आप अपना पृथक् पृथक् आहार बतलाओ । ब्राह्मण के द्वारा इस तरह से कहे गये वे प्रेत अलग-अलग बोले ॥५०॥ प्रेत बोले—आप हमारे आहार का श्रवण करो जो सब प्रकार के सत्वों से

विशेष रूप से बुरा होता है। हे ब्रह्मन् ! उसे आप सुन करके बारम्बार उसकी निन्दा करेंगे कि वह ऐसा कुत्सित होता है ॥५१॥ श्लेष्मा (कफ), मूत्र, पुरीष (मल), रेचक (वमन किया हुआ पदार्थ) ये सब अन्न सहित तथा उच्छिष्ट (झूँठे) पक्वान्न इनसे प्रेतों का भोजन हुआ करता है ॥५२॥ जिनमें शौच छोड़ा गया हो और पवित्रता से रहित हो, जिनमें मलवा आदि उपस्कर बिखरे पड़े हैं, मलिन गृह इन भूत-प्रेतों के भोजन करने के स्थान हुआ करते हैं। ये प्रेतगण हम सभी वहाँ पर भोजन किया करते हैं ॥५३॥ जिस घर में अत्यन्त पवित्रता नहीं होती है, न सत्य है और न किसी प्रकार का कोई संयम ही होता है जो पतित और वस्तुओं के द्वारा युक्त होता है उसी स्थल या घर में प्रेतगण भोजन किया करते हैं ॥५४॥ जो घर बली मन्त्र और होम से रहित हुआ करते हैं तथा स्वाध्याय और व्रतों से हीन हुआ करते हैं प्रेत लोग वहीं पर भोजन करते हैं। ॥५५॥ किसी तरह की कोई लज्जा होती है और न कोई मर्यादा का ही पालन किया जाता है तथा जहाँ पर गृहस्थी पूर्णतया बुरता (बुराई) से युक्त रहा करता है एवं सुरगण का कभी भी कोई यजन-अर्चन नहीं किया जाता है वहीं पर प्रेतगण भोजन करते हैं ॥५६॥ जिस जगह अत्यन्त लोभ, अतीव क्रोध, निद्रा की प्रचुरता, शोक का बाहुल्य, भय की विशेषता और मद की अधिकता तथा आलस्य, कलह और माया का आधिक्य हुआ करता है उन्हीं घरों तथा स्थानों में प्रेत भोजन किया करते हैं ॥५७॥ स्वामी से रहित नारी पर पुरुष के साथ रमण कर उसी के वीर्य का सेवन किया करती है वहाँ वीर्य-मूत्र सम युक्त उसी पदार्थ को प्रेतगण खाया करते हैं ॥५८॥

लज्जा मे जायते तात वदतो भोजन स्वकम् ।
यत्स्त्रीरजो योनिगत तल्लिहामो द्विजोत्तम ॥५६
निर्विण्णा. प्रेतभावेन पृच्छामि त्वा दृढव्रतम् ।
यथा च न भवेत्प्रेतस्तन्मे वद तपोधन ।
नित्य मृत्युवंरं जन्तोः प्रेतत्व मा भवेत्क्वचित् ॥६०
उपयागरता नित्य कृच्छ्रचान्द्रायणे रत. ।
किमन्यै. सुकृतैः प्रेत न प्रेतो जायते नरः ॥६१

इष्ट्वा चैवाश्वमेधादीन् दानं दत्वा तु यो नरः ।
मठारामप्रपादीनां गोष्ठ्यादेश्चैव कारकः ॥६२
कुमारी ब्राह्मणांश्चैव विवाहयति शक्तितः ।
विद्यादोऽभयदश्चैव न प्रेतो जायते नरः ॥६३
पतितान्नेन भुक्तेन जठरस्थेन यो मृतः ।
पापमृत्युवशाद् यो वै स प्रेतो जायते नरः ॥६४
अयाज्ययाजकश्चैव याज्यानाञ्च विवर्जकः ।
कुत्सितैश्च रतो नित्यं स प्रेतो जायते नरः ॥६५
ब्रह्मस्वं देवद्रव्यञ्च गुरुद्रव्यं हरेत्तु यः ।
कन्यां ददाति शुल्केन स प्रेतो जायते नरः ॥६६
मातरं भगिनीं भार्यां स्नुषां दुहितरं ततः ।
अदृष्टदोषास्त्यजति स प्रेतो जायते नरः ॥६७

हे तात ! मुझे अपना भोजन बताते हुए भी बड़ी भारी लज्जा हो रही है। हे द्विजोत्तम ! जो रज स्त्री की योनिगत होता है हम उसी को चाटा करते हैं ॥५९॥ अब हम इस प्रेतभाव से बहुत ही विरक्त हो गये हैं और दृढ़ व्रत वाले आपसे पूछते हैं। हे तप के धन वाले महाभाग ! ऐसा उपाय बताइये जिससे मुझे यह प्रेतभाव न रहे, जन्तु की नित्य ही मृत्यु का हो जाना भी परम श्रेष्ठ है किन्तु यह प्रेतत्व कभी भी न हो—यह नित्य की मौत से भी बुरा है ॥ ॥६०॥ ब्राह्मण ने कहा—नित्य उपवासों में रति रखने वाला और कृच्छ्र चान्द्रायण आदि महाव्रतों का करने वाला पुरुष हे प्रेत ! कभी भी प्रेतत्व को प्राप्त नहीं हुआ करता है फिर अन्य सुकृतों की कोई आवश्यकता ही नहीं है ॥६१॥ जो पुरुष अश्वमेध आदि यज्ञों का यजन करके दान देता है तथा मठ-आराम और प्रपा (प्याऊ) आदि का एवं गोष्ठी आदि का निर्माण किया करता है। जो अपनी शक्ति के अनुसार कुमारी कन्याओं का तथा ब्राह्मणों का विवाह करा देता है। जो विद्या का दान करता है और जो किसी के भय की मुक्ति कर उसे अभय का दान किया करता है वह पुरुष कभी प्रेत की योनि प्राप्त नहीं किया करता है ॥६३॥ किसी भी पतित पुरुष के अन्न को खाकर उस अन्न को अपने

उदर में रखते हुए ही मृत हो जाता है। उस पापयुक्त मृत्यु के वशीभूत होता हुआ वह नर अवश्य ही प्रेत हो जाया करता है ॥६४॥ जिसका यजन नहीं कराने के योग्य हो उनका याजन तथा जो यजन के योग्य हो उनका वर्जन करने वाला एवं नित्य ही कुत्सित कर्मों में रति रखने वाला नर प्रेत हुआ करता है ॥६५॥ जो ब्राह्मण का धन, देवता का द्रव्य और गुरु की सम्पत्ति का हरण किया करता है और शुल्क लेकर अर्थात् धन प्राप्त करके जो कन्या का विक्रय किया करता है वह मनुष्य प्रेतत्व प्राप्त करता है ॥६६॥ अपनी माता, भगिनी, भार्या, स्नुषा (पुत्र वधू) तथा पुत्री को कोई दोष बिना ही देखे त्याग देता है वह मनुष्य भी प्रेत हो जाता है ॥६७॥

न्यासापहर्ता मित्रध्रुक्परदाररतः सदा।
विश्वासघाती कूटश्च स प्रेतो जायते नरः ॥६८
भ्रातृध्रुग्ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः।
कुलमार्गं परित्यज्य ह्यनृतेषु सदा रतः।
हर्त्ता हेम्नश्च भूमेश्च स प्रेतो जायते नरः ॥६९
एवं वदति विप्रे च आकाशे दुन्दुभिस्वनः।
पपात पुष्पवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता द्विजोपरि ॥७०
पश्च देवविमानानि प्रेतानामागतानि च।
स्वर्गं गता विमानैस्ते पुण्यं सम्भाष्य तं मुनिम् ॥७१
तस्य विप्रस्य सम्भाषात्पुण्यसङ्कीर्त्तनेन च।
प्रेताः पापविनिर्मुक्ताः परं पदमवाप्नुयुः ॥७२
इदमाख्यानकं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपर्णवत्।
मानुषाणां हितार्थाय पुनः पृच्छति पक्षिराट् ॥७३

न्यास (धरोहर) के अपहरण करने वाला अपने मित्रों से द्रोह करने वाला और सदा पराई स्त्रियों में रमण करने वाला, विश्वास का घात करने वाला और कूट पुरुष प्रेतत्व की प्राप्ति करता है ॥६८॥ भाई से द्रोह करने वाला, ब्राह्मण का हनन करने वाला, गौ का वध कर्त्ता, मदिरा का पान करने वाला, गुरु की शय्या पर गमन करने वाला और अपने कुल के परम्परागत मार्ग

का त्याग कर जो सर्वदा मिथ्या कर्म तथा मिथ्या भाषण में रति रखता है एवं भूमि और सुवर्ण का हरण करने वाला पुरुष है वह भी अवश्य ही प्रेत होता है ।।६६।। श्री भीष्म पितामह ने कहा—जिस समय इस तरह से उन पाँचों प्रेतों से वह ब्राह्मण कह रहा था उसी समय में आकाश में देवों की दुन्दुभि की ध्वनि हुई और देवों के द्वारा छोड़ी हुई पुष्पों की वृष्टि उस द्विज पर हुई थी ।।७०।। देवताओं के पाँच विमान उन पाँचों प्रेतों के लिये आ गये थे। उस महामुनि के साथ थोड़े समय तक यह जो परम सुन्दर सम्भाषण किया था इसी के महापुण्य से वे सब देखते-देखते स्वर्ग को चले गये थे। सद्भाषण और सत्पुरुष के सङ्ग का कैसा अद्भुत माहात्म्य हुआ करता है ।।७१।। उस विप्र के साथ सम्भाषण से और पुण्य कर्म के सङ्कीर्तन से वे प्रेत पापों से निर्मुक्त हो गये और परम पद को प्राप्त हो गये थे ।।७२।। इस आख्यान का श्रवण करके पक्षियों का राजा गरुड पीपल के पत्र की भाँति कम्पित हो गया और मनुष्यों के हित के लिये उसने फिर पूछा था। ७३।।

१३—मृत्यु के कारणों का वर्णन

नाकाले म्रियते कश्चिदिति वेदानुशासनम् ।
कस्मान्मृत्युमवाप्नोति राजा वा श्रोत्रियोऽपि वा ।
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वमनृतं तत्प्रदृश्यते ।।१
वेदेरुक्तं तु यद्वाक्यं शतञ्जीवति मानवः ।
तत्कालो न च दृश्येत कस्मादेव समादिश ।।२
साधु साधु महाप्राज्ञ यत्त्वं भक्तोऽसि मे दृढः ।
श्रूयतां मत वाक्यन्तु नानापापविनाशनम् ।।३
विधातृविहितो मृत्युः शीघ्रमादाय गच्छति ।
तं प्रवक्ष्यामि पक्षीन्द्र काश्यपेय महाद्युते ।।४
मनुष्यः शतजीवी च पुरा वेदेन भाषितम् ।
विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रञ्चापि विनश्यति ।।५
वेदानभ्यसते नैव कुलाचारं न सेवते ।
आलस्यात्कर्मणां त्यागं कुरुते पापमाचरन् ।।६

यत्र तत्र गृहेऽश्नाति परक्षेत्ररतो यदि ।
एतैरन्यैश्च बहुशो जायते ह्यायुषः क्षयः ॥७

गरुड़ देव ने कहा—हे भगवन् ! वेदों का यह तो अनुशासन है कि कभी कोई भी अकाल में नहीं मरा करता है फिर राजा अथवा श्रोत्रिय किस प्रकार से मृत्यु को प्राप्त होता है ? क्या ब्रह्मा ने पहिले जो कुछ भी कहा है वह मिथ्या दिखलाई देता है ? ॥१॥ वेदों ने जो यह वाक्य कहा है कि मानव सौ वर्ष तक जीवित रहता है यह बात अब इस कराल कलियुग के समय में नहीं दिखलाई दिया करती है। इस प्रकार से यह विपरीतता क्यों किस कारण से हो रही है ? कृपा कर इसे समझाइये ॥२॥ श्री भगवान् ने कहा—हे महान् पण्डित ! बहुत अच्छा प्रश्न किया है, यह ठीक है। तुम मेरे बड़े ही दृढ़ भक्त हो अतएव मेरे निम्न वाक्य का श्रवण करो जो कि अनेक प्रकार के पापों के नाश करने वाला है ॥३॥ विधाता के द्वारा निर्मित किया हुआ मृत्यु शीघ्र ही आकर चला जाता है। हे पक्षियों के स्वामिन् ! हे काश्यपेय ! हे महान् द्युति वाले ! मैं इसे अब बतलाता हूँ ॥४॥ मनुष्य वस्तुतः सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहने वाला है जो कि पहिले वेद भगवान् ने कहा है। बुरे कर्मों के प्रभाव से वही सौ वर्ष तक जीवित रहने वाला मनुष्य शीघ्र ही विनष्ट हो जाया करता है ॥५॥ यह मानव वेदों का अभ्यास नहीं किया करता है और अपने कुल में चले आने वाले आचारों का भी सेवन नहीं करता है। इसमें आलस्य इतना भर गया है कि उसके कारण से यह अपने कर्त्तव्य कर्मों का त्याग कर दिया करता है तथा पाप कर्मों का आचरण करता रहता है ॥६॥ जहाँ-तहाँ दिल में आया वहीं खा लिया करता है और खाने-पीने कुछ भी भले-बुरे का इसके दिल में विचार नहीं होता है। पराये क्षेत्र में अर्थात् दूसरे की नारी में रति करता है तो ऐसे ही कर्मों से तथा इसी भाँति के अन्य बुरे कर्मों से मनुष्य की आयु का क्षय हो जाया करता है ॥७॥

अश्रद्दधानमशुचिमजपं त्यक्तमङ्गलम् ।
तं यति सुरासक्तं ब्राह्मणं यमशासनम् ।८
अरक्षितारं राजानं नित्यं धर्मविवर्जितम् ।
क्रूरं व्यसनिनं मूर्खं वेदवादबहिष्कृतम् ॥९

प्रजापीडक सन्तप्तं राजानं यमशासनम् ।
प्रापयन्त्यपमृत्युं वै युद्धे चैव पराङ्मुखम् ॥१०
स्वकर्माणि परित्यज्य निषिद्धं वैश्य आचरेत् ।
परकर्मरतो नित्यं यमलोकं स गच्छति ॥११
शूद्रः करोति यत्किञ्चिद्द्विजसेवाविवर्जितम् ।
करोति कर्म यच्चान्यद्यमेनालोक्यते सदा ॥१२
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
यस्मिन्दिने न सेव्यन्ते वृथा स दिवसो नृणाम् ॥१३
अनित्यमध्रुवं देहमनाधारं रसोद्भवम् ।
अन्नपिण्डमये देहे गुणानेतान्वदाम्यहम् ॥१४

श्रद्धा न रखने वाले—अशुचि (अपवित्र), जाप न करने वाले, मङ्गलमय शुभ कर्मों को त्याग देने वाले, मदिरा पान में आसक्ति रखने वाले ब्राह्मण को यमराज के शासन में पहुँचाया करते हैं ॥८॥ जो राजा प्रजापालन की रक्षा न करने वाला होता है और नित्य ही धर्म से रहित रहा करता है—क्रूर व्यसनों में लिप्त, मूर्ख और वेद वाद से बहिष्कृत, प्रजा को प्रपीड़ित करने वाला सन्ताप देने वाले राजा को यमराज के दण्ड भोगने को प्राप्त करा देते हैं। जिसकी अपमृत्यु होती है तथा जो युद्ध में पराङ्मुख होता है उस राजा को यम के शासन में जाना पड़ता है ॥९।१०॥ जो वैश्य अपने शास्त्रोक्त कर्मों का त्याग करके निषिद्ध कर्मों का आचरण करने वाला होता है तथा सदा पापयुक्त कर्मों का करने वाला होता है वह वैश्य भी यमराज के लोक में जाया करता है ॥११॥ जो शूद्र द्विजगण की सेवा को त्याग कर जो कुछ भी दिल में आया कर्म किया करता है वह यमराज के यहाँ पहुँच कर उसके शासन का भोग भोगता है ॥१२॥ स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, देवों का अर्चन आदि जिस दिन में नहीं किये जाते हैं वह पूरा दिन मनुष्यों का व्यर्थ ही व्यतीत हुआ करता है। ये उपर्युक्त कर्म प्रत्येक दिन में अनिवार्य रूप से करने के योग्य होते हैं ॥१३॥ यह मानव का शरीर तो अनित्य है, अध्रुव है अर्थात् कब तक यह बना रहेगा, इसका कुछ भी निश्चय नहीं है। यह देह किसी भी आधार से युक्त

नहीं है। इस देह की उत्पत्ति रस से ही हुआ करती है और यह अन्न के एक पिण्ड से परिपूर्ण होता है। ऐसे इस देह में इन गुणों को मैं बताता हूँ ॥१४॥

यत्प्रातः संस्कृतं सायं नूनमन्नं विनश्यति ।
तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥१५
गतं ज्ञात्वा तु पक्षीन्द्र स्वकर्मबन्धनं वपुः ।
पापनिर्दहनं पुंभिः कार्य्यं भवति नाशनम् ॥१६
अनेकजन्मसम्भूतं पातकं त्रिविधं कृतम् ।
यदा हि मानुषावाप्तिस्तदा सर्वं पतत्यपि ॥१७
मनुष्योदरवासी च यदा भवति पापभाक् ।
अण्डजादिषु भूतेषु यत्र तत्र प्रमर्पति । १८
मानुषे जन्मनि कृते तत्र तत्र समाप्नुयात् ।
अवेक्ष्य गर्भवासाश्च कर्मजा गतयस्तथा ॥१९
आधयो व्याधयः क्लेशा जरारूपविपर्ययः ।
गर्भवासे तु यज्ज्ञानं जातं मासात्तु सप्तमात् ॥२०
तेन पश्यति सर्वं तु प्राकृतं यच्छुभाशुभम् ।
गर्भवासाद्विनिमुंक्तो ह्यज्ञानतिमिरावृतः ॥२१
न पश्यति खगश्रेष्ठ बलभावं समाश्रितः ।
यौवने वनितान्धश्च यः पश्यति स मुक्तिभाक् ॥२२

जो अन्न प्रातःकाल में संस्कार करके बनाया जाता है और रक्खा रहे तो वह पाक किया हुआ अन्न सायङ्काल तक निश्चय ही नष्ट हो जाया करता है। उसी अन्न के रस से इस शरीर की सपुष्टि होती है। जिसके कारण की ऐसी दशा है उसके द्वारा होने वाले कार्य स्वरूप शरीर में कैसे नित्यता हो सकती है ? ॥१५॥ हे पक्षीन्द्र ! अपने कर्मों के बन्धन से युक्त इस शरीर को तो गत समझ कर मनुष्यों को अपने कृत पापों का नाश तथा दहन अवश्य ही इस शरीर द्वारा करना चाहिए ॥१६॥ यही इस शरीर का मुख्य कार्य होना है। पहिले अनेक जन्मों में समुत्पन्न पातक तीन प्रकार के होते हैं। जब यह जन्तु मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है तभी वे सब पातक आकर इसके ऊपर गिरते

हैं ॥१७॥ मनुष्य के उदर में वास करने वाला जन्तु जब पापों का भागी होता है तब वह अण्डज आदि भूतों में जहाँ-तहाँ प्रसरण किया करता है ॥१८॥ मानुष जन्म करने पर वहाँ-वहाँ प्राप्त किया करता है। गर्भ के वासों को तथा कर्मों से जात गतियों को देखकर, आधि (मानसिक व्यथा) व्याधि (रोग), क्लेश और वृद्धावस्था में रूप का विपर्यय इन सबको भली भाँति अवेक्षण किया करता है। गर्भवास में जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह सातवें मास में ही हो जाया करता है। उस समय से फिर वह गर्भ का वासी सभी कुछ शुभ और अशुभ प्राकृत को देखा करता है। जब गर्भ के वास से निर्मुक्त होकर यहाँ जन्म कर लेता है तभी उसे अज्ञान का अन्धकार आवृत कर लेता है ॥२०।२१॥ हे खग-श्रेष्ठ ! फिर तो वह बालभाव में आश्रित होकर कुछ भी नहीं देखता है—यौवन में प्यारी पत्नी के प्रणय में अन्धा हो जाता है उसे कुछ भी अन्य उस समय नहीं सूझता है। जो कोई उस समय में उक्त बातों को देखता या समझता है वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करने वाला होता है ॥२२॥

१४—अशौच और प्रेतकृत्य वर्णन

आधानान्मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा
सधनो निर्धनश्चैव सुकुमार कुरूपवान् ॥१
अविद्वाश्चैव विद्वाश्च ब्राह्मणास्त्वितरो जन ।
तपोरतो योगशीला महाज्ञानी च यो नर ॥२
महादानरत श्रीमान्धर्मात्माऽतुलविक्रम ।
विना मनुष्यदेह तु सुखञ्च न तु विन्दति ॥३
प्राक्तनै कर्मपाकैस्तु सुख प्राप्नोति मानव ।
आधानात्पञ्चवर्षाणि स्वल्पपापैर्विपद्यते ॥४
पञ्चवर्षाधिको भूत्वा महापापैर्विपद्यते।
योनिं पूरयते यस्मान्मृतोऽप्यायाति याति च ॥५
व्रतदानप्रभावेण चिरञ्जीवति मानव ।
कृष्णस्य वचन श्रुत्वा गरुडो वाक्यमब्रवीत् ॥६

मृते बाल्ये कथं कुर्यात्पिण्डदानादिकाः क्रियाः ।
गर्भेषु च प्रपन्नानामाचूड़ाकरणाच्छिशो ॥७
कृते चूड़े व्रतादर्वाक् मृतस्य को विधिः स्मृतः ।
गरुड़स्य वचः श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥८

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—बालक हो—युवा हो या वृद्ध हो आधान से मृत्यु को प्राप्त हुआ करता है अर्थात् यह गर्भ में आता है और जन्म ग्रहण करता है तो इसकी मृत्यु भी अवश्य ही होती है। चाहे धन से पूर्ण सम्पन्न हो या धन से रहित निर्धन हो—भले ही पूरा सुकुमार हो अथवा कुरूप वाला हो—चाहे बिना पढा लिखा अविद्वान् हो किम्वा पूर्ण विद्या से परिपूर्ण महान् विद्वान् हो—भले ही ब्राह्मण जाति में समुत्पन्न होने वाला परम श्रेष्ठ हो या कोई हीन जाति में जन्म लेने वाला अन्य हो या जो भी कोई मनुष्य तपस्या में रत रहने वाला—योगाभ्यास के स्वभाव से समन्वित—महान् ज्ञान से युक्त होता है तथा महादान करने में रति रखता है वह श्रीमान्—धर्मात्मा और अतुल विक्रम सम्पन्न होता है। बिना इस मनुष्य देह के धारण किये कभी सुख की प्राप्ति नहीं हुआ करती है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ प्राक्तन अर्थात् पुराने पहिले जन्मों में किये हुए कर्मों के विपाक से यह मनुष्य सुख प्राप्त किया करता है। आधान अर्थात् गर्भ में आने से पाँच वर्ष तक तो छोटे २ पापों से यह विपन्न होता है ॥ ४ ॥ जब यह पाँच वर्ष से अधिक आयु वाला हो जाता है तो फिर महान् पापों से विपत्तियों का भोग किया करता है मृत होता है और फिर आ जाया करता है अर्थात् संसार से मर कर चला जाया करता है और फिर जन्म लेकर यहाँ आ जाता है इस तरह यह योनियों को पूर्ण करता रहता है ॥ ५ ॥ व्रतों और दानों के प्रभाव से ही यह मानव चिर काल तक जीवित रहा करता है। इस प्रकार के भगवान् श्री कृष्ण के वचनों का श्रवण कर फिर गरुड यह वाक्य बोले ॥ ६ ॥ गरुड ने कहा—हे भगवन् ! बाल्यावस्था में मृत्यु गत हो जाने पर उसके लिये पिण्ड दान आदि की क्रिया किस प्रकार से करनी चाहिए। गर्भों में आये हुए शिशु का जब तक चूड़ाकरण संस्कार न हो तब तक और चूड़ा के किये जाने के पश्चात् जो मृत हो जाता

है उसके लिये क्या विधि—विधान होता है ? गरुड के इस वचन का श्रव
कर भगवान् विष्णु ने कहा—॥७॥८॥

यदि गर्भो विपद्येत स्रवन्ते वापि योषितः ।
यावन्मासगतो गर्भस्तद्दिनानि च सूतकम् ॥६
तस्य किञ्चिन्न कर्त्तव्यमात्मन श्रेय इच्छता ।
ततो जाते विपन्ने तु ग्राचूडाद्भुवि निक्षिपेत् ॥१०
दुग्ध देय यथाशक्ति बालाना तुष्टिहेतवे ।
ग्राचूडात्पञ्चवर्पे तु देहदाहो यथाविधि ॥११
दुग्ध तस्य प्रदातव्य बालाना भोजन शुभम् ।
पञ्चवर्षस्य कर्माणि स्वजातिविहितानि च ॥१२
कुर्यात्तस्मिन्मृते सर्वमुदकुम्भादिपायसम् ।
बालव्यञ्च खगश्रेष्ठ ऋणसम्बन्धकस्तु स ॥१३
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्र्व जन्म मृतस्य च ।
स्वल्पायुर्निर्धना भूत्वा रतिभुक्तिविवर्जित ॥१४

श्री कृष्ण ने कहा—यदि स्त्री के गभ का स्राव हो जावे या गर्भ का पात हो जाता है तो जितने दिन या मास का गर्भ होता है उतने ही दिनो का सूतक अर्थात् मृत का शौच उसको हुआ करता है ॥ ६ ॥ उसके लिये अपने श्रेय की इच्छा से कुछ भी नहीं करना चाहिए । गभ के द्वार से बाहिर जन्म ग्रहण कर लेने पर मृत्यु गत होता है तो जब तक चूडा कर्म न हो तब तक तो उसको भूमि मे गाढ देना चाहिए ॥ १० ॥ उस मृतात्मा की तुष्टि के लिये यथा शक्ति बालकों को दूध पिलाना चाहिए । चूडा कर्म के सस्कार हो जाने के पश्चात् तो पाँच वर्ष मे उसका यथाविधि दाह सस्कार करना चाहिए ॥ ११ ॥ उसकी भी तृप्ति के लिये दुग्ध देवे तथा छोटे २ बालको को परम शुभ भोजन भी देवे । पाँच वर्ष के बालक के अपनी जाति मे विहित सभी कर्म करने चाहिए । उसके मृत हो जाने पर सभी जल का कुम्भ आदि पायस देना चाहिए । हे खग श्रेष्ठ ! वह ऋण सम्बन्धक होता है । अर्थात् कोई ऋण देने वाला ही होता है जो उसे लेने के लिये ही इस सम्बन्ध से समुत्पन्न होकर

।हीं से चल बसा करता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ जो जन्म ग्रहण किया करता है उसकी निश्चय ही मृत्यु होती है और जो मृत्यु गत होता है वह अवश्य ही पुन. जन्म ग्रहण किया करता है—ऐसा यह इस संसार में जन्तुओं के लिये एक परम ध्रुव नियम होता है। जो स्वल्प आयु वाला ही मर जाता है वह निर्धन होकर रति भोग से रहित रहा करता है ॥१४॥

पुनर्जन्म विशेज्जन्तुस्तस्माद्देय मृते शिशौ ।
कर्त्तव्य पक्षिशार्दूल पुनर्देहक्षयाय वै ॥१५

एव मे रोचतेऽदत्त्वा जायते निर्धने कुले ।
पुराणे गीयते गाथा सर्वथा प्रतिभाति मे ॥१६

मिष्टान्न भोजन देय दानशक्ति सुदुर्लभा ।
भोज्ये भोजनशक्तिस्तु रतिशक्तिर्वरस्त्रिया ॥१७

विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपस फलम् ।
दानाद्भोगमवाप्नोति सौख्य तीर्थस्य सेवनात् ॥
सुभाषणात्परे लोके विद्याश्च धर्मवित्तम ॥१८

अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो दरिद्रभावात्प्रकरोति पापम् ।
पापप्रभावान्नरक प्रयाति पुनर्दरिद्रो पुनरेव पापी ॥१६

वह जन्तु पुन जन्म में प्रवेश किया करता है इसलिये शिशु के मृत हो जाने पर हे पक्षिशार्दूल ! उसके पुनर्देह के क्षय के लिये करना चाहिए और धन देना चाहिए ॥ १५ ॥ मुझे यह प्रिय लगता है कि उसके लिये भी अवश्य ही करे। जो उसको एक छोटा शिशु समझ कर कुछ भी नहीं दिया करते हैं वह निर्धन कुल में जन्म लेता है। पुराण में यह गाथा गाई जाती है और मुझे सर्वथा ठीक प्रतीत होती है ॥ १६ ॥ भोजन में मिष्टान्न देना चाहिए। दान की शक्ति बहुत ही सुदुर्लभ होती है। भोजन के योग्य पदार्थ प्राप्त हों और उन्हें भोजन करने की शक्ति भी प्राप्त हो—रति करने की शक्ति विद्यमान् हो और सुन्दरी नारी भी प्राप्त हो—वैभव प्राप्त हो और वैभव के होने पर दान देने की शक्ति भी हृदय में विद्यमान हो—ये सब बातों का होना किसी

भी साधारण एव दस्तर तप का फल नहीं होता है अर्थात् इन सब वस्तुओं और शक्तियों का पाना महान् तपश्चर्या का ही पुण्य फल हुआ करता है। दान से ही भोगों की प्राप्ति होती है। सुन्दर भाषण से परलोक में विद्वान् और धर्म के ज्ञाता होते है ॥१७॥ ॥१८॥ दान के न देने से दरिद्रता होती है तो उस अवस्था मे यह जीव पाप कर्म किया करता है। पापो के प्रभाव से नरकों की प्राप्ति होती है। फिर यह दरिद्र होकर जन्म लेता है और पुनः पापभाग वश पाप कर्म किया करता है तथा पापी बन जाता है। तात्पर्य यह है कि दान करना महान् शुभ कर्म होता है ॥१९॥

१५–प्रेतकृत्य और पुनानिर्णय

अत.पर प्रवक्ष्यामि पुरुषस्य विनिर्णयम् ।
जीवन्वापि मृतो वापि पञ्चवर्षाधिको हि यः ॥१
पूर्णे तु पञ्चमे वर्षे पुमाश्चैव प्रतिष्ठितः ।
सर्वेन्द्रियाणि जानाति रूपारूपविनिर्णयम् ॥२
पूर्वकर्मविपाकेन प्राणिना वधबन्धनम् ।
विप्राद्यानन्त्यजान्सर्वान्मापस्पारयति ध्रुवम् ॥३
गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्ध देय शिशौ मृते ।
घटाश्च पायसं क्षीर दद्याद्बालविपत्तित. ॥४
एकादशाहे द्वादशाहे वृषोत्सर्गविधि विना ।
महादानविहीनन्तु कुमारे कृत्यमाचरेत् ॥५
कुमाराणाञ्च वालाना भोजनं वस्त्रवेष्टनम् ।
बाले वा तरुणे वृद्धे घटो भवति देहिनाम् ॥६
भूमौ निक्षेपणं बालमावर्षद्वयमेव च ।
ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो विधीयते ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—इसके आगे मैं पुरुष के विषय मे विशेष रूप से निर्णय करता हूँ जो पाँच वर्ष से अधिक बड़ा होता है वह जीवित हो या मृत हो उसका वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥ पाँचवें वर्ष के पूर्ण हो जाने

पर पुरुष प्रतिष्ठित हो जाया करता है। यह सभी इन्द्रियों को जानता है और उसे रूप तथा अरूप का भी विशेष निर्णय हो जाता है ॥ २ ॥ पूर्व जन्मों में किये हुए कर्मों के विपाक से ही प्राणियों का यह संसार का बन्धन हुआ करता है। विप्र से आदि लेकर अन्त्यज पर्यन्त सभी भाव को यह निश्चय पार कर देता है ॥ ३ ॥ गर्भ के नष्ट हो जाने पर तो कोई क्रिया के करने का विधान ही नहीं है। शिशु की अवस्था में मृत हो जाने पर दूध देना चाहिए। जब बालक का स्वरूप प्राप्त कर लेवे तो उसके निमित्त घट-पायस—क्षीर ये सभी देना चाहिए जिससे उसकी तुष्टि एवं तृप्ति होती है ॥ ४ ॥ एकादशाह में अर्थात् ग्यारहवें दिन में और द्वादशाह में वृषोत्सर्ग विधि के बिना महादान से विहीन कृत्य कुमार के लिये करना चाहिए ॥ ५ ॥ कुमारों और बालकों को भोजन तथा वेष्टन वस्त्र का दान करे। बाल अथवा तरुण तथा वृद्ध ये देह धारियों को घर होता है ॥ ६ ॥ दो वर्ष तक के बच्चे को तो भूमि में गड्ढा करके निक्षेपण कर देना चाहिए। हे खगश्रेष्ठ ! इससे बड़ी उम्र वालों के देह का दाह करने का विधान होता है ॥७॥

शिशुरादन्तजननाद्वाल. स्याद्यावदाशिखम् ।
कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात् ॥८

मृतो हि पञ्चमे वर्षे अव्रत. सव्रतोऽपि वा ।
पूर्वोक्तमेव कर्त्तव्यमोहते दशपिण्डजम् ॥६

स्वल्पकर्मप्रसङ्गाच्च स्वल्पाद्विषयबन्धनात् ।
स्वल्पे वपुषि वासाच्च क्रिया स्वल्पामपीच्छति ॥१०

यावच्च पञ्चवर्षे तु बालकस्य भवेन्मृतिः ।
यद्यदस्योपजीव्य स्यात्तत्तद्देयमिहेच्छति ॥११

ब्रह्मवीर्योद्भवा पुत्रा देवर्षीणाञ्च वल्लभाः ।
यमेन यमदूतैश्च मन्यन्ते निश्चितं खग ॥१२

बालो वृद्धो युवा वापि वयो भवति देहिनाम् ।
गुरु दु'ग समाप्नोति देही सर्वगतस्त्विह ॥१३

परित्यज्य तदात्मानं जीर्णांत्वचमिवोरगः ।
अगुष्ठमात्रपुरुषो वायुभूत. क्षुधार्दितः ॥१४
तस्माद्देयानि दानानि मृते तस्मिन्सुनिश्चितम् ।
जन्मत. पञ्च वर्षाणि भुङ्क्ते दत्तमसंस्कृतम् ॥१५

जब तक दांत नही निकलते हैं तब तक वह शिशु कहा जाता है। जब तक चूडा कर्म नही होता है वह बाल इस नाम से पुकारा जाया करता है। मौञ्जी बन्धन होने से समस्त शास्त्रो मे वह 'कुमार'—इस नाम से सम्बोधित किया जाया करता है ॥ ८ ॥ पाँचवें वर्ष मे मृत चाहे वह अव्रत हो या सव्रत हो पूर्व मे कहा हुआ ही कर्त्तव्य कर्म दश पिण्डज करना चाहिए ॥ ६ ॥ स्वल्प कर्म के प्रसङ्ग से और स्वल्प विषयो के बन्धन से स्वल्प उम्र में या शरीर मे वास करने से वह स्वल्प ही क्रिया भी चाहा करता है। अर्थात् छोटे के लिये बडी क्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती है ॥ १० ॥ जब तक बालक पाँच वर्ष मे रहता है और उसकी मृत्यु हो जाती है तो जो-जो भी उसके जीवन मे उप जीव्य पदार्थ हो वही-वही दान स्वरूप मे उसकी तुष्टि एव तृप्ति के लिये अवश्य ही देने चाहिए। मृतात्मा यही इच्छा भी करता है ॥११॥ ब्राह्मण के वीर्य से समुत्पन्न पुत्र और देवर्षियो के प्रिय जो होते हैं वे यमराज तथा यम के दूतो के द्वारा सत्कृत हुआ करते हैं। हे खग ! यह बिल्कुल निश्चय है ॥ १२ ॥ देह धारियो मे बालक हो—वृद्ध हो अथवा युवा हो ये तीन ही अवस्था हुआ करती हैं। यहां पर सर्वगत देही अर्थात् सभी मे रहने वाला आत्मा सुख और दुःख की प्राप्ति किया करता है ॥ १३ ॥ जब इसके परलोक गमन का समय उपस्थित होता है उस समय मे यह आत्मा इस अपने शरीर को इस तरह त्याग देता है जैसे कोई सर्प अपनी कैंचुली का परित्याग कर दिया करता है जबकि उसे जीर्ण समझ लेता है। फिर अगुष्ठ प्रमाण वाला पुरुष वायुभूत होकर क्षुधा से अत्यन्त पीडित हुआ करता है। इसीलिये उसकी तृप्ति के निमित्त उसके मृत हो जाने पर दानादि अवश्य ही देने चाहिए—यह सुनिश्चित् सिद्धान्त है। जन्म से पाँच वर्ष तक बिना संस्कार किया हुआ ही वह खाता है ॥१४॥१५॥

पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते ।
वृषोत्सर्गादिकं कर्म सपिण्डीकरणं विना ॥१६
अहन्येकादशे पुत्रः कुर्य्याच्छ्राद्धानि षोडश ।
उदकुम्भप्रदानन्तु अन्यदानानि यानि च ॥१७
भोजनानि द्विजे दद्यान्महादानानि शक्तितः ।
दीपदानानि यत्किञ्चित्पञ्चवर्षाधिके सदा ॥१८
कर्त्तव्यं तु खगश्रेष्ठ क्रियादि प्रेततृप्तये ।
यदा न क्रियते सर्वं पिशाचत्वं स गच्छति ॥१९
एवं कृते तु स प्रेतस्ततो याति परां गतिम् ।
पुनश्चिरायुर्भूत्वा च कुले तस्य वसेद् ध्रुवम् ॥२०
सर्वसौख्यप्रदः पुत्रः पित्रोः प्रीतिविवर्द्धनः ।
आत्मा वै जायते पुत्र इति वेदेषु निश्चितम् ॥२१

पाँच वर्षकी अवधि वाले बालक की यदि मृत्यु हो जाती है तो सपिण्डीकरण कर्मके बिना वृषोत्सर्ग आदि कर्मकरे ॥१६। ग्यारहवें दिनमें पुत्रको षोडश श्राद्ध करने चाहिए। उदकके कुम्भका प्रदान तथा अन्य जोभी दान हों वे देवे ॥१७। ब्राह्मणोंको भोजन करावे और महादान जोभी हो अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें करे। दीप दान करे और सदा पाँच वर्ष से अधिक उम्र वाले के लिये जो कुछ भी हो वह सब सभी करे ॥१८॥ हे खगश्रेष्ठ ! प्रेत की पूर्णतया तृप्ति के लिये क्रिया आदि सब करनी चाहिए। जब ये क्रिया और देय दान आदि सभी नहीं किया जाता है तो वह प्रेत फिर पिशाच की योनि को प्राप्त कर लिया करता है। ॥ १९ ॥ ऐसा सब कुछ कर देने पर तो वह प्रेत फिर परम गति को प्राप्त हो जाता है और फिर चिर आयु होकर उसके कुल में निश्चय ही निवास किया करता है ॥ २० ॥ पितृगण की प्रीति का बढ़ाने वाला पुत्र सब प्रकार के सुखों वाला होता है। वेदों में यह निश्चय रूप से कहा गया है कि यही आत्मा पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ करता है ॥२१॥

आकाशमेकं हि यथा चन्द्रादित्यौ तथैव च ।
घटादिषु पृथग्भूतं दृष्ट्वा ह्येकं च तत्समम् ॥२२

आत्मा तथैव सर्वेषु पुत्रेषु विचरेत्सदा ।
या यस्य प्रकृतिः पूर्वं शुक्रशोणितसङ्गमे ॥२३
तस्य तद्भावयोगेन पुत्रास्तत्कर्मकारिणः ।
पितृरूपं समादाय कस्यचिज्जायते सुतः ॥२४
पितृतः कामरूपश्च गुणज्ञो दानतत्परः ।
ईदृशः कोऽपि लोकेऽस्मिन्न भूतो न भविष्यति ॥२५
अन्धादन्धो न भवति मूकान्मूको न जायते ।
बधिराद्वधिरो नैव मूर्खान्मूर्खो न जायते ॥२६
औरसक्षेत्रजाद्याश्च पुत्रा दशविधाः स्मृताः ।
सगृहीतसुतो यश्च दासीपुत्रश्च तेन किम् ॥२७
का का गतिमवाप्नोति जातैर्मृत्युवशङ्गतैः ।
भवन्ति दुहितरो यस्य दौहित्रो न भवेत्सुतः ॥
श्राद्धं तस्य तु कः कुर्याद्धिःपिता केन तद्भवेत् ॥२८

जिस तरह आकाश एक है और जैसे चन्द्र तथा आदित्य होते हैं। घटादि में सभी पृथक् दिखलाई दिया करते हैं किन्तु रूप में वे सभी समान ही होते हैं ॥ २२ ॥ उसी तरह यह आत्मा सदा समस्त पुत्रों में विचरण किया करता है। रजो वीर्य का जब गर्भाधान के समय में सगम होता है उस समय में जिसकी जो प्रकृति होती है उसके उसी भाव के योग से पुत्र उस कर्म के करने वाले होते हैं। किसी का पुत्र पितृरूप को लेकर समुत्पन्न होता है ॥२३॥ ॥२४॥ पिता से कामरूप गुणों का ज्ञाता और दान में परायण होता है। इस प्रकार का लोक में कोई भी न हुआ और न होगा ही ॥ २५ ॥ किसी अन्धे पिता से कभी कोई अन्धा तथा मूक पिता से मूक पुत्र नहीं होता है। बहरे से बहरा और मूर्ख पिता से मूर्ख पुत्र भी कभी उत्पन्न नहीं हुआ करता है ॥२६॥ गरुड ने कहा—हे भगवन्! औरस और क्षेत्रज आदि दश प्रकार के पुत्र कहे गये हैं। और जो सगृहीत सुत होता है तथा दासी पुत्र होता है उसमें क्या होता है? ॥ २७ ॥ इन सबके उत्पन्न होने से और मृत्युगत हो जाने से कौन-कौन सी गति को प्राप्त होता है? जिस के लड़कियाँ ही होती हैं। उस दुहिता

का पुत्र दौहित्र (धेवता) तो पुत्र नहीं होता है। उसका श्राद्ध किसको करना चाहिए? उस केवल पुत्रियों वाले श्राद्ध की क्या विधि होती है? ॥२८॥

मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुच्यते पैतृकादृणात् ।
अन्ये क्षेत्रादय. पुत्रा मुक्तिमात्रप्रदायकाः ॥२६
कुर्वीत पार्वणं श्राद्धमौरसो विधिवत्सुतः ।
कुर्वन्त्यन्ये तथा श्राद्धमेकोद्दिष्टं सुता नव ॥३०
पौत्रस्य दर्शनाज्जन्तुर्मुच्यते स ऋणत्रयात् ।
लोकान्ते च दिवं प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रके. ॥३१
ब्रह्मपुत्र उन्नयति सगृहीतस्त्वधो नयेत् ।
श्राद्धं सांवत्सरं कुर्वञ्जायते नरकाय वै ॥३२
सर्वदानानि देयानि ह्यन्नदानानि वै खग ।
सगृहीतसुतेनैव ह्येकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥३३

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—पुत्र के मुख का दर्शन करने ही से जो पैतृक एक ऋण रहता है उससे मनुष्य छुटकारा पा जाया करता है। अन्य जो क्षेत्रादि पुत्र होते हैं वे तो केवल मुक्ति मात्र के प्रदायक हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ जो औरस पुत्र होता है अर्थात् अपनी सवर्णा अग्नि परिणीता पत्नी से उत्पन्न होता है वह ला पुत्र है उसे पार्वणश्राद्ध विधि पूर्वक करना चाहिए। अन्य जो नौ प्रकार के पुत्र हैं उन्हें एकोद्दिष्ट श्राद्ध ही करना चाहिए ॥३०॥ जब मनुष्य पौत्र का दर्शन कर लेता है तो वह फिर देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण इन तीनों तरह के ऋणों से मुक्त हो जाया करता है। पुत्र-पौत्र और प्रपौत्र के प्राप्त होने पर वह इस लोक के अन्त में दिवलोक को प्राप्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ ब्रह्म पुत्र उन्नयन किया करता है और जो सगृहीत पुत्र होता है वह अधोभाग में ले जाया करता है। सांवत्सर श्राद्ध करता हुआ वह नरक में जाता है ॥ ३२ ॥ हे खग! सगृहीत पुत्र के द्वारा अन्य सम्पूर्ण दान तथा अन्न दान देने चाहिए किन्तु एकोद्दिष्ट और पार्वण श्राद्ध नहीं करना चाहिए ॥३३॥

प्रत्यब्दं पितृमातृभ्यां श्राद्धं कृत्वा न लिप्यते ।
एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते यदि ॥३४

तदात्मानं पितृंश्चैव स नयेद्यमशासनम् ।
सगृहीताश्च ये केचिद्दासीपुत्रादयस्तथा ॥३५
तीर्थे गत्वा तु यः श्राद्धमामान्नञ्च ददेद्द्विजे ।
सगृहीतसुतो भूत्वा पाकञ्चैव प्रयच्छति ॥३६
वृथा श्राद्धं विजानीयाच्छूद्रान्नेन यथा द्विजः ।
तेन दत्तं न गृह्णन्ति पितामहमुखाश्च ये ॥३७
एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ हीनजातिसुतान्त्यजेत् ।
यस्तु प्रव्रजिताज्जातो ब्राह्मण्या शूद्रतश्च यः ॥३८
द्वाविमौ विद्धि चाण्डालौ स्वगोत्राद्यस्तु जायते ।
स्वजातिविहितान्पुत्रान्समुत्पाद्य खगेश्वर ॥३९
तैः सुवृत्तैः सुखं प्राप्तो दुर्वृत्तैर्नरकं व्रजेत् ।
हीनजातिसमुत्पन्नैः सुवृत्तैः सुखमेधते ॥४०
कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसङ्घैरमरचमरमाला-
वीज्यमानोऽप्सरोभिः ।
पितृशतमपि बन्धून् पुत्रपौत्रप्रपौत्रानपि नरकनिमग्ना-
नुद्धरेदेक एव ॥४१

प्रति वर्ष माता-पिता के लिये श्राद्ध करने वाला पुरुष कभी लिप्त नहीं होता है । यदि एकोद्दिष्ट श्राद्ध का परित्याग करके पार्वण श्राद्ध करता है तो अपने आपको और पितृगण को भी यमराज के शासन में ले जाता है । और जो संगृहीत सुत हैं तथा कुछ दासी पुत्र आदि है उन्हें तीर्थ में जाकर जो श्राद्ध करे उसमें कच्चा (अपरिपक्व) अन्न द्विज को देना चाहिए । सगृहीत सुत होकर पाक का भी दान देता है ॥ ३६ ॥ श्राद्ध को वृथा ही समझना चाहिए जिस प्रकार से शूद्रान्न से द्विज होता है उसी भाँति उसके द्वारा दिये हुए को पितामह मुख जो होते हैं ग्रहण नहीं किया करते हैं ॥ ३७ ॥ हे खग ! इस तरह से जान कर जो हीन जाति के पुत्र होते हैं उनका त्याग कर देना चाहिए । जो प्रव्रजित से (सन्यासी से) ब्राह्मण में उत्पन्न हुआ या शूद्र से समुत्पन्न हुआ है ये दोनों चाण्डाल समझने चाहिए और जो अपने गोत्र वाले से

उत्पन्न होता है वह भी चाण्डाल होता है। हे खगेश्वर ! अपनी जाति से विदित पुत्रो को समुत्पन्न करके उन सुन्दर आचरण वालो से ही मनुष्य सुख को प्राप्त किया करता है। जो दुराचारी होते हैं उनसे नरक की प्राप्ति हुआ करती है। जो हीन जाति से भी समुत्पन्न हो और चरित्र एवं आचार से अच्छे होते हैं उनसे भी सुख की वृद्धि होती है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कलियुग के कलुष (पाप) से विमुक्त होता हुआ सिद्धो के समुदायो के द्वारा पूजित होकर तथा अप्सराओं के द्वारा देवो के चमरो से वीज्यमान होकर अर्थात् चमर डुराये जाने वाला सैकड़ो की सख्या में पितृ गण तथा बन्धु वर्ग और अपने पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्रों को भी ऐसा यह एक ही पुरुष नरको मे निमग्न रहने वालो का उद्धार कर दिया करता है ॥४१॥

१६ — सपिण्डीकरण तथा श्राद्ध

सत्य ब्रूहि सुरश्रेष्ठ कृपा कृत्वा ममोपरि ।
मृतानाञ्च जन्तूना कदा कुर्यात्सपिंडनम् ॥१
सपिंडत्वे कुतो यान्ति ह्यसपिंडे कुतो गतिः ।
केन चैव सपिंडत्व स्त्रीपु सा वक्तुमर्हसि ॥२
पतिपत्नी सपिण्डत्व प्राप्नुतः कथमुत्तमम् ।
जीवद्भर्त्तरि नारीणा सपिण्डीकरण कृत. ॥३
भर्त्तलोके कथ याति स्वर्गलोके सुरेश्वर ।
अग्न्यारोहे कथ श्राद्ध वृषोत्सर्गन्तु तद्दिने ॥४
घटदान कथ कार्यं सपिण्डीकरणे कृते ।
कथयस्व प्रसादेन हिताय जगता प्रभो ॥५
सत्य हि कथयिष्यामि सपिंडीकरण यथा ।
वर्षं यावत्खगश्रेष्ठ मार्गे गच्छति मानव ॥६
तत पितृगणं सार्द्ध पितृलोके स गच्छति ।
तस्मात्पुत्रै कर्त्तव्य सपिंडीकरण पितु ॥७

गरुड ने कहा—हे सुरो में परम श्रेष्ठ ! आप मेरे ऊपर कृपा करके यह सत्य २ बतलाइये कि जो जन्तु मृत हो जाया करते हैं उनकी सपिण्डन क्रिया

किस समय में करनी चाहिए ? ॥ १ ॥ सपिण्डत्व होने पर वे कहाँ जाया करते हैं और सपिण्डत्व न होने पर उनकी कैसे गति होती है ? स्त्री और पुरुषों में किसके द्वारा सपिण्डत्व होता है—यह सब बतलाने के योग्य होते हैं ॥ २ ॥ पति और पत्नी किस तरह से उत्तम सपिण्डत्व को प्राप्त होते हैं। भर्त्ता के जीवित रहने पर नारियों का सपिण्डत्व कैसे होता है ? ॥ ३ ॥ हे सुरेश्वर ! यह नारी स्वर्ग लोक में अपने स्वामी के निकट भर्तृलोक में किस प्रकार से जाया करती है ? अग्नि में आरोहण करने पर श्राद्ध कैसे होता है और उस दिन में वृषोत्सर्ग किस तरह से हुआ करता है ॥ ४ ॥ सपिण्डी करण करने पर घट का दान कैसे किया जाता है ? हे प्रभो ! जगत् के लोगों के हित के लिये आप प्रसन्न होकर यह सब वर्णन करिये ॥ ५ ॥ श्री भगवान् ने कहा—मैं सर्वथा सत्य २ बतलाता हूँ कि जिस तरह से सपिंडीकरण कर्म किया जाता है। हे खगश्रेष्ठ ! एक वर्ष पर्यन्त यह मानव मृत्यु गत होने के पश्चात् उस महान् विशाल मार्ग की यात्रा करता रहता है ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर फिर वह पितृगण के साथ पितृ लोक में जाया करता है। इससे पुत्रों के द्वारा पिता का सपिंडी करण कर्म करना चाहिए ॥७॥

संवत्सरेण तु सम्पूर्णे कुर्य्यात्पिण्डप्रवेशनम् ।
पिंडप्रवेशविधिना तस्य नित्य मृताह्निकम् ॥८

निश्चित पक्षिशार्दूल वर्षान्ते पिण्डमेलनम् ।
सह पिण्डे कृते प्रेतस्तो याति पराङ्गतिम् ॥९

तन्नाम सपरित्यज्य तत पितृगणो भवेत् ।
त्रिपक्षे वाथ षण्मासे मेलयेच्च पितामहै ॥१०

ज्ञात्वा वृद्धिविवाहादि स्वगोत्रविहितानि च ।
विवाह नैव कुर्वीत मृते च गृहमेधिनि ॥
भिक्षुर्भिक्षा न गृह्णाति यावन्न कुर्य्यात्सपिण्डनम् ॥११

स्वगोत्रेऽप्यशुचिस्तावद्यावत्पिण्ड न मेलयेत् ।
मेलनात्प्रेतशब्दश्च निवर्त्तेत खगेश्वर ॥१२

आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् ।
अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते ॥१३
निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे सपिंडयेत् ।
द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा ॥१४

एक सम्वत्सर के सम्पूर्ण हो जाने पर पिंड प्रवेश न करना चाहिए। पिंड प्रवेश की विधि से उसका नित्य मृताह्निक होता है ॥८॥ हे पक्षिशार्दूल! वर्ष के अन्त में पिंडों का मेलन विधिवत् रूप से होता है। पिंडों के साथ कर देने पर फिर वह प्रेत परम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥ ९ ॥ फिर वह अपना 'प्रेत'—इस नाम का परित्याग करके पितृ गण हो जाया करते हैं। तीन पक्ष में अथवा छै मास में पितामहों के साथ उसका सपिंडी करण कर्म करके मेलन अवश्य ही करा देना चाहिए ॥ १० ॥ अपने गोत्र में वृद्धि और विवाह आदि को जानकर जो कि स्वगोत्र में विदित हो तो गृहमेधी के मृत हो जाने पर विवाह नहीं करना चाहिए। जब तक सपिंडी करण क्रिया नहीं होती है और मृत जन्तु प्रेत रूप में विद्यमान रहता है किसी भिक्षु को भी उस घर से भिक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिए ॥ ११ ॥ अपने गोत्र में तब तक अशुचिता रहा करती है जब तक पिंडों का मेलन नहीं होता है अर्थात् सपिंडी करण क्रिया सम्पन्न नहीं हुआ करती है। हे खगेश्वर! पिंडों के मेलन हो जाने में प्रेत शब्द की निवृत्ति हो जाया करती है ॥ १२ ॥ कुलों के धर्मों की अनन्तता होने से अर्थात् अत्यधिक संख्या वाले कुलों में धर्म हुआ करते हैं और पुरुषों की आयु की क्षीणता होने के कारण से तथा इस शरीर की कोई भी स्थिरता के न होने से सपिंडी करण के कर्म को करने के लिये द्वादशाह अर्थात् बारहवाँ दिन ही परम प्रशस्त होता है ॥ १३ ॥ चाहे मृतात्मा निरग्निक हो अथवा साग्निक हो बारहवें दिन में उसका सपिंडी करण कर देना चाहिए। ये सभी काल ठीक हैं—द्वादशवें दिन में—तीन पक्ष में—छै मास में अथवा सम्वत्सर के अन्त में पिंडों का मेलन कर देवे जिससे मृत जीव की प्रेत संज्ञा मिटकर पितृ संज्ञा प्राप्त हो जावे ॥१४॥

सभी उस एक अपने के पुत्र से ही पुत्र वाले होते हैं—ऐसा मनु ने कहा है। ॥ २३ ॥ यदि सभी भाई ऐसे हों कि किसी के भी कोई पुत्र न हो तो फिर मृत स्वामी को पत्नी के द्वारा ही सपिंडी करण कर्म करना चाहिए अथवा किसी ऋत्विज के द्वारा तथा पुरोहित के द्वारा उसे पूर्ण करा देना चाहिए ॥ २४ ॥ जिनका चूड़ा करण संस्कार हो गया हो उस पुत्र के द्वारा भी पितृ श्राद्ध करा देवे। वह केवल स्वधाकार का उच्चारण करे और अनाधिकारी उस समय तक होने से वेद के अक्षरों का उच्चारण नहीं करे। स्त्री का सपिंडी करण स्वामी आदि तीनों के द्वारा सम्पन्न होना चाहिए ॥ २५ ॥ पितृ की तरह भाई के पुत्र के द्वारा तथा छोटे सहोदर के द्वारा सम्वत्सर से अर्वाक् या इसके ऊर्ध्व में अथवा सम्वत्सर के पूर्ण हो जाने पर सपिंडी करण करे ॥ २६ ॥ जिन प्रेतों का सपिंडी करण हो गया है फिर उनके लिये कोई पृथक् क्रिया नहीं होती है। हे खग ! सपिंडन किये जाने पर फिर उनका पृथकत्व विगलित हो जाता है। अर्थात् पिंडों के मिल जाने पर उनकी पृथकता ही नहीं रहती है अतः अलग से कुछ करना भी अनावश्यक होता है ॥ २७ ॥ जो कोई फिर उनका पृथक् पिंड किया करता है वह पितृ घातक हो जाता है। यदि फिर कोई पृथक् पिंड आदि करता है तो उसे पुन. सपिंडना करनी चाहिए ॥२८॥

सपिंडीकरणं कृत्वा ह्युकोद्दिष्टं करोति यः ।
आत्मानञ्च तथा प्रेत स नयेद्यमशासनम् ॥२९
वर्षं यावत्क्रियाः सर्वा. प्रेतत्वविनिवृत्तये ।
ताः सर्वाश्चकृतः कुर्यान्नामगोत्रेण धीमता ॥३०
घटाद्यं भोजनं नित्य दीपदानानि यानि च ।
सपिंडीकरणे वृत्ते एकस्यैव तु दापयेत् ॥३१
अन्नं पानीयसहितं सख्या कृत्वाब्दिकस्य च ।
दातव्य ब्राह्मणे पक्षिन्घटादेर्निष्क्रय तथा ॥३२
पिंडान्ते तस्य सकल्पो वर्षाद् वृत्ति· स्वशक्तितः ।
दिव्यदेहो विमानस्थः सुतृप्तो धर्मशासने ॥३३
जीवमाने च पितरि न हि पुत्रे सपिण्डता ।
स्त्रीणां सपिण्डन नास्ति भर्तृमातरि जीवति ॥३४

मृता माता पिता तिष्ठेज्जीवेदपि पितामही ।
सपिण्डन तत कुर्य्यात्प्रपितामह्या सहैव च ॥३५

सपिण्डीकरण कर्म करने के पश्चात् यदि कोई एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया करता है वह अपने आपको और प्रेत को दोनों को यम के शासन का अधिकारी बना दिया करता है ॥ २६ ॥ एक वर्ष पर्यन्त प्रेतत्व की निवृत्ति के लिये समस्त क्रियाऐं हुआ करती हैं। वे सम्पूर्ण क्रियाएँ धीमान् पुरुष के द्वारा नाम-गोत्र के द्वारा एक बार ही कर देनी चाहिए ॥ ३० ॥ घटादि का दान—भोजन—नित्य दीप दान और जो भी अन्य दान आदि हैं वे सभी सपिण्डीकरण के पूर्ण हो जाने पर एक ही जगह करने चाहिए क्योंकि फिर पृथक्त्व तो रहता ही नहीं है ॥ ३१ ॥ वर्ष की संख्या करके ब्राह्मण को पानी के साथ अन्न देना चाहिए तथा हे पक्षिन्! घटादि का निष्क्रय देना चाहिए ॥ ३२ ॥ पिण्ड के अन्त में उसका सङ्कल्प करे और वर्ष में अपनी शक्ति के अनुसार वृत्ति करे। इससे वह जन्तु दिव्य देह धारण कर विमान में स्थित होकर धर्म शासन में भली-भाँति तृप्त होता है ॥ ३३ ॥ पिता के जीवित रहते हुए पुत्र में सपिण्डना नहीं होती है। अपने स्वामी की माता के जीवित रहते हुए स्त्रियों की सपिण्डता नहीं हुआ करती है ॥ ३४ ॥ माता की तो मृत्यु हो जावे और पिता स्थित रहे तथा पिता मही भी जीवित होवें तो ऐसी दशा में प्रपिता मही के साथ ही सपिंडी कर देना चाहिए ॥३५॥

सत्य सत्य पुन सत्य श्रूयता वचन मम ।
न पिण्डो मेलितो येषा मृताना तु नृणा भुवि ॥३६

उपतिष्ठेन्न वै तेषा पुत्रैर्दत्तमनेकधा ।
हन्तकारस्तदुद्दे शे श्राद्ध नैव जलाञ्जलि ॥३७

हुताश या समारूढा चतुर्थेऽह्नि पतिव्रता ।
तस्या भर्तृ दिने कार्य्यं वृषोत्सर्गादिसूतकम् ॥३८

पुन्निका पतिगोत्रा स्यादधस्तात्पुनर्जन्मत ।
पुत्रानुत्पाद्य पश्चात्तु सापि गोत्र व्रजेत्पितु ॥३९

पतिपत्न्योः सदैकत्वं हुताशं याधिरोहति ।
पुत्रेणैव पृथक्श्राद्धं क्षयाहे तस्य वासरे ॥४०
अपुत्रौ चेन्मृतौ स्याता एकचित्या समेऽहनि ।
पृथक्श्राद्धं न कुर्वीत सपिण्डं पतिना सह ॥४१
पृथक्पिण्डे तु सयोज्य दम्पती पतिना सह ।
स लिप्यति महादोषैरिति सत्य वचो मम ॥४२

यह मेरा वचन पूर्णतया सर्वथा सत्य है—इसका तुम श्रवण करो, इस भूमण्डल मे मरे हुए जिन पुरुषो का पिण्ड मेलित नही किया जाता है अर्थात् सपिण्डता नही की जाती है उनके पुत्रो के द्वारा अनेक बार भी दिया हुआ उनको कुछ भी नही पहुँचता या मिलता है। उसके उद्देश्य मे हन्तकार है श्रद्धा और जलाञ्जलि नही होते है ॥३६।३७॥ जो पतिव्रता चौथे दिन में अग्नि में समारूढ हो जावे उसका उसके स्वामी के दिन में ही वृषोत्सर्ग आदि सूतक करना चाहिए ॥३८॥ जो पुत्री होती है वह पाणिग्रहण के पश्चात् अपने पति के गोत्र वाली हो जाया करती है। जो पति का गोत्र होता है वही उसका भी हो जाता है। पुत्र जन्म के पीछे पुत्रों को समुत्पन्न करके वह भी पीछे से पिता के गोत्र में चली जाया करती है ॥३९॥ पति और पत्नी जब एक ही अग्नि मे अर्थात् चिता मे अधिरोहण करते हैं तब पुत्र के द्वारा ही क्षय होने के दिन में पृथक् श्राद्ध करना चाहिए ॥४०॥ यदि पति-पत्नी दोनो बिना पुत्र वाले ही मृत हो जावें और एक ही चिता मे सम दिन मे ही दाह किया जावे तो उसका पृथक् श्राद्ध नही करे क्योकि पति के साथ ही सपिण्डना हो जाती है ॥४१॥ दम्पती हो और पति के साथ पृथक् पिण्डो का ऐसी दशा मे सयोजन करे तो वह करने वाला पुरुष महान् दोषो से लिप्त हो जाया करता है—यह मेरा वचन बिल्कुल सत्य है ॥४२॥

एकचित्या समारूढौ म्रियेते दम्पती यदि ।
एकपाक प्रकुर्वीत पिण्डान्दद्यात्पृथक्पृथक् ॥४३
वृषोत्सर्गं नवश्राद्धं पृथक्श्राद्धानि षोडश ।
घटादिपददानानि महादानानि यानि च ।
वर्षं यावत्पृथक्कुर्यात्प्रेतस्तृप्ति व्रजेच्चिरम् ॥४४

एकगोत्रमृतानाञ्च स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ।
स्थण्डिलञ्चैकत. कुर्य्याद्धोमं कुर्य्यात्पृथक्पृथक् ॥४५
एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं पृथक्पिण्डाश्च भोजनम् ।
पाकैक्येन पतिस्त्रीणां अन्येषाञ्च विगर्हितम् ॥४६
एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुते बहु ।
विकिरं त्वेकत. कुर्य्यात्पिण्डान्दद्याद्बहून्यपि ।
तीर्थे वाऽपरपक्षे वा चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा ॥४७
नारी भर्त्तारमासाद्य कुणपं दहते यदि ।
अग्निर्दहति गात्राणि ह्यात्मानं नैव पीड़येत् ॥४८
दह्यते धम्यमानानां धातूनां हि यथा मलम् ।
तथा नारी दहेद्देहं हुताशे ह्यमृतोपमे ॥४९

एक ही चिता में समारूढ होकर यदि दम्पती मरते हैं तो एक पाक करे और दोनों के लिये पृथक्-पृथक् पिण्डों को देवे ।४३॥ वृषोत्सर्ग—नवश्राद्ध और षोडश श्राद्ध-घटादि पदों का दान एवं जो भी अन्य महादान आदि होवें वे सब पृथक् पृथक् ही करे । जब तक पूरा वर्ष समाप्त हो तब अलग-अलग ही करे । इससे प्रेत को बहुत समय पर्य्यन्त तृप्ति हुआ करती है ॥४४॥ जो एक ही गोत्र के हो और मर जावें चाहे वे पुरुष हो या स्त्री होवें तो स्थण्डिल तो एक बनावे किन्तु उनके लिये होम पृथक् पृथक् करना चाहिये ॥४५॥ ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध किया जाता है उनमें अलग पिण्ड और भोजन देवे । पति और पत्नी के लिये तो एक ही पाक किया जा सकता है किन्तु इनके अतिरिक्त कोई हो तो उनका एक ही जगह पर पाक करना भी निषिद्ध एवं दूषित हुआ करता है ॥४६॥ एक ही स्थान पर एक ही पाक करके जो बहुत से श्राद्ध करता है वहां पर विकिर तो एक ही करे और पिण्ड बहुत से देवे । ऐसा तीर्थ में अथवा अपर पक्ष में तथा चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में करना चाहिये ॥४७॥ नारी अपने स्वामी को पाकर यदि उसके कुणप (मृत देह) का दाह करे तो अग्नि शरीर के अङ्गों का दाह किया करती है उसकी आत्मा को कुछ भी पीड़ा नहीं करती है । ॥४८॥ जिस तरह से धमन की जाने वाली धातुओं का मल ही दग्ध हुआ

करता है उसी तरह से अमृत के समान अग्नि में नारी स्वामी के देह का ही दाह किया करती है ॥४६॥

दिव्यादौ दिव्यदेहस्तु शुद्धो भवति ते यथा ।
तप्ततैलेन लोहेन वह्निना नावदह्यते ॥५०
तथा सा पतिसयुक्ता दह्यते न कदाचन ।
अन्तरात्मा मृतस्तस्मिन्मृतेऽप्येकत्वमागता ॥५१
भर्तृसङ्गं परित्यज्य याऽन्यत्र म्रियते यदि ।
पतिलोक न सा याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥५२
नारी सुतान्परित्यज्य मातर पितरं तथा ।
मृत पतिमनुव्रज्य सा चिर सुखमाप्नुयात् ॥५३
दिव्यवर्षप्रमाणेन तिस्रः कोटयोऽर्द्धकोटय. ।
तावत्काल वसेत्स्वर्गे नक्षत्रैः सह सर्वदा ॥५४
तदन्ते च मृते लोके कुले भवति भोगिनाम् ।
महाप्रीतिमवाप्नोति भर्त्रा सह पतिव्रता ॥५५
एव न कुरुते नारी धर्मोढा पतिसङ्गमम् ।
सप्तजन्मनि दु खार्त्ता दुःशीलाऽप्रियवादिनी ॥५६
सा नारी गृहगोधा वा गोधा वा द्विमुखी भवेत् ।
स्वभर्त्तार परित्यज्य परपुंसानुवर्त्तिनी ॥५७

दिव्यादि मे दिव्य देह जिस प्रकार से शुद्ध होता है तप्त तैल से, लौह से और वह्नि से वह अवदग्ध नही होता है ॥५०॥ उसी भाँति पति से सयुक्त वह नारी कभी भी दग्ध नही हुआ करती है। उसके मरने पर मृत अन्तरात्मा एकत्व को प्राप्त हो जाता है ॥५१॥ अपने पति के सङ्ग का त्याग कर जो नारी यदि कहीं अन्यत्र मरती है तो जब तक भूत सप्लव (प्रलय) होता है तब तक वह नारी पति लोक को प्राप्त नहीं होती है ॥५२॥ जो नारी अपने पुत्रों को, माता को और पिता को त्याग करके अपने मृत पति का अनुगमन किया करती है अर्थात् पति के साथ ही प्राणों को त्याग दिया करती है वह नारी चिरकाल तक सुख की प्राप्ति किया करती है ॥५३॥ दिव्य वर्षों के प्रमाण से साढे तीन

इंरोड वर्ष के समय तक सर्वदा नक्षत्रो के साथ वह स्वर्ग मे निवास प्राप्त करती है ।।५४।। इसके अन्त में मृत होने पर वह भोगियो के लोक मे और कुल मे होती है । वह पतिव्रता नारी अपने भर्त्ता के साथ महान् प्रीति का लाभ प्राप्त किया करती है ।।५५ । धर्म पूर्वक विवाहिता ना ी इस प्रकार से पति का संगम नही करती है वह सात जन्मो तक दु ख से पीडित होती हुई दु शीला और अप्रियवादिनी होती है ।।५६।। यह नारी गृह गोधा-गोधा अथवा द्विमुखी हुआ करती है जो अपने स्वामी का त्याग करके पराये पुरुष की अनुवर्त्तिनी रहा करती है ।।५७।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वपति सेवयेत्सदा ।
कर्मणा मनसा वाचा मृते जीवति तद्गता ।।५८
जीवमाने मृते वापि किल्विष कुरुते तया ।
तेन नाप्नोति भर्त्तारं पुनर्जन्मनि दुर्भगा ।।५६
यद्देवेभ्यो यत्पितृभ्योऽतिथिभ्यः कुर्य्याद्भर्त्तृभ्यर्चन सत्क्रियाश्च ।
तस्यार्यद्धं केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ।।६०
एव कृते तु सा नारी भर्तृलोके वसेच्चिरम् ।
यावदादित्यचन्द्रौ च तावद्देवोपमा दिवि ।।६१
पुनश्चिरायुषी भूत्वा जायते विपुले कुले ।
पतिव्रता तु सा नारी भर्तृ दु ख न विन्दति ।।६२
सर्वमेतद्धि कथित मया तव खगेश्वर ।
विशेषं कथयिष्यामि मृतस्यैव सुखप्रदम् ।।६३
द्वादशाहे कृत सर्वं वर्षं यावत्सपिण्डनम् ।
पुनः कुर्य्यात्तथा नित्य घटान्नं प्रतिमासिकम् ।।६४
कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्य्यादृते पुन. ।
चेत्करोति पुनः सम्यक्पूर्वकृत्य विनश्यति ।।६५
मृतस्यैव पुनः कुर्य्यात्प्रेतोऽप्यक्षयमाप्नुयात् ।
अर्वागृद्धेश्च करणात्पक्षिराज सपण्डिताम् ।।६६

पूर्वोक्तक सर्वविधि सुयुक्त सपिण्डन यो हि करोति पुत्र ।
तथापि मास प्रति पिण्डमेकमन्न सकुम्भ सजलञ्च दद्यात् ।।६७

इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से नारी को अपने स्वामी का सदा सेवन करना चाहिए। जब तक स्वामी जीवित रहे तब तक अच्छी तरह कर्म, मन और वचन से उसकी सेवा करे और मरन पर उसके ही साथ अनुगमन कर ।।५८।। जीवित रहने पर या मृत हो जाने पर जो सदा किल्बिष किया करती है अर्थात् पापाचरण करती है। इसका परिणाम यह होता है कि वह दुर्भाग्य वाली फिर दूसरे जन्म में स्वामी की प्राप्ति नहीं किया करती है ।।५९।। जो स्वामी देवों के लिये, पितृगण के लिये, अतिथियों के लिये अभ्यर्चन और सत्क्रिया किया करता है उस सब सत्कर्म का आधा भाग केवल अनन्य चित्त वाली नारी स्वामी की शुश्रूषा से ही प्राप्त किया करती है ।।६०।। इस प्रकार से भर्त्ता की शुश्रूषा से नारी पति लोक में चिरकाल तक निवास किया करती है और जब तक ये चन्द्र और सूर्य स्थित रहा करते हैं तब तक वह शिवलोक में देवता के समान रहती है ।।६१।। इसके अनन्तर फिर चिरायु होकर वे दोनों किसी विशाल कुल में जन्म ग्रहण करते हैं। वह पतिव्रता नारी कभी भी अपने स्वामी के दुःख को प्राप्त नहीं किया करती है ।।६२।। हे खगेश्वर ! यह सभी कुछ मैंने तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया है। अब आगे मृत को सुख प्रदान करने वाला विशेष मैं बतलाऊँगा ।।६३।। बारहवें दिन में किया हुआ सब जब तक वर्ष का सपिण्ड न हो उसे पुन करे। नित्य घटाम्ब और प्रतिमासिक करे। ।।६४।। प्रेतकार्य के बिना किये हुए को पुन नहीं किया जाता है। यदि पुन भली भाँति किया करता है तो पूर्व कृत्य सब नष्ट हो जाता है ।।६५।। मृत का ही पुन इस प्रकार से करना चाहिये। इससे प्रेत अक्षय को प्राप्त हुआ करता है। हे पक्षिराज ! वृद्धि के करने से अर्वाक् (पश्चात्) सपिण्डना करे। पूर्व में वर्णित सम्पूर्ण विधि को यथोचित रूप से सपिण्डीकरण जो पुत्र किया करता है तो भी प्रति मास में एक पिण्ड, अन्न, जल से परिपूर्ण कुम्भ आदि देना चाहिए ।।६६।६७।।

१७—प्रेतत्व से मुक्ति

कथं प्रेता वसन्त्यत्र कीदृग्रूपा भवन्ति च ।
महाप्रेताः पिशाचाश्च कैः कैः कर्मफलैः प्रभो ॥१
सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन ।
प्रेतत्वान्मुच्यते येन दानेन सुकृतेन हि ।
सर्वं कथय मे देव मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥२
साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा वक्ष्येऽहं प्रेतलक्षणम् ॥३
गुह्याद्गुह्यतरं ह्येतन्नाख्येयं यस्य कस्यचित्
भक्तस्त्वं हि महाबाहो तेन ते कथयाम्यहम् ॥४
पुरा त्रेतायुगे तार्क्ष्य राजासीद्बभ्रुवाहनः ।
महोदयपुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः ॥५
यज्वा दानपतिः श्रीमान्ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः ।
शीलोदारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः ॥६
प्रजाः पालयते नित्यं पुत्रानिव महाबलः ।
स कदाचिन्महाबाहुर्मृगया मनुमुद्यतः ॥७

गरुड ने कहा—हे प्रभो ! प्रेत यहाँ पर कैसे निवास किया करते हैं और उनके किस प्रकार के स्वरूप होते हैं ? महा प्रेत और पिशाच किन किन कर्मों के फलों से हुआ करते हैं ? ॥१॥ हे मधुसूदन ! सभी प्राणियों के ऊपर अनुकम्पा करने के लिये यह मेरे सामने वर्णन कीजिये । इस भीषण प्रेतत्व से, कौनसा दान तथा सुकृत है, जिसके करने से मुक्ति हुआ करती है ? हे देव ! यदि मेरे प्रिय करने की आपकी इच्छा हो तो यह सभी मुझे बताने की कृपा कीजिये ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! तुमने यह प्रश्न तो बहुत सुन्दर किया है । इससे मनुष्यों का परम हित होगा । अब तुम अत्यन्त सावधान होकर श्रवण करो, मैं प्रेत के सम्पूर्ण लक्षण बतलाता हूँ ॥३॥ किन्तु यह बहुत ही गोपनीय से भी गोपनीय विषय है, इसे चाहे जिस किसी के सामने नहीं कहना

चाहिए। हे महाबाहो ! क्योंकि तुम मेरे भक्त हो, इसीलिये मैं तुमको यह … बतलाता हूँ ॥४॥ हे तार्क्ष्य ! पहिले त्रेता युग में एक बभ्रुवाहन नाम वाला राजा था। वह परम सुन्दर महोदय पुर में रहता था और बहुत ही धर्म में निष्ठा रखने वाला था तथा महान् बलवान् था ॥५॥ वह यजन करने वाला, दानपति, श्रीमान्, ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले और साधु-सम्मत था। शील और उदारता के गुणों से युक्त था तथा दया एवं दाक्षिण्य (कौशल) से समन्वित था ॥६॥ वह महान् बलवान् राजा अपनी प्रजा का पालन पुत्रों की भाँति ही किया करता था। किसी समय में वह बड़ी-बड़ी भुजाओं वाला राजा शिकार खेलने के लिये जाने को तैयार हुआ था ॥७॥

वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम् ।
शार्दूलशतसंजुष्टं नानापक्षिनिनादितम् ॥८
वनमध्ये तदा राजा मृगं दूरादपश्यत ।
तेन विद्धो मृगस्तीव्रो बाणेन सुदृढेन च ॥९
बाणमादाय तं तस्य स वनेऽदर्शनं ययौ ।
शोणितस्रावमार्गेण स राजाऽनुजगाम ह ॥१०
ततो मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद्विवेश सः ।
क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापमूर्च्छितः ॥११
जलस्थानं समासाद्य साश्व एव व्यगाहत ।
पीत्वा तदुदकं शीतं पद्मगन्धाधिवासितम् ॥१२
ततोऽवतीर्य्य सलिलाद्विमलाद्बभ्रुवाहनः ।
न्यग्रोधवृक्षमासाद्य शीतच्छायं मनोहरम् ॥१३
महाविटपिनं घूर्णपक्षिसंघातनादितम् ।
वनस्पतीनां सर्वेषां केतुभूतमवस्थितम् ॥१४

वह राजा एक अत्यन्त घने जङ्गल में प्रवेश कर गया था जो कि अनेक तरह के विशाल वृक्षों से समन्वित था और जिस वन में सैकड़ों शार्दूल रहा करते थे। वहाँ पर विविध भाँति के पक्षियों की मधुर ध्वनि हो रही थी ॥८॥ उस वन के मध्य में उस बभ्रुवाहन राजा ने दूर से ही एक मृग को देखा था।

उस राजा ने सुदृढ तीक्ष्ण बाण के द्वारा उस तीव्र मृग को वेध दिया था। वह स्वयं विद्ध होकर उस बाण के साथ ऐसा अदृष्ट हो गया कि कहीं भी फिर दिखलाई नहीं दिया था। बाण के लगने से जो उसके शरीर से रक्त का स्राव हुआ था उसे देखते हुए उसी मार्ग से वह राजा भी उसके पीछे चला गया था। ॥६।१०॥ इसके अनन्तर उस मृग की तलाश करने के प्रसङ्ग से वह अन्य एक वन में प्रवेश कर गया था। उस समय में राजा से अत्यन्त पीड़ित हो गया था। उसका गला एक दम सूख गया था घोर श्रम के सन्ताप से मूर्छित-सा हो गया था ॥११॥ इसके पश्चात् उसे एक जलाशय मिला। वहाँ पर उसने अपने अश्व के सहित उस जल का अवगाहन किया था। उस जलाशय का परम शीतल घोर पद्मों की गन्ध से अधिवासित जल का पान करके वह बभ्रुवाहन उस विमल जल से अवतीर्ण होकर एक वट का वृक्ष वहाँ था उसके नीचे आ गया था। उस परम मनोहर वृक्ष की बहुत ही शीतल छाया थी। वह वट महान् विशाल था और पूर्ण पक्षियों के समूह की ध्वनि हो रही थी। वह वट वृक्ष वहाँ पर ऐसा स्थित हो रहा था मानो समस्त वनस्पतियों का वह केतु भूत हो ॥१२।१३।१४॥

तं महातरुमासाद्य निषसाद महीपतिः।
अथ प्रेत ददर्शासौ क्षुत्पिपासाकुलेन्द्रियम् ॥१५
रुक्षच मलिनं रुक्षं निर्मांसं भीमदर्शनम्।
स्नायुबद्धास्थिचरणं धावमानमितस्ततः ॥१६
अन्यैश्च बहुभिः प्रेतैः समन्तात्परिवारितम्।
स दृष्ट्वा चागतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः ॥१७
प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तां घोरामटवीमागतं नृपम्।
तदा हृष्टमना भूत्वा तस्यान्तिकमुपागमत् ॥१८
अब्रवीत्स तदा तार्क्ष्य प्रेतराजो नृपं वचः।
प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्।
त्वत्संयोगान्महाबाहो नास्ति धन्यतरो मम ॥१९

कृष्णरूप करालाक्ष त्वं प्रेत इव दृश्यसे ।
कथयस्व मम प्रीत्या यथार्थमतितत्त्वतः ॥२०
कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवादितस्तव ।
प्रेतत्वे कारणं श्रुत्वा दयां कर्तुं ममार्हसि ॥२१

उस परम विशाल वृक्ष के पास पहुँच कर वह राजा वहाँ पर बैठकर विश्राम लेने लगा था। इसके अनन्तर उसने वहाँ पर एक प्रेत को देखा था जो कि भूख और प्यास से व्याकुल इन्द्रियों वाला हो रहा था ॥१५॥ ऊपर की ओर उसके केश खड़े हो रहे थे, अत्यन्त मैला-कुचैला उसका रूप था, बहुत ही रूखा, बिना मांस वाला, भयानक दिखलाई देने वाला, स्नायुओं से बद्ध अस्थि-चरण वाला और इधर-उधर दौड़ लगाता हुआ था। उसके चारों ओर अन्य भी बहुत-से प्रेत उसे घेरे हुए थे। ऐसे उसे आते हुए राजा ने देखा जो कि घोर रूप वाला था। उसे देखकर राजा को बड़ा विस्मय हुआ था ॥१६।१७॥ प्रेत को भी उस अति घोर जङ्गल में आये हुए राजा को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी और प्रसन्न चित्त होकर वह प्रेत उस राजा के समीप में उपस्थित हो गया था ॥१८॥ हे तार्क्ष्य ! उस समय में वह प्रेतराज राजा से बोला—हे महाबाहो ! मैंने आज आपके सम्पर्क को पाकर अपना प्रेत भाव त्याग दिया है और मैं परम गति को प्राप्त हो गया हूँ। मेरे समान कोई भी अन्य धन्यतर नहीं है ॥१९॥ राजा ने कहा—काले स्वरूप वाले तथा विकराल नेत्रों वाले तुम तो प्रेत की भाँति ही दिखलाई दे रहे हो। मेरी प्रीति के लिये आप जो भी यथार्थ बात हो उसे अत्यन्त तत्व पूर्वक बतलाओ ॥२०॥ प्रेत ने कहा—हे नृप श्रेष्ठ ! अब मैं सब कहता हूँ। आपको यह सब कुछ विदित ही नहीं है। इस प्रेतत्व प्राप्त होने के कारण को सुनकर आप मेरे ऊपर दया करने के योग्य होते हैं ॥२१॥

वैदिश नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम् ।
नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम् ॥२२
नानापुण्यसमायुक्तं नानावृक्षसमाकुलम् ।
तत्राहं न्यवसं भूप देवार्चनरतस्तथा ॥२३

वैश्यजात्या सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते ।
हव्येन तर्पिता देवा कव्येन पितरो मया ॥२४
विविधैर्दानयोगैश्च विप्रा सन्तर्पितास्तथा ।
प्राहाराश्च विहाराश्च मया वै सुनिवेशिताः ॥२५
दीनानाथविशिष्टेभ्यो मया दत्तमनेकधा ।
तत्सर्वं विफल तात मम दैवादुपागतम् ॥२६
न मेऽस्ति सन्ततिस्तात न सुहृन्न च बान्धव ।
न च मित्र हि मे तादृग्य करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ॥२७
प्रेतत्व सुस्थिर तेन मम जात नृपोत्तम ।
एकादश त्रिपक्षञ्च षाण्मासिकमब्दिकम् ॥२८
प्रतिमास्यानि चान्यानि एव श्राद्धानि षोडश ।
यस्यैतानि न दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि षोडश ॥२९
प्रेतत्व सुस्थिर तस्य दत्तै. श्राद्धशतैरपि ।
एव ज्ञात्वा महाराज प्रेतत्वादुद्धरस्व माम् । ३०

एक वैदिश नाम वाला नगर है जो कि सब तरह की सम्पत्ति से परि-
पूर्ण और नाना प्रकार क रत्नो स समाकुल है तथा अनेक जन-दों से घिरा
हुआ है। बहुत पुण्यो से समन्वित तथा अनेक वृक्षो से समाकुल है। हे राजन्!
वहाँ पर मैं देवो की अर्चना मे परायण होकर निवास किया करता था ॥२२॥
॥२३॥ मैं वैश्य जाति मे उत्पन्न हुआ था और मेरा नाम सुदेव था—यह आपको
विदित होवे। मैंने हव्य के द्वारा खूब देवो को तृप्त किया था और कव्य मे पितृ-
गण की तृप्ति भी की थी ॥२४॥ अनेक प्रकार के दानों के योग से मैंने विप्रों
को भी सन्तृप्त किया था। मैंने आहार और विहार भी सुनिवेशित किये थे ॥
॥२५॥ दीन और अनाथ लोगों को विशेष रूप से मैंने अनेक भाँति के दान
आदि दिये थे। हे तात! मेरे भाग्य से वह सभी कुछ विफल हो गया है ॥२६॥
हे तात! मेरे कोई सन्तति नहीं है, न मेरा कोई सुहृद है और न कोई मेरा
बान्धव ही है। मेरा कोई मित्र नहीं है और न कोई मेरा ऐसा ही है जो कि
मेरी और्ध्व देहिक क्रिया करे अर्थात् मरने के पश्चात् होने वाले श्राद्ध-पिण्डदान

आदि कर्म करे। हे नृपोत्तम ! इससे मुझे यह प्रेतत्व प्राप्त हुआ है और अब य प्रेतत्व सुस्थिर हो गया है। एकादश, त्रिपक्ष, छै मास का और वार्षिक तथा अन्य प्रति मास में होने वाले श्राद्ध जो कुल सोलह होते हैं जिस मृत जन्तु को ये षोडश श्राद्ध नहीं दिये जाते हैं जो कि प्रेतत्व के मुक्ति के लिये होने के कारण प्रेतश्राद्ध कहे जाते हैं, उसका प्रेतत्व सुस्थिर हो जाया करता है चाहे फिर सैकड़ों ही श्राद्ध क्यों नहीं दिये जावें, उसका प्रेतत्व नहीं जाता है। हे महाराज ! इस प्रकार से आप मेरी दशा को जानकर अब इस प्रेतत्व से मुझे छुड़वाइये और मेरा उद्धार आप करिये ॥२७ से ३०॥

वर्णानाञ्चापि सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते ।
तस्मात्तारय राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते ॥३१
यथा मम शुभावाप्तिर्भवेन्नृपवरोत्तम ।
तथा कार्य्यं महावीर्य्य कृपा यदि ममोपरि ।
आत्मनश्च कुरु क्षिप्रं सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् ॥३२
कथं प्रेता भवन्तीह कृतैरप्यौर्ध्वदैहिकैः ।
पिशाचाश्च भवन्तीह कर्मभिः कैश्च तद्वद ॥३३
ब्रह्मस्वं देवद्रव्यञ्च स्त्रीणां बालधनं तथा ।
ये हरन्ति नृपश्रेष्ठ प्रेतयोनिं लभन्ति ते ॥३४
तापसीञ्च स्वगोत्राञ्च अगम्याश्च भजन्ति ये ।
भवन्ति ते महाप्रेता अम्बुजानि हरन्ति ये ॥३५
प्रवालवज्रहर्त्तारो ये च वस्त्रापहारकाः ।
तथा हिरण्यहर्त्तारः संयुगेऽसम्मुखे हताः ॥३६
कृतघ्ना नास्तिका रौद्रास्तथा साहसिकाः शठाः ।
पञ्चयज्ञविनिर्मुक्ता महादानरताश्च ये ।
एवमाद्यं महाराज जायन्ते प्रेतयोनयः ॥३७

राजा तो सभी वर्णों का बन्धु होता है—ऐसा इस लोक में कहा जाता है। हे राजेन्द्र ! आप मुझे तार दो—मैं आपको एक परमोत्तम मणिरत्न समर्पित करूँगा ॥३१॥ हे नृपवरोत्तम ! जिस प्रकार से मुझे शुभ गति की प्राप्ति

...ो जावे वैसा ही आपको करना चाहिये । हे महावीर्य ! यदि आप मुझ पर कृपा करें तो बहुत ही अच्छा होगा । आप मेरे और्ध्व दैहिक कर्म के साथ अपना भी और्ध्व दैहिक सब कर्म शीघ्र ही करिये ॥३२॥ राजा ने कहा—यहाँ पर और्ध्व दैहिक कर्मों के किये जाने पर भी प्रेत कैसे हो जाते हैं और किन कर्मों से पिशाच इस मही मण्डल में हो जाया करते हैं ? यह सब मुझे आप बतलाइये ॥३३॥ प्रेतराज ने कहा—जो ब्राह्मण का धन, देवोत्तर सम्पत्ति स्त्रियों का धन तथा बालकों का धन हरण किया करते हैं, हे नृपश्रेष्ठ ! वे लोग प्रेत की योनि को प्राप्त किया करते हैं ॥३४॥ जो लोग किसी तापसी नारी—अपने गोत्र वाली स्त्री और जो गमन करने के अयोग्य नारी हो इनका सेवन किया करता है वे महा प्रेत हो जाते हैं । जो पुरुष कमलों का हरण करते हैं तथा प्रवाल और हीरों का अपहरण किया करते हैं, वस्त्रों का हरण करते हैं तथा सुवर्ण का हरण करते हैं, जो युद्ध में अर्सभुख होते हुए हत हो जाते हैं । ॥३५।३६॥ किये हुए को नहीं मानने वाले, ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करने वाले रौद्र, साहसिक, शठ, पाँचों प्रकार के यज्ञों से रहित होकर मद्यपान में रति रखने वाले जो होते हैं वे इन तथा ऐसे ही अन्य कारणों से प्रेत की योनि में उत्पन्न हुआ करते हैं ॥३७॥

कथं मुक्ता भवन्तीह प्रेतत्वात्कृपया वद ।
कथं चापि मया कार्य्यमौर्ध्वदेहिकमात्मन. ।
विधिना केन तत्कार्य्यं सर्वमेतद्वदस्व मे ॥३८
शृणु राजेन्द्र सक्षेपाद्विधि नारायणात्मकम् ।
सुवर्णद्वयमाहृत्य मूर्ति तत्र प्रकल्पयेत् ॥३९
नारायणस्य देवस्य सर्वाभरणभूषिताम् ।
पीतवस्त्रयुगच्छन्नां चन्दनागुरुचर्चिताम् ॥४०
स्नापितां विविधैस्तोयैरधिवास्य प्रयत्नतः ।
पूर्वे च श्रीधरं देवं दक्षिणे मधुसूदनम् ॥४१
पश्चिमे वामन देवमुत्तरे च गदाधरम् ।
मध्ये पितामहं पूज्य तथा देव महेश्वरम् ॥४२

राजा ने कहा—यहाँ पर इस प्रेतत्व से कैसे मुक्त हुआ करते हैं ? कृपा कर यह भी मुझे आप बतलाइये। मुझे अपनी ओर्ध्व दैहिकी क्रिया कैसे, किस विधि से करनी चाहिए—यह भी आप मुझे सभी कुछ बतलाने की कृपा करें ॥ ॥३८॥ प्रेतराज ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप अब नारायणात्म विधि को संक्षेप से श्रवण करिये। सुवर्ण द्रव्य लाकर वहाँ पर दो सोने की मूर्तियों का निर्माण करावे ॥ ३९ ॥ ये मूर्तियाँ भगवान् नारायण की हैं और इनको समस्त अलङ्कारों से भूषित करे। दो पीत वर्ण के वस्त्र इनको धारण करावे और उस वस्त्र से उन प्रतिमाओं का समाच्छन्न कर देवे तथा फिर चन्दन और अगुरु से उन्हें भली-भाँति चर्चित कर देना चाहिए ॥ ४० ॥ अनेक प्रकार के तीर्थ जलों से उनका स्नान करावे और प्रयत्न पूर्वक फिर इन प्रतिमाओं का अधिवास करे। पूर्व दिशा में श्रीधर देव को, दक्षिण में मधुसूदन को, पश्चिम में वामनदेव को, उत्तर में गदाधर देव को, मध्य में पितामह को तथा महेश्वर देव को विराजमान कर अर्चा करनी चाहिए ॥४१॥४२॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य अग्नौ सन्तर्प्य देवताः ।
घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वेदेवास्तथा नृप ॥४३
ततः स्नातो विनीतात्मा जपमानः समाहितः ।
नारायणाग्रे विधिवत्कृत्वा क्रियामौर्ध्वदैहिकीम् ॥४४
आरभेत विनीतात्मा क्रोधलोभविवर्जितः ।
कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा ॥४५
त्रयोदशानां विप्राणां दद्याच्छत्राण्युपानहौ ।
अंगुलीयकरत्नानि भाजनासनभोजनं ॥४६
सान्नाश्च सोदका देया घटाः प्रेतहिताय वै ।
शय्यादानमथो दत्वा घटं प्रेतस्य निर्वपेत् ॥४७
नारायणेति स्व नाम संपुटस्य समुच्चरेत् ।
एवं कृत्वाथ विधिवत्पदा शुभफलं लभेत् ॥४८
एवं सञ्जल्पतस्तस्य प्रेतस्य विनतात्मज ।
सेनाऽजगामानुपदं हस्त्यश्वरथसंकुला ॥४९

ततो वले समायाते प्रेतोऽदर्शनतां ययौ ।
तस्माद्वनाद्विनिःसृत्य राजापि स्वपुर ययौ ॥५०
स्वपुर स समासाद्य सर्वं तत्प्रेतभाषितम् ।
चकार विधिवत्सर्व ऊर्ध्वदेहादिकं विधिम् ॥५१

इसके अनन्तर प्रदक्षिणा करके और अग्नि में देवों को संतृप्त करके अर्थात् घृत, दधि, क्षीर के द्वारा अग्नि में देव प्रीति एवं तृप्ति के निमित्त आहुतियाँ देकर उन्हें भली-भाँति तृप्त करे। हे नृप! फिर विश्वेदेवाओं को सतृप्त करे ॥४३॥ इसके पश्चात् विनीतात्मा होता हुआ स्नान करे और पूर्णतया सावधान होकर भगवान् नारायण के आगे जाप करता हुआ अपनी विधि पूर्वक और्ध्व दैहिकी क्रिया को अर्थात् देह के त्याग करने के बाद में होने वाली क्रिया को करे। इस कर्म को जब आरम्भ करे तो बहुत ही विनयशील रहे और क्रोध तथा लोभ से रहित होकर रहे। ब्राह्मणों को छत्र (छाता), उपानह (पद-त्राण) अंगुलीयक (अँगूठी), रत्न, पात्र (बरतन), आसन और भोजन आदि के द्वारा तृप्त करे और वे विप्र संख्या में तेरह होने चाहिए। प्रेत के हित अर्थ अन्न के तथा जल के सहित घट देवे। इसके अनन्तर शय्या का दान देकर प्रेत के घट का निर्वपन करे ॥४४।४५।४६।४७॥ नारायण—यह अपने नाम का उच्चारण करे जो कि सपुरस्य हो। इस प्रकार से सम्पूर्ण धर्म विधि-विधान पूर्वक करके महा शुभ फल को प्राप्त करे ॥४८॥ हे विनिता के पुत्र! इस प्रकार से उस प्रेत के द्वारा कहने पर हाथी, रथ और अश्वादि परिपूर्ण सेना वहाँ पर पीछे से आ गई थी ॥४ ॥ इसके अनन्तर उस सेना के वहाँ आते ही वह प्रेत अदृष्ट हो गया था। उस वन से निकल कर वह राजा बभ्रुवाहन भी अपने पुर को चला आया था। अपने नगर में आकर उस राजा ने वह समस्त क्रिया विधिपूर्वक सम्पन्न की थी जो राजा को उस प्रेत ने बतलाई थी और देह के पश्चात् होने वाली क्रिया विधिपूर्वक की थी ॥५०।५१॥

१८–प्रेतत्व मोचनार्थ घटादि दान

सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन ।
प्रेतत्वान्मुच्यते येन दानेन सुकृतेन वा ॥१

शृणु दानं प्रवक्ष्यामि सर्वाशुभविनाशनम् ॥२

सन्तप्तहाटकमय घटक विधाय ब्रह्मेशकेशवयुत सह लोकप
क्षीराज्यपूर्णविवर प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव
दानशतं किमन्यं ॥३

किमेतत्कथित देव विस्तरेण वदस्व मे ।
भूम्या प्रक्षिप्यते कस्मात्पञ्चरत्न कुतो मुखे ॥४
अधस्तादास्तृतदर्भा पादौ याम्या व्यवस्थितौ ।
किमर्थं मण्डल भूम्या गोमयेनोपलिप्यते ॥५

गरुड ने कहा—हे मधुसूदन ! समस्त प्राणियो के हित करने के जिस दान के करने से तथा सुकृत से प्रेतत्व से मुक्ति होती है यह कृपा बतलाइये ॥ १ ॥ भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे गरुड ! मैं अब सब । के विनाश करने वाला दान बतलाता हूँ उसका तुम श्रवण करो ॥ २ ॥ भाँति तपाये हुए सुवर्ण के घट की रचना करा कर लोक पालो के ब्रह्मा—ईश और भगवान् केशव से युक्त घट को क्षीर—घृत से भरकर भक्ति-भाव से प्रणाम करके ब्राह्मण को दान करे । यह एक ही बहुत दान है फिर अन्य सैकडो दानो का कोई भी प्रयोजन ही नही रहता है ॥ गरुड ने कहा—हे देव ! आपने यह कैसा दान अभी मुझे बतलाया है ? आप विस्तार पूर्वक कहिए । किस लिये भूमि में और मुख मे पाँच रत्न प्रक्षेप किया जाता है ॥ ४ ॥ भूमि पर नीचे दर्भों का आस्तरण तथा दिशा में शव के पैरो का व्यवस्थित किया जाना तथा भूमि को गोमय से ए और मण्डल की रचना आदि का करना यह सब किस लिये किया जाया है ? ॥५॥

किमर्थं स्मर्यते विष्णुविष्णुसूक्तञ्च पठ्यते ।
किमर्थं पुत्रपौत्राश्च तिष्ठन्ति तस्य चाग्रत ॥६
किमर्थं दीपदान स्यात्किमर्थं विष्णुपूजनम् ।
किमर्थमातुरे दान ददाति द्विजपुङ्गवे ॥७

बन्धुमित्राण्यमित्राणि क्षमापयति तत्कथम् ।
तिला लोह सुवर्णञ्च कार्पास लवण तथा ॥८
सप्तधान्य क्षितिर्गावो दीयन्ते केन हेतुना ।
कथञ्च म्रियते जन्तुर्मृते तस्य कुतो गति ॥९
अतिवाह शरीरञ्च कथ विश्रमते तदा ।
सर्वमेतन्मया पृष्टो ब्रूहि लोकहिताय वै ॥१०

उस समय में भगवान् विष्णु का स्मरण तथा विष्णुसूक्त का पाठ किस के लिये किया जाता है। उसके आगे सभी पुत्र और पौत्र क्यों स्थित होते हैं? ॥ ६ ॥ दीपों का दान और विष्णु का पूजन किस के निमित्त उस समय में किया जाता है? आतुर द्विज पुङ्गव को किस की प्राप्ति के लिये दान दिया जाया करता है? ॥ ७ ॥ बन्धु, मित्र और अमित्र सभी किस लिये और क्यों क्षमापन किया करते हैं तिल-लोह—सुवर्ण—कार्पास—लवण—सात धान्य—भूमि—गौ इन सबका दान किस लिये उस समय में किया जाता है। यह जन्तु किस तरह से मृत होता है और उसके देह को त्याग कर मर जाने पर कैसे गति हुआ करती है? ॥ ८ ॥ ९ ॥ अति वाहन किये हुए उस शरीर को उस समय में क्यों विश्राम दिया जाता है? हे भगवन्! मैंने जो ये सब बातें आपसे पूछी हैं इन सबका उत्तर आप कृपा करके समस्त लोक की भलाई के लिये प्रदान करें ॥१०॥

१९—पुत्रोत्पादन फल और मुक्ति के उपाय

साधु पृष्ट त्वया भद्र मानुषाणा हिताय वै ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वमेवौर्ध्व दैहिकम् ॥१
सम्यग्विभेदरहित श्रुतिस्मृतिसमुद्धृतम् ।
यन्न दृष्टं सुरैः सेन्द्रैर्योगिभिर्योगचिन्तकैः ॥२
गुह्याद्गुह्यतर वत्स नाख्यात कस्यचित्क्वचित् ।
भक्तस्त्व हि महाभाग तेन ते कथयाम्यहम् ॥३
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ।
येन केनाप्युपायेन कार्यं जन्म सुतस्य च ॥४

तारयेन्नरकात्पुत्रो यदि मोक्षो न विद्यते ।
दाहः पुत्रेण कर्त्तव्यो ह्यग्निदाता च पौत्रकः ॥५

तिलैर्दर्भैश्च भूम्यां वैकुण्ठे तत्र मतिर्भवेत् ।
पञ्चरत्नानि वक्त्रे तु तेन जीवः प्ररोहति ॥६

सुलेप्या गोमयैर्भूमिस्तिलान्दर्भांश्च निक्षिपेत् ।
तस्यामेवातुरो मुक्तः सर्वं दहति दुष्कृतम् ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे भद्र ! तुमने ये सब बातें बहुत ही ठीक पूछी हैं। इनसे मनुष्यों का बड़ा हित होगा ? अब तुम बहुत ही सावधान होकर श्रवण करो। मैं और्ध्वदैहिक सभी कर्म बतलाता हूँ ॥ १ ॥ भली भाँति विशेष भेदों से रहित और श्रुति तथा स्मृति से समुद्धृत विषय जिसको इन्द्र के सहित देवों ने तथा योग के चिन्तन करने वाले योगियों ने भी कभी नहीं देखा है। हे वत्स ! यह परम गोपनीय से भी अत्यन्त गोपनीय है। इसे अब तक कभी भी कहीं किसी को नहीं बतलाया गया है। हे महाभाग ! तुम मेरे परम भक्त हो इसीलिये आज मैं तुमको यह सब बतलाता हूँ ॥ २ ॥ ३ । जिसके कोई पुत्र नहीं होता है उसकी स्वर्ग में कोई भी गति किसी भी भाँति नहीं हुआ करती है—यह बिल्कुल पूर्णतया सत्य कथन है। इसलिये जिस किसी भी उपाय से पुत्र के जन्म होने का उपाय अवश्य ही करना चाहिए ॥ ४ ॥ यदि मोक्ष नहीं होती है तो पुत्र नरक से उद्धार कर दिया करता है। शव का दाह पुत्र को करना चाहिए और पौत्र भी अग्नि देने वाला होता है ॥ ५ ॥ भूमि में तिल और दर्भों के विकरण करने से उस समय वैकुण्ठ में मृतात्मा की बुद्धि हो जाया करती है। पाँच रत्न जो मुख में डाले जाते हैं इससे जीव का प्ररोहण होता है ॥ ६ ॥ गोमय (गोबर) के द्वारा भली-भाँति लीपी हुई भूमि होनी चाहिए फिर उस पर तिल तथा डाभों (कुशा) का निक्षेपण करे। उसी भूमि पर जो सन्निकट मृत्यु वाला आतुर प्राणी है उसको लिटा देना चाहिए इससे उसके समस्त दुष्कृतों का दाह हो जाता है। अर्थात् सब पाप एवं दुष्कर्म जोकि अपने जीवन में उसने किये हैं दग्ध हो जाया करते हैं ॥७॥

दर्भतूली नयेत्स्वर्गं आतुर तु न सशय ।
तिलास्तत्र क्षिपेद्वाथ दर्भ पूलिकमध्यत. ॥८
सर्वत्र वसुधा पूता यत्र लेपो न विद्यते ।
यत्र लेप. स्थितस्तत्र पुनर्लेपेन शुध्यति ॥६
यातुधानाः पिशाचाश्च राक्षसा क्रूरकर्मगा. ।
अलिप्ते ह्यातुर मुक्तं विशन्त्येते वियोनय ॥१०
नित्यहोम तथा श्राद्धं पादशौच द्विजे तथा ।
मण्डलेन विना भूम्या कृतमप्यकृत भवेत् ॥११
आतुरो मुच्यते नैव मण्डलेन विना भुवि ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च श्रीर्हुताशन एव च ॥१२
मण्डले चोपतिष्ठन्ति तस्मात्कुर्वीत मण्डलम् ।
अन्यथा क्रियते यस्तु वृद्धो बालो युवापि वा ॥१३
योन्यन्तर न गच्छेत् स क्रीडते वायुना सह ।
तस्यैव वायुभूतस्य नो श्राद्धं नोदकक्रिया ॥१४

उस आतुर प्राणी को अर्थात् मृत्यु गत जन्तु को वह दर्भ की तूली स्वर्ग में ले जाया करती है—इसमे रञ्च मात्र भी सशय नहीं है। वहाँ पर दर्भों के पुलिकाओ के मध्य मे तिलो का भी क्षेपण करे ॥ ८ ॥ जहाँ पर कभी लेपन नही हुआ है वह तो सभी भूमि शुद्ध मानी जाती है और जहाँ पर पहिले से भूमि लिपी हुई है वहाँ पर वह पुन. गोमय के द्वारा लेपन करने से ही पुन एव शुद्ध हुआ करती है ॥ ६ ॥ यातु धान (राक्षस)—पिशाच और राक्षस जोकि क्रूर कर्मों के करने वाले हुआ करते हैं ये बिना लिपे हुए स्थान पर पड़े रहने वाले आतुर के अन्दर प्रवेश कर जाया करते हैं और ये वियोनि हो जाते हैं ॥ १० ॥ नित्य होम—श्राद्ध—द्विज के पादो का शौच बिना मण्डल के भूमि में किया हुआ भी न किया हुआ अर्थात् व्यर्थ हो जाया करता है ॥ ११ ॥ इसलिये आतुर (मृत्युगत) प्राणी को मडल के बिना भूमि मे कभी नहीं छोडना चाहिए। ब्रह्मा—विष्णु—रुद्र—श्री और हुताशन (अग्नि देवता) ये सब मंडल मे उपस्थित हुआ करते हैं। इसलिये मडल अवश्य ही करना

चाहिए। बिना मंडल के तो जो भी वृद्ध-युवा और बालक मर जाता है वो अन्यन्तर को नहीं जाता है वहीं पर वायु के साथ क्रीड़ा करता रहता है। इस प्रकार से उस वायुभूत के लिये न तो कोई श्राद्ध का ही विधान है और न उदक क्रिया ही होती है ॥१२।१३।१४॥

मम स्वेदसमुत्पन्नास्तिलास्तार्क्ष्य पवित्रकाः।
असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैः स्थितैः ॥१५
एक एव तिलो दत्तो हेमद्रोणतिलैः समः।
तर्पणे च तथा होमे दत्तो भवति चाक्षयः ॥१६
दर्भा रोमसमुत्पन्नाः तिलाः स्वेदेषु नान्यथा।
प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्वं वाप्युपजीवनात् ॥१७
सव्ययज्ञोपवीतेन ब्रह्माद्यास्तृप्तिमाप्नुयुः।
अपसव्येन तृप्यन्ति पितरो देवदेवताः ॥१८
दर्भमूले स्थितो ब्रह्मा दर्भमध्ये तु केशवः।
दर्भाग्रे शङ्करं विद्यात्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः ॥१९
विप्रा मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर।
नैते निर्माल्यता यान्ति भोज्यमाना. पुनः पुनः ॥२०
कुशाः पिण्डेषु निर्माल्या ब्राह्मणाः प्रेतभोजने।
मन्त्राः शूद्रेषु पतिताश्चितायाञ्च हुताशनः ॥२१

हे तार्क्ष्य ! ये तिल मेरे देह से समुत्पन्न हुए हैं अतएव ये पवित्र करने वाले होते हैं। इन तिलों के वहाँ पर स्थित रहने से सब असुर—दानव और दैत्य वहाँ से भाग जाया करते हैं ॥ १५ ॥ एक ही दिया हुआ तिल सुवर्ण के एक द्रोण परिमाण वाले तिलों के समान होता है। तर्पण तथा होम में दिया हुआ तिल तो अक्षय हो जाया करता है ॥ १६ ॥ ये दर्भ रोमों से समुत्पन्न होने वाले हैं। तिल स्वेदों से होते हैं—इसमें अन्यथा कुछ भी नहीं है। इनके प्रयोग करने की विधि के द्वारा ब्रह्मा ने विश्व का उपजीवन किया था ॥ १७ ॥ सव्य यज्ञोपवीत वाला होकर कर्म करने से ब्रह्माद्य सब तृप्ति को प्राप्त होते हैं। अपसव्य यज्ञोपवीत करके तर्पण—श्राद्ध करने से पितृगण और देव देवता

तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ दर्भ के मूल में ब्रह्मा स्थित रहा करते हैं और दर्भ के मध्य भाग में भगवान् केशव रहते हैं। दर्भ के अग्र भाग में शङ्कर रहते हैं। इस भाँति कुशा में तीनों देवताओं की स्थिति समझनी चाहिए ॥ १९ ॥ हे खगेश्वर ! कुशा में एक विशेषता और है और वह यह है कि—कुशा—विप्र—मन्त्र—वह्नि और तुलसी ये सब कभी भी निर्माल्य नहीं होते चाहे इनका बार-बार भी भोग्य क्यों न किया जावे ॥ २० ॥ कुशा जब पिंडों पर रख दी जाती है तो वह निर्माल्य हो जाती है और ब्राह्मण प्रेत के भोजन से निर्माल्यता को प्राप्त हो जाया करते हैं। घूत्र के अन्दर पड़े हुए मन्त्र तथा चिता में डाली हुई अग्नि भी निर्माल्य हो जाते हैं ॥२१॥

तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग।
पञ्चप्रवाहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां सताम् ॥२२
विष्णुरेकादशी गङ्गातुलसीविप्रधेनवः।
असारे दुर्गं संसारे षट्पदी मुक्तिदायनी ॥२३
तिलाः पवित्रमतुलं दर्भाश्चापि तुलस्यपि।
निवारयन्ति चैतानि दुर्गतिं प्राप्तमातुरम् ॥२४
हस्ताभ्याञ्च धृतैर्दर्भैस्तोयेन प्रोक्षयेद्भुवम्।
मृत्युकाले क्षिपेद्दर्भान्कारयेदातुरस्य च ॥२५
दर्भेषु क्षिप्यते योऽसौ दर्भैस्तु परिवेष्टितः।
विष्णुलोक वं याति मन्त्रहीनोऽपि मानवः ॥२६

हे खग ! तुलसी—ब्राह्मण—गौ—विष्णु और एकादशी ये पाँच इस संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए सत्य पुरुषों के प्रवहण (तारक) हुआ करते हैं ॥ २२ ॥ भगवान् विष्णु—एकादशी तिथि—गङ्गा—तुलसी—विप्र और धेनु ये इस सार हीन दुर्ग रूप संसार में षट्-पदी अर्थात् छः नामों का समुदाय मुक्ति के देने वाली होती है ॥ २३ ॥ तिल अनुपम पवित्र होते हैं—इसी प्रकार से दर्भ और तुलसी भी परम पवित्र हैं। ये सब दुर्गति को प्राप्त होने वाले आतुर अर्थात् मृत प्राणी को दुर्गति से निवारण कर दिया करते हैं ॥ २४ ॥ हाथों में रखे हुए दर्भों से जल लेकर भूमि का प्रोक्षण करना चाहिए। मृत्यु

के समय में भातुर के निकट उन दर्भों को क्षिप्त कर देना चाहिए या आतुर को उन पर डाल देवे ॥ २५ ॥ जो दर्भों पर प्रक्षिप्त कर दिया जाता है और दर्भों से परिवेष्टित होना है वह मानव मन्त्रों से हीन होकर भी सीधा विष्णु लोक को जाया करता है ॥२६॥

दर्भतूलीगत प्राणी संस्थितो भूमिपृष्ठतः ।
प्रायश्चित्तविशुद्धोऽसौ ससारे सारसागरे ॥२७
गोमयेनोपलिप्ते च दर्भस्यास्तरणे स्थिते ।
तत्र दत्तेन दानेन सर्वं पाप व्यपोहति ॥२८
लवण सदृश दिव्य सर्वकामप्रद नृणाम् ।
यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवण विना ॥२९
पितृणाञ्च प्रिय भाव्य तस्मात्सर्व प्रदं भवेत् ।
विष्णुदेहसमुत्पन्नो यतोऽय लवणो रस ॥३०
एतत्सलवण दान तेन शसन्ति योगिन. ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स्त्रीणा शूद्रजनस्य च ॥३१
आतुरस्य यदा प्राणान्नयन्ति वसुधातले ।
लवण तु तदा देय द्वारस्योद्घाटन दिव. ॥३२

दर्भों की तूली पर रहने वाला प्राणी जोकि भूमि के पृष्ठ भाग पर स्थित रहता है वह इस सारो के सागर ससार मे प्रायश्चित्त से पूर्ण तथा विशुद्ध हो जाता है ॥ २७ ॥ गोमय से लिपे हुए दर्भ के आस्तरण पर स्थित होने पर वहाँ जो भी दान दिया जाता है उससे सम्पूर्ण पापो का व्यपोह (नाश) हो जाता है ॥ २८ ॥ लवण (नमक) के सदृश मनुष्यो का सब कामो के प्रदान करने वाला अन्य दिव्य रस नही है । लवण के बिना सब अन्नो के रस उत्कट नही हुआ करते हैं ॥ २९ ॥ यह पितृगण को भी परम प्रिय होना चाहिए । इसमे यह सर्वप्रद होता है क्योंकि यह लवण रस भगवान् विष्णु के देह से समुत्पन्न होने वाला रस है ॥ ३० ॥ योगी गण लवण के सहित यह दान परम प्रशस्त कहा करते हैं । ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य—शूद्र जन आतुर के जब वसुधा तल मे प्राणो को ले जाते हैं उस समय दिवलोक के द्वार को उद्घाटित करने के लिये लवण देना चाहिए ॥३१॥३२॥

२०–प्रेतसौख्यकर दान

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि दानानां दानमुत्तमम् ।
येन दत्तेन प्रीणन्ति भूर्भुवःस्वरिति क्रमात् ॥१
ब्रह्माद्या ऋषयः सर्वे शङ्कराद्यमरास्तथा ।
इन्द्राद्या देवताः सर्वे दानाद्धं प्रीतिमाप्नुयुः ॥२
देयमेतन्महादानं प्रेतोद्धरणहेतवे ।
रुद्रलोके चिरं वासस्ततो राजा भवेदिह ॥३
रूपवान्सुभगो वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः ।
विहाय यमलोकं स स्वर्गं तार्क्ष्य प्रगच्छति ॥४
तिलाश्च गां क्षितिं हेम यो ददाति द्विजोत्तमे ।
तस्य जन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥५
तिला गावो महादानं महापातकनाशनम् ।
तद्द्वयं दीयते विप्रे नान्यवर्णे कदाचन ॥६
कल्पितं दीयते विप्रे तिला गावश्च मेदिनी ।
अन्येषु नैव वर्णेषु पोष्यवर्गे कदाचन ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! अब मैं सब दानों में उत्तम दान बतलाता हूँ तुम उसका श्रवण करो । जिस के देने से भूः—भुवः—स्वः—ये क्रम से प्रसन्न एवं सतृप्त होते हैं ॥ १ ॥ ब्रह्मादि सब ऋषिगण—शङ्करादि समस्त अमरगण और इन्द्र आदि सब देवता ये सभी दान से प्रीति को प्राप्त हुआ करते हैं ॥ २ ॥ प्रेतत्व के उद्धार के लिये यह महा दान अवश्य ही देना चाहिए । इससे रुद्र लोक में चिर काल पर्यन्त निवास होता है और इसके पश्चात् संसार में राजा हुआ करता है ॥ ३ ॥ हे तार्क्ष्य ! परम रूप—लावण्य वाला—सुन्दर भाग्य से समन्वित—वाग्मी (बोलने वाला)—श्री सम्पन्न और अतुल विक्रम वाला वह यमलोक का त्याग करके सीधा स्वर्ग को जाता है । ॥ ४ ॥ जो किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को तिल—गौ—भूमि—सुवर्ण का दान करता है उसके जन्म जन्मान्तर के इकट्ठे हुए पाप उसी क्षण में नष्ट हो जाया

करते हैं ॥ ५ ॥ तिल और गौ—ये महादान होते हैं जोकि साधारण ही पाप नहीं प्रत्युत महान् पातकों के पापों को नाश कर दिया करते हैं। ये दोनों पदार्थों का दान केवल ब्राह्मण को ही देने चाहिए। अन्य वर्ण वाले को कभी भी न देवे ॥ ६ ॥ तिल—गौ—पृथिवी इनका सङ्कल्प करके विप्र को दान करे। अन्य वर्ण वालों को तथा अपने पोषण के योग्य किसी वर्ग को कभी भी इन उपर्युक्त वस्तुओं का दान नहीं देवे ॥७॥

पोष्यवर्गे तथा स्त्रीषु दानं देयमकल्पितम् ।
आतुरे चोपरागे तु दानं देयमशेषतः ॥८
आतुरे दीयते दानं यावद्देहोपतिष्ठति ।
जीवता च पुनर्दत्तमुपतिष्ठत्यसंवृतम् ॥९
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं तद्दत्तं विकलेन्द्रिये ।
यच्चानुमोदते पुत्र तच्च दानमनन्तकम् ॥१०
अतो दद्यात्सुपुत्रेण यावज्जीवत्यसौ चिरम् ।
अतिवाहस्तथा प्रेतो भोगांश्च लभते यतः ॥११
अस्वस्थातुरकाले तु देहपाते क्षितिस्थिते ।
देहे तथातिवाहस्य परतः प्रीणनं भवेत् ॥१२
तिलं लोहं हिरण्यञ्च कार्पासं लवणं तथा ।
सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम् ॥१३
तारयन्ति नरं गावस्त्रिविधाच्चैव पातकात् ।
हेमदानात्सुखं स्वर्गे भूमिदानान्नृपो भवेत् ॥
हेमभूमिप्रदानाच्च न पीड़ा नरके भवेत् ॥१४

पोष्य वर्ग को और स्त्रियों को जोभी कुछ दान देवे वह कल्पित न करके ही देना चाहिए। आतुर को और ग्रहण के समय में तो सभी को पूर्ण दान देने चाहिए ॥ ८ ॥ आतुर में जो दान दिया जावे वह तभी तक देवे जब तक यह देह उपस्थित रहे। जीवित रहते हुए के द्वारा पुनः दिया हुआ असंवृत होकर उपस्थित होता है ॥ ९ ॥ यह सर्वथा सत्य है और पूर्णतया सत्य है कि विकलेन्द्रिय को वह दिया हुआ जोकि अनुमोदित किया जाता है अनन्त

न होता है ॥ १० ॥ इसलिये सत्पुत्र के द्वारा जब तक वह जीवित रहा करता है तभी तक दान देना चाहिए जिससे कि प्रतिवाह प्रेत भोगों को प्राप्त करता है ॥ ११ ॥ अस्वस्थ और आतुर के समय में—देह के पात हो जाने पर तथा देह के भूमि पर उतार लेने पर प्रतिवाह का आगे प्रीणन (संतृप्ति) होता है ॥ १२ ॥ तिल—लोह—सुवर्ण—कार्पास (वस्त्र)—लवण—सातों प्रकार के धान्य—भूमि—गौ ये सब एक से एक अधिक पावन दान होते हैं। ऐसा कहा गया है ॥ १३ ॥ गौ तीन प्रकार के पातक से मनुष्य को तार दिया करती है। हेम (सोना) के दान से स्वर्ग में सुख प्राप्त होता है और भूमि के दान से नृप होता है। हेम—भूमि के दान देने से नरक में कोई पीड़ा नहीं होती है ॥१४॥

सर्वेऽपि यमदूताश्च यमरूपातिभीषणाः।
सर्वे ते वरदा यान्ति सप्तधान्येन प्रीणिताः ॥१५
विष्णोः स्मरणमात्रेण प्राप्यते परमाङ्गतिम्।
भूमिस्थं पितरं दृष्ट्वा अर्द्धोन्मीलितलोचनम् ॥१६
तस्मिन्काले सुतो यस्तु सर्वदानानि दापयेत्।
स्वस्थानाच्चलिते श्वासे दानं यच्चातुरे ददेत् ॥१७
अश्वमेधो महायज्ञो कलां नार्हति षोडशीम्।
धर्मात्मा स च पुत्रोऽपि देवताभिः प्रपूज्यते ॥१८
दापयेद्यस्तु दानानि ह्यातुरं पितरं प्रति।
लोहदानञ्च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना ॥१९
यमं भीमं स नाप्नोति न गच्छेत्तस्य वेश्मनि।
कुठारं मुसलं दण्डः खङ्गश्च छुरिका तथा ॥२०
एतानि यमहस्तेषु निग्रहे पापकर्मणाम्।
तस्माल्लोहस्य दानं तु ह्यातुरे सततं ददेत् ॥२१

स्वर्ग में भी यम के दूत यम के जैसे स्वरूप वाले और महान् भीषण होते हैं किन्तु वे सब सात प्रकार के धान्य के दान से परम प्रसन्न होकर वर देने वाले हो जाया करते हैं ॥ १५ ॥ भगवान् विष्णु के स्मरण मात्र से

से परम गति की प्राप्ति की जाया करती है। भूमि पर स्थित आधी आँखें मुँदी हुई और आधी खुली हुई आँखों वाले अपने पिता को देखकर उस समय मे जो पुत्र उपर्युक्त सभी दानो को दिलाता है तथा पास के अपने स्थान को छोड़कर वहाँ चल देने पर जो उस आतुर की दशा में दान देता है या उस समय किसी आतुर (दुखिया) को दान देता है. उस दान की बराबरी क्या उसकी सोलहवीं कला को भी महान् अश्वमेघ यज्ञ भी प्राप्त करने के योग्य नहीं होता है। वह पुत्र भी परम धर्मात्मा है और देवो के द्वारा पूजित होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ जो अपने आतुर (मरणासन्न) पिता के प्रति दानो को दिलवाता है लोह का दान भूमि युक्त हाथ से देना चाहिए ॥ १९ ॥ वह अति भीम यम को प्राप्त नही होता है और उसके घर मे अर्थात् यमपुरी मे भी नहीं जाया करता है। कुठार-मुसल—दण्ड—खड्ग—छुरिका ये सब आयुध यमराज के हाथो मे पाप कर्म करने वालो के निग्रह करने के लिये रहा करते है। इसलिये आतुर के प्रति लोह का दान निरन्तर देना चाहिए ॥२०॥२१॥

यमायुधाना सन्तुष्ट्यै दानमेतदुदीरितम् ।
गर्भस्था शिशवो ये तु युवान स्थविरास्तथा ॥२२
एभिर्दानविशेषैस्तु निर्दहेयु स्वपातकम् ।
क्रूरिणा सार्वसूत्रामा शण्डा मर्कास्त्वनुर्वरा ॥
शवला श्यामदूताश्च लोहदानेन प्रीणिता ॥२३
पुत्रा. पौत्रास्तथा बन्धुः सगोत्र सुहृद स्त्रिय ।
ददन्ति नातुरे दान ब्रह्मघ्ना सुसमाहितम् ॥२४
पञ्चत्वे भूमियुक्तस्य शृणु तस्य च या गति ।
अतिवाह पुनः प्रेतो वर्षस्य सुकृत लभेत् ॥२५
पादादूर्ध्वं कटी यावद् तावद् ब्रह्माधितिष्ठति ।
ग्रीवा यावद्धरिर्नाभे शरीरे मनुजस्य तु ॥२६
मस्तके तिष्ठते रुद्रो व्यक्ताव्यक्तो महेश्वर ।
एकमूर्त्तेस्त्रयो भेदा ब्रह्माविष्णु महेश्वरा ॥२७
अह प्राणिशरीरस्थो भूतग्रामचतुष्टये ।
धर्माधर्मे मतिं दद्यात्सुखदु खे कृताकृते ॥२८

जन्तोर्बुद्धिं समास्थाय पूर्वकर्माधिवासिताम् ।
अहमेव तथा जीवान्प्रेरयामि च कर्मसु ॥२९
स्वर्गं मोक्षञ्च नरकं यान्ति च प्राणिनस्तथा ।
स्वर्गस्थनरकस्थानां श्राद्धं राप्यायनं भवेत् ॥।
तस्माच्छ्राद्धानि कुर्वीत विविधानि विचक्षणः ॥३०

यमराज के आयुधों की सन्तुष्टि के लिये यह दान बताया गया है। गर्भ में स्थित रहने वाले बच्चे—शिशु—युवा तथा वृद्ध इनके द्वारा विशेष दानों से अपने पातकों का निर्दहन करना चाहिए। कुरिणा—सार्व सुनाप—दाण्ड—मर्क—धनुर्धर—धवल और श्याम हून लोह के दान से परम प्रसन्न होते हैं ॥ २२ । २३ ॥ पुत्र—पौत्र—बन्धु—सगोत्र—सुहृद और स्त्रियाँ जो भी इनमें आतुर के लिये धन नहीं दिया करते हैं वे ब्रह्मघ्न होते हैं। यह दान भी सुक्समाहित होना चाहिए अर्थात् विधिवत् सावधानी से दिये जावें ॥ २४ ॥ पञ्चत्व प्राप्त होने पर अर्थात् मर जाने पर उस भूमि से युक्त की जो गति होती है उसका श्रवण करो वह प्रतिवाह प्रेत एक वर्ष के सुकृत को प्राप्त किया करता है ॥ २५ ॥ पैरों से ऊपर कटि पर्यन्त ब्रह्मा अधिष्ठित रहते हैं। कमर से ऊपर ग्रीवा तक अर्थात् नाभि से लेकर गरदन पर्यन्त मनुष्य के शरीर में हरि प्रतिष्ठित रहा करते हैं ॥ २६ ॥ व्यक्त और अव्यक्त महेश्वर रुद्र मस्तक में स्थित रहते हैं। सिद्धान्ततः इन तीनों की प्रतिमाऐं ही पृथक् २ हैं वैसे ये तीनों ही एक हैं। तीन मूर्तियों के स्वरूप में जब ये अलग २ होते हैं तो ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर ये इनके तीन नाम हो जाते हैं ॥ २७ ॥ मैं प्राणियों के शरीर में स्थित रहता हूँ। भूत ग्राम समुच्चय में अर्थात् चार प्रकार के भूतों के समुदाय में मैं धर्म—अधर्म में—सुख-दुःख में और कृत-अकृत में मति देता हूँ ॥ २८ ॥ पूर्व कर्मों के द्वारा अधिवासित जन्तु की बुद्धि को समास्थित करके मैं ही स्वयं कर्मों के करने में उस भाँति से जीवों को प्रेरणा दिया करता हूँ ॥ २९ ॥ इससे प्राणी वर्ग फिर स्वर्ग—मोक्ष और नरक में प्राप्त हुआ करते हैं। जो स्वर्ग में स्थित रहते हैं अथवा नरकों में वेदना सहन किया करते हैं उन सबको श्राद्धों के द्वारा सन्तृप्ति हुआ करती है। अतएव विचक्षण पुरुष को विविध भाँति के शास्त्रोक्त श्राद्ध अवश्य ही करने चाहिए ॥३०॥

मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामन ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्ध कल्किस्तथैव च ॥३१
एतानि दश नामानि स्मर्त्तव्यानि सदा बुधै ।
स्वगच्चैव स वै याति च्युत स्वर्गाच्च मानव ॥३२
लब्ध्वा सुखञ्च वित्तञ्च दयादाक्षिण्यसयुत ।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो जीवेत् स शरदा शतम् ॥३३
आतुर च दहेन्न्यासं विष्णुपूजाञ्च कारयेत् ।
अष्टाक्षर महामन्त्र जपेद्वा द्वादशाक्षरम् ॥३४
पूजयेच्छुक्लपुष्पैश्च नैवेद्यं घृतपाचितै ।
तथा गन्धैश्च धूपैश्च श्रुतिसूक्तैरनेकश ॥३५
विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णु स्वजनबान्धवा ।
यत्र विष्णु न पश्यामि तत्र मे किं प्रयोजनम् ॥३६
जले विष्णु स्थले विष्णुर्विष्णु पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णु सर्व विष्णुमय जगत् ॥३७
वयमापो वय पृथ्वी वय दर्भा वय शिला ।
वय गावो वय राजा वय वायुर्वय प्रजा ॥३८

मत्स्य—कूर्म—वराह—नरसिंह—वामन—राम—श्रीराम—कृष्ण—बुद्ध और कल्कि ये दशावतारों के दश नामो का बुधो का सदा स्मरण करना चाहिए। वह मानव स्वग से च्युत् होता हुआ भी पुन स्वग को ही जाया करता है। ॥ ३१ । ३२ ॥ वह पुरुष सुख और सम्पत्ति को प्राप्त करके दया एव दाक्षिण्य से युक्त होता हुआ पुत्र एव पौत्र आदि स समन्वित होकर सौ वर्ष की पूर्ण आयु का भोग करके जीवित रहा करता है ॥ ३३ ॥ आतुर म न्यास दवे और श्री विष्णु का पूजन करावे। अष्टाक्षर मन्त्र अथवा द्वादशाक्षर म त्र (ओ नमो भगवत वासुदेवाय) का जाप करे ॥ ३४ ॥ घृत मे परिपाचित नैवेद्यो के द्वारा और शुक्ल वर्ण के सुगन्धित पुष्पो मे—गन्ध—धूप और अनेक श्रुयुक्त सूक्तो के द्वारा पूजनार्चन करना चाहिए ॥ ३५ ॥ विष्णु भगवान् ही माता है और विष्णु ही पिता हैं तथा स्वजन एव बान्धव भी विष्णु ही हैं। जहाँ पर विष्णु

का दर्शन मैं नहीं करता हूँ वहाँ मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है ॥ ३६ ॥ जल मे—स्थल मे—पर्वतो की चोटियो मे—ज्वाला माला कुल मे सर्वत्र भगवान् विष्णु विद्यमान हैं और यह समस्त जगत् ही पूर्ण विष्णुमय है अर्थात् विष्णु के ही स्वरूप वाला है। हमही जल–पृथ्वी–दर्भ–तिल—गौ–राजा—वायु और प्रजा हैं अर्थात् ये विभिन्न स्वरूप मे हम ही विद्यमान हैं ॥३७॥३८॥

वयं हेम वयं धान्य वयं मधु वयं घृतम् ।
वय विप्रा वयं देवा वयश्चैव स्वर्भुर्भुवः ॥३६

अहं दाता अहं ग्राही अहं याजी अह क्रतुः ।
अहं कर्त्ता ह्यहं हर्त्ता अह धर्मो अहंगुरुः ॥४०

धर्माधर्मे मतिं दद्यां कर्मभिस्तु शुभाशुभैः ।
यत्कर्म कुरुते क्वापि पूर्वजन्मार्जितं खग ॥४१

धर्मे चिन्तामहं कर्त्ता ह्यधर्मे यम एव च ।
यतीनां कुरुते सोऽपि धर्मे मुक्ति ददाम्यहम् ॥४२

मनुजानां हितं तार्क्ष्य अन्ते वैतरणी नदी ।
तया निहत्य पापौघ विष्णुलोक स गच्छति ॥४३

यह सुवर्ण के स्वरूप मे भी हम हैं–धान्य–मधु–घृत–विप्र—देवगण और भू —भुवः—और स्व.—यह सब भी हम ही हैं। अर्थात् इन विभिन्न स्वरूपों मे स्थित होकर हम ही दिखलाई दिया करते हैं। दान देने वाला—दानो का ग्रहण करने वाला—यज्ञो का यजन कर्त्ता—यज्ञ—कर्त्ता—हर्त्ता—धर्म और गुरु ये सभी मैं हो हूँ। इस सब कुछ कथन का तात्पर्य यही है कि इस जगत् मे जो भी कुछ जिस रूप मे स्थित है वह सभी मेरा हो स्वरूप है ॥ ३६ ॥ ४० ॥ हे खग ! जीवों के शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार मैं ही धर्म और अधर्म मे बुद्धि को प्रेरित किया करता हूँ। जो भी कोई कुछ कर्म किया करता है वह अपने पूर्व जन्म मे जो अर्जित करता है उसी के अनुसार करता है। धर्म मे मैं चिन्ता का कर्त्ता हूँ और अधर्म में यमराज करता है। वह भी यतियों का करता है। मैं धर्म में मुक्ति देता हूँ ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे

साध्यं ! प्रन्त मे मनुष्यो का हित वैतरणी नहीं है। उनके द्वारा पापों को निहृन न करके वह विष्णु लोक को प्राप्त हुआ करता है ॥४३॥

वालत्वे यच्च कौमारे वयः परिणतौ तथा ।
पूर्वावस्थाकृत यच्च यच्च जन्मान्तरेष्वपि ॥४४
यन्निशाया तथा प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः ।
सन्ध्ययोर्यत्कृत पापं कर्मणा मनसा गिरा ॥४५
दत्त्वा वर सकृदपि कपिलां सर्वकामिकाम् ।
उद्धरेदन्तकाले सा ह्यात्मान पापसञ्चयात् ॥४६
गावो ममाग्रत. सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठत. ।
गावो मे हृदये नित्य गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥४७
या लक्ष्मी. सर्वभूताना या च देवे व्यवस्थिता ।
धेनुरूपेण सा देवी मम पाप व्यपोहतु ॥४८

बाल भाव मे जो कुछ किया है तथा कौमारावस्था मे और अवस्था के परिपाक होने की दशा मे अर्थात् वृद्धावस्था मे जो कुछ किया है। पूर्व अवस्था मे और अन्य पहिले जन्म जन्मान्तरों में जो भी कुछ किया है। रात्रि में—प्रात.काल मे—मध्याह्न और अपराह्न में जो भी कुछ किया है तथा दोनों सन्धि कालों में जो भी कुछ मन-वाणी और कर्मों के द्वारा किया है इन सभी प्रकार के पापो के सञ्चय से मनुष्य उद्धार की प्राप्ति कर लेता है यदि उसने अन्तकाल में परम श्रेष्ठ समस्त कामनाओ की पूर्ति करने वाली कपिला गौ का दान कर दिया है। वह अपनी आत्मा का सब पाप-कर्मों से उद्धार कर लिया करता है। वही गौ वैतरणी से उद्धार कर देती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥४६ ॥ गौएं मेरे आगे रहा करती हैं और गौएं ही मेरे पीछे पीछे होवें। गौएं मेरे सदा हृदय में नित्य ही निवास करती हैं और मैं गौओं के ही मध्य मे निवास करता हूं। जो लक्ष्मी समस्त प्राणियो की है और जो देव मे व्यवस्थित है वही धेनुरूप मे देवी मेरे सम्पूर्ण पापो का व्यपोहन करे। इस प्रकार से गौ के दान के समय मे चिन्तन करना चाहिए। ऐसा करने से परम श्रेय होता है। ॥४७॥४८॥

२१—शारीरिक स्थान निर्णय और चतुर्विध शरीर

ये नरा पापसंयुक्तास्ते गच्छन्ति यमालयम् ।
अन्तकाले च गौर्दत्ता ह्यनन्तफलदा भवेत् ॥१
पादक्रमप्रमाणाब्द स्वर्गे वसति भूमिदः ।
अश्वारूढाश्च ते यान्ति ददते ये ह्युपानहौ ॥२
अत्यातपश्रमयुता दह्यन्ते यत्र मानवा ।
छत्रदानेन व प्रेता विचरन्ति यथासुखम् ॥३
तमुद्दिश्य ददेदन्न तेन चाप्यायितो भवेत् ।
अन्धकारे महाघोरे अमूर्त्ते लक्ष्यवर्जिते ॥
उद्यातेनैव ते यान्ति दीपदानेन मानवा ॥४
आश्विने कार्त्तिके मासि माघे मासि मृताश्च ये ।
चतुर्दश्याश्च दीयेत दीपदान सुखाय वै ॥५
प्रत्यहन्न प्रदातव्य मार्गेषु विषमे नरै ।
यावत्संवत्सर वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया ॥६
कुले मार्गे च शुद्धात्मा प्रकाशत्वञ्च गच्छति ।
ज्योतिषामपि पूज्योऽसौ दीपदानरतो नर ॥७

श्री भगवान् ने कहा—जो मनुष्य पाप कर्मों स युक्त हुआ करते हैं वे यमालय को जाते हैं। अन्तकाल मे दान की हुई गौ अनन्त फल प्रदान करने वाली होती है ॥ १ ॥ भूमि के दान करने वाला पुरुष पैरो के क्रम के प्रमाण वाले वर्षों तक स्वर्ग मे निवास किया करता है। जो उपानहो का दान करते हैं वे जन्तु अश्व पर आरूढ होते हुए परलोक म जाया करते हैं ॥ २ ॥ जिस मार्ग म अत्यन्त उग्र आतप से मानव दाह को प्राप्त किया करते हैं और श्रम से अति श्रान्त हो जाते हैं उसम छत्र के दान करने स प्रेत गण सुखपूर्वक विचरण किया करते हैं ॥ ३ ॥ उसका उद्देश्य करके अन्न का दान करना चाहिए उससे प्रेत आप्यायित (सन्तृप्त) होता है। दीपो के दान करने से मनुष्य उस महान् घोर लक्ष्य से हीन अमूर्त्त अन्धकार मे प्रकाश से युक्त होकर यात्रा किया

करते हैं ॥ ४ ॥ जो आश्विन—कार्तिक और माघ मास में मृत्युगत होते हैं उनके सुख प्राप्त करने के लिये चतुर्दशी के दिन में दीप दान करना चाहिए ॥ ५ ॥ विषम में मनुष्यों के द्वारा मार्गों में प्रतिदिन प्रेत के सुख की चाह से जब तक वर्ष पूर्ण हो दीप दान करना चाहिए ॥ ६ ॥ कुल में और मार्ग में जो शुद्ध आत्मा वाला होता है, जो मनुष्य दीपों के दान में रति रखने वाला है वह ज्योतियों में भी परम पूज्य हुआ करता है ॥७॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो दीपो देवागारे द्विजालये ।
यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे ॥
स गच्छति महामार्गे सर्वक्लेशविवर्जितः ॥८
आसनं भाजनं भोज्यं दीयते च द्विजातये ।
सुखेन भुञ्जमानस्तु सुखं गच्छति वै पथि ॥९
कमण्डलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम् ।
भाजनं चान्नदानञ्च कुसुमं चागुलीयकम् ॥१०
एकादशाहे दातव्यं प्रेतो याति पराङ्गतिम् ।
त्रयोदशपदानीत्थं प्रेतस्य शुभमिच्छता ॥११
दातव्यानि यथाशक्ति प्रेतोऽसौ प्रीणितो भवेत् ।
भाजनानि पदञ्चैव कुम्भांश्चैव त्रयोदश ॥१२
मुद्रिका वस्त्रयुग्मञ्च तथा छत्रमुपानहौ ।
एतावन्तः पदार्था हि प्रेतोद्देशेन दापयेत् ॥१३
वृषोत्सर्गे कृते तार्क्ष्य प्रेतो याति पराङ्गतिम् ।
योऽश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे यदि दापयेत् ॥१४
स्वमाहिन्मोऽनुसारेण तत्तत्सुखमवाप्नुयात् ।
नानालोकान्विचरति महिषीं यो ददाति च ॥१५

इस लोक में जो कोई मनुष्य पूर्व की ओर मुख वाला या उत्तर की ओर मुख वाला दीप किसी देवालय में या द्विजालय में दिया करता है चाहे मृत के उद्देश्य से या जीवित रहते हुए अपने ही कल्याण के लिये हो वह महामार्ग की यात्रा में सब प्रकार के क्लेशों से रहित होता हुआ यात्रा

किया करता है ।। ८ ।। आसन—भोजन—भाजन द्विजाति के लिये दानों में दिये जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है। कि सुख से खाता हुआ मार्ग में जाया करता है ।। ९ ।। कमण्डलु के दान करने से तृषित होकर जल पीया करता है। भाजन (पात्र) और अन्न का दान—कुसुम तथा अँगूठी का दान ग्यारहवें दिन में करना चाहिए। इससे प्रेत परम गति को प्राप्त किया करता है। तेरह पद इस प्रकार से प्रेत के कल्पना की इच्छा से देने चाहिए और इन पदों को अपनी शक्ति के अनुसार ठीक विधि से देवे। इनके देने से प्रेत परम प्रसन्न होता है। भाजन—पद और तेरह कुम्भ मुद्रिका—दो वस्त्र—छत्र—उपानह (पदत्राण) ये इतने पदार्थ हैं जो कि प्रेत के उद्देश्य से दिलाने चाहिए ।। १० ।। ११ ।। १२ ।। १३ ।। हे तार्क्ष्य ! वृषोत्सर्ग के करने पर प्रेत परम गति को प्राप्त होता है जो अश्व—रथ अथवा गज ब्राह्मण को दान में देता है वह अपनी महिमा के अनुरूप उस उसी सुख की प्राप्ति किया करता है। जो महिषी को देता है वह नाना लोकों में विचरण किया करता है ।।१४।।१५।।

यमवाहस्य जननी महिषी सुगतिप्रदा ।
ताम्बूल पुष्पदानेन याम्याना प्रीतिवर्द्धनम् ।।१६

तेन सम्प्रीणिता सर्वे तस्मिन्क्लेश न कुर्वते ।
गोभूतिलहिरण्यादिदानानि निजशक्तितः ।।१७

मृतोद्देशेन यो दद्याज्जलपात्रञ्च मृण्मयम् ।
उदपानसहस्रस्य फलमाप्नोति मानव ।।१८

यमदूता महारौद्रा कराला कृष्णपिङ्गला ।
न भीषयन्ति त तार्क्ष्यं वस्त्रदाने कृते सति ।।१९

मार्गे वै गम्यमानस्तु तृषार्त्तं श्रमपीडित ।
घटान्न दानयोगेन सुखी भवति निश्चितम् ।।२०

शय्यातूलोपट्टयुता दद्याद्वै द्विजातये ।
तया प्रेतत्वमुक्तोऽसौ मोदते सह दैवतै ।।२१

यमराज के वाहन (महिष) भैंसा की महिषी (भैंस) माता होती है अतएव वह सुगति के प्रदान करने वाली होती है। ताम्बूल और पुष्पों के दान से यमलक के यात्रियों के सुख की वृद्धि होती है तथा वे परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥ १६ ॥ इससे वे सभी प्रीणित अर्थात् प्रसन्न होकर उस मार्ग में कोई भी क्लेश प्राप्त नहीं किया करते हैं। गौ—भूमि–तिल–सुवर्ण आदि के दान अपनी पूर्ण शक्ति से मृतक के उद्देश्य से दिया करता है और मिट्टी का सुन्दर पात्र जल से पूर्ण करके दान किया करता है वह एक सहस्र जल के पात्रों के फल को प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ यमराज के दूत महान् रौद्र अर्थात् भयानक स्वरूप वाले होते हैं—कराल और कृष्ण एवं पिङ्गल वर्ण वाले हुआ करते हैं। हे तार्क्ष्य ! वस्त्रों के दान करने पर वे महान् भीषण यम के दूत उसको नहीं डराया करते हैं ॥ १६ ॥ उस यम पुरी के महान् विशाल मार्ग में गम्यमान (जाता हुआ) प्यास से दुःखित और श्रम से पीड़ित होता है उसके लिये जो घट और अन्न का दान किया जाता है उससे वह निश्चित रूप से सुखी होता है ॥ २० ॥ तूली और पट्ट से युक्त शय्या देव द्विजाति के लिये दान में देनी चाहिए उससे यह प्रेतत्व की योनि से मुक्त होकर देवों के साथ आनन्द का लाभ किया करता है ॥२१॥

एतत्ते कथितं तार्क्ष्य दानमन्त्येष्टिकर्मजम् ।
अधुना कथयिष्येऽहं देहे मृत्युप्रवेशनम् ॥२२

जातस्य मर्त्यलोकेऽस्मिन्प्राणिनो मरणं ध्रुवम् ।
पूर्वकाले मृतानां तु प्राणिनाञ्च खगेश्वर ॥२३

सूक्ष्मो भूत्वा त्वसौ वायुर्निर्गच्छत्यस्य तद्गलात् ।
नवद्वारं रोमभिश्च जातानां तालुरन्ध्रतः ॥२४

पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम् ।
कुणपं पतते पश्चाद्विगते मरुदीश्वरे ॥२५

कालाहतं पतत्येव निराधारो यथा द्रुमः ।
पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश्चैव तथाप्सु च ॥२६

तेजस्तेजसि लीयेत समीरे च समीरणः ।
आकाशे च तथाकाश सर्वव्यापी तु शङ्करे ॥२७
तत्र कामादय. पञ्च काये पञ्चेन्द्रियाणि च ।
एते तार्क्ष्य समाख्याता देहे तिष्ठन्ति तस्कराः ॥२८

हे तार्क्ष्य ! यह तुम्हारे सामने अन्त्येष्टि कर्म मे उत्पन्न दान का वर्णन सब कर दिया है । अब इसके अनन्तर देह मे मृत्यु के प्रवेश को बतलाता हूँ । ॥ २२ ॥ यह प्रदन सिद्धान्त है कि जो मनुष्य लोक मे उत्पन्न हुआ है उसकी मौत निश्चित रूप से होती है । हे खगेश्वर ! पूर्व काल मे मृत प्राणियो का यह वायु सूक्ष्म होकर उनके कण्ठ से निकल जाया करता है । जिन्होंने जन्म ग्रहण किया है उनके प्राण वायु निकालने के अन्य भी मार्ग है । इस देह मे नौ द्वार हैं—रोम हैं और तालु रन्ध्र है—इनसे भी प्राण प्रयाण किया करते हैं ॥२३॥ ॥ २४ ॥ जो पापी होते हैं और घोर पाप कर्मों के करने वाले हैं उनका जीव अपान मार्ग से निश्चय ही निकलता है । इस वायु के स्वामी अर्थात् प्राण के निकल जाने पर पीछे यह कुणप (मृत देह—शव) पड़ा रहा करता है ॥ २५ ॥ काल से आहत होकर अर्थात् काल का कवलित होता हुआ यह मृत देह बिना आधार वाले वृक्ष की भाँति गिर जाता है । इस पाँच भौतिक शरीर का पृथिवी तत्व का भाग तो इस पृथ्वी में लीन हो जाता है—जल का भाग जाकर जल मे लय होता है । तेज-तेज मे—वायु-वायु मे और आकाश-आकाश में लीन हो जाता है । सर्व व्यापी शङ्कर में लीन होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस शरीर मे कामादि पाँच और पाँच इन्द्रियाँ हैं । हे तार्क्ष्य ! ये इस देह मे तस्कर बताये गये हैं ॥२८॥

कामक्रोधौ ह्यहङ्कारो मनस्तत्रैव नायकः ।
संहारकश्च कालाख्यो पुण्यपापेन संयुतः ॥२९
जगतश्च स्वरूपश्च निर्मित स्वेन कर्मणा ।
गच्छेद्देहं पुनः सोऽपि सुकृतं दुष्कृतं तथा ॥३०
पञ्चेन्द्रियसमायुक्तं सर्वैर्विषयैः सह ।
प्रविवेश नवे गेहे गृहे दग्धे यथा गृही ॥३१

शरीरे ये समासीनाः सम्भवे सर्वधातवः ।
मूत्रं पुरीषं तद्योगाद्ये चान्ये धातवस्तथा ॥३२
पित्तं श्लेष्मा तथा मज्जा मासं मेदस्तथैव च ।
अस्थि शुक्रञ्च स्नायुश्च देहेन सह दह्यते ॥३३
एतेषां कथिता तार्क्ष्य संस्थितिः सर्वदेहिनाम् ।
कथयामि पुनस्तेषां शरीरञ्च यथा भवेत् ॥३४
एकस्तम्भस्नायुबद्धं स्थूणाद्वयविभूषितम् ।
इन्द्रियैश्च समायुक्तं नवद्वारं शरीरकम् ॥३५

काम—क्रोध और अहङ्कार उनमे यह मन इन सबका नायक (मुखिया) होता है । यह काल सबका संहारक होता है जो पुण्य और पाप से संयुत होता है ॥ २६ ॥ इस सम्पूर्ण जगत् का स्वरूप अपने ही कर्म के द्वारा निर्मित हुआ है । इसके पश्चात् यह जीवात्मा इस शरीर को त्याग कर पुनः यह सुकृत तथा दुष्कृतो युक्त अन्य देह को प्राप्त किया करता है ॥ ३० ॥ जिस तरह कोई गृही अपने पहिले घर के जल जाने पर तथा अग्नि से दग्ध हो जाने पर रहने के लिये किसी नवीन घर मे प्रवेश किया करता है वैसे ही समस्त विषयो के सहित पाँचो इन्द्रियो से युक्त यह जीवात्मा भी नूतन देह मे प्रवेश किया करता है ॥ ३१ ॥ समुत्पन्न शरीर म समस्त धातुऐं समास्थित रहा करती हैं—मूत्र और मल भी रहता है तथा उसके योग से अन्य जो धातु हैं वे भी रहा करती हैं ॥ ३२ ॥ पित्त-श्लेष्मा (कफ)—मज्जा—मास—मेद—अस्थि—शुक्र और स्नायु ये सभी इस देह के साथ ही दग्ध हो जाया करते हैं ॥ ३३ ॥ हे तार्क्ष्य ! इन सब देह धारियों की ऐसी ही संस्थिति हुआ करती है जो कि तुमको सब बतलादी है । अब मैं तुमको यह बतलाता हूं कि इनको शरीर कैसे प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ एक स्तम्भ वाला जो कि स्नायुओ के जाल से भली भाँति सबद्ध हो रहा है और स्थूणाद्वय से अलकृत है । यह शरीर सब इन्द्रियो से युक्त और नौ द्वारों वाला होता है ॥ ३५ ॥

विपर्ययैश्च समाक्रान्तं कामक्रोधसमाकुलम् ।
रागद्वेषसमाकीर्णं तृष्णादुर्गतिसंयुतम् ॥३६

लोभजालपरिच्छिन्नं मोहवस्त्रेण वेष्टितम् ।
सुबद्धं मायया चैव चेतनाधिष्ठित पुरम् ॥३७
षाट्कौशिकसमुत्पन्न पुर पुरुषसश्रितम् ।
एतद्गुणसमायुक्तं शरीर सर्वदेहिनाम् ॥३८
तिष्ठन्ति देवताः सर्वा भुवनानि चतुर्दश ।
आत्मान ये न जानन्ति ते नराः पशवः स्मृताः ॥३६
एवमेव समाख्यात शरीर ते चतुर्विधम् ।
चतुरशीतिलक्षाणि निर्मितानि मया पुरा ॥४०
स्वेदजा उद्भिज्जाश्चैव अण्डजाश्च जरायुजाः ।
एतत्ते सवमाख्यात यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥४१

यह मानव का शरीर विभिन्न विषयो से समाक्रान्त और काम—क्रोध आदि से घिरा हुआ होता है अर्थात् इसमे काम तथा क्रोध पूर्णतया भरे रहा करते हैं। इस शरीर मे किसी के प्रति राग और किसी के प्रति द्वेष भरा रहा करता है। इस शरीर मे एक तृष्णा अर्थात् विषयो के भोगो की पिपासा ऐसी भरी हुई रहा करती है कि उसकी दुर्गति से यह समन्वित रहता है ॥३६॥ इस मानव के शरीर में लोभ का बहुत विशाल जाल बिछा हुआ है जिससे यह परिच्छिन्न रहता है तथा मोह रूपी वस्त्र से यह ढका लिपटा रहा करता है। ससार की वस्तुओ मे अपने पन का मिथ्या ज्ञान इसे लपेटे हुए रहता है। इसी को मोह कहते हैं। यह शरीर माया से अर्थात् " मैं मेरा—तू तेरा "— इस प्रकार के प्रपञ्च से अच्छी तरह बँधा हुआ है। यह शरीर रूपी नगर एक चेतन तत्त्व के द्वारा अधिष्ठित होता है ॥ ३७ ॥ षाट् कौशिक समुत्पन्न अर्थात् छै कुशाओ से उत्पन्न होने वाला यह पुर पुरुष के सश्रय से युक्त होता है। इस प्रकार के गुणगण से समायुक्त शरीर सभी देह धारियो का हुआ करता है। समस्त देवता स्थित हैं और चौदह भुवन हैं। जो मनुष्य अपनी आत्मा के स्वरूप को नही जानते हैं वे निरे पशु ही कहे गये हैं ॥ ३८ ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार से चार प्रकार के शरीरो का वर्णन तुमको बता दिया है। ये चौरासी लाख शरीर होते हैं जिनका निर्माण मैंने पहिले ही कर दिया है ॥४०॥

चार प्रकार के शरीरों में स्वेदज होते हैं जो पसीने से ही उत्पन्न हुआ करते हैं। उद्भिज्ज होते हैं जो जमीन का भेदन करके वृक्षादि जड़ जीव पैदा होते हैं। स्वेदजों में जूँआ आदि आते हैं। तीसरे अण्डज होते हैं जो अण्डे के रूप में उत्पन्न होकर फिर उनमें से शरीर प्राप्त किया करते हैं जैसे पक्षी आदि हैं। चतुर्थ प्रकार के शरीर जरायुज होते हैं जो जेर में लिपटे हुए माता के उदर से उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य आदि हैं। हे अनघ! तुम्हारे सामने यह सभी बतला दिया है जो कि तुमने मुझसे पूछा था ॥४१॥

२२-देहनिर्णय और उत्पत्ति

कथमुत्पद्यते जन्तुर्भूतग्रामचतुष्टये ।
त्वचा रक्तं तथा मांसं मेदो मज्जास्थि जीवितम् ॥१
पाणिपादौ तथा जिह्वा गुह्यं केशा नखास्तथा ।
सन्धिमार्गाश्च बहुशो रेखानानाविधा तथा ॥२
कामक्रोधौ भयं लज्जा मनो हर्षः सुखासुखम् ।
चित्रितं छिद्रितं वापि वसाजालेन वेष्टितम् ॥३
इन्द्रजालमहं मन्ये संसारेऽसारसागरे ।
कर्त्ता कोऽत्र महाबाहो सर्वं वद मम प्रभो ॥४
कथयामि परं गुह्यं कालोद्धारविनिर्णयम् ।
येन विज्ञातमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥५
साधु पृष्टं त्वया लोके यदिदं जीवकारणम् ।
वैनतेय शृणुष्व त्वमेकाग्रकृतमानसः ॥६
ऋतुकाले तु नारीणां त्यजेद्दिनचतुष्टयम् ।
तिष्ठत्यस्मिन्ब्रह्महत्या पुराकृतसमुद्भवा ॥७

गरुड ने कहा—हे भगवन्! इस भूत समुदाय के चतुष्टय में यह जन्तु कैसे समुत्पन्न हुआ करता है? त्वचा—रक्त—मांस—मेद—मज्जा—अस्थि और जीवित—हाथ—पैर—जिह्वा—गुह्य—केश—नख—जोड़ों के मार्ग तथा अनेक प्रकार की रेखाएँ—काम—क्रोध—भय—लज्जा—मन—हर्ष—सुख—दुःख यह सब चित्रित तथा छिद्रित है और वसा के जाल से वेष्टित है ॥ १ ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ इस सार शून्य संसार के सागर में मैं तो शरीर की रचना को एक इन्द्रजाल (जादू) जैसा ही मानता हूँ। हे प्रभो ! हे महान् बाहुओं वाले ! इस शरीर के निर्माण करने वाला कौन है—यह सब आप बतलाने की कृपा करें ॥ ४ ॥ श्री भगवान् ने कहा—अब मैं तुमको काल के उद्धार का विनिर्णय कहता हूँ जोकि परम गोपनीय है। इसके ज्ञान प्राप्त कर लेने मात्र से ही मनुष्य को सर्वज्ञत्व हो जाया करता है। अर्थात् इसके जानने से फिर वह सभी कुछ का ज्ञाता हो जाता है ॥ ५ ॥ हे गरुड़ ! तुमने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है कि लोक में यह जो जीव का कारण है। हे वैनतेय ! अब तुम एकाग्र मन वाले होकर इसका श्रवण करो ॥ ६ ॥ नारियों को जब मास में ऋतुकाल हो तो चार दिन प्रारम्भ के त्याग देने चाहिएँ। इन चार दिनों में नारियों पर पहिले उत्पन्न की हुई ब्रह्म हत्या स्थित रहा करती है ॥७॥

वेधा शक्रात्समुत्सार्य चतुर्थांशेन दत्तवान्।
तावन्नालोकयेत् वक्त्रं यावत्पापं व्यतिष्ठति ॥८
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति ॥९
सप्ताहात्पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने।
सप्ताहमध्ये यो गर्भस्तत्सम्भूतिर्मलिम्लुचा ॥१०
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
पूर्वसप्तकमुत्सृज्य ततो युग्मेषु संविशेत् ॥११
षोडशर्तु निशा स्त्रीणां सामान्यात्समुदाहृता।
या चतुर्दशमी रात्रिर्गर्भस्तिष्ठति तत्र चेत् ॥१२
गुणभाग्यनिधिस्तत्र पुनो जायेत धार्मिकः।
सा निशा तत्र सामान्यैर्न लभ्येत कदाचन ॥१३
[illegible] गर्भस्तिष्ठति [illegible]।
पञ्चमेऽहनि नारीणां गोरसमाधुर्य्य भोजनम् ॥१४

वेधा अर्थात् ब्रह्मा ने इन्द्र से इस ब्रह्म हत्या को हटा कर इसका च
थी को दे दिया था। इसीलिये तब तक इन नारियों का स्नु ?

मे मुख भी नही देखा जाता है जब तक कि वह ब्रह्म हत्या का पाप इनमें स्थित रहा करता है ।। ८ ।। ऋतु काल मे प्रथम दिन मे यह चण्डाली के समान होती है—दूसरे दिन में ब्रह्म घातिनी हुआ करती है—तीसरे दिन मे यह नारी धोबिन के तुल्य हुआ करती है इन तीन दिन के समाप्त हो जाने पर चौथे दिन मे नारी स्नान करके शुद्ध हुआ करती है ।। ९ ।। एक सप्ताह से यह नारी व्रत तथा अर्चन मे पितृगण और देवों के निमित्त कर्म के योग्य हुआ करती है । इस सप्ताह के बीच मे जो गर्भ होता है उसकी समुत्पत्ति मलिम्लुचा हुआ करती है । अर्थात् चोह कर्म से युक्त होती है ।। १० ।। युग्म रात्रियों मे जो गर्भ स्थिति होती है उससे पुत्र की उत्पत्ति होती है और अयुग्म रात्रियो मे जो गर्भ का आधान होता है उसमे कन्या उत्पन्न हुआ करती है । ऋतुकाल के प्रथम दिन से युग्म और अयुग्म की गणना मानी जाया करती है । अतएव ऋतुकाल के प्रथम सप्ताह का त्याग करके दूसरे सप्ताह मे युग्म रात्रियो में गर्भाधान करना चाहिए ।। ११ ।। साधारण रूप से नारियो के गर्भ धारण करने की सोलह ऋतु-निशा बनाई गई हैं । जो यदि चौदहवीं रात्रि मे गर्भ की स्थिति हो जाती है तो उस गर्भ से गुण और सौभाग्य से समायुक्त परम धार्मिक पुत्र हुआ करता है । वह रात्रि सामान्य पुरुषो के द्वारा कभी प्राप्त ही नहीं हुआ करती है ।।१२।।१३।। बहुधा जितने भी गर्भ होते हैं वे आठ दिन के ही मध्य में हुआ करते हैं । पाँचवें दिन मे नारियो को गोरस माधुर्य भोजन होना चाहिए ।।१४।।

कटुकारञ्च तीक्ष्णञ्च साज्य युवतिभोजनम् ।
स्त्री क्षेत्रमोषधी पात्रं बीज वाप्यमृताशनम् ।।१५
तत्र वप्ता नर. सम्यग्जन्तुस्तत्र निषिच्यते ।
तस्याश्च वातपो वर्ज्य. शीतल केवल चरेत् ।।१६
ताम्बूलगन्धश्रीखण्डै. सम सङ्गः शुभेऽह्नि ।
निषेकसमये यादृड् नरचित्ते विकल्पना ।।१७
तादृक्स्वभावसम्भूतिर्जन्तुर्वसति कुक्षिग ।
शुक्रशोणितसयोगे पिण्डोत्पत्ति प्रजायते ।।१८

वर्द्धते जठरे जन्तुस्तारागपतिरिवाम्बरे ।
चैतन्य बीजरूपे हि शुक्रे नित्यं व्यवस्थितम् ॥१६
काम चित्तञ्च शुक्रञ्च यदा ह्येकत्वमाप्नुयुः ।
तदा द्रवमवाप्नोति योषागर्भाशये नरः ॥२०
रक्ताधिक्ये भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेन्नरः ।
शुक्रशोणितयोः साम्ये गर्भः षण्डत्वमाप्नुयात् ॥२१

स्त्रियों में युवतियों का भोजन कटुकार—तीक्ष्ण और घृत सहित होता है। स्त्री क्षेत्र है—ओषधी धाम है और अमृतात्मन बीज होता है ॥ १५ ॥ वहाँ पर पुरुष उस बीज का वपन करने वाला है। वहाँ पर भली भाँति जन्तु का निषेक होना है। उसको आतप का वर्जन है। केवल शीतल का चरण करे । १६ ॥ ताम्बूल—गन्ध और श्री स्रग्‌ के साथ का शुभ दिन में सङ्ग करे। निषेक के समय में पुरुष के चित्त में जिस प्रकार विशेष कल्पना होती है उसी प्रकार के स्वभाव से युक्त जन्तु की समुत्पत्ति होती है जो कि कुक्षि में स्थित रह कर निवास किया करता है। पुरुष के वीर्य्य और स्त्री के शोणित (रज) के संयोग से ही गर्भ-पिण्ड की उत्पत्ति हुआ करती है ॥ १७ ॥ १८ ॥ आकाश में चन्द्रमा की भाँति वह जन्तु नित्य ही पेट में बढ़ता रहता है। बीज रूप वीर्य में यह चैतन्य नित्य ही व्यवस्थित रहा करता है ॥ १६ ॥ काम-चित्त और शुक्र (वीर्य्य) जब ये तीनों एकत्व रूप को प्राप्त हो जाते हैं उस समय में नर स्त्री के गर्भाशय में द्रवरूप को प्राप्त हुआ करता है।२०। रक्त अर्थात् स्त्री के रज की अधिकता होती है तब नारी होती है और शुक्र अर्थात् पुरुष के वीर्य की अधिकता होती है तो पुत्र होता है। शुक्र और शोणित दोनों ही जब समान होते हैं तो गर्भ षण्डत्व को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ऐसी दशा में स्त्री तथा पुरुष न होकर नपुंसक उत्पन्न हुआ करता है ॥२१॥

अहोरात्रेण कलिलं बुद्बुदं पञ्चभिर्दिनैः ।
दशमेऽह्नि भवेन्मांसमिश्रधातुसमन्वितम् ॥२२
घनमासञ्च विशाहे गर्भस्थो वर्द्धते क्रमात् ।
पञ्चविंशतिपूर्णाहे बलं पुष्टिश्च जायते ॥२३

तथा मासे तु सम्पूर्णे पञ्च तत्त्वानि धारयेत् ।
मासद्वये तु सम्पूर्णे त्वचा मेदश्च जायते ॥२४
मज्जास्थीनि त्रिभिर्मासै केशा गुल्फश्चतुर्थके ।
कर्णौ च नासिकाकुक्षी जायेते मासि पञ्चके ॥२५
कण्ठरन्ध्र तथा पृष्ठ गुह्याख्य मासि सप्तमे ।
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णो गर्भो मासैरथाष्टभि ॥२६
नवमे मासि सम्प्राप्ते गर्भस्थस्य रति स्वयम् ।
इच्छा सञ्जायते तस्य गर्भवासविनि सृतौ ॥२७
नारी वाथ नरो वाथ नपुंस्क वाभिजायते ।
नवमे दशमे वापि जायते यश्च भौतिक ॥२८
प्रसूतवायुनाऽऽकृष्ट पीडया विह्वलीकृत ।
क्षितिर्वारि हविर्भोक्ता पवनाकाशमेव च ॥२६
एभिर्भूतै पीडितस्तु निवद्ध स्नायुबन्धनै ।
त्वचास्थिनाड्या रामाणि मासञ्चैवात्र पञ्चमम् ॥३०
एते पञ्च गुणा प्रोक्ता मया भूमे खगेश्वर ।
यथा पञ्च गुणा आपस्तथा श्रृणु च काश्यप ॥३१

एक दिन और रात्रि में वह गर्भ आरम्भ मे कलिल के स्वरूप मे होता है। पाँच दिन मे वह वुन बुल्ला बन जाता है। दशमे दिन में वह मास मे मिला हुआ धातु से युक्त लोथड़ा जैसा हो जाया करता है ॥ २२ ॥ बीस दिन मे घने मास वाला गर्भ में स्थित क्रम से बढ़ता है। पच्चीस दिन में उसमें कुछ बल और पुष्टि होती है ॥ २३ ॥ इसी प्रकार से एक मास के पूर्ण हो जाने पर वह पाँचों तत्त्वों को धारण कर लेता है। दो मास का समय पूरा हो जाने पर उस गर्भस्थ में त्वचा तथा मेद समुत्पन्न हो जाया करते हैं ॥ २४ ॥ तीन मास में मज्जा और अस्थियाँ एव चौथे मास में केश और गुल्फ पैदा हो जाते हैं। पाँचवें मास में दोनो कान, कुक्षि, नाक उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥ कण्ठ का छिद्र-पीठ---गुह्येन्द्रिय ये सब सप्तम मास मे होते हैं। शरीर सम्पूर्ण अङ्ग और प्रत्यङ्ग आठवें मास में उत्पन्न होकर गर्भ पूर्ण हो जाया करता है ॥२६॥

नवम मास के सम्प्राप्त हो जाने पर गर्भस्थ की स्वयं रति और इच्छा समुत्पन्न हो जाती है कि वह गर्भ के वास से विनिर्मुक्त हो जावे ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर वह नर हो या नारी अथवा नपुंसक हो उत्पन्न हो जाया करता है। नवम मास में अथवा दसवें मास में वह उत्पन्न हुआ करता है और जो भौतिक शरीर होता है वह प्रसूत की वायु से आकृष्ट-होता हुआ पीड़ा से विह्वल होता है। भूमि—वारि—हवि भोक्ता (अग्नि)—वायु और आकाश ये पाँच भूत हैं इनसे पीड़ित और स्नायुओं से बँधा हुआ तथा त्वचा—नाड़ियाँ—रोम और माँस ये पाँच इसमें गुण बताये गये हैं और हे खगेश्वर ! ये पाँच गुण भूमि के हैं इसी प्रकार से पाँच गुण जल के भी होते हैं उन्हें भी हे काश्यप ! तुम मुझसे श्रवण करलो ॥२८॥२९॥३०॥३१॥

लाला मूत्रं तथा शुक्र मज्जा रक्तञ्च पञ्चमम् ।
अपा पञ्च गुणा प्रोक्ता ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः ॥३२
क्षुधा निद्रा च तृष्णा च आलस्य कान्तिरेव च ।
तेजः पञ्चगुणं तार्क्ष्य प्रोक्तं सर्वत्र योगिभिः ॥३३
धावनं श्वसनञ्चैव आकुञ्चनप्रसारणम् ।
निरोधः पञ्चमः प्रोक्तो वायोः पञ्च गुणाः स्मृताः ॥३४
रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहस्तथैव च ।
इत्येतत्कथितं तार्क्ष्य वायुजं गुणपञ्चकम् ॥३५
घोषश्छिद्राणि गाम्भीर्यं श्रवणं सर्वसंश्रयः ।
आकाशस्य गुणाः पञ्च ज्ञातव्यास्तार्क्ष्य यत्नतः । ३६
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासा बुद्धीन्द्रियाणि च ।
पाणिपादौ गुदं वाक्चोपस्थं कर्मेन्द्रियाणि च ॥३७
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ।
गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यशः तथा ॥३८
अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशमी तथा ।
पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाड्यः ॥३९

लाला (लार)–मूत्र–शुक्र (वीर्य)—मज्जा और पांचवें रक्त ये पांच गुण इस भौतिक शरीर में जल के हुआ करते हैं सो इन्हें भी भली भांति समझ लेना चाहिए ॥ ३२ ॥ क्षुधा (भूख)–नींद–प्यास—आलस्य और कान्ति तथा तेज ये पाँच गुण हे तार्क्ष्य ! योगियों ने सवत्र अग्नि या तेज के बताये हैं ॥ ३३ ॥ धावन (दौड़ना)–श्वास लेना—आकुञ्चन (सिकुड़ जाना)–प्रसारण (फैल जाना) और निरोध (एक जगह रुक जाना) ये पाँच गुण इस शरीर में वायु के होते है जो कि ज्ञाता पुरुषों के द्वारा बताये गये हैं ॥ ३४ ॥ राग (किसी से प्रेम करना)–द्वेष–लज्जा–भय और मोह हे तार्क्ष्य ! ये पांच गुण भी वायु से ही उत्पन्न होने वाले होते हैं ॥ ३५ ॥ ध्वनि करना–छिद्रों का होना गम्भीरता–सुनना और सबका सश्रय हे तार्क्ष्य ! ये पाँच गुण आकाश तत्व के इस शरीर म जान लेने चाहिए ॥ ३६ ॥ इस शरीर में पाँच ज्ञान प्राप्त करने वाली इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें बुद्धीन्द्रिय–इस नाम स कहा जाया करता है और वे श्रोत्र—त्वचा—चक्षु—जिह्वा और नासिका ये हैं। इनके अतिरिक्त इस मानस के शरीर म पाँच कर्मेन्द्रिय अर्थात् काम करने वाली इन्द्रियाँ होती हैं उनके नाम हाथ—पैर—गुदा—वाक् और उपस्थ (गुह्येन्द्रिय) ये होते हैं ॥ ३७ ॥ इस शरीर मे दश प्रधान नाड़ियाँ होती हैं उनके नाम इडा—पिङ्गल• सुषुम्ना—गान्धारी—गजा जिह्वा—पूषा—यशा—अलम्बुषा–कुहू और शङ्खिनी ये होते हैं जाकि इस मनुष्य के पिंड के मध्य में स्थित रहा करती हैं ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥

प्राणोऽपान समानश्च उदानो व्यान एव च।
नाग कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जय ॥४०
इत्येते वायव प्रोक्ता दश देहेषु सस्थिता ।
केवल भुक्तमनश्च पुष्टिद सर्वदेहिनाम् ॥४१
नयति प्राणदो वायु शरीरे सर्वसन्धिषु ।
आहारो भुक्तमात्रस्तु वायुना क्रियते द्विधा ॥४२
सम्प्रविश्य गुदे याति पृथगन्न पृथग्जलम् ।
ऊर्ध्वमग्नेर्जल कृत्वा तदन्नञ्च जलोपरि ॥४३

अग्नेश्चाधः स्थितः प्राणो ह्यग्निं तं तु धमेच्छनैः ।
वायुना धम्यमानोऽग्निः पृथक्किट्टं पृथग्रसम् ॥४४
मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहात्पृथग्भवेत् ।
कर्णाक्षि नासिका जिह्वा दन्ता नाभिर्गुदं वपुः ॥४५
नखा मलाश्रयञ्चेदं विण्मूत्रं वेत्यनन्तरम् ।
शुक्रशोणितसंयोगाद्देहः षाट्कौशिकः स्मृतः ॥४६

इस शरीर में दश प्रकार की वायु स्थित रहा करती है उनके नाम ये हैं—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ॥४०॥ इतनी ये दश प्रकार की वायु देह मे स्थित रहने वाली बताई गई हैं। खाये हुए अन्न को जो समस्त देहधारियों को पुष्टि का देने वाला है उसे केवल प्राण देने वाला वायु सब सन्धियो मे ले जाया करता है। जो आहार खाया जाता है उसको यह वायु दो भागो मे कर दिया करता है ॥४१।४२॥ गुदा में प्रवेश करके अन्न पृथक् और जल पृथक् हो जाया करता है। अग्नि के ऊपर जल को करके उसके ऊपर उस खाये हुए अन्न को कर देता है और उस अग्नि के नीचे स्थित प्राण वायु धीरे-धीरे उस अग्नि का धमन किया करता है। प्राण वायु के द्वारा धमन किया हुआ जठराग्नि उस भुक्त अन्नादि पदार्थ के रस को अलग कर देता है और उसका किट्ट भाग (फुजला) है उसे अलग कर दिया करता है। बारह प्रकार के मल होते हैं। वह किट्ट भाग (फुजला) इस शरीर से भिन्न होकर निकला करता है। भोजन का सार भाग जो रस ही होता है जिससे इस देह की पुष्टि एवं वृद्धि होती है। वे बारह मल कान आँख, नाक, जीभ, दाँत, नाभि, गुदा, वपु (शरीर), नख, मलाश्रय, विष्ठा और मूत्र ये होते हैं अर्थात् इनसे बाहिर हुआ करते हैं। शुक्र और शोणित के संयोग से विरचित यह देह "षाट् कौषिक"—इस नाम से कहा गया है ॥ ४३ से ४६ ॥

रोमकोटिस्तथा तिस्रो ह्यर्द्धकोटिसमन्विता ।
द्वात्रिंशद्दशनास्तत्र सामान्याद्विनतायुत ॥४७
विंशतिस्तु नखाः केशास्त्रिलक्ष मुखमूर्ध्वजाः ।
मांस पलसहस्रं कं सामान्याद्देहसंस्थितम् ॥४८

रक्तं पलशतं तार्क्ष्य बद्धमेतत्पुरातनैः ।
पलानि दश मेदश्च त्वचा चैव तु तत्समं ॥४६
पल द्वादशक मज्जा महारक्तं पलत्रयम् ।
शुक्र द्विकुडव ज्ञेयं शोणितं कुडवं स्मृतम् ॥५०
श्लेष्मणाश्च षडर्द्धञ्च विण्मूत्रं तत्प्रमाणतः ।
एष पिण्ड. समाख्यातो वैभवं सम्प्रचक्ष्महे ॥५१
ब्रह्माण्डे ये गुणा सन्ति शरीरे ते व्यवस्थिता. ।
पातालभूधरा लोकास्तथा द्वीपाः ससागरा. ।
आदित्याद्या ग्रहा. सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः ॥५२
पादाधस्तु तल ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितल तथा ।
जानुभ्या सुतल विद्धि जङ्घासु च तलातलम् ॥५३
तथा रसातलञ्चोर्वोर्गुह्यदेशे महातलम् ।
पाताल कटिसस्थ तु पादतो लक्षयेद्बुध ॥५४

इस शरीर मे साढ़े तीन करोड रोमो की श्रेणी होती है । इनमे बत्तीस दाँत हुआ करते हैं । हे विनिता के पुत्र ! ये सामान्य रूप से सभी के शरीरो मे इनकी संख्या बताई गई है ॥४७॥ बीस इसमे नख होते हैं और मुख तथा मस्तक मे होने वाले केश तीन लाख हुआ करते हैं । सामान्य तथा इस शरीर मे एक सहस्र पल माँस हुआ करता है जो कि इसमे स्थित रहना है ॥४८॥ एक सौ पल इस देह में रक्त होता है, ऐसा हे तार्क्ष्य ! पुरातन पुरुषो ने यह सब बताया है । दश पल इसमे मेद होता है और त्वचा भी मेद के ही समान हुआ करती है ॥४६॥ बारह पल मज्जा होती है । महा रक्त तीन पल हुआ करता है । दो कुडव शुक्र होते है और शोणित एक कुडव होता है ॥५०॥ श्लेष्मा छै पल होता है और उसका आधा विट् और मूत्र होता है जो उसके प्रमाण से हुआ करता है । इस प्रकार का यह पिण्ड कहा गया है । अब इसका वैभव बतलाते है ॥५१॥ इस समस्त ब्रह्माण्ड में जो भी गुण होने हैं वे सब इस मानव के शरीर में स्थित हुआ करते हैं । पाताल, भूधर, लोक, द्वीप और सागर, आदित्य से आदि लेकर समस्त ग्रह इस पिण्ड के मध्य में स्थित रहा

रते हैं ॥५२॥ पादों से नीचे तल जानना चाहिए और पैरों से ऊपर वितल, ानुओं से सुतल समझो तथा जाँघों में तलातल है ॥५३॥ ऊरुओं में रसातल ौर गुह्य देश में महातल, कटि प्रदेश में स्थित पाताल है। इस प्रकार से बुध ुरुष को देखना चाहिए ॥५४॥

भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्ध्वतः ।
स्वर्लोकं हृदये विन्द्यात्कण्ठदेशे महस्तथा ॥५५
जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके ।
सत्यलोकं महारन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश ॥५६
त्रिकोणे संस्थितो मेरुरधःकोणे च मन्दरः ।
दक्षिणे चैव कैलासो वामकोणे हिमाचलः ॥५७
निषधश्चोर्ध्वभागे तु दक्षिणे गन्धमादनः ।
रमणो वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वताः ॥५८
अस्थिस्थाने स्थितो जम्बुः शाकं मज्जासु संस्थितम् ।
कुशद्वीपः स्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरः स्थितः ॥५९
त्वचायां शाल्मलीद्वीपो गोमेदो रोमसञ्चये ।
नखस्थं पुष्करद्वीपं सागरास्तदनन्तरम् ॥६०

नाभि के मध्य में भूर्लोक है। उसके ऊपर भुवर्लोक है। हृदय में स्वर्लोक है तथा कण्ठ देश में महर्लोक है ॥५५॥ मुख प्रदेश में जनलोक है और ललाट में तपोलोक है। महारन्ध्र में सत्यलोक स्थित रहता है। इस तरह से इस देह में चौदह भुवन विद्यमान रहा करते हैं ॥५६॥ त्रिकोण में मेरु और अधःकोण में मन्दर स्थित है। दक्षिण में कैलास है तथा वाम कोण में हिमाचल महागिरि है ॥५७॥ ऊर्ध्व भाग में निषध है और दक्षिण भाग में गन्धमादन है। वाम रेखा में रमणगिरि है। इस प्रकार से ये सातों कुल पर्वत इस देह में स्थित रहते हैं ॥५८। अस्थियों के स्थान में जम्बु द्वीप होता है और मज्जाओं में शाक द्वीप है। मांस में कुश द्वीप है और शिर में क्रौञ्च द्वीप स्थित रहा करता है। ॥५९॥ त्वचा में शाल्मली द्वीप है तथा रोमों के सञ्चय में गोमेद है। नखों में

स्थित पुष्कर द्वीप है। इसके अनन्तर इस देह में सागरों की स्थिति बताई ज है ॥६०॥

क्षीरोदश्च तथा मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागरः।
सुरोदधि श्लेष्मसंस्थो मज्जाया घृतसागरः ॥६१
रसोदधि रसे विन्द्याच्छोणिते दधिसागरम्।
स्वादूदकश्च विट्स्थाने गर्भोदं शुक्रसंस्थितम् ॥६२
नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे तु चन्द्रमाः।
लोचनाभ्यां कुजो ज्ञेयो हृदये च बुधः स्मृतः ॥६३
विष्णुस्थाने गुरुं विन्द्याच्छुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः ॥६४
नाभिस्थाने स्मृतो मन्दो मुखे राहुः स्मृतः सदा।
पादस्थाने स्मृतः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम् ॥६५
विभक्तश्च समासाद्यात आपादतलमस्तका।
उत्पन्ना ये हि संसारे म्रियन्ते ते न संशयः ॥६६
बुभुक्षा च तृषा रौद्राद्याद्योद्भूता च मूर्च्छना।
यत्र पीड़ास्त्विमा रौद्राः सर्पवृश्चिकदंशजाः ॥६७
तप्तवालुकमध्येन प्रज्वलद्वह्निमध्यतः।
केशग्राहैः समाक्रान्ता नीयन्ते यमकिङ्करैः ॥६८

मूत्र में क्षीरोद है और क्षीर में क्षीरोद सागर है। श्लेष्मा में स्थित सुरोदधि है तथा मज्जा में घृत सागर स्थित रहा करता है ॥६१॥ रस में रसोदधि और शोणित में दधि सागर जान लेना चाहिए। विट् स्थान में स्वादूदक एवं शुक्र में संस्थित गर्भोद है। इस तरह ये सब सागर इस शरीर में स्थित रहा करते हैं ॥६२॥ अब आदित्य आदि सब ग्रहों की स्थिति बताते हैं—नाद चक्र में सूर्य स्थित रहते हैं और बिन्दु चक्र में चन्द्र ग्रह की स्थिति है। दोनों नेत्रों मङ्गल तथा हृदय में बुध स्थित रहा करता है ॥६३॥ विष्णु के स्थान में गुरु रहते हैं और शुक्र में शुक्र ग्रह की स्थिति रहती है ॥६४॥ नाभि के स्थान में शनि का निवास है तथा मुख में सदा राहु विराजमान रहा करता है। पैरों के स्थान में केतु ग्रह की स्थिति रहती है। इस प्रकार इस शरीर में ग्रह मण्डल

विराजमान रहा करता है। पाद तल से मस्तक पर्यन्त विभक्त इस शरीर का वर्णन किया गया है। जो इस संसार में जन्म ग्रहण करके उत्पन्न हुए हैं वे सभी अवश्य ही मृत्यु के ग्रास हुआ करते हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। ॥६५।६६॥ भूख और प्यास आदि से होने वाली मूर्च्छना रौद्र से होती हैं। जहाँ ये पीड़ायें हैं वहाँ सर्प, बिच्छुओं के दशन से उत्पन्न रौद्र है ॥६७॥ तपी हुई बालू के मध्य में और जलती हुई आग के बीच से होकर यम के दूत चोटी पकड कर घेरे हुए वहाँ ले जाया करते हैं ॥६८॥

पापिष्ठास्त्वधमास्तार्क्ष्यं दयाधर्मविवर्जिताः ।
यमलोके वसन्त्येव कुट्या जन्म च विद्यते ॥६९
एव सञ्जायते तार्क्ष्य मर्त्ये जन्तुः स्वकर्मभिः ।
आयुः कर्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्यस्यव देहिनः ॥७०
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ।
सुख दुःख भय क्षेम कर्मणैवाभिपद्यते ॥७१
अधोमुख चोर्ध्वपाद गर्भाद्वायुः प्रकर्षति ।
जन्मतो वैष्णवी माया सम्मोहयति सत्वरम् ॥७२
स्वकर्मकृतसम्बन्धो जन्तुर्जन्म प्रपद्यते ।
सुकृतादुत्तमो भोगी भाग्यवान्सुकुले भवेत् ॥७३
यथा दुष्कृतकर्मा हि कुले हीने प्रजायते ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः पापकृद्दुःखभाजनः ।
उत्पत्तिलक्षणं जन्तोः कथितं ऋषिपुङ्गव ॥७४

हे तार्क्ष्य ! जो बडे भारी पापिष्ठ पुरुष होते हैं और महान् अधम होते हैं जिनमें दया और धर्म नाम मात्र को भी नहीं हुआ करते हैं वे उस यमराज के लोक में निवास किया करते हैं और उनका जन्म कुटी में हुआ करता है। ॥६९॥ हे गरुड ! इस प्रकार से इस मनुष्य लोक में यह जन्तु अपने ही किये हुए कर्मों के विपाक के वशीभूत होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं। मनुष्य की आयु उसका कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये पाँच—कितना और किस प्रकार के

होंगे ?—इन सब पाँचों बातों को जब यह जीवात्मा गर्भ में स्थित रहा करता तभी सृजन हो जाता है ॥७०॥ कर्म के अनुसार ही जन्तु का जन्म होता है और कर्मों के अनुरूप ही उसका लय अर्थात् मृत्यु हुआ करती है। सुख, दुःख, भय, क्षेम ये सभी कर्मों के अनुकूल ही हुआ करते हैं ॥७१॥ नीचे की ओर मुख वाले तथा ऊपर की तरफ पैरों वाले इसको वायु गर्भाशय से खींचकर लाता है। जन्म होते ही यह वैष्णवी माया इसको बहुत ही शीघ्र सम्मोहित कर दिया करती है ॥७२॥ अपने कर्मों के अनुसार सम्बन्ध वाला यह जन्तु जन्म ग्रहण किया करते हैं। यदि इसके कुछ सुकृत होते हैं तो यह उत्तम कुल में जन्म लेकर भोगों के भोगने वाला होता है और बड़ा भाग्यवान् हुआ करता है ॥७३॥ यदि दुष्कृत में युक्त कर्म होते हैं तो यह हीन कुल में जन्म लेता है और महा दरिद्र तथा व्याधियों से प्रमित, महान् मूढ एवं पापों के करने वाला और पूर्ण दुःखों का पात्र हुआ करता है। हे ऋषि के पुत्र ! मैंने यह सब इस प्राणी की उत्पत्ति का लक्षण तुमको बता दिया है ॥७४॥

२३—यमलोक विवरण

यमलोक कियन्मात्रं त्रैलोक्ये सचराचरे।
विस्तारं तस्य मे ब्रूहि अध्वा चैव कियान्स्मृतः ॥१
कैः कैः पापैः कृतैर्देव केन वा शुभकर्मणा।
गच्छन्ति मानवास्तत्र कथयस्व जनार्दन ॥२
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः।
यमलोकस्य चाध्वानं ह्यन्तरा मानुषस्य च ॥३
ध्माततात्रमिवातप्तो ज्वलन्दुर्गो महापथः।
तत्र गच्छन्ति पापिष्ठा मानवा मूढचेतसः ॥४
कण्टकास्तीक्ष्णकाश्चैव विविधा घोरदारुणाः।
तत्तु वर्त्म क्षितिर्यात्र हुताशश्च तयोल्वणः ॥५
वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः।
गृहीतकालपाशैस्तु कृतैः कर्मभिरुल्वणैः ॥६

तस्मिन्मार्गे न चाह्नार्यं येन प्राणान्प्रपोषयेत् ।
जलं न दृश्यते तत्र तृषा येन विलीयते ॥७

गरुड ने कहा—हे भगवन् ! इस चर और अचर से युक्त त्रैलोक्य मे यमलोक कितना विस्तृत है और उसका पूर्ण स्वरूप तथा विस्तार बतलाइये और यह भी बताने की कृपा करें कि उसका मार्ग कितना कहा गया है ? ॥१॥ हे जनार्दन देव ! किये हुए किन-किन पापों के द्वारा अथवा शुभ कर्मों से मनुष्य वहाँ जाया करते हैं यह भी वर्णन कीजिए ॥२॥ श्री भगवान् बोले—इस मनुष्य लोक और यमलोक के बीच का अन्तर छयासी हजार योजन का है । इतना ही लम्बा यमपुरी का मार्ग होता है ॥३॥ घमाये हुए ताम्र के समान तप्त जलता हुआ दुर्ग कठिन वह महा पथ होता है । वहाँ पर उस महा मार्ग में अत्यन्त पापी मूढ चित्त वाले मानव जाया करते हैं ॥४॥ वे मार्ग ऐसे भीषण हैं कि उनमे बहुत तीक्ष्ण काँटे होते हैं और वे भी अनेक प्रकार के घोर एव दारुण हुआ करते हैं । इन कण्टकों से उस मार्ग की भूमि व्याप्त रहती है तथा उसमें महान् उल्वण अग्नि रहा करती है ॥५॥ उस मार्ग मे वृक्षों का बिल्कुल अभाव है । वहाँ ऐसी कोई छाया नही है जहाँ पर मनुष्य विश्राम कर लेवे । किये हुए अत्यन्त तीव्र एवं उल्वण कर्मों के द्वारा मनुष्य कालपाश से बँधे हुए रहा करते हैं ॥६॥ उस मार्ग मे भोजन के योग्य अन्न आदि कुछ भी नही होता है जिसके द्वारा मनुष्य अपने प्राणों का पोषण कर सके । वहाँ उस महा विशाल मार्ग में कही भी जल दिखलाई नही देता है जिसे पान कर प्यास को शान्त किया जा सके ॥७॥

क्षुधया पीडितो याति तृषया च महापथि ।
शीतेन कम्पितः क्वापि यममार्गेऽतिदुर्गमे ॥८
यद्यस्य यादृश पाप स पन्थास्तस्य तादृशः ।
सुदीना. कृपणा मूढा दुर्लंघ्यांस्तांस्तरन्ति वै ॥९
रुदन्ति करुणं केचित्केचिद्रौद्रं वदन्ति वै ।
आत्मकर्मकृतैर्दोषैस्तप्यमाना मुहुर्मुहुः ॥१०

ईदृग्विधः स वै पन्था विज्ञेयो दारुणः खग ।
वितृष्णा ये नरा लोके सुखं तस्मिन्व्रजन्ति ते ॥११
यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवैः ।
तानि तान्युपतिष्ठन्ति यमलोके पुरःसरम् ॥१२
पापिनां नोपतिष्ठन्ति दत्ता श्राद्धजलाञ्जलिः ।
भ्रमन्ति वायुभूताश्च ये क्षुद्राः पापकर्मिणः ॥१३
ईदृशं वर्त्म वै रौद्रं कथितं तव सुव्रत ।
पुनश्च कथयिष्यामि यमलोकस्य या गतिः ॥१४

उस महापथ में मनुष्य क्षुधा और प्यास से पीडित होकर गमन किया करता है । कहीं पर इतना अधिक शीत उस मार्ग में होता है कि उसके कारण काँपने लगता है और उस दुर्गम यमपुरी की यात्रा करता रहता है ॥८॥ वह महामार्ग सभी के लिये समान नहीं हुआ करता है । वह तो जिसका जैसा पाप होता है उस जन्तु के लिए उसी प्रकार का मार्ग हो जाया करता है । जो अत्यन्त दीन, कृपण और मूढ होते हैं वे दुःखों से व्याप्त होकर उसे पार किया करते है ॥९॥ कुछ लोग मार्ग की असह्य वेदना से रुदन किया करते हैं—कुछ ऐसे लोग भी हैं जो रौद्र भाषण किया करते हैं और अपने किये हुए पाप कर्मों का स्मरण करके बार-बार सन्तप्त होते रहते हैं ॥१०॥ हे खग ! यह मार्ग इस प्रकार का बहुत ही दारुण होता है । जो मनुष्य बिना तृष्णा वाले होते हैं वे उस मार्ग में सुख पूर्वक गमन किया करते हैं ॥११॥ इस भू-लोक में मनुष्यों के द्वारा जो-जो भी दान दिये जाते हैं वे-वे सब यमलोक में आगे ही मिला करते हैं ॥१२॥ दी हुई श्राद्ध की जलाञ्जलि पापियों को वहाँ नहीं उपस्थित हुआ करती है । जो क्षुद्र पाप कर्मों के करने वाले होते हैं वे वायुभूत होकर इधर-उधर भ्रमण किया करते हैं ॥१३॥ हे सुन्दर व्रत वाले ! यमलोक का मार्ग इस तरह का महान् रौद्र स्वरूप वाला होता है जिसका वर्णन हमने तुम्हारे सामने कर दिया है । अब मैं फिर यमलोक की जो गति होती है उसे तुमको बतलाता हूँ ॥१४॥

याम्यनैर्ऋतयोर्मध्ये पुरं वैवस्वतस्य च ।
सर्वं वज्रमयं दिव्यमभेद्यं यत्सुरासुरैः ॥१५

चतुरस्रं चतुर्द्वारं सप्तप्राकारतोरणम् ।
स्वयं तिष्ठति तस्यान्तर्यमो दूतैः समन्वितः ॥१६
योजनानां सहस्रं हि प्रमाणेन तु दृश्यते ।
सर्वं रत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कवर्चसम् ॥१७
तद् गृहं धर्मराजस्य विस्तीर्णं काञ्चनप्रभम् ।
पञ्चविंशप्रमाणेन योजनानि समुच्छ्रितम् ॥१८
वृत्तं स्तम्भसहस्रैस्तु वैदूर्य्यमणिमण्डितम् ।
मुक्ताजालगवाक्षं तु पताकाशतभूषितम् ॥१९
घण्टाशतनिनादाढ्यं तोरणानां शतैर्वृतम् ।
एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर्भूषितं सदा ॥२०
तत्रस्थो भगवान्धर्म आसने नियमे शुभे ।
दशयोजनविस्तीर्णे नीलजीमूतसन्निभे ॥२१

याम्य और नैर्ऋत्य दिशाओं के मध्य में यमराज का पुर है। वह पूरा नगर वज्रमय, अत्यन्त दिव्य और सुर तथा असुरों के द्वारा भी भेदन न करने के योग्य है ॥१५॥ वह नगर चौकोर, चार द्वारों वाला और सात प्राकार और तोरणों से युक्त है। इस पुर में यमराज स्वयं भीतर अपने दूतों से समन्वित होकर रहा करते हैं ॥१६॥ वह यमराज का पुर एक सहस्र योजनों के प्रमाण वाला है और वह सब परम दिव्य रत्नों से पूर्ण है तथा विद्युत् की ज्वाला एवं सूर्य के वर्चस के सदृश देदीप्यमान है ॥१७॥ वह धर्मराज का घर अति विस्तीर्ण तथा सुवर्ण की प्रभा के समान प्रभा वाला है। पच्चीस योजन प्रमाण की उसकी ऊँचाई है ॥१८॥ सहस्रों स्तम्भों से युक्त एवं वैदूर्य मणियों से मण्डित है। उस नगर में मोतियों की लड़ियों के जाल लगे हुए हैं—सुन्दर गवाक्ष (झरोके) हैं और सैकड़ों पताकाओं से वह विभूषित है ॥१९॥ यमराज के नगर में सैकड़ों घण्टे लगे हुए हैं जिनकी "टन-टन" की घोर ध्वनि से सारा पुर निनादित रहा करता है। सैकड़ों तोरणों से वह युक्त है। एवमादि तथा अन्य विविध भूषणों से वह सदा विभूषित रहता है ॥२०॥ वहाँ पर भगवान् धर्मराज स्थित रहा करते हैं। उनका आसन परम शुभ है और वे नियमों में समाहित रहते हैं।

वह उनका आसन दश योजन विस्तार वाला और नील जीमूत (मेघ) तुल्य है ॥२१॥

धर्मज्ञो धर्मशीलश्च धर्मयुक्तहितो यमः ।
भयदः पापयुक्तानां धर्मिणाञ्च सुखप्रदः ॥२२
मन्दमारुतसंयोगैर्विविधैरुत्सवैस्तथा ।
व्याख्याभिर्बहुभिर्युक्तः शङ्खवादित्रनिस्वनैः ॥२३
पुरमध्ये प्रवेशे तु चित्रगुप्तस्य वै गृहम् ।
पञ्चविंशतिसंख्यानां योजनानां प्रमाणतः ॥२४
दशोच्छ्रितं महादिव्यं लोहप्राकारवेष्टितम् ।
प्रतोलीशतसञ्चारं पताकाशतशोभितम् ॥२५
दीपिकाशतसंकीर्णं गीतध्वनिसमाकुलम् ।
चित्रितं चित्रकुशलैश्चित्रगुप्तस्य वै गृहम् ॥२६
मणिमुक्तामये दिव्ये आसने परमाद्भुते ।
तत्रस्थो गणयत्यायुर्मानुषेष्वितरेषु च ॥२७
न मुह्यति कथञ्चित्सः सुकृते दुष्कृतेऽपि च ।
जन्मनोपार्जितं यावत्सदसद्वेत्ति तस्य तत् ॥२८

धर्मराज धर्म के पूर्ण ज्ञाता हैं और उनका स्वभाव भी धर्म से युक्त होता है। धर्मराज धर्म से युक्त हित वाले हैं। जो पाप कर्मों से युक्त प्राणी होते हैं उनको भय देने वाले हैं और जो धर्म से युक्त जन्तु होते हैं उनको वे सुख प्रदान करने वाले हुआ करते हैं ॥२२॥ मन्द वायु के संयोग से युक्त तथा अनेक तरह के उत्सवों से परिपूर्ण, बहुत तरह की व्याख्याओं से सम्पन्न और शङ्ख तथा बहुत से वादित्रों की ध्वनि से पूर्ण वह पुर होता है ॥२३॥ यमराज के पुर में प्रवेश करने में चित्रगुप्त का गृह आता है जो पच्चीस योजनों के प्रमाण वाला है ॥२४॥ चित्रगुप्त के गृह की ऊँचाई दश योजन है और यह महान् दिव्य है तथा लोह के प्राकार (परकोटा) से वेष्टित है अर्थात् चारों ओर लोहे की दीवार बनी हुई है। इस गृह में एक सौ प्रतोली (गली) है जिनमें सञ्चार होता है और सौ पताकाओं से शोभा युक्त है ॥२५॥ सैकड़ों दीपिकाओं से यह गृह सङ्कीर्ण

था चारों ओर इसमें गीतों की ध्वनि भरी रहा करती है। बड़े कुशल चित्र-
रों के द्वारा चित्रगुप्त का गृह चित्रित किया हुआ है ॥२६॥ उस गृह में एक
यन्त अद्भुत मणियों और मोतियों के द्वारा निर्मित परम दिव्य आसन है
न पर विराजमान चित्रगुप्त मनुष्यों तथा इतर प्राणियों की आयु की गणना
या करते हैं ॥२७॥ वह सुकृत और दुष्कृत में भी किसी समय में किसी भी
कार से मोह को प्राप्त नहीं होते हैं। जन्मों में उपार्जित उसका कर्म सद् हो
। असद् हो जितना भी होता है उस पर भली-भाँति विचार किया करते हैं।
ो धर्म अठारह दोषों से रहित इसका किया हुआ होता है उसे यह लिख लेते
। चित्रगुप्त के घर से पूर्व दिशा में ज्वर का महान् गृह होता है ॥२८।२९॥

दशाष्टदोषरहित कृत कर्म लिखत्यसौ ।
चित्रगुप्तगृहात्प्राच्यां ज्वरस्यास्ति महागृहम् ॥२९
दक्षिणे चापि शूलस्य लूताविस्फोटकस्य च ।
पश्चिमे कालपाशस्य अजीर्णस्यारुचेस्तथा ॥३०
मध्यपीठोत्तरे ज्ञेया तथा चान्या विसूचिका ।
ऐशान्यां वै शिरोर्त्तिः स्यादाग्नेय्यां चैव मूर्च्छना ॥३१
अतिसारस्तु नैर्ऋत्यां वायव्यां दाहसंज्ञकः ।
एभि. परिवृतो नित्यं चित्रगुप्तः स तिष्ठति ।
यत्कर्म क्रियते यैश्च तत्सर्वं तु लिखत्यसौ ॥३२
धर्मराजगृहद्वारि दूतास्तादृशं तथा दिशि ।
तिष्ठन्ति पापकर्माणः पीडयन्तो नराधमान् ॥३३
यमदूतैर्महापाशैस्ताड्यमानाश्च मुद्गरैः ।
वध्यन्ते विविधैः पाशैः पूर्वकर्मकृतैर्नराः ॥३४
नानाप्रहरणैश्चैव नानायन्त्रैस्तथापरे ।
पीड्यन्ते पापकर्माणः क्रकचैः काष्ठवद्द्विधा ॥३५

चित्रगुप्त के गृह से दक्षिण में शूल और लूता विस्फोटक का गृह है।
पश्चिम दिशा में कालपाश, अजीर्ण और अरुचि का गृह है ॥३०॥ मध्य पीठ के
उत्तर में विसूचिका (हैजा) की स्थिति जाननी चाहिए। ऐशानी

वेदना और आग्नेयी दिशा में मूर्च्छना स्थित है ॥३१॥ नैर्ऋत्य दिशा में अति-सार और वायव्य उपदिशा मे दाह सज्ञा वाली व्याधि रहा करती है। इस प्रकार से इन सब रोगों से निरव हो घिरे हुए रहने वाले चित्रगुप्त वहाँ समास्थित होते हैं। जिन्होने जो भी कर्म किया है या किया करते हैं उन सबको यह चित्र-गुप्त लिखा करते हैं ॥३२॥ हे तार्क्ष्य ! धर्मराज के गृह के द्वार पर दिशाओं में दूत स्थित रहा करते हैं और जो अधम नर पाप कर्म करने वाले होते हैं उन्हें वे दूत बराबर पीड़ा दिया करते हैं ॥३३॥ मनुष्य अपने पहिले किये हुए कर्मों के कारण से उन दूतों के द्वारा अनेक प्रकार के पाशों से बाँध दिये जाया करते हैं तथा महापाशों से और मुद्गरों से वे अच्छी तरह ताड्यमान (पीटे हुए) हुआ करते हैं ॥३४॥ अनेक प्रहरणों से तथा दूसरे प्रकार के विविध यन्त्रों से और क्रकचों से पाप कर्म करने वाले प्रताड़ित एवं दो भागों मे काष्ठ की भाँति कर दिये जाते हैं ॥३५॥

अन्ये च ज्वलमानैस्तु अङ्गारैः परितो भृशम् ।
पूर्वकर्मविपाकेन श्राप्यन्ते लोहपिण्डवत् ॥३६
क्षिप्ताश्चान्ये धरापृष्ठे कुठारेण च कर्त्तिताः ।
क्रन्दमानाश्च दृश्यन्ते पूर्वकर्मविपाकतः ॥३७
केचिन्निगडपाशैश्च तैलपाकैस्तथापरे ।
हन्यन्ते यमदूतैश्च पापिष्ठाः सुभृशं नराः ॥३८
ऋणानि प्रार्थयन्त्यन्ये देहि देहीति कोटिशः ।
यमलोके मया दृष्टा स्वमांसं भक्षयन्ति हि ॥३९
इत्येवं बहवस्तार्क्ष्य नरकाः पापिनां स्मृताः ।
किमेभिर्विस्तरप्रोक्तैः सर्वशास्त्रेषु भाषितैः ।
दानोपकारं वक्ष्यामि यथा तत्र सुखं भवेत् ॥४०

अन्य पापी लोग जलते हुए अङ्गारों से चारों ओर पूर्वकृत कर्मों के विपाक से लोहे के पिण्ड की भाँति अत्यन्त तपाये एवं गर्म करके सताये जाते हैं ॥३६॥ कुछ दूसरे पाप कर्मों के करने वाले भूमि के ऊपर फेंके गये कुठार के द्वारा विकर्त्तित (काटे हुए) किये जाते हैं और वे अपने पहिले कर्मों के विपाक से

रुदन करते हुए वहाँ दिखलाई देते हैं ॥३७॥ कुछ पापिष्ठ लोग निगड पाशों से बद्ध होते हैं और कुछ दूसरे लोग तैल में पाकों के द्वारा हनन किये जाते हैं। यम के दूत अधिक पापियों को इस प्रकार से बहुत ही ज्यादा ताड़ित करते हैं ॥३८॥ अन्य लोग 'हमको कुछ दो—हमको कर्ज दे दो"—इस तरह कहकर करोड़ों की संख्या में ऋण की प्रार्थना किया करते हैं। यमलोक में मैंने स्वयं देखा है कि नाग वहाँ माँस का भक्षण किया करते हैं ॥३९॥ हे तार्क्ष्य ! इस तरह से पापियों को अपने किये हुए बुरे कर्मों का फल भोगने के लिये बहुत से नरक बतलाये गये हैं। इन सबका बहुत अधिक विस्तार पूर्वक वर्णन करने में क्या प्रयोजन है ? क्योंकि ये सब तो सभी शास्त्रों में बताये गये हैं। अब हम दानोपकार के विषय में वर्णन करते हैं जिससे कि वहाँ पर प्राणियों को सुख प्राप्त हो सके ॥४०॥

२४—धर्माधर्म लक्षण

शृणु तार्क्ष्य यथान्याय धर्माधर्मस्य लक्षणम् ।
सुकृत दुष्कृत नृणामग्रे धावति धावति ॥१
कृत तप प्रशसन्ति त्रेतायां ज्ञानसाधनम् ।
द्वापरे यज्ञदानञ्च दानमेक कलौ युगे ॥२
गृहस्थाना स्मृतौ प्रोक्तान्धर्मानालपता तथा ।
इष्टापूर्तं स्वया शक्त्या कुर्वता नास्ति पातकम् ॥३
वृक्षास्तु रोपिता येन तडागादि जलाशया ।
कृता यन हि मार्गेऽस्मिन्सुख याति स मानव ॥४
हिमे तुषारशीताभ्या पीड्यते न यमालय ।
तप्यमान सुख याति इन्धनानि ददाति य ॥५
तृप्ता विभूषिताश्चैव गन्धपुष्पसमन्विता ।
भूमिदानं सुख यान्ति सर्वकामैश्च पूरिता. ॥६
सुवर्णमणिमुक्तादिवस्त्राण्याभरणानि च ।
तेन सर्वमिद दत्त येन दत्ता वसुन्धरा ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! अब तुम न्याय के अनुसार धर्म और अधर्म का लक्षण श्रवण करो। मनुष्यो का सुकृत और दुष्कृत आगे दौड़ लगाया करता है ॥१॥ पृथक्-पृथक् युगो मे पृथक् पृथक् साधन हुआ करते हैं। कृतयुग मे तपश्चर्या करने की प्रशंसा की जाती थी—त्रेता मे ज्ञान ही कल्याण का साधन माना जाता था। द्वापर युग में यज्ञ—यागादि का करना तथा दान देना आत्म कल्याण का साधन होता था और कलियुग मे केवल एक दान ही धर्म का साधन माना गया है ॥२॥ स्मृति में बताये हुए धर्मों का पालन करने वाले गृहस्थो को अपनी शक्ति से इष्टापूर्ति करने वालो को कोई पातक नही होता है ॥ ३ ॥ जिसने वृक्ष आदि का आरोपण किया है, तडाग आदि जलाशयो का निर्माण कराया है। इसके पुण्य का यह फल होता है कि मनुष्य इस यमपुरी के महामार्ग मे सुख पूर्वक गमन किया करता है ॥४॥ जो ईंधन का दान किया करता है वह हिम मे तुषार और शीत से यमालय मे कभी पीडित नहीं होता है, वह तपता हुआ उस शीतकाल मे भी बहुत ही सुख पूर्वक जाया करता है ॥५॥ भूमि के दान के द्वारा अति तृप्त एवं गन्ध तथा पुष्पों से संयुत होते हुए परम समलंकृत होकर समस्त कामनाओ से परिपूर्ण हो सुख के साथ गमन किया करते हैं ॥६॥ भूमि के दान का बहुत अधिक महत्त्व होता है जिसने इस वसुन्धरा (पृथ्वी) का दान दिया है उसने सोना, मणि, मोती आदि सब प्रकार के रत्न तथा वस्त्र और आभरण इन सभी का दान कर दिया है ॥७॥

यानि यानि च दानानि कृतानि भुवि मानवै. ।
यमलोकपथे तानि तिष्ठन्त्यग्रे समीपत: ॥८
व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च ।
विधिना ददते पुत्रै: पित्रे तदुपतिष्ठति ॥९
आत्मा वं पुत्रनामा हि पुत्रस्त्राता यमालये ।
नरकात्पितर त्रायेत्तेन पुत्र इति स्मृतः ॥१०
अतो देयस्च पुत्रेण श्राद्धमाजीवितावधि ।
अतिवाहस्तदा प्रेतो भोगांश्च लभते हि सः ॥११

दह्यमानस्य प्रेतस्य स्वजनैर्येजलाञ्जलि. ।
दीयते प्रीतरूपोऽसौ प्रेतो याति यमालयम् ॥१२
आपक्वे मृण्मये पात्रे दुग्ध दद्यादि्दनत्रयम् ।
काष्ठत्रय गुणैर्बद्ध्वा प्रेतप्रीत्यै चतुष्पथे ॥१३
प्रथमेऽह्नि द्वितीये च तृतीये च तथा खग ।
आकाशस्थ· पिवेद्दुग्ध प्रेतो वायुवपुर्धर ॥१४

इस भू-मण्डल मे मनुष्यों के द्वारा जो-जो भी दान किये जाते हैं वे सभी यमलोक के उस महा मार्ग मे पहिले से ही पहुँच कर समीप में उपस्थित हो जाया करते हैं ॥ ८ ॥ विविध भाँति के अद्भुत व्यञ्जन तथा भक्षण करने के योग्य पदार्थ और भोज्य वस्तुऐं जो भी पुत्रो के द्वारा पिता के हितार्थ विधि पूर्वक दान किये जाते हैं वे भी सब वहाँ समुपस्थित हुआ करते है ॥ ९ ॥ आत्मा ही पुत्र के नाम वाला होता है अर्थात् स्वय ही पुत्र के स्वरूप में हुआ करता है । पुत्र जो भी दानादिक करता है वह भी मानों स्वय ही किया करता है । अतएव यमालय मे पुत्र त्राण करने वाला होता है । पु नाम नरक का है उससे जो त्राण किया करता है इसी से 'पुत्र'—यह नाम कहा गया है ॥१०॥ इसी लिये पुत्र के द्वारा जब तक वह जीवित रहे पिता के निमित्त मे श्राद्ध देना चाहिए । अतिवाह वह प्रेत उस समय मे भोगो का लाभ किया करता है ॥ ११ ॥ दाह किये गये प्रेत के अपने जनो के द्वारा जो जल की अञ्जलि दी जाती है वह प्रेत परम प्रसन्न होता हुआ उससे यमालय को गमन किया करता है ॥ १२ ॥ बिना पकाय गये मिट्टी के पात्र मे तीन दिन तक दूध देना चाहिए और तीन काष्ठो डोरी मे बाँधकर प्रेत को प्रीति के लिये चौराहे पर रख कर उस पर वह दुग्ध पात्र रखना चाहिए। प्रथम द्वितीय और तीसरे दिन मे उसे इसी प्रकार से रख देवे । हे खग ! आकाश में स्थित वायु के शरीर को धारण करने वाला वह प्रेत उस दूध का पान किया करता है और प्रसन्न होता है ॥१३॥१४॥

चतुर्थे सञ्चय कार्य्यः सर्वैस्तु सह गोत्रजै ।
तत. सञ्चयनादूर्ध्व गङ्गास्पर्शो विधीयते ॥१५

द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे वापि साग्निकैः ।
अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं दद्याज्जलाञ्जलिं ततः ॥१६
न पूर्वाह्णे न मध्याह्ने नापराह्णे च सन्धिषु ।
प्रातः प्रथमयामेषु दद्यादाद्यजलाञ्जलिम् ॥१७
पुत्रेण दत्तैस्तैः सर्वैर्गोत्रजैः सह बान्धवैः ।
स्वजात्यैः परजात्यैश्च देयं आद्यजलाञ्जलिः ॥१८
गन्तव्यं नैव विप्रेण दातुं शूद्रे जलाञ्जलिम् ।
निवृत्ताश्च यदा तीराल्लोकाचारस्ततो भवेत् ॥१९
पञ्चत्वञ्च गते शूद्रे यः काष्ठं नयते चिताम् ।
अनुव्रजेत्तथा विप्रस्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२०
त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२१

चौथे दिन मे सबके द्वारा जिनमें गोत्र में उत्पन्न होने वाले भी सब सम्मिलित होवें सञ्चय करना चाहिए अर्थात् अस्थियों का सञ्चय करे। इसके अनन्तर सञ्चयन के पश्चात् गङ्गा का स्पर्श किया जाता है। अर्थात् गङ्गा में उनका प्रवाह किया जाता है ॥ १५ ॥ दूसरे-तीसरे और चौथे दिन में भी साग्निकों के द्वारा अस्थि—सञ्चयन से ऊपर फिर जलाञ्जलि देनी चाहिए ॥ १६ ॥ पूर्वाह्न में—मध्याह्न मे—अपराह्न मे और सन्धिकालों मे नहीं देवे बल्कि प्रातः काल के प्रथम प्रहरों मे ही जलाञ्जलि देनी चाहिए ॥ १७ ॥ आद्य जलाञ्जलि पुत्र के द्वारा ही देनी चाहिए। इसके अनन्तर उन सबके द्वारा जो गोत्रज हों—बान्धव हों और अपनी जाति के हों तथा पर जाति के हों जलाञ्जलि देनी चाहिए ॥ १८ ॥ शूद्र को जलाञ्जलि देने के लिये विप्र को कभी नहीं जाना चाहिए। जब तीर से निवृत्त होते हैं तो इसके अनन्तर लोकाचार हुआ करता है ॥ १९ ॥ किसी शूद्र वर्ण वाले व्यक्ति के पञ्चत्व प्राप्त हो जाने पर अर्थात् मर जाने पर जो चिता के लिये काष्ठ ले जाता है तथा विप्र उसके पीछे पीछे जाता है तो वह तीन रात्रि तक अशुचि हो जाया करता है ॥ २० ॥ तीन रात्रियों के पूर्ण जाने पर समुद्र गामिनी नदी

में जाकर एक सौ बार प्राणायाम करे और घृत का प्राशन करे तब वह विशुद्ध हुआ करता है ॥२१॥

शूद्रो गच्छति सर्वेषु वैश्यस्त्रिषु द्वयेऽपरः ।
गच्छति स्वेषु वर्णेषु विप्रो दातुं जलाञ्जलिम् ॥२२
अधरोत्तरवस्त्राभ्यां वस्त्रग्रन्थिञ्च दापयेत् ।
एकवस्त्रः प्रदद्यात्तु सदर्भञ्च तिलाञ्जलिम् ॥२३
यदा दातुञ्च गच्छन्ति दन्तधावनपूर्वकम् ।
त्यजन्ति गोत्रजाः सर्वे दिनानि नव काश्यप ॥२४
जलाञ्जलिं यदा दातुं गच्छति द्विजसत्तम ।
यस्मिन्स्थाने मिलेद्यस्तु अध्वन्यपि गृहेऽपि वा ॥२५
विश्लेषस्तु ततः स्थानादादाहाद्विहितो बुधैः ।
स्त्रीजनश्चाग्रतो गच्छेत्पृष्ठतो नरसञ्चयः ॥२६
तत आचमनं कार्य्यं पाषाणोपरि संस्थितैः ।
याथाश्च सर्षपान्दूर्वां पूर्णपात्रं विलोकयेत् ॥२७
प्राशयेन्निम्बपत्राणि स्नेहस्नानं समाचरेत् ।
गोत्रजेन च कर्त्तव्यं गृहान्नं नैव भोजयेत् ॥२८

शूद्र सभी वर्णों में जाता है—वैश्य तीन वर्णों में जाया करता है—क्षत्रिय दो में और विप्र अपने ही वर्णों में जलाञ्जलि देने को जाया करता है ॥ २२ ॥ अधो वस्त्र और उपरि वस्त्रों से वस्त्र की ग्रन्थि दिलावे। एक ही वस्त्र वाला दर्भों के सहित तिलाञ्जलि देवे ॥ २३ ॥ जिस समय में जलाञ्जलि देने के लिये जावें तो दाँतुन आदि करके ही जाना चाहिए। हे काश्यप! गोत्रज सब नौ दिन को त्याग दिया करते हैं ॥ २४ ॥ द्विज श्रेष्ठ जिस समय में जलाञ्जलि देने के लिये जाता है तो जिस स्थान में जो भी मिले—मार्ग में और गृह में भी उस स्थान से दाह से लेकर बुध जनों के द्वारा विश्लेष बताया गया है। स्त्री जनों को आगे अर्थात् पहिले जाना चाहिए और उनके पृष्ठ (पीछे) में पुरुषों के समुदाय को जाना चाहिए ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर पाषाण के ऊपर संस्थित होते हुए पहुँचने वालों को आचमन करना चाहिए।

और जितनी भी गर्गंय हों उन्हें तथा दूर्वा (दूभ) को पूर्ण पात्र में विमोक्ष करे ॥ २७ ॥ नीम के पत्र सबको खाने चाहिए फिर स्नेह स्नान करें। इसके पश्चात् किसी गोत्रज के द्वारा खाने की व्यवस्था करनी चाहिए। उस दिन घर का अन्न नहीं खाना चाहिए ॥२८॥

भुञ्जीत मृण्मये पात्रे उत्तानञ्च विवर्जयेत् ।
मृतयस्य गुणा ग्राह्या यमगाथा समुद्गिरेत् ॥२९
शुभाशुभौ च ध्यायन्तः पूर्वकर्मोपसञ्चितौ ।
अलब्धेन च देहेन भुङ्क्ते सुकृतदुष्कृते ॥३०
वायुरूपो भ्रमत्येव वायुः कुटपा स गच्छति ।
दशाहे कर्म क्रियते जायते तेन सा कुटी ॥३१
क्षुधाविभ्रममापन्नो दशाहे यो न तर्पित ।
पिण्डैस्तस्य तदाऽन्नञ्च आकाशे भ्रमते तु स. ॥३२
दिनत्रय वसेत्तोये अग्नौ चापि दिनत्रयम् ।
आकाशे च वसेत्त्रीणि दिनमेकञ्च वासवे ॥३३
गृहद्वारे श्मशाने वा तीर्थे देवालये तथा ।
यत्राद्यौ दीयते पिण्डस्तत्र सर्वान्समापयेत् ॥३४
एकादशाहे यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् ।
चतुर्णामपि वर्णाना शुद्धये स्नानमिष्यते ॥३५

मिट्टी के बरतन में ही भोजन करे और उत्तान का विशेष रूप से वर्जन कर देवे। उत्तान थाह जल को कहते है। जो पुरुष मृत्युगत हुआ है उसके गुणों को ग्रहण करे अर्थात् गुणों का बखान करना चाहिए। तथा यमराज की गाथा को कहना चाहिए ॥ २९ ॥ मृतात्मा के पूर्व कर्मों के द्वारा उप सञ्चित किये गये शुभ और अशुभ का ध्यान करे। अप्राप्त देह के द्वारा अपने सुकृत तथा दुष्कृतो का भोग किया करता है ॥ ३० ॥ मृत प्राणी वायु स्वरूप होकर भ्रमण किया करता है और वह वायु कुटी मे जाती है। दसवें दिन मे जो दश गात्र का कर्म किया जाता है उससे वह कुटी उत्पन्न हुआ करती है ॥३१॥ क्षुधा के विभ्रम को प्राप्त होने वाला दसवें दिन मे जो तृप्त नही किया जाता

! उस समय में वह उनके पिण्डों के साथ और वह अन्न आकाश में भ्रमण किया करता है ॥ ३२ ॥ तीन दिन तक जल में निवास करता है और फिर अग्नि में तीन दिन तक रहता है। आकाश में तीन दिन पर्यन्त वास करता है और एक दिन वातय में रहता है ॥ ३३ ॥ घर के द्वार पर—श्मशान में—तीर्थ में और देवालय में जहाँ पर भी आदि में पिण्ड दिया जाता है वहाँ पर वह सब को समाप्ति किया करता है ॥ ३४ ॥ ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध किया जाता है वह सामान्य बताया गया है। चारों वर्णों की शुद्धि के लिये स्नान करना ही अभीष्ट होता है ॥३५॥

कृत्वा चैकादशाह तु पुन स्नात्वा शुचिर्भवेत् ।
न भवेच्च यदा गोत्री परोऽपि विधिमाचरेत् ॥३६
स्त्री वापि पुरुष कश्चिदिष्टये कुरुते क्रियाम् ।
श्राद्ध कृत तु यैर्वस्त्रैस्तानि त्यक्त्वा गृहं विशेत् ॥३७
अगोत्रश्च सगोत्रो वा नरो नार्यप्यथापि च ।
प्रथमेऽहनि य कुर्यात् स दशाहं समापयेत् ॥३८
अशौच यावदेव स्यात्तावत्पिण्डोदकक्रिया ।
चतुर्णामपि वर्णानामेष तत्र विधि स्मृत ॥३९
एकादशाहे प्रेतस्य दद्यात्पिण्ड समन्त्रकम् ।
निष्क्रान्तं तस्य दानञ्च शरीरापूरणादत ॥४०
द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा ।
त्रिपक्ष षण्मासयोश्च द्वे इति मास षोडश ॥४१
मास प्रति यदा तस्य मृताहे या तिथि स्मृता ।
स मास प्रथमो ज्ञेय यावदेकादश तु यः ॥४२

दशी तिथि ऊनका होती है। और नवमी में जो मृत हुआ है उसकी भी चतुर्दशी तिथि ऊनका होती है। यह [ ] का जाननी चाहिए। कुशल पुरुष के द्वारा प्रत्येक कर्म में इनका विचार आवश्यक है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ एकादशाह में जो उद्धरित हो और प्रेत के उद्देश्य से पाक किया गया हो उस अन्न को चौराहे पर त्याग देवे और फिर स्नान करना चाहिए ॥ ४६ ॥ हे द्विजोत्तम! समस्त देवगण शय्या के दान की प्रशंसा किया करते हैं। यह जीवित तो अनित्य है फिर पीछे कौन देगा? समस्त बन्धु गण और पिता आदि तभी तक हैं जब तक यह मनुष्य जीवित रहा करता है। मरने के पश्चात् मृतों के अन्तर का जान कर एक ही क्षण में सारा स्नेह निवृत्त हो जाया करता है। मृत पुरुष इतनी दूर कहीं का कहीं हो जाता है कि फिर उससे भेंट ही नहीं हो सकती है—यह अन्तर समझ कर फिर गहरा स्नेह भी एक दम जरा सी देर में श्वास निकलने के साथ समाप्त हो जाया करता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अपनी मदद करने वाला अपना ही आत्मा होता है अर्थात् अपना कल्याण स्वयं अपने ही द्वारा किया जा सकता है। अपनी आत्मा का अधःपतन भी हम अपने ही द्वारा असत्कर्म करके किया करते हैं अतएव अपने हम आप ही रिपु बन जाते हैं। अतएव जीवन रहते हुए ही पुण्यों का सञ्चय करना चाहिए—यही सोच विचार कर धर्म का स्मरण करें ॥४९॥

मृतानां क सुतो यचेत्स्शुभशय्या सतूलिकाम् ।
एव जीवति सवस्य स्वहस्तनैव दापयेत् ॥५०
तस्मात्च्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं शुभाम् ।
दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपट्टैरलंकृताम् ॥५१
रक्ततूलिप्रतिच्छन्नां शुभशीर्षोपधानकाम् ।
प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपाधिवासिताम् ॥५२
तस्यां संस्थाप्य हैमञ्च हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् ।
घृतपूर्णञ्च कलशं तत्रैव परिकल्पयेत् ॥५३
ताम्बूलं कुङ्कुमाक्षोदं कर्पूरागुरुचन्दनम् ।
दीपकापानहौ छत्रं चामरासनभाजनम् ॥५४

पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि ।
शयनस्थस्य भवति यच्च स्यादुपकारकम् ॥५५
भृङ्गारकादर्शपञ्चवर्णवितानशोभितम् ।
शय्यामेवविधां कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥५६
सपत्नीकाय सम्पूज्य स्वर्लोकसुखदायिनी ।
वस्त्रैः सुशोभनैः पूज्य चोलक परिधापयेत् ॥५७

मृत पुरुषों के निमित्त कौन सा ऐसा सत्पुत्र है जो तूलिकाओं से युक्त बहुत अच्छी शय्या का दान किया करता है ? तात्पर्य अच्छी शय्या का दान विरला ही कोई सपूत किया करता है अन्यथा खाना पूरी मात्र सब करते हैं। इस प्रकार से जीवित दशा में ही सर्वस्व का दान अपने ही हाथ से सविधि अच्छी तरह से कर लेना चाहिए ॥ ५० ॥ अतएव साल की लकड़ी की बनी हुई बहुत ही अच्छी शय्या बनवा कर जोकि दन्त पत्रों से चित हो—परम सुन्दर हो और सोने के पट्टों से स्वलंकृत हो। तथा रक्त तूलि से प्रतिच्छिन्न की हुई और बहुत अच्छे तकिये वाली ढाँपने के वस्त्र से युक्त कराये और उसे गन्ध धूप से अधिवासित करावे। उस पर सुवर्ण की निर्मित श्री हरि की तथा लक्ष्मी की प्रतिमा को विराजमान करे। वहाँ पर ही एक घृत से भरा हुआ कलश भी परि कल्पित करे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ताम्बूल—कुंकुम क्षोद—कपूर—अगुरु चन्दन—दीपक—उपानह—छत्र (छाता)—चमर—आसन—भाजन (पात्र) आदि समस्त साहित्य—सामग्री उस शय्या के पास में स्थापित करे तथा पूर्ण भक्ति भाव के साथ सातों धान्य भी वहाँ पर स्थित करने चाहिए। ये सब शय्या पर शयन करने वाले के उपकारक पदार्थ होंगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ भृङ्गारक (झारी)—आदर्श (शीशा) और पाँच वर्णों से युक्त वितान से उसे शोभित करावे। इस प्रकार की शय्या को सुसम्पन्न कराके फिर ब्राह्मण के लिये दान में देवे ॥ ५६ ॥ ब्राह्मण को उसकी पत्नी के सहित समाहूत कर उसका भली भाँति पूजन करे। इस तरह करने से यह शय्या स्वर्ग लोक में सुख प्रदान करने वाली होती है। ब्राह्मण की पूजा परम सुन्दर वस्त्र आदि से करे और चोलक उसे धारण करावे ॥५७॥

ततोऽर्घ्यश्च प्रदातव्यः पञ्चरत्नजलाक्षतैः ।
यथा कृष्ण त्वदीया हि अशून्या क्षीरसागरे ॥५८
शय्या भूयान्ममापीय तथा जन्मनि जन्मनि ।
एवं तल्प तथा कृष्णं क्षमाप्य च विसर्जयेत् ॥५६
एकादशाहे सम्प्राप्ते विधिरेषः प्रकीर्त्तितः ।
ददाति यदि धर्मार्थं बान्धवो बान्धवे मृते ॥६०
तैस्तैराप्यायितः प्रेतः परलोके सुखी भवेत् ।
विशेषमत्र पक्षीन्द्र कथ्यमानं मया शृणु ॥६१
उपयुक्तं तु तस्यासीद्यत्किञ्चिद्धि गृहे पुरा ।
तस्या गात्रे च यल्लग्नं वस्त्रं भाजनवाहनम् ॥६२
अभीष्टं यच्च तस्यासीत् तत्सर्वं परिकल्पयेत् ।
पुरन्दरपुरे चैव सूर्यपुत्रालये तथा ॥६३
उपतिष्ठेत्सुखं जन्तुः शय्यादानप्रभावतः ।
पीडयन्ति न तं याम्या पुरुषा भीषणाननाः ॥६४

इसके अनन्तर अर्घ्य देवे जो कि पाँचों प्रकार के रत्न, जल और अक्षतों से युक्त हो । इसके अनन्तर निवेदन करे, हे कृष्ण ! जिस प्रकार से क्षीर सागर में आपकी शय्या अशून्य रहा करती है वैसे ही यह मेरी शय्या भी जन्म-जन्मान्तरों में होवे, इस प्रकार से तल्प और श्रीकृष्ण से क्षमा याचना करके फिर उसे विसर्जित करना चाहिए ॥५८।५६॥ एकादशाह के प्राप्त होने पर यह विधि बताई गई है यदि कोई बन्धु अपने बान्धव के मृत हो जाने पर धर्मार्थ ऐसा दान किया करता है ॥६०॥ उन-उन दानों से परम आप्यायित (तृप्त) प्रेत परलोक में सुखी हुआ करता है । हे पक्षीन्द्र ! इसमें जो विशेष तत्त्व की बात है उसे मैं कहता हूँ तुम उसका श्रवण करो ॥६१॥ उस मृत पुरुष के जो कुछ भी पदार्थ पहिले घर में उपयोग में होने वाले हों और उसके गात्र में जो भी संलग्न हुए हों जैसे कोई वस्त्र, भाजन और वाहन जो दिये होते हैं । उस मृत पुरुष को जो भी कुछ प्रिय और अभीष्ट हो उस सबको परिकल्पित कर देना चाहिए अर्थात् दान में दे देवे । इससे इन्द्रदेव की पुरी में तथा यमराज के नगर में वह जन्तु

शय्या के दान के प्रभाव से सुख पूर्वक रहा करता है। वहाँ पर यमराज महा भीषण दूत उसको पीड़ित नहीं किया करते हैं ॥६२।६३।६४॥

न धर्मेण न शीतेन बाध्यते स नरः क्वचित् ।
शय्यादानप्रभावेण प्रेतो मुच्येत बन्धनात् ॥६५
अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोकं स गच्छति ।
विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥६६
आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठेत्पातकवर्जितः ।
नवकं षोडशश्राद्धं शय्यां संवत्सरक्रियाम् ॥६७
भर्तुर्या कुरुते नारी तस्याः श्रेयो भवेदिह ।
उपकाराय सा भर्तुर्जीवन्ती च मृता तथा ॥६८
उद्धरेज्जीवमाना सा पतिं सत्यवती सती ।
स्त्रियोदद्याच्च शयने पुत्रो वापि गुणान्वितः ॥६९
प्रेतस्य प्रतिमां हैमीं कुंकुमञ्चैवमञ्जनम् ।
वस्त्रं भूषां तथा शय्यामेव कृत्वा च दापयेत् ॥७०
उपकारकरं स्त्रीणां यद्भवेदिह किञ्चन ।
भूषणं तत्र संलग्नं वस्त्रभोगादिकञ्च यत् ॥७१
तत्सर्वं मेलयित्वा तु स्वे स्वे स्थाने निधापयेत् ।
पूजयेल्लोकपालांश्च ग्रहदेवान्विनायकम् ॥७२

इस दान के प्रभाव से वहाँ प्राणी घाम और शीत से कभी बाधित नहीं होता है। शय्या के दान का ऐसा विशेष प्रभाव होता है कि वह प्रेत बन्धन से मुक्त हो जाया करता है ॥६५॥ चाहे पापों से भी युक्त क्यों न हो किन्तु इस दान का ऐसा प्रभाव होता है कि वह स्वर्ग लोक में गमन किया करता है। विमानों में अति श्रेष्ठ विमान पर समारूढ होता है और अप्सराऐं उसकी सेवा करती हैं ॥६६॥ जब तक भूत सम्प्लव (प्रलय काल) होता है तब तक वह समस्त पातकों से रहित होकर वहाँ पर समास्थित रहा करता है। जो नारी अपने स्वामी के लिये नवक, षोडश श्राद्ध शय्या दान और सम्वत्सर की समस्त क्रिया किया करती है उस नारी का इस लोक में भी परम श्रेय हुआ करता है।

वह नारी जीवित रहती हुई अथवा मृत अपने स्वामी के उपकार के लिये ही होती है ।।६७।६८।। वह नारी जीवित रहती हुई परम सत्य वाली और सती होने के कारण अपने पति का उद्धार किया करती है। स्त्री को शय्या का दान करना चाहिए अथवा गुणों से युक्त पुत्र हो तो उसे शय्या का दान करना चाहिए ।।६६।। प्रेत की सुवर्ण की प्रतिमा निर्मित करा कर उसे कुंकुम अञ्जन, वस्त्र, भूषण इन सबसे समुत करके शय्या का दान दिलाना चाहिए। ।।७०।। यहाँ पर जो भी कुछ स्त्रियों के उपकार करने वाला होवे वह भूषण उसम संलग्न करे और जो वस्त्र आदि भोग के योग्य पदार्थ हो वह सब मिला कर अपने-अपने स्थान पर रक्खे और सब लोकपालों को, ग्रहों को, देवगणों को तथा गणेश को पूजित करे ।।७१।७२।।

ततः शुक्लाम्बरः स्नात्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं विप्रस्य पुरतो बुधः ।।७३
प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा सर्वोपकरणैर्युता ।
सर्वरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता ।।७४
आत्मा शम्भुः शिवा गौरी शक्र सुरगणैः सह ।
तस्माच्छय्या प्रदातव्या एष आत्मा प्रसीदतु ।।७५
आचार्य्याय प्रदातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
गृहीत्वा ब्राह्मणः शय्यां काऽङ्गादिति च कीर्त्तयेत् ।।७६
बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ।
विभक्तदक्षिणा ह्येते दातारं पातयन्ति ते ।।७७

इसके अनन्तर शुक्ल वर्ण के वस्त्र धारण करके तथा स्नान करके हाथों में पुष्पों की अञ्जलि ग्रहण करके बुध को विप्र के सामने इस निम्न मन्त्र का उच्चारण करे ।।७३।। यह प्रेत की प्रतिमा है जो सम्पूर्ण उपकरणों से युक्त है और समस्त रत्नों से समन्वित है। हम ह विप्रदेव ! आपकी सेवा में समर्पित किया गया है ।।७४।। आत्मा शम्भु, शिव, गौरी और सु समुदाय के साथ इन्द्रदेव इसलिये यह शय्या दी जाती है कि यह आत्मा प्रसन्न होवे ।।७५।। कुटुम्ब वाले आचार्य ब्राह्मण के लिये शय्या का दान करे। ब्राह्मण शय्या का

दान ग्रहण करके किसने यह शय्या दी है—इसका कीर्तन करे। गौ, गृह, शय्या और स्त्री ये वस्तुएँ बहुतों को नहीं देनी चाहिए। विभक्त दक्षिणा वाले ये सब दान देने वाले का अध पतन कराया करते हैं। इसका तात्पर्य यह होता है कि उपर्युक्त वस्तुओं का दान किसी एक ही सुयोग्य सत्पात्र के लिये करना चाहिये ॥७६।७७॥

एव यो वितरेत्तार्क्ष्यं शृणु तस्य च यत्फलम् ।
सार्द्ध वर्षशत दिव्यं स्वर्गलोके महीयते ॥७८
यत्पुण्यञ्च व्यतीपाते कार्त्तिक्यामयने तथा ।
द्वारकायाञ्च यत्पुण्यञ्चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा ॥७६
प्रयागे नैमिषे यच्च कुरुक्षेत्रे तथार्बुदे ।
गङ्गाया यमुनायाञ्च सिन्धुसागरसङ्गमे ॥८०
शय्यादानप्रभावेण तत्तत्फलमवाप्नुयात् ।
यत्रासौ जायते जन्तुर्भुङ्क्ते तत्रैव तत्फलम् ॥८१
कर्मक्षये क्षितौ जातो मानुष शुभदर्शनः ।
महाधनी च धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारद. ॥८२
पुन स याति वैकुण्ठ मृतोऽसौ नरपुङ्गवः ।
दिव्य विमानमारुह्य अप्सरोभि समावृत ।
अर्होऽसौ हव्यकव्येषु पितृभि सह मोदते ॥८३

हे तार्क्ष्य ! इस रीति से जो वितरण किया करता है उसके करने से जो फल होता है उसका तुम श्रवण करो। वह आगे आने वाले दिव्य सौ वर्ष तक स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होकर सुखोपभोग करती है ॥७८॥ जो पुण्य व्यतीपात में, कार्तिकी पूर्णिमा में, अयन में, द्वारका में होता है तथा जो पुण्य चन्द्र और सूर्य के ग्रहण के समय में होता है ॥७६॥ प्रयाग में, नैमिष क्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में, अर्बुद में, गङ्गा में, यमुना में और सिन्धु तथा सागर के सङ्गम में जो पुण्य होता है वही पुण्य शय्या के दान के प्रभाव से प्राप्त हुआ करता है। जहाँ यह जन्तु उत्पन्न होता है वहीं पर ही उसका फल भी भोगा करता है ॥८०।८१॥ कर्मों के क्षय हो जाने पर यह शुभ दर्शन मानव भूमि पर उत्पन्न

हुआ करता है। जब यह इस भूमि पर जन्म ग्रहण करके आता है तो बहुत बड़ा धनी, धर्म का पूर्ण ज्ञाता और सब शास्त्रों का महान् पण्डित होता है। यह मनुष्यों में परम श्रेष्ठ पुरुष यहाँ मनुष्य जीवन के सुखों का उपभोग करके पुनः मृत होकर बैकुण्ठ लोक में प्राप्त होता है। जब यह बैकुण्ठ को जाता है तो एक दिव्य पर समारूढ़ होकर अनेक अप्सराओं के द्वारा समावृत होकर जाया करता है। यह फिर हव्य और कव्यों में योग्यता प्राप्त करने वाला होकर पितृ-गण के साथ मोद प्राप्त किया करता है ॥८२।८३॥

२५—श्राद्ध विधान वर्णन

अपरं मम सन्देह कथयस्व जनार्दन ।
पुरुषस्य च दृष्ट्वा वै मातरं मृतिमागताम् ॥१
पितामही जीवति च तथैव प्रपितामही ।
वृद्धप्रपितामही तद्वन्मातृसक्त पिता तथा ॥२
पितामहप्रपितामहौ वृद्धश्च प्रपितामह ।
केन सा मेल्यते माता एतत्कथय मे प्रभो ॥३
पुनरुक्त प्रवक्ष्यामि सपिण्डीकरणं खग ।
उमा लक्ष्मीर्महाराणी सेवाभिर्मेलयेद्ध्रुवम् ॥४
त्रय. पिण्डभुजो ज्ञेयास्त्याजकाश्च त्रय. स्मृताः ।
त्रय पिण्डानुलेपाश्च दशम. पंक्तिसन्निधौ ॥५
इत्येते पुरुषा ख्याता पितृमातृकुलेषु च ।
तारयेद्यजमानस्तु दशपूर्वान्दशापरान् ॥६
सपिंड म भवेदादौ सपिंडीकरणे कृते ।
अन्त्यस्तु त्याजको ज्ञेयो वृद्धस्तत्प्रपितामह ॥७

गरुड ने कहा—हे जनार्दन ! मुझे एक और सन्देह हो गया है उसे आप कृपया कहिए। यह सन्देह पुरुष की मृत्यु को प्राप्त माता को देखकर हो गया है ॥ १ ॥ हे प्रभो ! पितामही—प्रपितामही और वृद्ध प्रपितामही जीवित है तथा मातृ सक्त पिता—पितामह और वृद्ध प्रपितामह भी जीवित रहते हैं

तो ऐसी दशा में सपिण्डी करण कर्म में वह माता किसके साथ मेलित की जाती है ? इसे कृपा कर समझाइय ॥ २ ॥ ३ ॥ भगवान् श्री कृष्ण ने कहा— हे खग ! पहिले कहे हुए इस सपिण्डी करण को फिर बतलाता हूँ। तिसी माता को उमा—लक्ष्मी और सरस्वती के साथ सम्मिलित करना चाहिए ॥ ४ ॥ तीन पिंडों के उपभोग करने वाले जानने चाहिए और त्याजक भी तीन बताये गये हैं। तीन पिंडानुलेप होते हैं तथा दसवाँ पक्ति सन्निधि में होता है ॥ ५ ॥ पिता और माता के कुलो में य इतने पुरुष ख्यात हैं। यजमान दश पूर्व के और दस आगे होने वाले पुरुषो (पीढियो) को तार दिया करता है। ॥ ६ ॥ सपिंडी करण करने पर आदि में वह सपिंड होता है। जो अन्त्य होता है वह त्याजक होना है जैसे वृद्ध प्रपिता मह है ॥७॥

अन्त्यस्तु त्याजको यस्तु लेपक प्रथमो भवेत् ।
लेपकस्त्वन्तिमो यस्तु स भवेत्पक्तिसन्निधौ ॥८
यजमाना भवेदेका दशपूर्वे दशापरे ।
इत्येते पितरो ज्ञेया एकविंशतिशाश्वता ॥९
विधिना कुरुते यस्तु ससारे श्राद्धमुत्तमम् ।
ददते नात्र सन्देह श्रृणु तस्यापि तत्फलम् ॥१०
पिता ददाति पुत्रान्वै गोधनञ्च पितामह ।
हेमदाता भवेत्सोऽपि यस्तस्य प्रपितामह ॥११
कृते श्राद्धे गुणा ह्येते पितृणा तर्पणे स्मृता ।
दद्याद्विपुलमन्नाद्य वृद्धस्तु प्रपितामह ॥१२
यस्य पु सश्च मर्त्ये च विच्छिन्ना सन्तति खग ।
स वसेन्नरके नित्य पङ्के मग्न करी यथा ॥१३
योन्यन्तरे हि या जातो वृक्ष पक्षी सरीसृप ।
न सन्ततिविनाशेऽपि मुच्यते नरकाद्ध्रुवम् ॥१४

अन्त्य जो त्याजक होता है तो लेपक प्रथम होता है। जो लेपक अन्तिम होता है तो पक्ति सन्निधि में होता है ॥ ८ ॥ एक यजन करने वाला यजमान है और दश प्रथम पुरुष और दश आगे होने वाले पुरुष इस प्रकार से ये सब

र मिल कर इक्कीस शाश्वत पितृगण होते हैं उन्हें समझ लेना चाहिए ॥ ९ ॥ । इस संसार में विधि के साथ उत्तम श्राद्ध किया करता है वह फल अवश्य । देता है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं होता है उसका भी वह फल श्रवण रों ॥ १० ॥ पिता पुत्रों को देता है—पितामह गोधन देता है। जो उसका पितामह होता है वह हेम (सुवर्ण) का देने वाला होता है ॥ ११ ॥ श्राद्ध करने पर ये गुण होते हैं जो पितृगण के तर्पण होने पर हुआ करते हैं। ो वृद्ध प्रपितामह होता है वह सन्तुष्ट होकर विपुल (बहुत) अन्न आदि दिया रते हैं ॥ १२ ॥ हे खग ! जिस पुरुष की इस मनुष्य लोक में सन्तति विच्छिन्न हो जाती है वह नित्य ही नरक में दल-दल में निमग्न हाथी के तरह निवास किया करता है ॥ १३ ॥ जो दूसरी योनि में जैसे वृक्ष-पक्षी और तरी सर्प आदि में उत्पन्न हो गया है वह सन्तति के विनाश होने पर भी निश्चय ही नरक से मुक्ति नहीं पाया करता है ॥१४॥

आचार्यस्तस्य शिष्यो वा दूरतोऽपि हि गोत्रज ।
नारायणबलिं कुर्य्यात्तस्योद्देशेन भक्तित ॥१५

विमुक्त सर्वपापेभ्यो मुक्त. स नरकाद्ध्रुवम् ।
स्वर्गे च स वसेन्नित्य नात्र कार्या विचारणा ॥१६

श्राद्धे कृत्वा धनिष्ठाञ्च एतन्नक्षत्रपञ्चकम् ।
रेवत्यन्त सदा तस्य अशुभ सर्वदा भवेत् ॥१७

दाहस्तत्र न कर्त्तव्यो विप्रादिसर्वजातिषु ।
दीयते न जल तत्र अशुभ सर्वदा भवेत् ॥१८

लोकयात्रा न कर्त्तव्या तु सार्द्धः स्वजना यदि ।
पञ्चकानन्तर तस्य कर्त्तव्य सर्वमन्यथा ॥१९

पुत्राणा गोत्रिणा तस्य सन्तापो ह्युपजायते ।
गृहे हानिर्भवेत्तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतस्य च ॥२०

तथापि चाद्यमध्ये तु दाहश्च विधिपूर्वक ।
मानुषाणा हितार्थाय सद्य आहुतिकारणात् ॥२१

ऐसे पुरुष का आचार्य या उसका कोई शिष्य अथवा दूर में रहने वाला कोई गोत्रज उसके उद्देश्य से भक्ति-भाव के साथ नारायण बलि करता है तो वह सब तरह के पापों से विमुक्त होता हुआ निश्चय ही नरक से छुटकारा पा जाता है और फिर वह नित्य ही स्वर्ग में जाकर के निवास प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ १५ ॥ १६ ॥ आदि में धनिष्ठा और इस से लेकर रेवती के अन्त तक पाँच नक्षत्र सदा उसके लिये अशुभ होते हैं। इस पञ्चक में विप्र आदि सम्पूर्ण जातियों में दाह नहीं करना चाहिए। इन पाँचों नक्षत्रों में जल भी नहीं दिया जाता है क्योंकि यह भी सर्वदा अशुभ होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ इस समय में शोक यात्रा भी नहीं करनी चाहिए। यदि कोई स्वजन दुःख से आर्त्त हो तो पञ्चकों के पश्चात् उसका सभी कुछ करे। नहीं तो उसके पुत्रों को और गोत्र वालों को सन्ताप उत्पन्न हो जाता है। इन उक्त नक्षत्रों में मृत होने वाले के घर में भी हानि होती है ॥ १९ ॥ २० ॥ तो भी नक्षत्रों के मध्य में विधि पूर्वक दाह हो जाता है। तुरन्त आहुति के कारण से मनुष्यों के हित के लिये ही वह होता है ।२१।

सद्य आहुतिद पुण्य तीर्थं तद्दाह्यमुत्तमम् ।
विप्रैर्नियमित कार्यो मन्त्रैस्तु विधिपूर्वकम् ॥२२

शावस्य तु समीपे च क्षिप्यन्ते पुत्तलास्तत ।
दर्भमयाश्च चत्वार ऋक्षमन्त्राभिपूजिता ॥२३

ततो दाहश्च कर्त्तव्य तैश्च पुत्तलकै सह ।
सूतकान्ते तत पुत्र कुर्य्याच्छान्तिकमुत्तमम् ॥२४

पञ्चकेषु मृतो योऽसौ न गतिं लभते नर. ।
तिलान्गाञ्च हिरण्यञ्च तस्योद्देशे घृत ददेत् ॥२५

विप्राणा दीयते दान सर्वोपद्रवनाशनम् ।
सूतकान्ते सुतैरेव स प्रेतो लभते गतिम् ॥२६

भोजनोपानहौ छत्र हेम मुद्रा च वाससी ।
दक्षिणा दीयते विप्रे भवपातकमोचनी ॥२७

यूनो वृद्धस्य वालस्य पञ्चकेषु मृतस्य च ।
विधान यो न कुर्वीत विघ्नस्तस्य प्रजायते ॥२८

सद्य आहुति के देने वाला पुण्य है। उसका दाह तीर्थ में परम उत्तम होता है। विप्रों के द्वारा मन्त्रों से विधि के सहित यह कार्य नियमित होता है। शव के समीप में इसके अनन्तर दर्भो से पूर्ण चार पुत्तल नक्षत्रों के मन्त्रों द्वारा अभिपूजित करके प्रक्षिप्त किये जाया करते हैं ॥२२।२३॥ इसके पश्चात् उन पुत्तलकों के सहित उस शव का दाह करना चाहिए। जब इस मृतक का आशौच समाप्त हो जाय तब पुत्र को उन पञ्चकों को उत्तम सविधि शान्ति भी करनी चाहिए ॥२४॥ पञ्चकों में जो मनुष्य मर जाता है सुगति को प्राप्त नहीं किया करता है। उस मृतक के उद्देश से तिल, गौ, सुवर्ण और घृत का दान करे ॥ ॥२५॥ विप्रों को जो दान दिया जाता है उससे सभी प्रकार के उपद्रवों का पूर्णतया विनाश हो जाया करता है। सूतक के अन्त में पुत्रों के द्वारा इस प्रकार पञ्चक शान्ति के लिये विप्रों को दान देने पर वह प्रेत सुगति को प्राप्त हो जाता है ॥२६॥ भोजन, उपानह (जूती), छाता, सुवर्ण मुद्रा, वस्त्र, और दक्षिणा ये सब जिस समय विप्र को दिये जाते हैं तो इस संसार में होने वाले पातकों से मोचन (छुटकारा) हो जाया करता है ॥२७॥ चाहे कोई युवा हो या वृद्ध हो तथा बालक हो यदि धनिष्ठा दि पाँच नक्षत्रों में मर जाता है तो उसकी शान्ति अवश्य ही करानी चाहिए। यदि कोई पञ्चक-शान्ति के विधान को प्रमाद से, अश्रद्धा से या अन्य किसी भी कारण से नहीं करता है तो उसको विघ्न अवश्य ही हो जाया करते हैं ॥२८॥

अष्टादशैव वस्तूनि प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ।
आशिषो द्विगुणा दर्भा स्वस्त्यस्तु प्रणवस्तथा ॥२९
अग्नौकरणमुच्छिष्ट श्राद्ध वै वैश्वदेविकम् ।
विकिरञ्च स्वधाकार पितृशब्दो न चोच्यते ॥३०
अनुशब्द न कुर्वीत नावाहनमथोल्मुकम् ।
आसीमान्त न कुर्वीत प्रदक्षिणविसर्जनम् ॥३१

ज्ञातिसम्बन्धिनामेव व्यवहारं खगेश्वर।
विलुप्य ज्ञातिधर्मञ्च प्रेत पापेन लिप्यते ॥४७

इस भाँति से यदि शव का विधान नहीं किया जाता है तो वहाँ पर पिशाचों का परिभव उत्पन्न हो जाता है। रात्रि में शव के निर्गमन करने में खेचर आदि का भय होता है। किसी भी समय में शव को सूना नहीं छोड़ देना चाहिए। सम्पर्श करने से दुर्गति होती है ॥४२।४३॥ ग्राम के मध्य में प्रेत के स्थित रहने पर अर्थात् गाँव में किसी मृतक का शव रक्खा रहे और कोई अपनी इच्छा से अन्न को खा लेता है तो वह अन्न माँस भी ही भाँति हुआ करता है। और जो जल पीता है वह जल खून के सदृश होता है ॥४४॥ ताम्बूल का चर्वण करना, दन्त धावन, भोजन और ऋतुकाल का सेवन करना ये काम ग्राम के मध्य में प्रेत के स्थित होने पर अर्थात् जब तक मृतक का देह ग्राम में रहे वर्जित कर देवे। इसी तरह पिण्डों का पातन भी न करे ॥४५॥ स्नान, दान, जप, होम तर्पण और देवों का पूजन करना ये भी सब ग्राम के मध्य में प्रेत के रहते हुए करना व्यर्थ अर्थात् फल शून्य हुआ करते हैं। ज्ञाति के धर्म से इनका करना निष्प्रयोजन होता है। हे खगेश्वर! ज्ञाति और सम्बन्धियों के व्यवहार को तथा ज्ञाति के धर्म को विलुप्त करके प्रेत पाप में लिप्त होता है ॥४६।४७।

२६—तीर्थ माहात्म्य और अनशन व्रत

कस्मादनशनं पुण्यमक्षयं गतिदायकम्।
स्वगृहन्तु परित्यज्य तीर्थे वै म्रियते तु यः ॥१
अप्राप्य तीर्थं म्रियेत गृहे मृत्युवशङ्गतः।
भूत्वा कुटीचरो यस्तु स कां गतिमवाप्नुयात्॥२
सन्यासं कुरुते यस्तु तीर्थे वापि गृहेऽपि वा।
कथं तस्य प्रकर्त्तव्यं अप्राप्ते निधने तथा ॥३
नियमे यत्कृतं दैवं चित्तभङ्गो हि जायते।
केन तस्य भवेत् सिद्धिर्यत्कृतैरन्यथाकृतैः ॥४

कृत्वा निरशन यो वै मृत्युमाप्नोति कोऽपि चेत् ।
मानुषी तनुमुत्सृज्य मया तुल्यो विराजते ॥५
याऽन्त्यहानि जीवेत व्रते निरशने कृते ।
ऋनुभिस्तानि तुल्यानि समग्रवरदक्षिणै ॥६
तीर्थे गृहे वा सन्यास नीत्वा चेन्म्रियते यदि ।
प्रत्यह लभते सोऽपि पूर्वोक्ताद्द्विगुण फलम् ॥७

गरुड देव ने प्रश्न किया कि जो अपने गृह का परित्याग करके तीर्थ म जाकर मरता है उसका अनशन करना कैसे अक्षय पुण्य होता है और सुगति का प्रदान करने वाला भी हुआ करता है ॥ १ ॥ ? किसी तीर्थ में न पहुँच कर घर म ही मृत्यु के वशीभूत जो हो जाता है और कुटीचक सन्यासी होकर रहता है वह किस गति को प्राप्त हुआ करता है ॥ २ ॥ ? जो पुरुष किसी तीर्थ स्थल मे या गृह म स यास धारण कर लेता है और निधन (मृत्यु) को प्राप्त होने पर उसका किस प्रकार स करना चाहिए ।३। ? हे देव ! जिस नियम के करने पर चित्त का भङ्ग हो जाता है तो उसके होने पर किससे उसकी सिद्धि हुआ करती है । उन के किये जाने पर या अन्यथा किये जाने पर ? ॥ ४ ॥ श्री भगवान् ने कहा—यदि कोई भी निरशन करके मृत्यु को प्राप्त किया करता है वह इस मनुष्य का परित्याग करके मरे तुल्य होकर विराजमान रहा करता है ॥ ५ ॥ निरशन व्रत करने पर जितने दिन तक जीवित रहता है वे दिन समस्त वर दक्षिण ऋतुओं के सदृश हुआ करते हैं ॥ ६ ॥ यदि कोई पुरुष तीर्थ मे या घर म सन्यास ग्रहण करके मृत्यु को प्राप्त होता है तो वह भी प्रतिदिन पहिले बताये हुए से दुगना फल प्राप्त करता है ॥७ ।

महारोगोपपत्तौ च गृहीतऽनशने मृत ।
पुनर्न जायते गेगा दववद्दिवि मोदते ॥८
आतुर सन्य सन्न्यास गृह्णाति यदि मानव ।
पुनर्जातिश्च सयुक्तो भवद्रागैश्च पातकै ॥६
अहन्यहनि दातव्य ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ।
तिलपात्र यथाशक्ति दीपदान गुरार्चनम् ॥१०

और पीछे कभी भी मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए और सब प्रकार से धर्म का आचरण करना चाहिए ।।२१।।

तीर्थं गत्वा तु य कोऽपि पुनरायाति वै गृहे ।
अनुज्ञात. शुभैर्विप्रैं प्रायश्चित्तमथाचरेत् ।।२२
दत्त्वा सुवर्णदानानि गोमहीगजवाजिनः ।
तीर्थं यदि लभेद्यस्तु मृत्युकाले स भाग्यभाक् ।।२३
गृहात्प्रचलितस्तीर्थं मरणे समुपस्थिते ।
पदे पदे तु गोदान हिंसा नो वर्त्तते यदि ।।२४
स्वगृहे यत्कृत पाप तीर्थस्नानैर्विशुध्यति ।
तत्र देयानि दानानि ह्यक्षयानि सदा खग ।।२५
कुरुते तत्र चेत्पाप वज्रलेपसम हि तत् ।
विलदयेत्पापैर्न सदेहो यावच्चन्द्रार्कतारकम् ।।२६
आतुरे सति देयानि निर्धनैरपि मानवैः ।
गावस्तिला हिरण्यञ्च सप्तधान्य विशेषत. ।।२७
दानयन्त नर दृष्ट्वा हृष्टा. सर्वे दिवौकस ।
ऋषिभि· सह धर्मेण चित्रगुप्तेन वै तथा ।।२८

तीर्थ में जाकर जो कोई फिर घर मे आता है तो उसे विप्र गण की आज्ञा प्राप्त करके प्रायश्चित्त करना चाहिए ।। २२ ।। सुवर्ण का दान—गो—भूमि—हाथी और अश्व का दान देकर जो कोई मृत्यु के समय मे तीर्थ का लाभ प्राप्त करता है तो वह बड़ा भाग्यशाली होता है ।। २३ ।। मृत्यु काल के उपस्थित हो जाने पर जो अपने घर से किसी तीर्थ को चल दिया है और यदि कोई भी हिंसा का भाव विद्यमान नहीं होता है तो उसके एक एक कदम पर गोदान का पुण्य-फल हुआ करता है । २४ ।। अपने घर मे जो भी कुछ पापाचरण किया है वह सभी तीर्थ के स्नान करके विशुद्ध हो जाया करता है । हे खग ! तीर्थ मे दिये हुए दान सदा अक्षय हुआ करते हैं ।। २५ ।। यदि तीर्थ मे पहुँचकर कोई पापकर्म किया जाता है तो वह वज्रलेप अर्थात् अत्यन्त सुदृढ़ हो जाया करता है । उन पापों मे जब तक सूर्य और चन्द्र स्थिर रहा करते

हैं तब तक उन तीर्थ मे किये हुए पापो से यह जीवात्मा क्लेश भोगा करता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ आतुर की अवस्था प्राप्त होने पर दान हीन मनुष्यो को भी गौ—तिल—सुवर्ण और विशेष रूप से सात धान्यो का दान अवश्य ही करना चाहिए ॥ २७ ॥ दान शील नर को देख कर सब देवगण परम प्रसन्न होते हैं। समस्त ऋषिगण धर्मराज और चित्रगुप्त को भी बहुत हर्ष हुआ करता है ॥२८॥

स्वतन्त्र हि धन यावत्तावद्विप्रे समर्पयेत् ।
पराधीन मृते सर्वं कृपया को हि दास्यति ॥२६
पितुद्दे शेन यं पुत्र धंन विप्रकरेऽर्पितम् ।
आत्मन साधन तैस्तु कृत पुत्रप्रपौत्रकैः ।३०
पितु शतगुण पुण्य सहस्र मातुरुच्यते ।
भगिन्यैः शतसाहस्र सोदर्य्ये दत्तमक्षयम् ॥३१
यदि लोभान्न यच्छन्ति काले ह्यातुरसज्ञके ।
मृता शाचन्ति ते सर्वे कदर्य्या. पापिनस्तथा ॥३२
अतिक्लेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च ।
गतिरेकव वित्तस्य दानमन्या विपत्तय ॥३३
मृत्यु शरीरगाप्तार वसुरक्ष वसुन्धरा ।
दुश्चरित्रेव हसति स्वपति पुत्रवत्सलम् ॥३४
उदारो धार्मिक सौम्य प्राप्यापि विपुल धनम् ।
तृणवन्मन्यते तार्क्ष्य आत्मान वित्तमित्यपि ।।३५
न चैवोपद्रवस्तस्य मोहजाल न चैव हि ।
मृत्युकाले न च भय यमदूतसमुद्भवम् ॥३६
समा महत्राणि च सप्त वै जले दर्शवमग्नौ तपने च पोडश ।
महाहवे पष्टिरशीतिगोग्रहे अनाशने भारत चाक्षया गति ॥३७

जितना धन स्वतन्त्र है उतना सब विप्र की सेवा म समर्पित कर देना चाहिए। मृत्यु हो जाने पर तो सभी कुछ जो भी तुम्हारा है पराये अधीन हो जायगा फिर कृपा करके कौन देगा ॥ २६ ॥ अपने पिता के कल्याण होने

के उद्देश्य से जिन पुत्रों ने धन को विप्रों के हाथ में दान रूप से अर्पित किये हैं उन पुत्र—पौत्रों ने अपनी आत्मा का साधन सम्पन्न कर लिया है ॥ ३० ॥ पिता के उद्देश्य से दिये हुए का शतगुण फल होता है। माता के लिये दिया हुआ हजार गुना होता है—भगिनी के लिये दिया हुआ सौ सहस्र गुना और सगे भाई के उद्देश्य से दिया हुआ अक्षय होता है ॥ ३१ ॥ यदि लाभ से वशीभूत होकर आतुर की सत्ता वाले के समय में नहीं देते हैं तो मृत होकर वे सब कदम्ब और पापात्मा सोचा करते हैं अर्थात् पश्चात्ताप ही किया करते हैं ॥ ३२ ॥ अत्यन्त क्लेश के द्वारा प्राप्त होने वाले और प्रकृति से चञ्चल इस धन की एक ही उत्तम गति दान करना है और अन्य सब विपत्तियाँ ही हैं। ॥ ३३ ॥ शरीर की रक्षा करने वाले पुरुष को मृत्यु और धन की रक्षा करने वाले का यह वसुन्धरा पुत्र पर प्रेम करने वाले अपने पति को दुष्ट चरित्र वाली स्त्री के समान हँसा करती हैं ॥ ३४ ॥ उदार—धार्मिक और सौम्य भी पुरुष विपुल धन प्राप्त करके हे तार्क्ष्य ! उस बहुत से धन को और अपने आपको भी एक तृण की भाँति समझा करता है ॥ ३५ ॥ ऐसे उस पुरुष को कोई भी उपद्रव नहीं होता है—न कोई मोह का जाल होता है और मृत्यु के समय आने पर उसे किसी भी प्रकार का भय भी नहीं होता है जो कि यमदूतों के द्वारा समुत्पन्न आम तौर पर सबको हुआ करता है ॥ ३६ ॥ एक हजार सात वर्ष जल में—एक सहस्र ग्यारह अग्नि में और एक सहस्र सोलह तपन में—साठ महाहव में और अस्सी अनाशक गोग्रह में हे भारत ! उसकी अक्षय गति होती है ॥३७॥

२७—उद्कुम्भ प्रदान विधि

उदकुम्भप्रदानं मे कथयस्व यथातथम्।
विधिना केन दातव्या कुम्भास्ते कतिसख्यया ॥१
किंलक्षणा केन पूर्णा कस्मै देया जनार्दन।
कस्मिन्काले प्रदातव्या प्रेततृप्तिप्रदायका ॥२
सत्यं तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि उदकुम्भप्रदानकम्।
प्रेतार्द्देशेन दातव्यमन्नपानीयसंयुतम् ॥३

मानुषस्य शरीरे तु अस्थनामेव तु सञ्चयः ।
सङ्ख्यातः सर्वदेहेषु षष्ट्यधिकशतत्रयम् ॥४
उदकुम्भेन पुष्टानि तान्यस्थीनि भवन्ति हि ।
एतस्माद्दीयते कुम्भः प्रीतिः प्रेतस्य जायते ॥५
द्वादशाहे च षण्मासे त्रिपक्षे वाथ वत्सरे ।
उदकुम्भाः प्रदातव्या मार्गे तस्य सुखाय वै ॥६
सुलिप्ते भूमिभागे तु पक्वान्नजलपूरिता. ।
प्रेतस्य तत्र दातव्यं भोजनञ्च यदृच्छया ॥७

श्री गरुड देव ने निवेदन किया—हे भगवन् ! जल कुम्भ के दान के विषय में ठीक-ठीक मुझको समझाइये । ये जल के कुम्भ संख्या में कितने होने चाहिए और किस विधि से उनका दान करना चाहिए ? ॥१॥ हे जनों की पीड़ा के मर्दन करने वाले ! वे कुम्भ किस स्वरूप के होते हैं और किससे पूर्ण किये जाते हैं तथा किसको वे दान में देने चाहिए ? कृपा कर यह भी बताइये—इनका दान किस समय में करना चाहिए जिससे वे प्रेत की तृप्ति के करने वाले होते हैं ? ॥२॥ श्री भगवान् ने उत्तर दिया—हे तार्क्ष्य ! यह सर्वथा तुम्हारा पूछना सत्य एवं यथार्थ है । मैं अब उद कुम्भ के प्रदान के सम्बन्ध में बतलाता हूँ । प्रेत के उद्देश्य से अन्न और जल से समन्वित करके ही दान करना चाहिए ॥३॥ इस मानव के शरीर में अस्थियों (हड्डियों) के संचय को ही गणना किया जावे तो तीन सौ साठ होती हैं ॥४॥ उद कुम्भ से ये अस्थियाँ परिपुष्ट हुआ करती हैं । इसलिए ही कुम्भ दिया जाता है और इससे प्रेतात्मा को प्रसन्नता हुआ करती है ॥५॥ उस प्रेत की यमपुरी के महा मार्ग में सुख की प्राप्ति के लिये द्वादशाह में, षण्मास में, त्रिपक्ष में और उस दिन में उद कुम्भ देने चाहिए ॥६॥ भूमि के भाग को भली-भाँति लीपकर उस पर पक्वान्न और जल से पूरित करके उद कुम्भों का दान करे । वहाँ पर यदृच्छा से प्रेतात्मा का भोजन भी देना चाहिए ॥७॥

सुप्रीतस्तेन दानेन प्रेतो याम्यैः सह व्रजेत् ।
द्वादशाहे विशेषेण घटान्द्वादशसंख्यकान् ॥८

एकापि वर्धनी तत्र पक्वान्नजलपूरिता ।
विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सङ्कल्प्य ब्राह्मणाय वै ॥९
एका वै धर्मराजाय तेन दत्तेन मुक्तिभाक् ।
चित्रगुप्ताय चैका तु गतस्तत्र सुखी भवेत् ॥१०
षोड़शार्घ्या प्रदातव्या माषान्नजलपूरिताः ।
उत्क्रान्तिश्राद्धमारभ्य श्राद्धे षोडशके कृते ॥११
षोडश ब्राह्मणांश्चैव एकैकं विनिवेदयेत् ।
एकादशाहात्प्रभृति देयो नित्य घटाब्दकः ॥१२
पक्वान्नजलसम्पूर्णा यावत्सवत्सर दिनम् ।
एकाञ्च वर्द्धनी तत्र वशपात्रोपरिस्थिताम् ॥१३
वस्त्रै राच्छादिताञ्चैव सयुक्ताञ्च सुगन्धिभि. ।
ब्राह्मणाय विशेषेण जलपूर्णा प्रदापयेत् ॥१४
ग्रहन्यहनि सङ्कल्प्य विधिपूर्व घट खग ।
ब्राह्मणाय कुलीनाय वेदव्रतयुताय च ॥१५
सत्पात्राय प्रदातव्या न मूर्खाय कदाचन ।
समर्थो वेदवित्ताढयस्तरणे तारणेऽपि च ॥१६

उस दान से परम प्रसन्न होता हुआ प्रेत यम के दूतों के साथ उस पर-लोक के महान् मार्ग मे गमन किया करता है । बारहवें दिन मे विशेष रूप से बारह घटो का दान करे ॥८॥ एक वर्धनी भी उस दिन में पक्व अन्न-जल से परिपूर्ण कर भगवान् विष्णु का उद्देश्य करके सङ्कल्प करके ब्राह्मण को देवे । ॥९॥ एक धर्मराज के लिये देवे । इसके देने से मुक्ति का भागी होता है । एक चित्रगुप्त का उद्देश्य करके भी देनी चाहिए जिससे वहाँ जाने पर वह सुख वाला होवे ॥१०॥ माष अन्न और जल से पूरित करके षोडश अर्घ्य देने चाहिए । उत्क्रान्ति श्राद्ध का आरम्भ करके षोडशक श्राद्ध करने पर सोलह ब्राह्मणो को एक-एक निवेदित करे । एकादशाह से लेकर वर्ष भर नित्य घट देवे ॥११।१२॥ सम्वत्सर मे जितने दिन हो उतने ही घट पक्व अन्न जल से पूरित करके देवे - और एक वंशपात्र के ऊपर मे स्थित करके देवे ॥१३॥ उस वर्धनी को वस्त्रो

र समाच्छादित करे और सुगन्धित पदार्थों से संयुत करे फिर विशेष रूप से अन्न से पूर्ण करके ब्राह्मण के लिये दान देवे ।।१४।। हे खग ! दिन प्रतिदिन सङ्कल्प करके विधि के साथ घट को किसी अच्छे कुल में उत्पन्न और वेद-व्रत से युक्त ब्राह्मण के लिये दान करना चाहिए । यह दान किसी सत्पात्र को ही देवे, मूर्ख ब्राह्मण को नही देना चाहिए । ऐसे किसी सुयोग्य विप्र को दान देवे जो वेद के धन से सम्पन्न हो और स्वयं तरण में तथा अन्य के तारण में समर्थ होवे ।।१५।१६।।

२८—दान तीर्थ और मोक्ष कथन

दानतीर्थाश्रितं मोक्षं स्वर्गञ्च वद मे प्रभो ।
केन मोक्षमवाप्नोति केन स्वर्गं वसेच्चिरम् ।
केनासौ च्यवते जन्तुः स्वर्लोकाहसमलोकनः ।।१
मानुष्यं भारते वर्षे त्रयोदशसु जातिषु ।
सम्प्राप्य म्रियते तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ।।२
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।३
सन्न्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणे कण्ठगतैरपि ।
मृतो विष्णुपुरं याति पुनर्जन्म न विद्यते ।।४
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ।।५
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यदा ।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ।।६
शालग्रामशिला यत्र पापदोषक्षयावहा ।
तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिस्तत्र न संशयः ।।७

तार्क्ष्य ने कहा—हे प्रभो ! दानों तथा तीर्थों के आश्रित मोक्ष और स्वर्ग का वर्णन मेरे सामने करने की कृपा करिये । किससे मृतात्मा मोक्ष की प्राप्ति करता है और किससे स्वर्ग का निवास पाया करता है और किस कारण से यह

जन्तु स्वर्लोक और सत्यलोक से च्यवन किया करता है अर्थात् च्युत हो जाता है ? ॥१॥ श्री भगवान् बोले—भारतवर्ष में तेरह जातियों में मनुष्य जन्म पाकर जो तीर्थ में प्राण त्याग किया करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता है । ॥२॥ अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारावती, पुरी ये सात पुरी मोक्ष प्रदान करने वाली बताई गई हैं ॥३॥ प्राणों के कण्ठ गत होने पर भी जो "सन्न्यस्तम्" अर्थात् सन्यास किया है—ऐसा जो बोलता है वह मृत होकर विष्णुपुर को चला जाया करता है और फिर उसका जन्म संसार में नहीं होता है अर्थात् मोक्ष होकर आवागमन से छुटकारा पा जाता है ॥४॥ जिसने एक बार भी "हरि" इस भगवन्नाम के दो अक्षरों का उच्चारण किया है । उसने मोक्ष प्राप्त करने के लिये परिकर बद्ध कर लिया है अर्थात् कमर कसकर वह पूरी तरह से तैयार ही हो गया है—ऐसा समझ लेना चाहिए ॥५॥ कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण—इस तरह मेरे नाम का बारम्बार उच्चारण करके जो नित्य ही मेरा स्मरण किया करता है उसका मैं जल का भेदन करके कमल जैसे बाहर निकल कर अपना सौरभ, सौन्दर्य प्रदान किया करता है वैसे ही उस पुरुष का नरक से उद्धार कर दिया करता हूँ ॥६॥ समस्त पापों के दोषों के क्षय करने वाली शालग्राम की शिला जहाँ पर विराजमान हो और उसकी सन्निधि में जो अपने प्राणों का परित्याग करता है उसकी निश्चय ही मुक्ति हो जाती है इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है ॥७॥

शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावती शिला ।
उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥८
रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शन स्पर्शनकीर्त्तनात् ।
तुलसी दहते पापं नृणां जन्मार्जितं खग ॥९
ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नातो मानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकैः ॥१०
न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां न मृत्सु च ।
भावे हि वसते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥११
प्रातः प्रातः प्रपश्यन्ति नर्मदां मत्स्यघातिनः ।
न तेषां शुद्धिमायाति चित्तवृत्तिर्गरीयसी ॥१२

यादृशी चित्तवृत्तिः स्यात्तादृक्कर्मफलं नृणाम् ।
परलोके गतिस्तादृक्प्रतीतिः फलदायिका ॥१३
गुर्वर्थे ब्राह्मणार्थे च स्त्रीणां बालवधेषु च ।
प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥१४

तुलसी का बड़ा भारी माहात्म्य होता है। तुलसी के पौधे के रोपण करने से, तुलसी वृक्ष के सेचनादि से, पालन करने से, इसके केवल सींचने से तुलसी को नमस्कार करने से, इसके स्पर्श मात्र करने से और तुलसी के गुण तथा महिमा के कथन करने से हे राम ! यह तुलसी मनुष्यों के जन्म-जन्मान्तर के अर्जित पापों को जला दिया करती है ।।८।९।। ज्ञान रूपी ह्रद (जलाशय) में, सत्य रूपी जल में जो कि राग और द्वेष के मलों का अपहरण करने वाला है, ऐसे मानस स्वरूपी तीर्थ में जो स्नान करता है वह पातकों से कभी भी लिप्त नहीं हुआ करता है ।।१०।। देवता न तो काष्ठ में है न शिला में है, न मृत्तिका में ही रहता है। देव तो भावना में रहा करते हैं। मनुष्य की भावना जहाँ भी होगी वहीं देव साक्षात् स्वरूप में व्यक्त हो सकते हैं। अतएव भाव ही सबका मुख्य कारण होता है ।।११।। नित्य ही प्रातःकाल ही से मत्स्यों के घात करने वाले लोग नर्मदा का दर्शन किया करते हैं किन्तु उनके हृदय की दूषित भावना होने के कारण उनकी गरीयसी चित्त की वृत्ति कभी भी शुद्ध नहीं होती है ।। ।।१२।। जिस प्रकार की मनुष्यों की चित्त की वृत्ति होती है वैसा ही उनके कर्मों का फल भी हुआ करता है और फिर परलोक में उनकी गति भी उसी तरह की होती है क्योंकि प्रतीति ही फल देने वाली होती है ।।१३।। गुरु के लिये, ब्राह्मण के लिये, स्त्रियों के लिए और बाल वधों के लिए जो अपने प्राणों के त्याग करने को तत्पर हो जाता है वह प्राणी निश्चय ही मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ।।१४।।

अनशने मृतो यस्तु विमुक्तः सर्वबन्धनैः ।
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्य स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥१५
एते वै मोक्षमार्गाश्च स्वर्गमार्गास्तथैव च ।
गोग्रहे देवविध्वंसे देवमार्गविपत्सु च ॥१६

जीवित मरणश्चैव उभयो श्रेष्ठमुच्यते ।
जीवित दानभोगाभ्या मरण रणतीर्थयो. ।।१७
उत्तमाधममध्याश्च वध्यमानाश्च प्राणिन ।
आत्मान सम्परित्यज्य स्वर्गवास लभन्ति ते ।।१८
हरिक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे भृगुक्षेत्रे तथैव च ।
प्रभासे श्रीफले चैव अर्बुदे च त्रिपुष्करे ।।१९
भूतेश्वरे मृतो यस्तु स्वर्गे वसति मानव ।
ब्रह्मणो दिवस यावत्तत पतति भूतले ।।२०
वर्षवृत्तिश्च यो दद्याद्ब्राह्मणे व्रतसयुते ।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते ।।२१

अनशन करने मे जिसकी मृत्यु हो जाती है वह सभी प्रकार के बन्धनों से विमुक्त हो जाया करता है। विप्रो को दान देकर वह मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ।।१५।। ये सभी मोक्ष के प्राप्त करने के मार्ग हैं। इसी भाँति स्वर्ग प्राप्त करने के भी मार्ग होते हैं। गौओं के ग्रहण करने मे, देश के विध्वस होने मे, देव, तीर्थ की विपत्तियों मे जीवित रहना तथा मरण प्राप्त करना दोनो ही श्रेष्ठ होते हैं। दान और भोग से जीवित और रण भूमि तथा तीर्थ में मृत्यु का होना श्रेष्ठ होता है। वध्यमान प्राणी उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के हुआ करते हैं। वे आत्मा का त्याग करके स्वर्ग के निवास का लाभ किया करते हैं ।।१६।१७।१८।। हरिक्षेत्र कुरुक्षेत्र, भृगुक्षेत्र, प्रभास क्षेत्र, श्रीफल, अर्बुद और त्रिपुष्कर क्षेत्र मे तथा भूतेश्वर मे जो मृत्युगत होता है वह मनुष्य स्वर्ग मे वास किया करता है। और ब्रह्मा का जब तक एक दिन पूरा होता है तब तक उसको स्वर्ग मे निवास प्राप्त होता है। इस अवधि के समाप्त होने पर वह पुनः भूतल पर गिर कर आता है ।।१९।२०।। व्रत से सयुत ब्राह्मण को जो कोई एक वर्ष की पूरी वृत्ति का दान करता है अर्थात् पूरे वर्ष भर के खाने-पीने का सामान देता है वह अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार करके अन्त मे स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित हो जाता है ।।२१।।

कन्या विवाहयेयस्तु ब्राह्मणे वेदवित्तमे ।
इन्द्रलोके वसेत्सोऽपि स्वकुलं परिवेष्टितः ।।२२

महादानानि दत्त्वा च नरस्तत्फलमाप्नुयात् ।
वापीकूपतडागानामारामसुरसद्मनाम् ॥२३
जीर्णोद्धारं प्रकुर्वाणः पूर्वकर्त्तुः फलं हि यत् ।
तस्यैव द्विगुणं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥२४
कर्णकण्ठाङ्गुलीबाहुभूषणैश्चित्रवर्णकैः ।
गृहोपकरणैर्युक्तं गृहं धेनुसमन्वितम् ॥२५
शीतवातातपहरमपि यत्र कुटीरकम् ।
कृत्वा विप्राय विदुषे प्रददाति कुटुम्बिने ॥२६
तिस्रः कोटयर्द्धकोटीश्च समाः स्वर्गे महीयते ।
या स्त्री सवर्णा सशुद्धा मृतं पतिमनुव्रजेत् ।
सा मृता स्वर्गमाप्नोति वर्षाणां पूर्वसंख्यया ॥२७
पुत्रपौत्रादिकं हित्वा स्वपतिं याधिरोहति ।
स्वर्गं लभते तौ चोभौ कुलैस्त्रिभिः समन्वितौ ॥२८

जो वेदो के ज्ञाता ब्राह्मण को कन्या देकर उसका विवाह कर देता है
वह भी अपने समस्त कुलो से परिवेष्टित अर्थात् समन्वित होकर इन्द्रलोक मे
निवास किया करता है ॥२२॥ महादानो को देकर मनुष्य उनके फलो की प्राप्ति
किया करता है । बावड़ी, कुआ, तालाब, उद्यान और देवालय इन सबका या
इनमे से किसी एक का जीर्णोद्धार करने वाला मनुष्य, इनको जिसने पहिले
बनाया था उसका जो पुण्य-फल होता है उससे द्विगुण पुण्य प्राप्त करता है—
इसमे कुछ भी सन्देह नही है ॥२४॥ कण्ठ—कर्ण—अङ्गुलि और बाहु के चित्र-
विचित्र भूषणो से युक्त—गृह मे उपयोगी समस्त आवश्यक उपकरणों से सम-
न्वित—दूध देने वाली धेनु से संयुत—शीत, वात और आतप के हरण करने वाले
कुटीर वाले गृह का निर्माण कराकर किसी कुटुम्बी विद्वान् ब्राह्मण को जो
दान मे देता है वह पुरुष साढ़े तीन करोड वर्ष पर्यन्त स्वर्ग मे प्रतिष्ठित रहा
करता है । जो सवर्णा एवं सम्यक् प्रकार से शुद्ध स्त्री मृत पति का अनुगमन
किया करती है अर्थात् उसी के साथ सती हो जाती है वह मरकर पूर्वोक्त संख्या
वाले साढे तीन करोड वर्षो तक स्वर्ग मे निवास किया करती है ॥२५।२६।२७॥

जो पुत्र-पौत्रादिक का त्याग कर अपने ही पति की चिता में अधिरोहण करती है वे दोनों ही स्त्री-पुरुष अपने तीन कुलों के सहित स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं ।।२८।।

कृत्वा पापान्यनेकानि भर्त्तृद्रोहे मतिः सदा ।
प्रक्षालयति सर्वाणि या स्व पतिमनुव्रजेत् ।।२९
महापापसमाचारो भर्त्ता चेद्दुष्कृती भवेत् ।
तस्याप्यनुव्रता नारी नाशयेत्सर्वकिल्बिषम् ।।३०
ग्राममात्रं तु यश्चान्नं नित्यदानं करोति यः ।
छत्रचामरसंयुक्ते स विमानेऽधिगच्छति ।।३१
यत्कृतं हि मनुष्येण पापञ्च मरणान्तिकम् ।
तत्सर्वं नाशमायाति वर्षवृत्तिप्रदानतः ।।३२
भूतं भावि वर्त्तमानं पापं जन्मत्रयार्जितम् ।
प्रक्षालयति तत्सर्वं विप्रकन्याविवाहनात् ।।३३

जो अनेक पापों को करके सर्वदा अपने पति के द्रोह में बुद्धि रक्खा करती थी वह भी यदि अपने मृत पति का अनुगमन कर लेती है तो अपने सम्पूर्ण पापों का प्रक्षालन कर लिया करती है ।।२९।। यदि उसका पति जो नारी अपने पति का अनुगमन करती है महान् पापों के आचरण करने वाला भी हो और पूर्णतया दुष्कर्मी हो तो भी वह अनुव्रता नारी उसके भी पापों का प्रक्षालन कर दिया करती है ।।३०।। जो ग्राम मात्र को ही नित्य अन्न का दान किया करता है वह छत्र और चमरों से समन्वित विमान में अधिरोहण कर स्वर्ग को जाया करता है। जो वर्ष भर की वृत्ति विप्रों का दिया करता है उसने आरम्भ से मृत्यु तक जो भी कुछ पाप किया है वह सब नाश को प्राप्त हो जाया करता है ।।३१।३२।। किसी विप्र की कन्या का विवाह करा देने से तीन जन्म का भूत—भवि और वर्त्तमान सम्पूर्ण पाप का मनुष्य प्रक्षालन कर दिया करता है ।।३३।।

दशकूपसमा वापी दशवापीसमं सरः ।
दशानां सरसां साम्यं प्रा तार्क्ष्य विनिर्जले ।।३४

प्रपापि निर्जले देशे यद्दान निर्धने द्विजे ।
प्राणिना यो दया धत्ते स भवेल्लोकनायक ॥३५
एवमादिभिरन्यैश्च सुकृतैः स्वर्गभाग्भवेत् ।
सर्वधर्मफल प्राप्य प्रतिष्ठा परमा लभेत् ॥३६
फल्गु कार्य्यं परित्यज्य सतत धर्मवान्भवेत् ।
दान सत्य दया चेति सारमेतज्जगत्त्रये ॥३७
दान साधु दरिद्रस्य शून्ये लिङ्गस्य पूजनम् ।
अनाथप्रेतसंस्कार: कोटियज्ञफल लभेत् ॥३८

दश कुओं के निर्माण करा देने के तुल्य पुण्य एक बावडी के निर्माण कराने का होता है। दश बावडियों के समान एक सर होता है और दश सरो-वरों के समान किसी बिना जल वाले स्थान में एक प्याऊ के निर्माण का पुण्य होता है ॥३४॥ प्रपा (प्याऊ) वहीं ही बनवानी चाहिए जहाँ जल का अभाव हो और दान उसी ब्राह्मण को देना चाहिए जो निर्धन हो। जो प्राणियों पर दया किया करता है वह लोक का नायक होता है ॥३५॥ एवमादि पुण्यों से तथा अन्य सुकृतों से मनुष्य स्वर्ग के निवास का अधिकारी हुआ करता है। सब धर्म के फल को प्राप्त कर परम प्रतिष्ठा को प्राप्त किया करता है ॥३६॥ फल-शून्य व्यर्थ के कार्य का त्याग कर निरन्तर धर्म के करने वाला होना चाहिए। इस जगत् में दान–सत्य और दया ये तीन ही सार वस्तु हैं ॥३७॥ दरिद्र को दान देना, शून्य में लिङ्ग का पूजन करना और अनाथ व्यक्ति के प्रेत संस्कार का करना–इससे एक करोड़ यज्ञों के करने का फल प्राप्त हुआ करता है ॥३८॥

२६--अशौच विधि कथनम्

सूतकाना विधि ब्रूहि दया कृत्वा ममोपरि ।
विवेकाय हि चित्तस्य मानवाना हिताय च ॥१
मृते जन्मनि पक्षीन्द्र सपिण्डाना हि सूतकम् ।
चतुर्णामपि वर्णाना सर्वकर्मविवर्जनम् ॥२
उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्न विवर्जयेत् ।
दान प्रतिग्रह होम स्वाध्यायश्च निवर्त्तयेत् ॥३

देशकालं तथात्मान द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् ।
उपपत्तिगथावस्था ज्ञात्वा शौच प्रकल्पयेत् ॥४
मृते पत्नौ वनस्थे च देशान्तरमृतेषु च ।
स्नान सचैलं कर्त्तव्य सद्य. शौच विधीयते ॥५
स्रावगर्भाश्च ये जीवा ये च गर्भाद्विनि सृता ।
न तेषामग्निसस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥६
कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च ।
राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचानुकारिणः ॥७

गरुड ने कहा—हे भगवन् ! अब मानवो के हित के लिये और चित्त के विवेक के वास्ते मुझ पर कृपा करके सूतको की विधि बताने की उदारता कीजिए । श्रीभगवान् ने कहा -हे पक्षीन्द्र ! किसी को मृत्यु और जन्महोने पर जो सपिंड पुरुष एव स्त्री होते हैं उनको सूतक हुआ करता है । इन ज त का शौच और मृत का शौच की दशा मे चारो वर्णों मे सम्पूर्ण प्रकार के कर्मों का विशेष रूप से निषेध हुआ करता है ॥ १ ॥ २ ॥ दोनो प्रकार के सूतक में दश दिन कुल के दान प्रतिग्रह—होम और स्वाध्याय अर्थात् वेदो का अध्ययन इनका शीघ्र वर्जन कर देना चाहिए ॥ ३ ॥ देश—काल—आत्मा—द्रव्य प्रयोजन—उपपत्ति और अवस्था इनका ज्ञान करके शौच को प्रकल्पित करे ॥ ४ ॥ वन मे स्थित पति के मृत हो जाने पर और अन्य देश मे मृत्यु गत होने पर वस्त्रो के सहित स्नान करना चाहिए । इसी से तुरन्त शुद्धि हो जाया करती है ॥ ५ ॥ जिन जीवो के गर्भ का स्राव हो गया है और जो गर्भ से विनिः सृत हो गये हैं उनका न तो कोई अग्नि सस्कार होता है और न उदक क्रिया ही की जाया करती है ॥ ६ ॥ कारु लोग (कारीगर)—शिल्पी (दस्तकार)—वैद्य—दासी—दास—राजा लोग और भृत्य वर्ग ये तुरन्त ही शौच के अनुकारी हो जाते हैं ॥ ७ ॥

सव्रतो मन्त्रपूतश्च आहिताग्निर्नृपस्तथा ।
एतेषां सूतकं नास्ति यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणाः ॥८

प्रसवेन गृहस्थानां न कुर्य्यात्सङ्करं द्विजः ।
दशाहाच्छुध्यते माता अवगाह्य पिता शुचि. ॥९
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ।
पूर्वसङ्कल्पित द्रव्य भोज्य तन्मनुरब्रवीत ॥१०
सर्वेपामेवमाशौच मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतक मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचि ॥११
अन्तर्दशाहे चेत्स्याता पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तस्य दशाह्निकम् ॥१२
क्षुधिते नियमादान आर्त्ते विप्रे निवेदयेत् ।
तथैव ऋपिभिः प्रोक्त यथाकाल न दुष्यति ॥१३
दान परिपदे दद्यात्सुवर्णं गा वृप द्विज ।
क्षत्रियो द्विगुण दद्याद्वैश्यस्तु त्रिगुण तथा ॥१४

अन से युक्त—मन्त्रों से पवित्र—अहित अग्नि वाला—और नृप इनको सूतक नहीं होता है और जिनको ब्राह्मण चाहते है उनको भी सूतक नहीं होता है ॥ ८ ॥ द्विज को प्रसव के द्वारा सङ्कट नहीं करना चाहिए। माता की शुद्धि दश दिन मे होती है और पिता अवगाहन करके शुचि हो जाता है ॥९॥ विवाह—उत्सव और यज्ञो मे मध्य मे मृतक के सूतक हो जाने पर पूर्व सङ्कल्पित जो द्रव्य है उसको उपभोग मे ले आना चाहिए—ऐसा महर्षि मनु ने कहा है ॥ १० ॥ सबको आशौच होता है और माता-पिता को सूतक होता है। सूतक माता को ही होता है। पिता तो उपस्पर्शन करके शुद्ध हो जाया करता है ॥ ११ ॥ दशाह के मध्य मे यदि अन्य किसी का मरण या जन्म हो जाता है तो विप्र तब तक अशुचि रहता है जब तक उसका दशाह्निक कर्म पूर्ण होता है ॥ १२ ॥ क्षुधा से युक्त को नियम से दान और आर्त्त को तथा विप्र को देवे। उसी प्रकार से ऋषियो ने कहा है तो काल के अनुसार दोप नही होता है ॥ १३ ॥ परिषद मे दान देवे। द्विज को गो-सुवर्ण और वृप का दान करना चाहिए। क्षत्रिय को दुगुना ब्राह्मण से दान देना चाहिए और वैश्य को तिगुना दान देना चाहिए ॥१४॥

चतुर्गुणेन तु शूद्रेण दातव्यं ब्राह्मणे धनम् ।
एवञ्चानुक्रमेणैव चातुर्वर्ण्यं विशुध्यति ॥१५
सप्ताष्टमन्तरे शीर्णो व्रतसंस्कारवर्जिते ।
अहानि सूतकं तस्य अब्दानां सख्यया स्मृतम् ॥१६
ब्राह्मणार्थे विपन्ना ये नारीणां गोगृहेषु च ।
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रं हि सूतकम् ॥१७
अनाथप्रेतसंस्कारं ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ।
न तेषामशुभं किञ्चिद्विप्रेण सहकारिणा ॥
जलावगाहनात्तेषां सद्यः शुद्धिरुदाहृता ॥१८
विनिवृत्ता यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः ।
तदा विप्रेण द्रष्टव्या इति वेदविदो विदुः ॥१९

शूद्र को चतुर्गुण ब्राह्मण को धन देना चाहिए। और इसी वर्णित क्रम के अनुसार चारों वर्ण शुद्ध हो जाया करते है ॥ १५ ॥ सातवें और आठवें मास में यदि गर्भ शीर्ण हो जाता है जो कि व्रत संस्कार से रहित सात या आठवें वर्ष में मृत हो जाता है तो वर्षों की सख्या के अनुसार ही उसका उतने दिन का सूतक होता है ॥ १६ ॥ ब्राह्मणार्थ में अर्थात् ब्राह्मणों के हित में—नारियों की भलाई के लिये—गौओं के लिये और युद्धों में जो विपन्न हो जाते हैं अर्थात् मर जाया करते हैं उनका सूतक केवल एक रात्रि का ही होता है ॥ १७ ॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य किसी अनाथ पुरुष के प्रेत-संस्कार को करते हैं उन को कुछ भी अशुभ नहीं होता है। सहकारी विप्र के द्वारा जल में अवगाहन (स्नान) करने से ही तुरन्त उनकी शुद्धि बतलाई गयी है ॥ १८ ॥ जब शूद्र विनिवृत्त होकर जल के समीप में उपस्थित हो जाते हैं उस समय में विप्र के द्वारा उन्हें देखना चाहिए—ऐसा वेदों के वेत्ता विद्वान् लोग कहते है ॥१९॥

३०—अपमृत्यु फल

भगवन् ब्राह्मणाः केचिदपमृत्युवशङ्गताः
कथं तेषां भवेन्मार्गः किं स्थानं का गतिर्भवेत् ॥१

किञ्च युक्तं भवेत्तेषां विधानञ्चापि कीदृशम् ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे मधुसूदन ॥
प्रेतीभूते द्विजातीनां सम्भूते मृत्युवैकृते ॥२
तेषां मार्गं विधिं स्थानं विविधं कथयाम्यहम् ।
शृणु तार्क्ष्य परं गोप्यं कृते दुर्मरणे तु यत् ॥३
लंघनैर्ये मृता विप्रा दंष्ट्रिभिर्घातिताश्च ये ।
कण्ठग्राहिविलग्नाश्च क्षीणाश्च गुरुघातिनः ॥४
वृकाग्निविषविप्रेभ्यो विसूच्या चात्मघातकाः ।
पतनोद्बन्धनजले मृताश्च शृणु संस्थितिम् ॥५
यान्ति ते नरके घोरे ये च म्लेच्छादिभिर्हताः ।
श्वशृगालादिभिः स्पृष्टा अदग्धाः कृमिसंकुलाः ॥६
उल्लङ्घितमृता ये च महारोगैश्च ये मृताः ।
लोकेऽसत्यास्तथा व्यङ्गा युक्ताः पापेन योषितः ॥७
चाण्डालादुदकात्सर्पाद् ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ।
दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च वृक्षादिपतनान्मृताः ॥८
उदक्यासूतकशूद्ररजकादिविदूषिता ।
तेन पापेन नरकान्मुक्ताः प्रेतत्वभागिनः ॥९

तार्क्ष्य ने कहा—हे भगवन् ! कुछ ब्राह्मण यदि अप मृत्यु के वशगत हो जाया करते है तो उनका मार्ग कैसे होता है—उनका क्या स्थान है और उनकी क्या गति हुआ करती है ? उनके लिये क्या युक्त होता है और उनका विधान भी कैसा हुआ करता है ? हे मधुसूदन ! मैं अब यह श्रवण करना चाहता हूँ । आप कृपा करके मुझे यह बतलाइये । द्विजातियों के प्रेत हो जाने पर और मृत्यु से विकृत होने पर क्या होता है और उस दशा मे क्या करना चाहिए ? ॥ १ ॥ २ ॥ श्री भगवान् ने कहा—उनका मार्ग—विधि और विविध स्थान मैं अब तुमको बतलाता हूँ । हे तार्क्ष्य ! तुम इसे सुनो, यह विषय बहुत ही गोपनीय है जो कि दुर्मरण करने पर होता है ॥ ३ ॥ जो विप्र लंघन करके मृत हो जाते हैं और जो दाढ़ों वाले हिंस्र पशुओं के द्वारा मार दिये जाते

हैं—कण्ठ ग्राही विलग्न अर्थात् फाँसी लग कर जो मरते हैं—जो क्षीण होकर मरते हैं—जो गुरुओं की घात करने वाले हैं—वृक (भेड़िया)—अग्नि और विप्रों से विमुख होते हैं तथा आत्म घात करने वाले हैं—गिर कर उद्बन्धन से और जल में जिनकी मृत्यु हो जाती है उनकी जो स्थिति होती है उसका श्रवण करो ॥ ४ ॥ ५ ॥ जो म्लेच्छ आदि के द्वारा हत होते हैं वे सब घोर नरक में जाया करते हैं। कुत्ता–शृगाल आदि के द्वारा स्पर्श किये हुए—अदग्ध और कृमियों से सकुल घोर कीड़ों से घिरे हुए जो उल्लंघित मृत हो जाते हैं और जो महा रोगों के द्वारा मृत्यु गत होते हैं। लोक में जो असत्य हैं—अपङ्ग हैं अर्थात् विगत अङ्ग वाले हैं और स्त्रियों के पाप से युक्त हैं। चाण्डाल से–जल से–सर्प से—ब्राह्मण से—विद्युत् से–दाढ वाले जानवरों से—पशुओं से और वृक्षादि के ऊपर से गिर कर जो मृत होते हैं। उदक्या (रजस्वला स्त्री)–सूतक—शूद्र और रजक आदि से जो विदुषित हो जाते हैं। उस पाप से वे नरक से मुक्त होते हुए प्रेतत्व योनि के भागी हुआ करते हैं ॥६॥७॥८॥९॥

न तेषां कारयेद्दाह सूतक नोदकक्रियाम् ।
न विधान मृताद्यञ्च न कुर्यादौर्ध्व देहिकम् ॥१०
तेषां तार्क्ष्य प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम् ।
सर्वलोकहितार्थाय शृणु पापभयापहाम् ॥११
षण्मास ब्राह्मणस्याथ त्रिमास क्षत्रियस्य च ।
सार्द्धमास तु वैश्यस्य सद्यः शूद्रस्य सा भवेत् ॥१२
गङ्गाया यमुनायाञ्च नैमिषे पुष्करेषु च ।
तडागे जलपूर्णे वा ह्रदे वा विमले जले ॥१३
वाप्यां कूपे गवां गोष्ठे गृहे वा प्रतिमालये ।
कृष्णाग्रे कारयेद्विप्रे विधि नारायणात्मकम् ॥१४

उनका दाह नहीं कराना चाहिए–उनका कोई सूतक नहीं होता है और न इनकी कोई उदक क्रिया ही होनी है। इनका मृताद्य कोई विधान नहीं है और न और्ध्व दैहिक ही उनका कुछ कर्म करना चाहिए। हे तार्क्ष्य ! इनके लिए नारायण बलि की क्रिया करनी चाहिए। यह समस्त लोक के हित के लिये

होती है और पापों के मय को अपहरण करने वाली है। इसका तुम श्रवण करो ॥ ११ ॥ ब्राह्मण की छैः मास तक—क्षत्रिय की तीन मास—वैश्य की डेढ़ मास और शूद्र की वह तुरन्त ही होती हैं ॥ १२ ॥ गङ्गा में—यमुना में—नैमिष में—पुष्कर में—जल से पूर्ण तड़ाग में अथवा विमल जल वाले ह्रद में—वावड़ी में—कूप में—गौओं के गोष्ठ में अथवा देवालय में या श्री कृष्ण की प्रतिमा के आगे यह नारायणात्मक बलि की विधि द्विजों के द्वारा करानी चाहिए ॥१३॥१४॥

पूर्णे तु तर्पणं कार्य्यं मन्त्रैः पौराणवैदिकं ।
सर्वौषधिकृतंश्चैव विष्णुमुद्दिश्य तर्पयेत् ॥१५
कार्य्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर्वा वैष्णवैरपि ।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेत विष्णुमिति स्मरेत् ॥१६
अनादिनिधनो देव शङ्खचक्रगदाधर ।
अव्यय पुण्डरीकाक्ष प्रेतमोक्षप्रदो भवेद् ॥१७
तर्पणस्यावसाने तु वीतरागो विमत्सर ।
जितेन्द्रियमना भूत्वा शुचिमान्धर्मतत्पर ॥१८
दानधमरतश्चैव प्रणम्य वाग्यत शुचि ।
यजमानो भवेत्तार्क्ष्यं शुचिर्वन्धुसमन्वितः ॥१९
भक्त्या तत्र प्रकुर्वीत श्राद्धान्येकादशैव तु ।
सर्वकर्मविधानेन एककार्य्यसमाहित ॥२०
तोयव्रीहिपदान्दद्याद्गोधूमाश्च प्रियङ्गवान् ।
हविष्यान्न शुभा मुद्रा छत्रोष्णीपश्च चेलकम् ॥२१
दापयेत्सर्वशस्यानि क्षीरक्षौद्रसमन्वितम् ।
वस्त्रोपानहसयुक्तं दद्यादष्टविध पदम् ॥२२

नारायण बलि के पूर्ण हो जाने पर पौराणिक और वैदिक मन्त्रों के द्वारा तर्पण करना चाहिए। सर्वौषधिकृत के द्वारा भगवान् विष्णु का उद्देश्य करके तर्पण करे ॥ १५ ॥ पुरुष सूक्त के द्वारा अथवा वैष्णव मन्त्रों के द्वारा दक्षिण की ओर मुख करके प्रेत विष्णु का स्मरण करे ॥ १६ ॥ जिसका

कभी आदि नहीं है और न कभी भी निधन ही होता है ऐसे शंख, चक्र और गदा के धारण करने वाले देव जो अव्यय हैं और पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले हैं वे भगवान् विष्णु प्रेत को मोक्ष के प्रदान करने वाले होवें ॥ १७ ॥ तर्पण के अन्त में वीतराग होने वाले अर्थात् वैराग्य युक्त—मात्सर्य से रहित—इन्द्रियों और मन के जीतने वाला होकर शुचिता से युक्त—धर्म में तत्पर होवे। ध्यान और धर्म में रति रखने वाला होकर मौन व्रत वाला एवं शुद्ध हो प्रणाम करे। हे तार्क्ष्य ! यजमान बन्धुओं से युक्त शुचि होवे ॥ १८ ॥ १९ ॥ भक्ति भाव से यहाँ पर एकादश श्राद्धों को करे। सम्पूर्ण कर्मों के विधान से एक ही कार्य्य में सावधान होकर रहे ॥ २० ॥ जल व्रीहि और यवों को देवे। गोधूम और प्रियङ्गव–हविष्मान्न–शुभ मुद्रा–छत्र–उष्णीष–चेलक दिलावे। सब धान्यों को देवे। क्षीर–क्षौद्र से समन्वित वस्त्र और उपानह से युक्त आठ प्रकार का पद देना चाहिए ॥२१॥२२॥

दापयेत्सर्वविप्रेभ्यो न कुर्य्यात्पक्तिवञ्चनम् ।
भूमौ स्थितेषु पिण्डेषु गन्धपुष्पाक्षतान्वितम् ॥२३
दातव्यं सर्वविप्रेभ्यो वेदशास्त्रप्रमाणतः ।
शङ्खे पात्रेऽथवा ताम्रे तर्पणञ्च पृथक् पृथक् ॥२४
धाताधारेण संयुक्तो जानुभ्यामवनीं गतः ।
स चादौ दापयेदर्घ्यं एकोद्दिष्टं पृथक् पृथक् ॥२५
आपो देवी मधुमती आदिपिण्डे प्रकल्पिता ।
उपयामगृहीतोऽसि द्वितीये च निवेदयेत् ॥२६
येनापावकवामत्क तृतीये पिण्डकल्पना ।
ये देवा स चतुर्थे तु समुद्रं गच्छ पञ्चमे ॥२७
अग्निर्ज्योतिस्तथा षष्ठे हिरण्यगर्भश्च सप्तमे ।
यमाय त्वष्टमे ज्ञेयं यज्जाग्रन्नवमे तथा ॥२८
दशमे या. फलिनीति पिण्डे चैकादशे ततः ।
भद्रं कर्णेभिरिति च कुर्य्यात्पिण्डविसर्जनम् ॥२९

कृत्वैकादशदैवत्य श्राद्धं कुर्य्यात्परेऽहनि ।
विप्रानावाहयेत्पश्चादर्घ्यं दद्याद्विशारदः ।।३०

सभी विप्रों को दिखवाना चाहिए । इनमें पक्ति भेद नहीं करे । भूमि में स्थित पिण्डों मे वेद शास्त्र के प्रमाण से गन्ध–पुष्प और अक्षत से युक्त सभी विप्रों को देना चाहिए । शङ्ख में–पात्र मे अथवा ताम्र में पृथक्–पृथक् तर्पण करे ।। २३ ।। २४ ।। वाताधार से संयुक्त हो जानुओं (घुटनों) से भूमि पर गत होकर आदि मे उसे अर्घ्य देना चाहिए । एकोद्दिष्ट में पृथक्-पृथक् अर्घ्य देवे ।। २५ ।। आदि पिण्ड मे " आपो देवी मधुमती "—इससे प्रकल्पित करे और दूसरे पिण्ड मे " उपयाम गृहीतोऽसि "—इससे निवेदन करना चाहिए ।। २६ ।। " येना पावक चामक्त "—इससे तीसरे पिण्ड की कल्पना करे तथा ' ये देवा स '—इससे चौथे पिंड को देवे । " समुद्र गच्छ "—इससे पाँचवाँ पिंड देवे ।। २७ ।। " अग्नि ज्योति "—इससे छटवाँ पिंड और " हिरण्य-गर्भश्च "—इससे सातवाँ पिंड निवेदित करे । " यमाय "—इससे अष्टम पिंड और " यज्जाग्रत् "—इससे नवम पिंड देवे ।। २८ ।। " या फलिनी "—इससे दशवाँ और " भद्र कर्णेभिः "—इससे एकादश पिंड का विसर्जन करना चाहिए ।। २६ ।। इस प्रकार से एकादश करके दूसरे दिन मे श्राद्ध करना चाहिए । विप्रों का आवाहन करना चाहिए और इसके पीछे विशारद को अर्घ्य देना चाहिए ।।३०।।

विद्याशीलगुणोपेतान्स्वकीयमुकुलोत्तमान् ।
अव्यङ्गाश्च प्रशस्ताश्च हि वर्ज्यान्कादाचन ।।३१

विष्णु. स्वर्णमय. कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा ।
ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत् ।।३२

सीसक तु भवेत्प्रेते अथवा दर्भक तथा ।
यमाय त्वेति मन्त्रेण सहित सामवेदिनम् ।।३३

अग्न आयाहि मन्त्रेण गोविन्द पश्चिमे न्यसेत् ।
अग्निमीलेति मन्त्रेण पूर्वेणैव प्रजापतिम् ।।३४

इषेत्वा इति मन्त्रेण दक्षिणे स्थापयेद्यमम् ।
मध्ये च मण्डलं कृत्वा स्थाप्यो दर्भमयो नरः ॥३५
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो यमः प्रेतस्तु पञ्चमः ।
पृथक्कुम्भे ततः स्थाप्यं पञ्चरत्नसमन्विते ॥३६
वस्त्रयज्ञोपवीतानि पृथङ्मुद्रायुतानि च ।
जपं कुर्य्यात्पृथक्तत्र ब्रह्मादौ देवतासु च ॥३७

जो विप्र विद्या-हीन और गुण से युक्त हों और अपने कुल में उत्पन्न हों तथा अव्यङ्ग एवं प्रशान्त हो उनको कभी वर्जित न करे। विष्णु की प्रतिमा सुवर्ण की बनवावे तथा रुद्र की प्रतिमा ताम्रमय करावे और ब्रह्मा चाँदी के निर्मित करावे तथा यम लोह का बनवावे। प्रेत में शीशा हो या दर्भों का होवे। "यमायत्वा"—इस मन्त्र से साम वेदी को—"अग्न आयाहि"—इस मन्त्र से गोविन्द को पश्चिम में न्यस्त करे और "अग्नि मीले"—इस मन्त्र से पूर्व दिशा में प्रजापति को स्थापित करना चाहिए ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ "इषेत्वा"—इस मन्त्र से दक्षिण दिशा में यम को स्थापना करे और मध्य में मण्डल करके दर्भमय नर की स्थापना करनी चाहिए ॥ ३५ ॥ ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र—यम और पाँचवाँ प्रेत इनको इसके अनन्तर पाँच रत्नों से युक्त पृथक् कुम्भ में स्थापित करना चाहिए ॥ ३६ ॥ वस्त्र—यज्ञोपवीत मुद्रा से युक्त पृथक् रक्खे। वहाँ पर जप भी पृथक् करे जो कि ब्रह्मा आदि देवताओं के लिये है ॥ ३७ ॥

पञ्च श्राद्धानि कुर्वीत देवतानां यथाविधि ।
जलधारा ततः कुर्य्यात्पिण्डे पिण्डे पृथक् पृथक् ॥३८
शङ्खे वा ताम्रपात्रे वा अलाभे मृण्मयेऽपि वा ।
तिलोदक समादाय सर्वौषधिसमन्वितम् ॥३९
आसनोपानहौ छत्रं मुद्रिकाञ्च कमण्डलुम् ।
भाजन भोज्यधान्यञ्च वस्त्राण्यष्टविध पदम् ॥४०
ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं सहिरण्य सदक्षिणम् ।
दद्याद्ब्राह्मणमुख्याय विधियुक्त खगेश्वर ॥४१

ऋग्वेदपाठके दद्याज्जातशस्यां वसुन्धराम् ।
यजुर्वेदमये विप्रे गाञ्च दद्यात्पयस्विनीम् ।।४२
सामगाय शिवोद्देशे प्रदद्याद्वस्त्रधौतकम् ।
यमोद्देशे तिलान् लोह ततो दद्याञ्च दक्षिणाम् ।।४३
पश्चात्पुत्तलकः कार्यः सर्वौषधिसमन्वितः ।
पलाशस्य च वृन्तानां भाग कृत्वा च काश्यप ।।४४
कृष्णाजिन समास्तीर्य्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम् ।
शतत्रयषष्टियुक्तं तु सै प्रोक्तोऽस्थिसञ्चयः ।।४५
विन्यस्य तानि बध्नीयात् कुशैरङ्गे पृथक् पृथक् ।
चत्वारिंशच्छिरोभागे ग्रीवायाञ्च दश न्यसेत् ।।४६
विंशत्युरःस्थले देय विंशतिर्जठरे तथा ।
ऊरुद्वये शतं दद्यात् कटिदेशे च विंशतिं ।।४७

विधि पूर्वक देवताओं के पाँच श्राद्ध करे । इसके अनन्तर तिड तिड पर पृथक् पृथक् जलधारा करनी चाहिए । शङ्ख पर या ताम्र पात्र पर और इन दोनों के लाभ न होने पर मृण्मय पर सर्वौषधि से समन्वित तिलोदक लाकर हे खगेश्वर ! फिर मुख्य ब्राह्मण के लिये आसन-उपानह—छत्र-मुद्रिका-कमण्डलु—भाजन-भोज्य, वान्य और वस्त्र इस तरह आठ प्रकार का पद तिलों से परिपूर्ण ताम्र का पात्र जिसमें सुवर्ण और दक्षिणा भी हो विधि पूर्वक दान देना चाहिए ।। ३८ ।। ३६ ।। ४० ।। ४१ ।। जो ऋग्वेद का पाठक ब्राह्मण हो उसे शस्यों को समुत्पन्न करने वाली भूमि का दान करे । जो यजुर्वेद का ज्ञाता विप्र हो उसे दूध देने वाली गौ का दान करे ।। ४२ ।। सामवेद के विद्वान् द्विज को शिव के उद्देश्य से वस्त्रधौतक का दान देवे । यम के उद्देश्य से तिल-लोह और दक्षिणा का दान करना चाहिए ।। ४३ ।। हे काश्यप ! इसके अनन्तर सर्वौषधि से समन्वित पुत्तलक बनाना चाहिए । पलाश (ढाक) के वृन्तों का भाग करे । कृष्ण अजिन (मृग चर्म) को बिछाकर एक पुरुष की आकृति में तीन सौ साठ अस्थियाँ कुशों से सञ्चित करे । इनको हड्डियों का सञ्चय बताया गया है ।। ४४ ।। ४५ ।। उनका विन्यास करके अङ्ग में कुशों से प्रमम-

अलग बाँधे । चालीस शिरोभाग में—ग्रीवा मे दशों न्यास करे ॥ ४६ ॥ उर स्थल मे बीस—उदर मे बीस—दोनो ऊरुओ मे सौ और कटि देश में दो अस्थियों का बन्धन करे ॥४७॥

दद्याच्चतुष्टयं शिश्ने षड् दद्याद् वृषणद्वये ।
दश पादाङ्गुलीभागे एवमस्थीनि विन्यसेत् ॥४८
नारिकेलं शिरःस्थाने तारं दद्याच्च तालुके ।
पञ्चरत्नं मुखे दद्याज्जिह्वायां कदलीफलम् ॥४९
अन्त्रेषु वालुकां दद्याद् वाह्लीकं घ्राणे चैव हि ।
वसायां मृत्तिकां दद्याद्गोमूत्रं मूत्रके तथा ॥५०
गन्धकं धातवे देयं हरितालं मनःशिलाम् ।
यवपिष्टं तथा मांसे मधु शोणिते चैव हि ॥५१
केशेषु च जटाजूटं त्वचायाञ्च मृगत्वचम् ।
पारदं रेतसः स्थाने पुरीषे पित्तलं तथा ॥५२
मनःशिला तथा गात्रे तिलकल्कञ्च सन्धिषु ।
कर्णयोस्तालपत्रञ्च स्तनयोश्चैव गुञ्जकौ ॥५३
नासायां शतपत्रञ्च कमलं नाभिमण्डले ।
वृन्ताकं वृषणे दद्याल्लिङ्गे स्याद्गृञ्जनं शुभम् ॥५४
घृतं नाभ्यां प्रदेयं स्यात् कौपीने च त्रपु स्मृतम् ।
मौक्तिकं स्तनयोर्मूर्ध्नि कुङ्कुमेन विलेपनम् ॥५५
कर्पूरागुरुधूपैश्च शुभैर्माल्यैः सुगन्धिभिः ।
परिधाने पट्टसूत्रं हृदये रुक्मकं न्यसेत् ॥५६

शिश्न में चार—वृषणों मे छै—पैर की अगुलियो के भाग में दश अस्थियों का विन्यास करना चाहिए । पुत्तल निर्माण करने के लिये शिरोभाग में नारियल देवे और तालु मे तार देना चाहिए । मुख मे पाँचों रत्न और जिह्वा में केले का फल देना चाहिए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अन्त्रो में बालु का देवे और घ्राण में वाह्लीक देना चाहिए । वसा के स्थान में मृत्तिका तथा मूत्र स्थान में गो मूत्र देवे ॥ ५० ॥ धातु के लिये गन्धक—हरिताल और मैनसिल देवे ।

स के स्थान पर यवपिष्ट और शोणित मे मधु देवे ॥ ५१ ॥ केशों के स्थान जटाजूट और त्वचा मे मृग की त्वचा देवे। वीर्य के स्थान मे पारद देवे रा पुरीष क स्थान मे पित्तल देवे ॥ ५२ ॥ सम्पूर्ण गात्र मे मैनसिल और न्धियो मे तिल का वल्क देना चाहिए। कानों के स्थान म ताड पत्र तथा तनो में गुञ्जा फल लगाना चाहिए ॥ ५३ ॥ नासिका में शत पत्र और नाभि ण्डल मे कमल–वृषण के स्थान मे वृन्ताक (बैंगन) और लिङ्ग के स्थान म ञ्जन (गाजर) देवे ॥ ५४ ॥ नाभि मे घृत देवे और कोपीन मे मधु देवे। नतो मे मौक्तिक (मोती) तथा माथे मे कु कुम स विलेपन करना चाहिए। । ५५ । कपूर–अगुरु और धूप देवे तथा सुगन्ध युक्त सुन्दर मालाओ म सुम-ण्डत करे। परिधान क लिये यह सूत्र देवे और हृदय मे रुक्मक देवे ॥५६॥

ऋद्धिवृद्धिभुजौ द्वौ च नेत्रयोश्च वराटिकाम् ।
सिन्दूर नेत्रकोणेषु ताम्बूलाद्युपहारकं । ५७
सर्वौषधियुता प्रेतपूजा कृत्वा यथोदिताम् ।
साग्निकेऽग्निं विधिना यज्ञपात्राणि विन्यसेत् ॥५८
दासादेवी पुनन्तु मे इम मे वरुणेति च ।
प्रेतस्य पावन कृत्वा शालग्रामशिलोदकं ॥५९
विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सुशीला गौ पयस्विनी ।
महादानानि देयानि तिलपात्र तथैव च ॥६०
ततो वैतरणी देया सर्वाभरणभूषिता ।
कर्त्तव्य वैष्णव श्राद्ध प्रेतमुक्त्यथमात्मना ॥६१
प्रेतमोक्ष तत कुर्य्याद्धरि विष्णु प्रकल्पयेत् ।
त्व विष्णुरिति सस्मृत्य प्रेत त मृतमेव च ॥६२
अग्निदाह तत कुर्यात् सूतक तु दिनत्रयम् ।
दशाह गतपिण्डाश्च कर्तव्या विधिपूर्वकम् ।
सर्वं वर्षावधि कुर्य्यादेव प्रेत स मुक्तिभाक् ॥६३

ऋद्धि—वृद्धि की दानों भुजाएं बनावे और नत्रो मे वराटिका (कौड़ी) लगावे। नत्रो क कोनो में सिन्दूर लगावे। ताम्बूल आदि उपहारो क द्वारा

सर्वौषधि से युक्त यथोक्त प्रेत की पूजा करके साग्निको के द्वारा विधि पूर्वक यज्ञ पात्रों का न्यास करना चाहिए ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ "शन्नो देवी पुनन्तु मे," " इम मे वरुण "—इन मन्त्रो से शालग्राम शिला के जल से प्रेत को पावन करके भगवान् विष्णु का उद्देश्य करके अत्यन्त सीधे स्वभाव वाली दुधारू गौ का दान करना चाहिए। महा दान भी देवे तथा तिल पात्र का दान करे ॥ ५६ ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर वैतरणी का दान करे जो समस्त आभरणो से विभूषित होवे। अपने द्वारा प्रेत की मुक्ति के लिये वैष्णव श्राद्ध करना चाहिए ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर प्रेत को मोक्ष को करे और हार एव विष्णु को प्रकल्पित करे। आप विष्णु हैं—ऐसा संस्मरण करके उस मृत प्रेत को ही अग्नि दाह करे। इस दाह का तीन दिन तक सूतक होता है। दशाह और गत पिंड ये सब विधि पूर्वक करना चाहिए। एक वर्ष की अवधि मे होने वाला जितना भी कर्म स्थान हुआ करता है वह सभी इस प्रकार से करना चाहिए तो वह प्रेत मुक्ति के प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है ॥६२॥६३॥

३१—भूमि-स्वर्ण गोदान फल

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
एव पूर्वकृत कर्म कर्त्तारमनुगच्छति ॥१
आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ।
शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम् ॥२
नास्ति भूमिसम दान नास्ति भूमिसमो निधिः ।
नास्ति सत्यसमो धर्मो नानृतात्पातक परम् ॥३
अग्नेरपत्य प्रथम हिरण्य भूर्वैष्णवी सूर्य्यसुताश्च गाव ।
लोकत्रय तेन भवेत्प्रदत्त य काञ्चनञ्चाश्च महीं प्रदद्यात् ॥४
श्रीएयाहरति दानानि गाव पृथ्वी सरस्वती ।
नरयादुद्धरन्त्येते जयवापनदोहनात् ॥५
कृत्वा बहूनि पापानि रौद्राणि विपुलान्यपि ।
अपि गोदानमात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥६

अकर्त्तव्य न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यमिति वेदविदो विदुः ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—जिस प्रकार से सहस्रों धेनुओं में बछड़ा छूटकर अपनी ही माता के पास जाकर लगता है और उसी का दूध पीने लगता है उसी भाँति पूर्व जन्म-जन्मान्तर में किया हुआ कर्म उसके करने वाले को ही प्राप्त होता है अर्थात् उसे ही और अवश्य ही भोगना पड़ता है ॥१॥ आदित्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, सोम, हुताशन और भगवान् शूलपाणि भूमि के दान करने वाले का अभिनन्दन करते हैं ॥२॥ भूमि के दान के समान और भूमि के तुल्य निधि कोई भी नहीं है। सत्य के समान कोई धर्म नहीं और असत्य से बड़ा कोई पातक नहीं है ॥३॥ प्रथम अग्नि का अपत्य हिरण्य, वैष्णवी भू, सूर्यसुता गो उसने लोकत्रय का दान कर दिया है जो काञ्चन, गो और मही का दान किया करता है ॥४॥ जो गो पृथ्वी और सरस्वती इन तीन दानों का आहरण करता है। ये जप, वापन और दोहन से नरक से उद्धार किया करते हैं ॥५॥ बहुत सारे महान् रौद्र एवं भीषण पापों को करके भी केवल एक गौ के दान में तथा भूमि के दान से मनुष्य शुद्ध हो जाया करता है ॥६॥ वेदों के विद्वान् लोगों का यही कथन है कि जो करने के योग्य कर्म नहीं है उस अकर्त्तव्य कर्म को प्राणों के कण्ठगत हो जाने पर भी कभी नहीं करना चाहिए और जो समुचित कर्त्तव्य है वही करना चाहिये ॥७॥

अधर्मप्रदर्शने वै पाप गोसहस्रवधतुल्यम् ।
वृत्तिच्छेदेऽपि तथा वृत्तिकरणे लक्षधेनुफलम् ॥८
वरमेकापि सा दत्ता न तु दत्त गवा शतम् ।
एका हृत्वा शत दत्वा न तेन समता भवेत् ॥९
स्वयमेव तु यो दद्यात्स्वयमेव तथा हरेत् ।
स पापी नरक यानि यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१०
न चाश्वमेधेन तथा पूतः स्याद्दक्षिणावता ।
यथा वृत्तिर्जनिते दीने ब्राह्मणे रक्षिते यथा ॥११

न तद्भवति वेदेषु यज्ञे च बहुदक्षिणे ।
यत्पुण्य दुर्वले विप्रे ब्राह्मणे परिरक्षिते ॥१२
ब्रह्मस्वरसपुष्टानि वाहनानि बलानि च ।
युद्धकाले विशीर्य्यन्ति सिकतासेतवो यथा ॥१३
स्वदत्ता परदत्ता वा यो हरेत वसुन्धराम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठाया जायते कृमि ॥१४

अधर्म की ओर प्रवृत्ति के करने मे ही एक सहस्र गौ के वध के समान पाप होता है। तथा वृत्ति के छेदन करने में भी ऐसा ही पाप होता है। वृत्ति के करने में एक लक्ष धेनु क दान का फल प्राप्त होता है ॥८॥ एक गो का दिया हुआ दान भी परम श्रेष्ठ होता है और सो गो का दान भी उतना श्रेष्ठ नही होता है। एक का हरण करके सो का दान देना भा उसकी समता नहीं करती है ॥९॥ जिस गौ का दान स्वय करे और स्वय ही उसका हरण कर लेवे तो वह ऐसा पापी हो जाता है कि जब तक भूत सप्लव होता है तब तक नरक म निवास करना पडता है। १०॥ बिना वृत्ति के कर्शित दीन ब्राह्मण के रक्षित करने पर जैसा जो महान् पुण्य होता है वह दक्षिणा से युक्त अश्वमेध यज्ञ के करने स भी पवित्र नहीं होता है ॥११॥ वेदो म बहुत अधिक दक्षिणा वाल यज्ञ मे भी उतना पुण्य नहीं होता है जैसा कि किसी दुबल ब्राह्मण के परिरक्षण करने पर होता है ॥१२॥ ब्रह्म स्वरस से पुष्ट वाहन और बल युद्ध क काल म सिकता के सतुओं क समान विशीर्ण हो जाया करते हैं ॥१३॥ अपने ही द्वारा दी हुई तथा किसी अन्य के द्वारा प्रदान की हुई भूमि का जो अपहरण किया करता है वह इस महापाप के प्रभाव से साठ हजार वर्ष पर्यन्त विष्ठा का कीडा रहा करता है अर्थात् मल के कृमि के रूप म जन्म ग्रहण किया करता है ॥१४॥

ब्रह्मस्व प्रणयाद्भुक्त दहत्यासप्तम कुलम् ।
तदेव चौर्य्यरूपेण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥१५
लोहचूर्णाश्मचूर्णञ्च विषञ्च जरयेद्बुध ।
ब्रह्मस्व त्रिषु लोकेषु क पुमाञ्जरयिष्यति ॥१६

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलता यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥१७
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे विद्याविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य भस्मन्यपि न हूयते ॥१८
सङ्क्रान्तौ यानि दानानि हव्यकव्यानि यानि च ।
सप्तकल्पक्षय यावत्तावत्स्वर्गे महीयते ॥१९
प्रतिग्रहाध्यापनयाजनेषु प्रतिग्रह श्रेष्ठतम वदन्ति ।
प्रतिग्रहाच्छुध्यति जाप्यहोमैर्न याजक कर्म पुनन्ति वेदा. ॥२०
नित्यजापी सदा होमी परपाकविवर्जित ।
रत्नपूर्णामपि मही प्रतिगृह्य न लिप्यते ॥२१

किसी भी ब्राह्मण के धन को जो बड़े प्रेम से उपभोग किया करता है वह अपने सात कुलों का दाह कर दिया करता है। वह ही ब्रह्मस्व (ब्राह्मण का धन) यदि चोरी के रूप में उपभोग करता है तो वह जब तक चन्द्र और तारागण विद्यमान रहते हैं तब तक दाह किया करता है ॥१५। लोह का चूर्ण तथा पत्थर के चूर्ण और विष को बुध पुरुष पचा जाते हैं किन्तु ब्रह्मस्व इतना उग्र होता है कि इसको तीनों लोकों में कौन पुरुष पचा सकता है ? अर्थात् ऐसा कोई भी शक्तिशाली नहीं है ॥१६॥ देवता के द्रव्य का विनाश करने से और ब्रह्मस्व के हरण करने से तथा ब्राह्मण का अतिक्रमण करने से कुल के कुल अकुलता अर्थात् विनाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥१७॥ विद्या से रहित विप्र में ब्राह्मणातिक्रम नहीं होता है। जलती हुई अग्नि का त्याग करके भस्म में हवन करने के समान ही विद्या विहीन ब्राह्मण को दानादि करना होता है ।१८। सङ्क्रान्ति के अवसर पर जो दान होते हैं और जो हव्य-कव्य होते हैं उनका पुण्य-फल का ऐसा प्रभाव होता है कि सात कल्पों का जब तक क्षय होता है तब तक वह दान दाता स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित रहा करता है ॥१९॥ प्रतिग्रह, अध्यापन और याजन इनमें प्रतिग्रह सबसे अधिक श्रेष्ठ होता है। प्रतिग्रह से शुद्धि होती है और जप्य, होमों से वेद याजक कर्म को पुनीत नहीं किया करते हैं ॥

॥२०॥ नित्य जप करने वाला, सदा होम करने वाला परिपाक से वर्जित रत्नों से परिपूर्ण पृथ्वी का भी प्रतिग्रह लेकर लिप्त नहीं होता है ॥२१॥

३२--विविध श्राद्ध कथन

जलाग्निविधिना भ्रष्टा प्रव्रज्यानाशकच्युता ।
इन्द्रियाणां विशुध्यर्थं दत्वा धेनुं तथा वृषम् ॥१
ऊनद्वादशवर्षस्य चतुर्वर्षाधिकस्य च ।
प्रायश्चित्तं चरेन्माता तथान्योऽपि च बान्धवः ॥२
अतो बालतरस्यास्ति नापराधो न पातकम् ।
राजदण्डो न तस्यास्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३
रक्तस्य दर्शने जाते आतुरा स्त्री भवेद्यदि ।
चतुर्थे हविष स्पृष्ट्वा वस्त्रं त्यक्त्वा विशुध्यति ॥४
आतुरे स्नानमुत्पन्ने दश कृत्वा ह्यनातुरः ।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्धः स आतुरः ॥५
प्रत्यब्दं श्राद्धमथ ते कथयामि खगोत्तम ।
प्रत्यब्दं पार्वणेनैव कुर्य्यातां क्षेत्रजौरसौ ॥६
एकोद्दिष्टं प्रकुर्य्यातां प्रत्यब्दं प्रति केन तु ।
यदयं हि मृतः साग्निः पुनो वापि तथाविधः ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—जल अग्नि की विधि से भ्रष्ट और प्रव्रज्या नाशक से च्युत जो हैं उनकी इन्द्रियों की विशुद्धि के लिये धेनु का दान करके तथा वृष को देकर करे ॥१॥ जो बारह वर्ष से कम हो और चार वर्ष से अधिक हो उसका प्रायश्चित्त उसकी माता को करना चाहिये या कोई उसका अन्य बान्धव भी कर सकता है ॥२॥ इससे छोटा जो बालक है उसका न तो कोई अपराध ही होता है और न कोई पातक ही हुआ करता है। ऐसे छोटे बालक को कोई भी राजा के द्वारा दिये जाने वाले दण्ड का विधान नहीं होता है और न कोई प्रायश्चित्त ही हुआ करता है ॥३॥ रज के दर्शन होने पर यदि स्त्री आतुर हो जाती है तो चतुर्थ दिन में हवि का स्पर्श करके वस्त्र का त्याग करके

वह शुद्ध हो जाया करती है ॥४॥ आतुर में उत्पन्न स्नान होता है। दश करके, अनातुर स्नान करके इसका स्पर्श करे। इसके अनन्तर वह आतुर शुद्ध हो जाता है ॥५॥ हे खगोत्तम ! अब हम प्रति वर्ष होने वाले श्राद्ध के विषय में तुमको बतला रहे हैं। प्रति वर्ष पार्वण के द्वारा ही क्षेत्रज और औरस पुत्रों को श्राद्ध करना चाहिए ॥६॥ प्रति वर्ष किसी के द्वारा एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए। यदि यह मृत हो गया हो तो साग्नि पुत्र अथवा उसी प्रकार का पुत्र श्राद्ध करे ॥७॥

प्रत्यब्दं पार्वणं तत्र कुर्य्यातां क्षेत्रजौरसौ ।
अनग्नयः साग्निका वा पितरोऽपि तथा मृताः ॥८
एकोद्दिष्टं तथा कार्य्यं क्षयाह इति केचन ।
दर्शकाले क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः ॥९
प्रत्यब्दं पार्वणं कार्य्यं तेषां सर्वैः सुतैरपि ।
एकोद्दिष्टमपुत्राणां पुंसां स्याद्योपितामपि ॥१०
कर्त्तव्ये पार्वणे श्राद्धे अशौच जायते यदि ।
अशौचगमने प्राप्ते कुर्य्याच्छ्राद्धं ततः परम् ॥११
एकोद्दिष्टे च सम्प्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते ।
मासेऽन्यस्मिंस्तिथौ तस्यां कुर्य्याच्छ्राद्धं तथैव हि ॥१२
तूष्णीं श्राद्धञ्च शूद्राणां भार्य्यायास्तत्सुतेन वा ।
कन्यायाश्च द्विजातीनां मनुरेतद्विचक्षते ॥१३
एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः ।
मन्त्रेण स्नपनं कुर्य्याच्छ्राद्धं कुर्य्यात्पृथक् पृथक् ॥१४
पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः ।
तृतीयस्य ततः पश्चात्सन्निपातेत्वयं क्रमः ॥१५

क्षेत्रज और औरस पुत्रों को प्रति वर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिए। चाहे पितर अनग्नि हों या साग्निक हों जो भी मृत हो गये हैं उनका श्राद्ध करना चाहिये ॥८॥ कुछ विद्वानों का मत है कि एकोद्दिष्ट क्षय दिन में करना चाहिए। दर्श काल में जिसका क्षय होता है, अथवा फिर प्रेत पक्ष में प्रतिवर्ष

उनके समस्त पुत्रों के द्वारा पार्वण श्राद्ध करना चाहिए। जिनके कोई भी पुत्र न हो उनका चाहे वे पुरुष हो या स्त्री हो सबका एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए। ॥६।१०॥ पार्वण श्राद्ध जो कि कर्त्तव्य है उस समय में यदि दैवात् कोई भी किसी प्रकार का अशौच हो जाता है तो उस अशौच के दूर हो जाने पर शुद्धि करके फिर श्राद्ध करना चाहिए ॥११॥ और एकोद्दिष्ट श्राद्ध के सम्प्राप्त होने पर यदि कोई अशौच आदि का ऐसा ही विघ्न आ जाता है तो फिर दूसरे मास में उसी तिथि में श्राद्ध करे किन्तु किसी भी दशा में समय टल जाने पर श्राद्ध का लोप नहीं करना चाहिए ॥१२॥ शूद्रों का श्राद्ध, भार्या का श्राद्ध अथवा उसके पुत्र के द्वारा किया हुआ श्राद्ध, कन्या का श्राद्ध और द्विजातियों का श्राद्ध तूष्णी भाव से ही करना चाहिए—ऐसा महर्षि मनु ने कहा है ॥१३॥ एक ही समय में जिन बहुत-से मनुष्यों का अथवा दो का देहान्त हुआ हो उनका मन्त्र के द्वारा हवन करे और पृथक् पृथक् श्राद्ध करना चाहिए ॥१४॥ पहिले जो मृतक हुआ हो उसका पहिले और फिर दूसरे का, तीसरे का फिर एक साथ जिनका निपात हुआ हो उनका इसी क्रम से श्राद्ध करे ॥१५॥

२३—नित्य श्राद्ध कथन

नित्यश्राद्धे हि गन्धार्घ द्विजानभ्यर्च्य शक्तितः।
सर्वान्पितृगणान्सम्यक्सदैवोद्दिश्य पूजयेत् ॥१
आवाहनं स्वधाकारं पिण्डाग्नौ करणादिकम्।
ब्रह्मचर्य्यादिनियमान्विश्वेदेवास्तथैव च ॥२
नित्यश्राद्धे त्यजेदेतान्भोज्यमन्नञ्च कल्पयेत्।
न दद्याद्दक्षिणाञ्चैव नमस्कारैर्विसर्जयेत् ॥३
देवानुद्दिश्य विश्वादीन्दद्याच्च द्विजभोजनम्।
नित्यश्राद्धं तदेवेति देवश्राद्धं तदुच्यते ॥४
मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्कर्मण्यहन्येव पैतृकम्।
उत्तरेऽहनि वृद्धस्य मातामहगणस्य च ॥५

इसके अनन्तर नित्य श्राद्धों का विवेचन किया जाता है। श्री भगवान्

कहा—नित्य श्राद्ध में अपनी शक्ति के अनुसार गन्धादन पुष्पादि के द्वारा द्विजों का अभ्यर्चन करके समस्त पितृगणों का भली-भाँति उद्देश्य करके पूजन करना चाहिए ।।१।। आवाहन, स्वधाकार, पिण्डाग्नि में करणादिक, ब्रह्मचर्यादि नियम तथा विश्वेदेवाओं को इन सबको नित्य श्राद्ध में त्याग देना चाहिए और भोज्य अन्न की कल्पना करनी चाहिए। दक्षिणा नहीं देनी चाहिए केवल नमस्कार करके ही विसर्जन कर देवे ।।२।३।। विश्वादि देवों का उद्देश्य करके द्विजों को भोजन देवे। उसी को नित्य श्राद्ध कहा जाता है। अब देवश्राद्ध बतलाया जाता है ।।४।। माता का श्राद्ध पहिले होता है। दिन में ही पैतृक कर्म होता है। नन्तर दिन में वृद्ध और मातामह गण का श्राद्ध होता है ।।५।।

पृथग्दिने न शक्तश्चेदेकस्मिन्नेव वासरे ।
श्राद्धत्रय प्रकुर्वीत वैश्वदेवव्रतत्रिकम् ।।६
पितृभ्य कल्पयेत्पूर्वं मातृभ्यस्तदनन्तरम् ।
मातामहेभ्यश्च ततो दद्यादित्थं क्रमेण तु ।।७
मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे तु कुलान्विता ।
पतिपुत्रान्विताः साध्व्यो योषितोऽष्टौ च भोजयेत् ।।८
इष्टापूर्त्तादिकारम्भे तदा श्राद्ध समाचरेत् ।
उत्पातादिनिमित्तेषु नित्यश्राद्धवदेव तु ।।९
नित्य दैव तथा वृद्ध काम्य नैमित्तिक तथा ।
श्राद्धान्युक्तप्रकारेण कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ।।१०

अलग दिन में श्राद्ध करने की शक्ति न हो तो एक ही दिन में वैश्वदेव तीन व्रतों के तीनों श्राद्धों को कर देना चाहिए ।।६।। पहिले पितृगण के लिए और फिर मातृ वर्ग के लिये कल्पित करना चाहिए। इसके अनन्तर मातामह आदि के लिये इसी क्रम से श्राद्ध देना चाहिए ।।७।। माता के श्राद्ध में विप्रों के लाभ न होने पर कुलों से अन्वित तथा पति और पुत्रों से युक्त आठ परम साध्वी स्त्रियों को भोजन कराना चाहिए ।।८।। जब इष्टापूर्त्त आदि का आरम्भ हो उस समय में श्राद्ध करना चाहिए। उत्पात आदि निमित्तों के होने पर नित्य श्राद्ध की भाँति ही करना चाहिए ।।९।। नित्य श्राद्ध, दैव, वृद्ध, काम्य तथा नैमित्तिक

श्राद्ध इतने प्रकार के होते हैं। इन सबको यथोक्त विधि-विधान से करने वाल मनुष्य अवश्य ही सिद्धि की प्राप्ति किया करता है ॥१०॥

३४—मनुष्यों के कर्म-विपाक कथन

सुकृतस्य प्रभावेण स्वर्गो नानाविधो नृणाम् ।
भोगसौख्यादिरूपश्च बल पुष्टि पराक्रम ॥१
सत्य पुण्यवता देव जायतेऽत्र परत्र च ।
सत्य सत्य पुनः सत्य देववाक्य तु नान्यथा ॥२
धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम् ।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुर ॥३
एतत्सत्य मया ज्ञात सुकृताच्छोभन भवेत् ।
यथोत्कृष्टतम पुण्य तथा कृष्णपरो भवेत् ॥४
एकञ्च श्रोतुमिच्छामि पापयोनिश्च जायते ।
येन कर्मविपाकेन यथा निरयभाग्भवेत् ॥५
या या योनिमवाप्नोति यथारूप प्रजायते ।
तन्मे वद सुरश्रेष्ठ समासेनापि काक्षितम् ॥६
शुभाशुभफलैस्तार्क्ष्य भुक्तभोगा नरास्त्विह ।
जायन्ते लक्षणैर्यैस्तु तानि मे शृणु काश्यप ॥७

गरुड ने कहा—मनुष्यो को किये हुए सुकृत के प्रभाव से अनेक प्रकार का स्वर्ग प्राप्त होता है। हे देव ! इस लोक मे और परलोक मे पुण्य शाली लोगों को भोग—सौख्य आदि स्वरूप वाला—बल—पुष्टि—पराक्रम और सत्य उत्पन्न हो जाता है। यह सत्य है और सर्वथा सत्य है और पूर्ण रूप से सत्य है—क्योंकि देव वाक्य कभी भी अन्यथा नही हुआ करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ धर्म की जय होती है अधर्म की नहीं होती—सदा सत्य की विजय होती है मिथ्या ो कभी नहीं होती—क्षमा जयशील है क्रोध नहीं—विष्णु विजयी होते हैं सुर नहीं ॥ ३ ॥ यह मैंने बिल्कुल जान लिया है कि सुकृत से भलाई होती । जितना उत्कृष्ट तम अर्थात् सबसे उच्च कोटि का पुण्य होगा वैसा ही कृष्ण

रायण होगा ॥ ४ ॥ अब मैं केवल एक बात और सुनना चाहता हूँ कि जिस कर्म के विपाक से पाप योनि में उत्पन्न होता है और जिस प्रकार से वह नरक वास का अधिकारी बन जाता है ॥ ५ ॥ जिस-जिस योनि को वह प्राप्त किया करता है और जिस रूप वाला होता है। हे सुरों में परम श्रेष्ठ! यह मेरा अभीष्ट प्रश्न है इसका उत्तर कृपा कर मुझे देवें ? ॥ ६ ॥ भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य! इस संसार में शुभ और अशुभ कर्मों के फलों के त्याग कर देने से मनुष्य भोगों से मुक्त होते हैं। हे काश्यप! जिन लक्षणों से वे उत्पन्न हुआ करते हैं उन्हें तुम अब मुझसे श्रवण करो ॥७॥

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।
इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥८
प्रायश्चित्तेष्वजीर्णेषु यमलोके ह्यनेकधा ।
यातनान्ते विमुक्तास्ते अनेका जीवसन्ततिम् ॥६
गत्वा मानुषयोनौ तु पापचिह्ना भवन्ति ते ।
तान्यहं तव चिह्नानि कथयिष्ये खगोत्तम ॥१०
गन्ददोऽनृतवादी स्यान्मूकश्चैव गवानृते ।
ब्रह्महा च क्षयी कुष्ठी श्यावदन्तस्तु मद्यपः ॥११
कुनखी स्वर्णहारी च दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ।
सयोगी हीनवर्णः स्यात्काकोऽनिमन्त्रभाजनात् ॥१२
दिगम्बरा दुराचारा सर्वदेवार्थनिन्दका ।
यान्ति ते नरके घोरे ये च मिथ्या वदन्ति हि ॥१३
अन्नं पर्युषितं विप्रे प्रयच्छन्नुब्जता व्रजेत् ।
मात्सर्यादपि जात्यन्धो जन्मान्धः पुस्तकं हरन् ॥१४

आत्म वालों के लिये शासन करने वाला गुरु होता है और जो दुरात्मा दुष्ट लोग हैं उनके ऊपर राजा शासन किया करता है। इस संसार में जो छिप कर पाप कर्म करने वाले हैं या जिनके पाप कर्म प्रकट नहीं हो पाते हैं उनका शासक वैवस्वत यमराज हुआ करता है ॥ ८ ॥ प्रायश्चित्तों के अजीर्ण रहने पर यमलोक में अनेक प्रकार से यातनाओं को भोगने के अन्त में अनेक जीवों

की सन्तति से वे विमुक्त होते हैं। फिर उन्हें मानुष योनि मिलती है तो उस भी वे पूर्व कृत पापों के चिह्नों से युक्त हुआ करते हैं। हे खगोत्तम! अब ह उन पापों के चिह्नों को तुमको बतलाते हैं ॥ ६ ॥ १० ॥ जो पहिले मिथ्या वादी होता है। गोओं के लिये अनृत बोलने वाला मूक (गूंगा) होता है। ब्राह्मण की हत्या करने वाला होता है वह क्षय रोग का शिकार होता है और कोढ़ी होता है। मद्य पीने वाला श्याव दन्त अर्थात् काले दाँतों वाला होता ॥ ११ ॥ सुवर्ण के हरण करने वाला कुनखी (बुरे नाखूनों वाला) होता है जो गुरु पत्नी गामी पहिले होता है वह दोष युक्त चर्म वाला हुआ करता है जो सयोगी होता है वह हीन वर्ण वाला हुआ करता है। बिना निमन्त्रण भोजन करने वाला काक (कौआ) होता है ॥ १२ ॥ दिगम्बर (नंगे)—कु आचार वाले और समस्त देवों की निन्दा करने वाले और जो मिथ्या भाषण किया करते हैं वे घोर नरक में जाया करते हैं ॥ १३ ॥ विप्र को पर्युषि (बासी) अन्न प्रदान करने वाले कुब्जता प्राप्त किया करते हैं। मात्सर्य (डाह) आदि से जात्यन्ध होता है और पुस्तकों का हरण करने वाला पुरुष जन्म ही अन्धा होता है ॥१४॥

फलानि हि हरन्नित्यं म्रियते नात्र संशय. ।
मृतो वानरतां याति तन्मुक्तो गलगण्डवान् ॥१५
अदत्तभक्षमश्नाति अनपत्यो भवेन्नरः ।
वणिक्चैव महामूढ सर्वदर्शननिन्दक. ॥१६
न जानाति धर्मतत्त्वं स पतेद्घोरसागरे ।
हरन्स्वर्णं भवेद्गोधा गरदः पवनाशनः ॥१७
प्रव्रज्यागमनात्पक्षिन्भवेन्नरपिशाचकः ।
चातको जलहर्त्ता च धान्यहर्त्ता च मूषकः ॥१८
अप्राप्तयौवना सेव्य भवेत्सप इतिश्रुतिः ।
गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेद्ध्रुवम् ॥१९
जलप्रस्रवणं यस्तु भिन्द्यान्मत्स्यो भवेन्नरः ।
अविक्रेयान्विक्रयन्वै विकटाक्षो भवेन्नरः ॥२०

कुयोनिनिन्दको हि स्यादुलूकः स्त्रीप्रवञ्चनात् ।
मृतस्यैकादशाहे तु भुञ्जानः श्वाभिजायते ॥२१

जो नित्य ही फलों का हरण करता है वह मर जाता है—इसमें संशय नहीं है। मृत होकर वह वानर की योनि प्राप्त करता है और इससे मुक्त होकर गलगण्ड रोग वाला हुआ करता है ॥ १५ ॥ जो बिना दिये हुए भक्ष्य पदार्थों को खा जाता है वह मनुष्य सन्तान हीन हुआ करता है और महा मूढ बनिया होता है जो कि समस्त दर्शनों की निन्दा किया करता है ॥ १६ ॥ वह धर्म के तत्त्व को नहीं जानता है और उसका घोर सागर में पतन हो जाता है। सुवर्ण की चोरी करने वाला गोधा की योनि प्राप्त करता है और विष देने वाला सर्प होता है ॥ १७ ॥ प्रव्रज्या के गमन से हे पक्षिन् ! नर पिशाच होता है। जल के हरण करने से चातक और धान्य के हरण से मूषक होता है ॥ १८ ॥ जिस नारी को यौवन की प्राप्ति न हुई हो उसका सेवन करने से सर्प की योनि प्राप्त हुआ करती है—ऐसा श्रुति कहती है। जो गुरु की पत्नी के साथ गमन की इच्छा रखने वाला पुरुष निश्चय ही कृकलास होता है ॥ १९ ॥ जो विक्रय जो मनुष्य जल के प्रस्रवण का भेदन करता है वह मत्स्य होता है। जो विक्रय न करने के योग्य पदार्थों का विक्रय किया करता है वह नर विकट नेत्रों वाला होता है ॥ २० ॥ कुयोनि की निन्दा करने वाले स्त्री का प्रवञ्चन करने से उलूक (उल्लू) हुआ करता है। मृतक के ग्यारहवें दिन में भोजन करने वाला पुरुष कुत्ता की योनि प्राप्त किया करता है ॥२१॥

प्रतिश्रुत्य द्विजेभ्योऽर्थमददञ्जम्बुको भवेत् ।
सर्प हत्वा भवेद्दुष्टः शूकरो विड्वराहकः ॥२२
परिवादाद्द्विजातीनां लभते कच्छपो तनुम् ।
लभेद्वलकस्तार्क्ष्य योनिं चाण्डालसञ्ज्ञकाम् ॥२३
दुर्भगः फलविक्रेता वृषश्च वृषलीपतिः ।
मार्जारोऽग्निं पदा स्पृष्ट्वा रोगवान्परमांसभुक् ॥२४
सोदर्य्यागमनात्षण्ढो दुर्गन्धश्च सुगन्धहृत् ।
यद्वा तद्वापि पारक्यं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥

हृत्वा वै योनिमाप्नोति तैत्तिरी नात्र संशयः ॥२५
एवमादीनि चिह्नानि अन्यान्यपि खगेश्वर ।
स्वकर्मविहितान्येव दृश्यन्ते मानवादिषु ॥२६
एवं दुष्कृतकर्त्ता हि भुक्त्वा च नरकान्क्रमात् ।
जायते कर्मशेषेण ह्यु क्तास्वेतासु योनिषु ॥२७
ततो जन्मशतं मर्त्यः सर्वजन्तुषु काश्यप ।
जायते नात्र सन्देहः समीभूते शुभाशुभे ॥२८

वचन देकर अर्थात् प्रतिज्ञा करके द्विजो को धन आदि न देने वाला गीदड होता है । सर्प का हनन करके मल खाने वाला शूकर हुआ करता है ॥ २२ ॥ जो द्विजातियो की निन्दा किया करता है वह कछुआ का शरीर प्राप्त किया करता है । हे तार्क्ष्य ! जो देवलक (पुजारी) होता है वह चाण्डाल संज्ञा वाली योनि की प्राप्ति किया करता है ॥ २३ ॥ फलो के विक्रय का करने वाला दुर्भागी और वृषली (शूद्रा) का पति वृष हुआ करता है । अग्नि को पैर से स्पर्श करने वाला मनुष्य मार्जार (बिल्ली) होता है तथा पर मांस का खाने वाला रोगी होता है ॥ २४ ॥ सोदर्या अर्थात् सगी बहिन के साथ गमन करने से पुरुष पण्ढ (नपुंसक) होता है और सुगन्धित पदार्थों के हरण करने से दुर्गन्ध वाला होता है । जो कुछ भी दूसरे का थोडा हो या बहुत हो हरण करने से तैत्तिरी योनि प्राप्त हुआ करती है—इसमे कुछ भी संशय नही है ॥ २५ ॥ हे खगेश्वर ! इस प्रकार के पूर्व जन्म मे किये हुए पापो के चिह्न होते हैं । इनके अतिरिक्त अन्य भी लक्षण होते हैं जो मानव आदि प्राणियों मे अपने किये हुए कर्मो से ही हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार से दुष्कर्मों के करने वाला प्राणी भोग कर और क्रम मे नरको की यातना सह कर शेष जो कुछ भी कर्म रह जाया करते हैं उनके भोगने के लिये इन निकृष्ट योनियों मे जीवात्मा जन्म धारण किया करता है ॥ २७ ॥ हे काश्यप ! इसके अनन्तर यह जन्तु सैकडो जन्म धारण करके जो कि समस्त जन्तुओ के होते है फिर शुभ अशुभ कर्मो के समान होने पर इसे मनुष्य योनि प्राप्त होती है—इसमे कुछ भी संशय नही है ॥२८॥

स्त्रीपुंसयोः प्रसङ्गे च विशुद्धे शुक्रशोणिते ।
पञ्चभूतसमोपेतः सुपुष्टः परमः पुमान् ॥२९
धारणा प्रेरणा दुःखमिच्छा संहार एव च ।
प्रयत्नाकृतिवर्णाश्च रागद्वेषौ भवाभवौ ॥३०
तस्येदमात्मानं सर्वमनादेरादिमिच्छतः ।
स्वकर्मबद्धस्य तदा गर्भे वृद्धि हि विन्दति ॥३१
पुरा मया यथा प्रोक्तं तव जन्तोर्हि लक्षणम् ।
एवं प्रवर्त्तते चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे ॥३२
समुत्पत्तिर्विनाशश्च जायते तार्क्ष्य देहिनाम् ।
ऊर्ध्वा गतिस्तु धर्मेण नधर्मेण ह्यधोगतिः ॥३३
जायते सर्ववर्णानां स्वकर्माचरणात्खग ।
देवत्वे मानुषत्वे च दानभोगादिका क्रिया ॥३४
यद्यद्द्रव्यं वैनतेय तत्सर्वं कर्मजं फलम् ।
सुकर्मविहितो घोरे धामक्रियाजितेऽशुभे ॥
नरके पतितो भूयो यस्योत्तारो न विद्यते ॥३५

स्त्री और पुरुष के प्रसङ्ग होने पर तथा शुक्र (वीर्य) और शोणित (रक्त-रज) के विशुद्ध होने पर यह पाँच तत्वों से (पृथ्वी—आकाश—तेज—जल—वायु) समन्वित—परम पुष्ट पुरुष जन्म लिया करता है ॥ २९ ॥ धारणा—प्रेरणा—दुःख—इच्छा—संहार—प्रयत्न—आकृति—वर्ण—राग—द्वेष—भव—अभव—यह सब अनादि और आदि की इच्छा करने वाले अपने कर्म से बद्ध उसका समय गर्भ में वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ पहिले मैंने जो तुमको जन्तु के लक्षण बतलाये हैं। इस प्रकार से चार प्रकार के भूतग्राम में यह चक्र चलता है ॥ ३२ ॥ हे तार्क्ष्य ! देह धारियों की उत्पत्ति होती है और विनाश भी होता है। धर्म से गति ऊर्ध्व गामिनी होती है और अधर्म से अधोगति हुआ करती है ॥ ३३ ॥ हे खग ! समस्त वर्णों को देवत्व और मानुषत्व में अपने कर्मों के आचरण से दान एवं भोग आदि की क्रिया होती है ॥ ३४ ॥ हे वैनतेय ! जो-जो द्रव्य है वह सब कर्मों से जन्य फल होता

है। कुत्सित कर्मों से जिनका नाम किया मे अर्जित अशुभ एवं घोर नरक पतित होता है जिसका कि फिर कोई भी प्रतिकार नहीं होता है ॥३५॥

३५—विविध पाप कथन

भगवन्देवदेवेश कृपया परया वद ।
दान दानस्य माहात्म्य वैतरण्याः प्रमाणकम् ॥१
या सा वैतरणीनाम्नी यमद्वारे महासरित् ।
यत्प्रमाणा च सा देवी शृणु ता मे भयावहाम् ॥२
शतोयोजनविस्तीर्णा पृथुत्वे सा महानदी ।
दुर्गन्धा दुस्तरा पापैर्दृष्टमात्रभयावहा ॥३
पूयशोणिततोयाढ्या मासकर्दमसकुला ।
पापिन ह्यागत दृष्ट्वा नानाभयसमागतम् ॥४
दृश्यते सत्वरं तोय पात्रमध्ये यथा घृतम् ।
कृमिभि सकुलं पूय वज्रतुण्डैः समाहृतम् ॥५
शिशुमारैश्च मत्स्याद्यैर्वज्रकर्तरिकायुतैः ।
अन्यैश्च जलजीवैश्च हिंसकैर्मासभेदिभिः ॥६
तपन्ते द्वादशादित्याः प्रलयान्ते यथा हि ते ।
पतन्ति तत्र वै मर्त्या क्रन्दमानास्तु पापिनः ॥७

गरुड ने कहा—हे देवो के भी देवेश्वर ! हे भगवन् ! आप अब परम कृपा करके दान और दान का माहात्म्य तथा वैतरणी का प्रमाण बतलाइये ? ॥ १ ॥ श्री भगवान् ने कहा—जो वैतरणी नाम वाली एक महान् नदी है वह यमराज के द्वार पर है। उसका जितना प्रमाण है उसे तुम मुझसे श्रवण करो। वह वैतरणी देवी बहुत ही भय देने वाली है ॥ २ ॥ वह वैतरणी नदी सौ योजन के विस्तार वाली है पृथुत्व मे वह एक सबसे बडी महा नदी है। उस नदी में बहुत अधिक दुर्गन्ध आती है और वह बहुत ही कठिनता से पार किये जाने वाली है। पापियों को उसे देखने मात्र मे ही बडा भय लगा करता है ॥ ३ ॥ उस वैतरणी नदी मे पूय (मवाद)—रक्त और जल भरा हुआ

रहता है तथा मांस की कीचड भरी हुई है। आये हुए पापी को देखकर नाना प्रकार के भय आ जाते हैं ॥ ४ ॥ उसमें शीघ्र ही जल ऐसा दिखलाई दिया करता है जैसे किसी पात्र में रक्खा हुआ हो। पूय (मवाद) कृमियों से घिरा हुआ रहता है तथा वज्र तुण्डों के द्वारा समाहृत होता है ॥ ५ ॥ शिशुमार—मत्स्य आदि—वज्र कर्त्तरिका और अन्य मांस भेदी हिंसक जल के जीवों से यह वैतरणी परिपूर्ण रहती है ॥ ६ ॥ वहाँ पर बारह सूर्य जिस तरह प्रलय के अन्त में तपा करते हैं वैसे ही ताप देते हैं। वहाँ पापी लोग उसमें गिरते, रोते-चिल्लाते हैं और क्रन्दन करते हैं ॥७॥

हा भ्रातः पुत्र मातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः।
प्रतरन्ति निमज्जन्ति तत्र गच्छन्ति जन्तवः ॥८
चतुर्विधं प्राणिगणैर्द्रष्टव्या सा महानदी।
तरन्ति तत्र दानेन चान्यथा ते पतन्ति वै ॥६
मातरं येऽवमन्यन्ते आचार्यं गुरुमेव च।
अवमन्यन्ति ते मूढास्तेषां वासोऽत्र सन्ततम् ॥१०
पतिव्रतां धर्मशीलां व्यूढां धर्मे विनिश्चिताम्।
परित्यजन्ति ये मूढास्तेषां वासोऽत्र सन्ततम् ॥११
विश्वासप्रतिपन्नानां स्वामिमित्रतपस्विनाम्।
स्त्रीबालविकलादीनां छिद्रमन्वेषयन्ति हि ॥
पच्यन्ते पूयमध्ये तु क्रन्दमानास्तु पापिनः ॥१२
प्राप्तं बुभुक्षितं विप्रं यो विघ्नायोपसर्पति।
कृमिभिर्भक्ष्यते तत्र यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१३
ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति यः।
यज्ञविध्वंसकश्चैव राज्ञोमार्गे च पैशुनो ॥१४
कथाभङ्गकरश्चैव कूटसाक्षी च मद्यपः।
मातृत्व नास्ति यो ब्रूते तस्य वासोऽत्र सन्ततम् ॥१५

पापात्मा मनुष्य जिस समय वैतरणी में गिरते हैं तब वे "हा भाई! पुत्र! हा माता!"—इस तरह बार-बार बुरी तरह प्रलाप किया करते

हैं। उस नदी मे प्रतरण करते हैं—डुबकियाँ लगाते हैं और रुदन करते हुए जन्तु उसमें जाया करते हैं ॥ ८ ॥ यह महानदी चार प्रकार के प्राणियो से युक्त देखी जाती है। वहाँ पर दान से ही लोग उसे पार किया करते हैं अन्यथा ये सब उसमें गिर जाया करते हैं ॥ ६ ॥ जो अपनी माता का तिरस्कार किया करते हैं और अपने आचार्य और गुरु का अपमान करते हैं उन महा मूढ मानवों का इस वैतरणी नदी मे निरन्तर वास रहा करता है ॥१०॥ धर्म शीला–विवाहिता और धर्म में विशेष निश्चय वाली पतिव्रता पत्नी का जो त्याग कर देते हैं उन मूढो का निवास इस वैतरणी मे सर्वदा रहा करता है ॥ ११ ॥ विश्वास मे स्थित रहने वाले स्वामी–मित्र–तपस्वी–स्त्री—बालक और विकल आदि का जो छिद्र खोजा करते हैं वे महा पापी प्राणी क्रन्दन करते हुए पूय (मवाद) के बीच में पच्यमान होकर नारकीय यातनाऐं सहन किया करते हैं ॥ १२ ॥ किसी भूखे ब्राह्मण को प्राप्त हो जाने पर जो विघ्न उपस्थित करता है वह वहाँ पर जब तक भूत–सम्प्लव होता है अर्थात् महा लय होता है तब तक कृमियो के द्वारा खाया जाया करता है ॥ १३ ॥ जो किसी ब्राह्मण को प्रतिश्रुत करके फिर पदार्थ नही दिया करता है और जो यज्ञ का विध्वस करता है तथा राखी का गमन करता है और जो चुगली किया करता है—कथा का भङ्ग करने वाला है–झूँठी गवाही देता है–मद्य पान करता है तथा जो बुलाकर फिर भावण नही करता है उस मनुष्य का वास भी इस वैतरणी मे निरन्तर रहता है ॥१४॥१५॥

अग्निदो गरदश्चैव स्वय दत्तापहारक ।
क्षेत्रसेतुविभेदी च परदाराप्रधर्षक ॥१६

ब्राह्मणो रसविक्रेता तथा च वृषलीपतिः ।
गोधनस्य तृपार्त्तस्य विभेदं कुरुते तु य ॥१७

कन्याविदूषकश्चैव दान दत्त्वा तु तापकः ।
शूद्रस्तु कपिलानां ब्राह्मणो मांसभोजक ॥
एते वसन्ति सततं मा विचारं कृथा. क्वचित् ॥१८

कृपणो नास्तिकः क्षुद्रः स तस्या निवसेत्खग ।
सदामर्षी सदा क्रोधी निजवाक्यप्रमाणकृत् ॥१९

परोक्तच्छेदको नित्यं वैतरण्या वसेच्चिरम् ।
यस्त्वहङ्कारवान्पाप स्वविकत्थनकारकः ॥
कृतघ्नो विश्वासघाती वैतरण्या वसेच्चिरम् ॥२०

कदाचिद्भाग्ययोगेन तरणेच्छा भवेद्यदि ।
सानुकूला भवेद् येन तदाकर्णय काश्यप ॥२१

अग्नि लगाने वाला—विष देने वाला—स्वयं दान करके फिर उसका अपहरण करने वाला—क्षेत्र तथा सेतु (पुल) का भेदन करने वाला—पराई स्त्री के साथ प्रधर्षण (बलात्कार) करने वाला—ब्राह्मण होकर रस का विक्रय करने वाला—वृषली (शूद्रा) स्त्री का पति विप्र—जो गो धन का तथा ग्रास से मार्ग का विभेद करने वाला है—कन्या को विशेष रूप से दूषित करने वाला—दान देकर ताप देने वाला-शूद्र होकर कपिला गौ का पान करने वाला और ब्राह्मण होकर मांस खाने वाला—ये सब उस महा भयावह वैतरणी नदी में निरन्तर निवास किया करते हैं—इसमें कहीं भी कुछ अन्यथा विचार नहीं है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे खग ! जो कृपण है—नास्तिक है और क्षुद्र प्रकृति वाला है वह उस वैतरणी में वास किया करता है। जो सर्वदा क्रोध करने वाला है—अमर्ष करने वाला है और अपने ही वाक्य को प्रमाण मानने वाला है तथा जो दूसरे के कथन का छेदन करने वाला है वह नित्य ही वैतरणी में चिर काल तक निवास किया करता है। जो बहुत ही अहङ्कार वाला और अपना विकत्थन करने वाला पापी है तथा कृतघ्नी और विश्वासघाती पुरुष होता है वह वैतरणी में बहुत अधिक समय तक निवास किया करता है ॥१९॥ ॥ २० ॥ कदाचित् भाग्य के योग से यदि तरण करने की इच्छा होती है तो जिसके द्वारा वह सानुकूल होती है उसे हे काश्यप ! अब श्रवण करो ॥२१॥

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।
चन्द्रसूर्य्योपरागे च सङ्क्रान्तौ दर्शवासरे ॥२२

अयने पुण्यकालेषु दीयते दानमुत्तमम् ।
यदा कदा भवेद्वापि श्रद्धा दानं प्रतिध्रुवम् ॥
सदैव दानकालः स्याज्जाता सम्पत्तिरस्थिरा ॥२३
अस्थिराणि शरीराणि विभवो नैव शाश्वत. ।
नित्यं सन्निहितो मृत्यु कर्त्तव्यो धर्मसञ्चयः ॥२४
कृष्णां वा पाटला वापि दद्याद्वैतरणी शुभाम् ।
हेमश्रृङ्गी रौप्यखुरी कांस्यपात्रोपदोहनीम् ॥२५
कृष्णवस्त्रयुगच्छन्ना सप्तधान्यसमन्विताम् ।
कार्पासद्रोणशिखरे आसीन ताम्रभाजने ॥२६
यम हैम प्रकुर्वीत लोहदण्डसमन्वितम् ।
इक्षुदण्डमय बद्ध्वा मूडुप दृढबन्धनैः ॥२७
उडुपोपरि तां धेनु सूर्य्यदेहसमुद्भवाम् ।
कृत्वा विकल्पयेद्विद्वान्छत्रोपानत्समन्विताम् ॥२८

विषुव अयन मे—पुण्य व्यतीपात मे—दिनक्षय मे—चन्द्र और सूर्य के ग्रहण मे—सक्रान्ति मे—दर्शवासर मे—अयन मे और पुण्य कालो मे जो कुछ उत्तम दान दिया जाता है । अथवा जब कभी दान के प्रति श्रद्धा का भाव होता है वह ही दान का काल अस्थिर सम्पत्ति हो जाती है ॥ २२ ॥ २३ ॥ ये शरीर भी अस्थिर है और विभव भी सदा रहने वाले नही होते हैं । मृत्यु नित्य ही सन्निहित रहा करता है इसलिये धर्म का सञ्चय अवश्य ही करना चाहिए ॥ २४ ॥ इस महानदी वैतरणी से निस्तार पाने के लिये तारण कराने वाली वैतरणी गौ का दान करना चाहिए चाहे वह श्यामा गौ हो या पाटला हो । ऐसी किसी शुभ गौ का दान करे । गौ के सींग सुवर्ण से मण्डित हो और उसके खुर चाँदी से मढ़े हुए होने चाहिए । उसके दोहन के लिये काँसे का एक पात्र भी उसके साथ देना चाहिए ॥ २५ ॥ कृष्ण वर्ण के दो पुत्रों से उसे आवृत करे । उसके साथ सात प्रकार के धान्य भी देवे । कार्पास द्रोण शिखर पर ताम्र पात्र मे स्थित एक हेम (सोने का) यम बनावे जो लोह के दण्ड से युक्त हो । ईख के दण्डों से पूर्ण एक उडुप बनाकर उसे दृढ बन्धनों से बाँध

वे । उस उडुप के ऊपर सूर्य देह से समुत्पन्न उस धेनु को करके जोकि छत्र और उपानह से समन्वित हो, इसका दान किसी विद्वान् को देवे ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥

अंगुरीयकवासासि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
इममुच्चारयेन्मन्त्र संगृह्य सजलान्कुशान् ॥२६
यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणी नदीम् ।
तत्तु कामो ददाम्येना तुभ्यं वैतरणीञ्च गाम् ॥३०
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेव पङ्क्तिपावन ।
सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्ता वैतरणी च गौः ॥३१
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥३२
धर्मराजञ्च सर्वदा वैतरण्याख्यका तु गाम् ।
सर्व प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥३३
पुच्छ सगृह्य धेनोश्च अग्रे कृत्वा तु थे द्विजम् ।
धेनुके त्व प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये ॥३४
उत्तारणार्थं देवेशि वैतरण्यै नमो नमः ।
अनुव्रजेद्द्विज यात सर्वं तस्य गृह नयेत् ॥३५

अंगुलीयक (अंगूठी) और वस्त्र जल के सहित कुशाएँ लेकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करता हुआ ब्राह्मण के लिये दान देवे ॥ २९ ॥ मन्त्र—यम के द्वार पर जो कि महान् घोर स्वरूप वाला है वैतरणी नदी का श्रवण करके मैं उससे पार होने की इच्छा वाला हूँ। इसीलिये इस वैतरणी गौ का दान तुमको करता हूँ ॥ ३० ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! आप विष्णु के स्वरूप वाले हैं। आप इस भू मण्डल के देवता हैं और पंक्ति के पावन करने वाले हैं। इसलिये दक्षिणा के सहित यह वैतरणी गौ मैंने आपको दान में दी है ॥ ३१ ॥ मेरी अभिलाषा है कि ये गौएँ मेरे आगे और पीछे रहें। मेरे हृदय में भी गौएँ निवास करें और मैं गौओं के मध्य में ही निवास किया करूँ ॥ ३२ ॥ सबके ईश धर्मराज को और वैतरणी नाम वाली गौ को जो सबकी प्रदक्षिणा करके फिर

पीछे ब्राह्मण को दान में देवे ॥ ३३ ॥ फिर धेनु की पूँछ ग्रहण करके और ब्राह्मण को आगे करके निवेदन करना चाहिए—हे धेनुके ! उस महान् भयानक यमराज के द्वार पर तुम मेरी प्रतिक्षा करना ॥ ३४ ॥ हे देवेशि ! महानदी में उत्तारण प्राप्त करने के लिये वैतरणी आपके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है। उस द्विज के पीछे-पीछे गमन करे और सब कुछ उसके घर में प्राप्त करा देवे ॥३५॥

एवं कृते वैनतेय सा सरित्सुखदा भवेत् ।
सर्वं कामानाप्नुवन्ति ददते ये च मानवा. ॥३६
सुकृतस्य प्रभावेण सुखञ्चेह परत्र च ।
स्वस्थे सहस्रगुणितं आतुरे शतमम्मितम् ॥३७
मृतस्यैव तु यद्दानं परोक्षे तत्समं स्मृतम् ।
स्वहस्तेन ततो देयं मृते कः कस्य दास्यति ॥३८
दानधर्मविहीनाना कृपणं जीवितं क्षितौ ।
अस्थिरेण शरीरेण स्थिरं कर्म समाचरेत् ॥
अवश्यमेव यास्यन्ति प्राणाः प्राघूर्णिका इव ॥३९
इतीदमुक्तं तव पक्षिराज विडम्बनं जन्तुगणस्य सर्वम् ।
प्रेतस्य मोक्षाय तदौर्ध्वदैहिकं हिताय लोकस्य-
शुभार्थबोधनम् ॥४०

हे वैनतेय ! इस प्रकार से करने पर वह महानदी सुख देने वाली हो जाती है। जो मनुष्य ऐसा दान करते हैं वे समस्त कामनाओं की प्राप्ति किया करते हैं ॥ ३६ ॥ सुकृत् के प्रभाव से इस लोक में और परलोक में सुख होता है। स्वस्थ रहते हुए स्वयं जो भी कुछ सुकृत किया करता है उसका पुण्य फल सहस्र गुना होता है। आतुरावस्था में जो भी कुछ सुकृत कराया जाता है उसका पुण्य-फल सौ गुना होता है ॥ ३७ ॥ मृत हो जाने पर परोक्ष में जो दान-पुण्य उसके निमित्त किया जाता है वह उसी के समान बतलाया गया है। अतएव अपने हाथ से ही सदा दान पुण्य करना या देना चाहिए—यही सबसे उत्तम है। मर जाने पर कौन किसके लिये दिया करता है? ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य

ान और धर्म से विहीन हुआ करते हैं उनका जीवन इस भू मण्डल में कृप-
णता से पूर्ण होता है। यह शरीर तो सदा स्थिर रहने वाला नहीं है अतएव
इस शरीर से स्थिर कर्म जो दान-पुण्य है वह अवश्य ही करना चाहिए। ये
प्राण तो अवश्य ही एक दिन मेहमान की भाँति चले ही जायेंगे ॥ ३६ ॥ हे
पक्षिराज ! यह मैंने तुमको सब जन्तुगण की विडम्बना बतलादी है। प्रेत की
मुक्ति के लिये उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया—कलाप लोक के हित के लिये भी
है और यह शुभ अर्थ का ज्ञान कराने वाला है ॥४०॥

एवं विप्राः समादिष्टं विष्णुना प्रभविष्णुना ।
गरुडः प्रेतचरितं श्रुत्वा सन्तुष्टमानसः ॥४१
व्रततीर्थादिकं पुण्यं पुनः पप्रच्छ केशवम् ।
ध्यात्वा मनसि सर्वेशं सर्वकारणकारणम् ॥४२
ऋपय सर्वमेतत्तु जन्तूनां प्रभवादिकम् ।
मया प्रोक्तं हि वै मुक्त्यर्थं प्रेतस्य चौर्ध्वदैहिकम् ॥
निदानं वच्मि लोकानां हिताय परमौषधम् ॥४३
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥४४
विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवः ।
येषामेवं स्थिरा बुद्धिर्न तेषां दुर्गतिर्भवेत् ॥४५
मङ्गलं भगवान्विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः ।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः ॥४६

सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! प्रभविष्णु भगवान् विष्णु ने इस प्रकार
से समादेश किया था। गरुड इस सम्पूर्ण प्रेत के चरित्र को श्रवण कर परम
सन्तुष्ट मन वाला हो गया था ॥ ४१ ॥ फिर मन में समस्त कारणों के भी
कारण सब के स्वामी का मन में ध्यान करके व्रत और तीर्थ आदिक पुण्य
कार्य के विषय में भगवान् केशव से पूछा था ॥ ४२ ॥ हे ऋषि गण ! जन्तुओं
का यह सब प्रभव आदि मैंने बतला दिया है और प्रेत की मुक्ति के लिये देह
के समाप्त हो जाने के बाद में होने वाला और्ध्वदैहिक कर्म भी बतला दिया

है। अब लोको के हित के लिये जो निदान है और परम औषध स्वरूप है व कहलाता हूँ ।। ४३ । जिनके हृदय तल मे इन्दीवर के समान श्याम वर्ण वा भगवान् जनार्दन विराजमान रहते हैं उनको ही लाभ होता है—उनकी विज होती है। ऐसे लोगो का पराजय तो कभी हो ही नही सकता है ।। ४४ ।। भगवान् विष्णु वस्तुत माता—पिता और स्वजन एव बान्धव हैं। जिन मनुष्यो की बुद्धि इस प्रकार की स्थिर रहा करती है उनकी कभी भी दुर्गति नही होती है ।। ४५ ।। भगवान् विष्णु का स्वरूप मङ्गलमय है और गरुडध्वज मङ्गल रूप है। पुंडरीकाक्ष भी मङ्गल रूप हैं हरि पूर्णतया मङ्गलो के आधार हैं। ।। ४६ ।।

हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरि ।
भागीरथी हरिर्विप्रा सारमेतज्जगत्त्रये ।।४७
सर्वेषां मङ्गल भूयात्सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु खभाग्भवेत् ।।४८
इति गरुडपुराणे प्रेतकल्पे प्रजाना हितमभिहितमादौ
सूतपुत्रेण पुण्यम् ।
करुणागताना नैमिषे सन्मुनीना श्रवणगतमकुर्वन् किं
विजानाति मर्त्यः ।।४६

हरि-भागीरथी और विप्र तथा विप्र-भागीरथी और एव हरि भागीरथी-हरि और विप्र तीनो जगत् श्री हरि भगवान् ने कहा—हमने यह गरुड पुराण विधि के साथ तुमको भली भाँति समझा दिया है। इस परम पुंयमय गरुड महा पुराण को जो भी कोई श्रद्धा—भक्ति के भाव से पढता है और इसका श्रवण किया करता है वह पुरुष भी इस ससार के सर्वदा जन्म—मरण के आवागमन के बन्धन से मोक्ष प्राप्त कर भगवान् की सन्निधि मे नित्य निवास किया करता है। ५२।।



उपसंहार

परलोकवाद और स्वर्ग-नर्क

हिन्दू धर्म की विशेषताओं में से एक परलोकवाद भी है और वह भारतीय धर्म में प्रवाहित अध्यात्म धारा का एक सुदृढ़ प्रमाण है। हम सभी जानते हैं कि सामान्य मनुष्य का ध्यान मुख्य रूप से भोजन, वस्त्र, आवास, मनोरञ्जन आदि की तरफ जाता है और यदि उसकी ये आवश्यकताएँ इच्छानुकूल रूप में पूरी हो जाती हैं तो फिर उसे ईश्वर और परलोक आदि की याद कदाचित् ही आती है। यह हिन्दू धर्म के प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही महत्ता थी कि उन्होंने किसी प्रकार का भौतिक स्वार्थ न होने पर आत्म तत्व और उसके साथ ही परलोक तत्व को अच्छी तरह छान डाला और उसमें से ऐसे ऐसे अमूल्य मणि-मुक्ता ढूँढ ढूँढ कर निकाले जिनके बल पर आज भी अध्यात्म-क्षेत्र में हमारा गौरव स्थिर है।

परलोक का सिद्धान्त पुनर्जन्म से सम्बन्धित है। जो लोग आत्मा की अमरता और उसके भिन्न भिन्न स्थूल रूपों में प्रकट होने के विधान को समझ सकने में असमर्थ होते हैं, वे परलोक के स्वरूप को भी नहीं जान सकते। इसीलिए संसार के दो बड़े प्रचलित धर्म ईसाई और मुसलमान स्वर्ग और नर्क का नाम लेने पर भी उनके विषय में किसी तरह का स्पष्ट वर्णन नहीं कर पाये। उन्होंने मरने के बाद आत्मा का अस्तित्व स्वीकार किया, पर साथ में यह भी कहा कि शरीर से पृथक् होने के पश्चात् उसे एक शून्य स्थान में बन्द कर दिया जाता है। जब 'कयामत' आयेगी तो भगवान् सब मनुष्यों को अपने सामने खड़ा करके उनके कर्मानुसार दण्ड या पुरस्कार देंगे। सार रूप से यह बात सन्तोषजनक हो सकती है, पर इससे यह प्रकट नहीं होता कि इसका प्रचार करने वालों ने इस समस्या को ठीक तरह से समझा था। वास्तव में पुनर्जन्म को स्वीकार किये बिना आत्मा की अमरता और मरने के बाद शुभ तथा अशुभ कर्मों के फल भोगने की बात का कोई अर्थ ही नहीं है।

हिन्दू शास्त्रों में इस विषय का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है उनमें आत्मा की अमरता को एक अकाट्य तथ्य के रूप में स्वीकार किया गया है और बतलाया है कि वह विभिन्न योनियों में प्रकट होकर विकास की यात्रा को पूरा करती है। यह भारतीय मनीषियों की योग-दृष्टि की ही शक्ति थी कि उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि केवल मनुष्यों में ही नहीं पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों तक में एक ही आत्म-तत्त्व व्याप्त है। उन्होंने जीवात्मा के रूप में उसकी पृथकता भी स्वीकार की और यह भी कहा कि शुभ और अशुभ कर्मों के फल स्वरूप उसका उत्थान और पतन भी होता है। उन्होंने बताया कि मनुष्य में वह शक्ति है कि जिससे वह शुभ कर्म करते हुए चाहे तो भगवान् के समकक्ष पदवी प्राप्त कर सकता है और साथ ही पाप-कर्म करके अपने को नाली के कीड़े की स्थिति तक भी गिरा सकता है। मनुष्य के हाथ में इतनी बड़ी शक्ति होने का विश्वास उसके लिये एक बहुत बड़ा सबल है और इसी के आधार पर यहाँ ऊँचे से ऊँचे अध्यात्म शक्ति सम्पन्न महापुरुषों का आविर्भाव हो सका है।

मरणोपरान्त जीवन—

मरने के बाद आत्मा का क्या होता है और किस प्रकार वह उत्तम और नीच गति को प्राप्त होती है? इसके मूल सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भिन्न-भिन्न विद्वानों ने उसका वर्णन विविध प्रकार से किया है जिसमें प्रत्यक्षतः बड़ा अन्तर जान पड़ता है 'कठोपनिषद्' में नचिकेता ने आत्म ज्ञान की जिज्ञासा करते हुये यम से पूछा था—

> येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
> एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥

अर्थात्—"मृतकों के सम्बन्ध में जो यह संशय है कि कोई कहता है कि मरने के पश्चात् आत्मा जीवित रहती है और कोई कहता है कि आत्मा भी जीवित नहीं रहती। मैं इसका वास्तविक रहस्य जानना चाहता हूँ और, यही तीसरा वर आपसे माँगता हूँ।"

इससे विदित होता है कि अब से हजारों वर्ष पूर्व आर्य सभ्यता के प्रारम्भिक काल में ही ऋषियों को इस समस्या का निर्णय करना आवश्यक जान पड़ा था कि आत्मा अमर है अथवा नाशवान है ? और यदि अमर है तो मरने के पश्चात् उसको किन परिस्थितियों में रहना पड़ता है ? 'कठोपनिषद्' के ऋषि ने इसका जो विवेचन किया है वह सर्वथा तर्क और बुद्धि सङ्गत है और इससे बढ़कर आत्मा के स्वरूप की व्याख्या करने में जो आज तक कोई समर्थ नहीं हो सका है। उन्होंने कहा—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नाय कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोय पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
अणोरणीयान्महतो महीया नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतु पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥
(क० १-२-१८, २०)

अर्थात्—' आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, वह तो नित्य है। वह न किसी के द्वारा उत्पन्न हुआ है और न उसके द्वारा कोई उत्पन्न किया जाता है। वह तो अजन्मा, नित्य, सदा रहने वाला और सनातन है। शरीर के नष्ट किये जाने पर भी वह नहीं मरता ॥ १८ ॥ जो व्यक्ति प्राणी के हृदय के अन्तरतम भाग में निहित सूक्ष्मातिसूक्ष्म और विशाल परमेश्वर के अंश रूप इस जीवात्मा और उसकी महिमा को देख पाता है वही पूर्णतया कामना, दुःख और शोक से रहित होकर परमात्मा का कृपा पात्र होता है।"

वास्तव में आत्मतत्व इतना सूक्ष्म है कि मानवीय स्थूल इन्द्रियों अथवा यन्त्रों से उसको किसी प्रकार नहीं जाना जा सकता, न प्रमाणित किया जा सकता है। हमारे ऋषियों के कथनानुसार तो वह मानवीय विचार-क्षेत्र से भी बाहर का विषय है इसलिये उन्होंने उसके विषय में स्वमतानुसार कुछ कह कर अन्त में 'नेति-नेति' कह दिया है। इसका आशय यही है कि आत्म तत्त्व इतना सूक्ष्म और साथ ही महान् है कि मानव बुद्धि उसे पूर्ण रूप से जानने का दावा कदापि नहीं कर सकती।

यही कारण है कि पुराणकारों ने इस विषय में तर्क, बुद्धि और प्रमाणों के अतिरिक्त कल्पना से बहुत अधिक काम लिया है और उसे ऐसा रूप दिया है जिससे सामान्य व्यक्ति भी उसके सम्बन्ध में कुछ अनुमान कर सके और उसे अपने जीवन-व्यवहार में काम ला सके। जब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आत्मा अमर है और उसका लक्ष्य क्रमशः ऊँचा उठना है, तो उन्होंने लोगों को वही शिक्षा दी है जो इस लक्ष्य के अनुकूल और स्वाभाविक है। योगियों ने अनेक अवसरों पर अपनी दिव्य-दृष्टि से अनेक व्यक्तियों के भूत, वर्तमान और भविष्य की जानकारी प्राप्त करके उसे प्रकट भी किया है। इन सबके आधार पर ही पुराणों में आत्मा के उत्थान, पतन, शुभ-अशुभ कर्मों के परिणाम और स्वर्ग—नर्क के विषय में वर्णन किया है और उसी पर हमारे यहाँ की सामान्य जनता पूर्ण विश्वास रखती है।

'गरुड-पुराण' की गणना परलोक वर्णन की दृष्टि से सर्व प्रथम है। यह मुख्य रूप से इसी के लिये प्रसिद्ध है और अनेक प्रदेशों की हिन्दू जनता द्वारा श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। इसमें अधिकांश यमलोक में पापियों को मिलने वाले कष्टों का वर्णन किया गया है और उनसे बचने के लिये दान आदि का विधान बतलाया गया है। इसके आधार पर अनेक आलोचकों ने इसका महत्व घटाने की चेष्टा की है और कहा है कि ये बातें दान के लोभी ब्राह्मणों की गढ़ी हुई है, इससे विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती। यह तो हम भी जानते हैं कि पुराणों के वर्णन में अतिशयोक्ति की शैली से काम लिया गया है और अनेक स्थानों में कवि-कल्पना की बहार भी दिखाई गई है। पर इन कारणों से कोई तथ्य झूँठा या सच्चा नहीं हो सकता। विद्वान् लोग बिना किसी कठिनाई के यह समझ सकते हैं कि उनका कितना अंश वास्तविक है और कितना कवि कल्पना का। इस दृष्टि से विचार करके कितने ही आधुनिक विद्वानों ने मृत्यु की वास्तविकता और परलोक में जीव की स्थिति के सम्बन्ध में गहराई से विचार किया है और कितने ही ऐसे तथ्यों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जो थोड़े-से हठधर्मी प्रवृत्ति वाले लोगों को छोड़ कर प्रायः सभी लोगों को उचित जान पड़ते हैं। यदि उनके विचारों का निष्पक्ष

पात होकर मनन किया जाय तो मनुष्य की मृत्यु विषयक धारणा में बड़ा परिवर्तन हो जाता है और जो बात आज हमको एक बहुत बड़ी विपत्ति अथवा सर्वनाश की तरह जान पड़ती है वही एक स्वाभाविक और उपयोगी परिवर्तन की तरह प्रतीत होने लगती है। इसका विश्लेषण करते हुये एक विद्वान का कहना है—

"एक दृष्टिकोण से यह भी कहा जा सकता है कि मृत्यु वास्तव में शोक का अवसर न होकर आनन्द का विषय है। पर यह दृष्टिकोण तब प्राप्त हो सकेगा जब हम जीवन-मरण की समस्या को भौतिक देह की दृष्टि से नहीं, वरन् उसके भीतर निवास करने वाले 'देही' (आत्मा) की दृष्टि से देखने की कोशिश करेंगे। देही अथवा जीव का इस शरीर में रहना ऐसा है, जैसा किसी को चारों तरफ से खूब बाँध—छाँद देकर किसी अँधेरी कोठरी में बन्द कर देना इस शरीर रूपी कोठरी में जहाँ-तहाँ बहुत छोटी-छोटी, मैली-कुचैली खिड़कियाँ लगी हुई हैं। जब जीव शरीर को छोड़कर बाहर निकल जाता है तो वह अपने आपको इन बन्धनों से पृथक पाता है। यद्यपि इस शरीर के छूटने पर भी जीव के ऊपर और कई पर्दे (कोष) लगे रहते हैं, तो भी जो सबसे भद्दा स्थूल पर्दा है उससे उसकी रिहाई हो जाती है। इस प्रकार जीव की दृष्टि से इस शरीर का छूटना आनन्द का ही अवसर है।"

मनुष्य का पारलौकिक जीवन कैसा होता है, इसको समझने के लिये आवश्यकता है कि हम विभिन्न स्वरूपों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी हासिल करें। यह तो सभी जानते है कि हमारा स्थूल शरीर नाशवान है, पर उसके नष्ट हो जाने पर भी दो अंश बचे रहते हैं एक 'जीवात्मा' (ईगो) और दूसरा 'आत्मा' (मोनाड)। तीसरा देहात्मकजीव (परसनैलिटी) कहा जाता है जो परिवर्तनशील होता है। मनुष्य के मृत्यु काल और परलोक-जीवन का निर्णय बहुत कुछ इस बात द्वारा होता है कि वह अपने इन तीन रूपों में से किस रूप को प्रधानता देता है। इस सम्बन्ध में उपर्युक्त लेखक का मत है—

"यदि हम अपने आप अपनी आत्मा के स्वरूप में जानने लगें, जैसा कि आत्म ज्ञानी लोग करते हैं, तो उस हालत में हम अपने आपको जन्म-मरण

से बिल्कुल परे पायेंगे। उस स्थिति में हम भी भगवान् कृष्ण की तरह कह सकते हैं कि न तो हम जन्म लेते हैं, न मरते हैं।" पर यह अभी हम लोगों के लिये बहुत दूर की बात है। ऋषि, महात्मा और तत्त्व ज्ञानी पुरुषों को ही ऐसा अनुभव प्राप्त होता है। हम तो अभी अपने आपको भली-भांति जीवन के स्वरूप में भी नहीं जानते। यदि हम जानते होते तो मृत्यु हम लोगों को ऐसे भयंकर स्वरूप में नहीं दीख पड़ती। उस समय हम पुनर्जन्म की वास्तविकता समझते तथा मृत्यु को केवल एक परिवर्तन के रूप में समझते। आज कल हम इस सम्बन्ध में जो इतना अधिक दुःख अनुभव करते हैं उसका प्रधान कारण यही है कि अभी हम अपने को देहात्मक-जीव के रूप में ही जानते हैं।

Personality

पुनर्जन्म के प्रमाण—

इतना ही क्यों आज कल संसार में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जो 'जड़वाद' में ही विश्वास रखते हैं और पुनर्जन्म, परलोक आदि की बातों को 'भ्रम' अथवा 'निरर्थक' बतलाते हैं। इनमें से कुछ लोग तो 'विज्ञानवादी' बनने के लिये ऐसा भाव प्रकट करते हैं और कुछ विचार शून्यता के कारण इस विषय पर कुछ सोच समझ सकने की शक्ति ही नहीं रखते। पर इन दिनों एक तो कितने ही खोज करने वालों ने देश और विदेशों की पुनर्जन्म की ऐसी घटनाओं पर प्रकाश डाला है कि जिनकी प्रत्यक्षता से कोई इनकार नहीं कर सकता। और दूसरा प्रमाण उन बच्चों का है जो तीन चार वर्ष की आयु में ही बड़े-बड़े ग्रन्थों अथवा विभिन्न भाषाओं का ज्ञान रखते हैं। इस सम्बन्ध में हिन्दी के प्रसिद्ध दैनिक 'आज' के ८ मई १६४० के अङ्क में नीचे लिखा समाचार छपा था—

"बनारा जिला के एक गांव का लड़का जिसकी आयु मुश्किल से ६ वर्ष की होगी, शेक्सपियर के समस्त (३६) नाटकों के अध्याय के अध्याय मुँह जबानी सुना देता है। इस लड़के का नाम 'वेंकप्पा बुल्ड' है। वह अंग्रेजी, फ्रेंच, मराठी, तेलगू, हिन्दी, कांकणी आदि कई भाषाओं का विद्वान् है। जिन लोगों ने उसको देखा है उन सभी ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है

कि उसकी प्रतिभा बड़ी विलक्षण है। वह ईसा के ५५ वर्ष से पूर्व से लेकर अबतक की सभी ऐतिहासिक घटनाओं पर काफी प्रकाश डालता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक परिस्थिति पर जब लोग उससे वार्तालाप करते हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि मानो वह राजनीति का कोई आचार्य हो। बुल्ड स्वयं अपनी इस विलक्षण प्रतिभा के विषय में उदासीन है। उसका कहना है कि 'एम० ए० उसने बहुत पहले पास कर लिया है।' अधिकांश व्यक्तियों की सम्मति है कि वह पूर्व जन्म में अच्छा विद्वान् रहा होगा।"

इसी तरह अब से पचास-साठ वर्ष पूर्व जो 'मास्टर मदन' नाम का एक बालक हुआ था वह चार वर्ष की आयु में ही भारतीय सङ्गीत का उत्तम ज्ञाता बन गया था और बड़े-बड़े समारोहों में मन को मुग्ध करने वाला गायन करता था। वह राग-रागनियों और सङ्गीत-शास्त्र की अनेक बारीक बातों के सम्बन्ध में अन्य सङ्गीताचार्यों से बात-चीत भी करता था। जब कि हम देखते हैं कि अच्छे, समझदार बड़ी आयु के लड़के वर्षों तक अभ्यास करके 'सातो स्वरों' का ज्ञान और थोड़े से राग-रागनियों का अभ्यास कर पाते हैं, तब एक चार-पाँच वर्ष की आयु के बालक का सङ्गीत शास्त्र-मर्मज्ञ होना और इस क्षेत्र में बरसों तक नाम हासिल कर सकना सिवाय पूर्व जन्म की विद्या और प्रतिभा के और किसी तरह सभव नहीं जान पड़ता।

प्रेत-योनि का अस्तित्व—

'गरुड़-पुराण' का मुख्य विषय 'प्रेत-योनि' से सम्बन्धित है। अन्य पुराणों में भी प्रेतों के सैकड़ों उपाख्यान मिलते हैं। हम यह हर्गिज नहीं कहते हैं कि वे सब ज्यों के त्यों ठीक हैं या उस प्रकार की घटनायें अवश्य हुई हैं। वे तो सामान्य—जनता को धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा देने के उद्देश्य से किसी भी छोटी या बड़ी घटना को उपदेशप्रद कथाओं का रूप देकर प्रस्तुत किये गये हैं। पर अनेक लोग प्रेतों के अस्तित्व से ही इनकार करते हैं और उसे अनभिज्ञ व्यक्तियों का भ्रम अथवा कुछ लोगों की मनगढन्त बातें बतलाते हैं। ऐसे लोगों की सम्मति पर विचार करने के लिये यह आवश्यक है कि 'प्रेत-योनि' के विषय में तथ्यों और तर्कों के आधार पर विवेचना की जाय।

सबसे प्रथम विचारणीय बात तो यह है कि यदि हम आत्मा के अमरत्व मे विश्वास रखते हैं और उसका पुनर्जन्म होना भी मानते हैं तो यह भी पता लगाना होगा कि क्या प्रत्येक मनुष्य मरने के पश्चात् उसी समय दूसरा जन्म ले लेता है। अभी तक जिन बालक—बालिकाओं ने अपने पूर्व जन्म की घटनायें बतलाई हैं उनकी जाँच करने से ज्ञात हुआ है कि प्रायः सभी मृतात्माओं के जन्म लेने में गर्भकाल के नो महीने से कुछ महीने या वर्षों का अधिक समय लगा है। इससे विदित होता है कि ये आत्माऐं बीच के समय मे किसी अन्य स्थान में रहती हैं। यह कोई जरूरी बात नहीं कि उनके रहने के दूसरे स्थान पृथ्वी की तरह ठोस (स्थूल रूप वाले) हवा, पानी, वनस्पति, आवास गृह आदि से युक्त हो। मरने के बाद आत्मा जिस सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित रहती हैं वह स्वयं छाया की तरह, वायु से भी हलका रहता है, इसलिये उसे टिकने के लिये किसी स्थूल जगत् की तनिक भी आवश्यकता नहीं होती। ये स्थान किस तरह के होते हैं अथवा छाया शरीरी आत्माऐं किस स्थिति में रहती हैं इस सम्बन्ध में विद्वानो ने विभिन्न प्रकार के अभिमत प्रकट किये हैं। उनमे से दो-तीन का सारांश नीचे दिया जाता है—

" परलोक-जीवन के रहस्य को समझने के लिये तीन विषयों का कुछ ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है—(१) स्वर्ग-नरक अर्थात् प्राकृतिक लोकों से क्या अभिप्राय है? (२) मनुष्य की आध्यात्मिक रचना कैसी है? (३) किस क्रम से मनुष्य को मृत्यु के पश्चात् जीवन व्यतीत करना पड़ता है?

" मृत्यु के बाद के जीवन को समझने के लिये नीचे के तीन लोकों—भू:, भुव: और स्व: की स्थिति को कुछ अधिक स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है, साधारणतः हमारे जीवन का विशेष सम्बन्ध इन्हीं तीन लोकों से रहता है। भू-लोक के दो प्रधान विभाग हैं—स्थूल और सूक्ष्म। इसके सूक्ष्म विभाग को 'ईथरिक विभाग' भी कहते हैं। भुव-लोक के भी तीन प्रधान विभाग हैं, लेकिन उनके विस्तार में जाना आवश्यक नहीं है। इसी भुवर्लोक के कुछ भाग को 'नरक' कहते हैं। स्वर्लोक के भी दो विभाग हैं—सूक्ष्म और स्थूल। स्थूल विभाग

ों रूप-विभाग या स्वर्ग कहते हैं और सूक्ष्म विभाग को ' अरूप विभाग ' कहते हैं।

" वैज्ञानिक दृष्टि से मृत्यु का तात्पर्य स्थूल तथा छाया-देह के सम्बन्ध विच्छेद से है। समस्त जीवन यह सम्बन्ध सदा लगा रहता है, केवल मृत्यु के द्वारा ही छूटता है। इस सम्बन्ध मे यह जान लेना आवश्यक है कि मृत्यु का समय मनुष्य के लिये बहुत महत्त्व का होता है। भगवान् कहते हैं कि मरने के समय जिसका जैसा भाव होता है वह वैसी ही गति को प्राप्त करता है—

यं य वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
स तमेवैति कौन्तेय सदा तद् भाव भावितः ॥
(गीता ८-६)

अर्थात् हे अर्जुन! अन्त समय मे जो जिसको स्मरण करता हुआ शरीर-त्याग करता है, उसी भाव से सदा भावित होने के कारण वह उसी के पास पहुंच जाता है।"

" आधुनिक अनुसंधान करने वाले मनीषियों ने पता लगाया है कि अन्त समय के महत्त्व का प्रधान कारण यह है कि मृत्यु के कुछ देर पहले प्राकृतिक रूप से मनुष्य मे ऐसी शक्ति आ जाती है, जिसकी वजह से जन्म से लेकर मरने के दिन तक की अपनी सारी कार्यवाहियों और सारे सम्बन्धों को वह देख सकता है। इस लोक से प्रस्थान करने के पूर्व जीव मानो अपने इस जन्म-मरण के लेखे का हिसाब-किताब समझता है। अपनी कारवाईयों का महत्त्व पूर्ण सिंहावलोकन करता है। इस कारण अपने सभी जीवन-कृत्यों का निचोड़ उसके हृदय में बैठ जाता है और उसी के अनुसार उसकी गति होती है। इस लिये किसी की भी मृत्यु होते समय हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम मृतक के समीप हल्ला-गुल्ला और रोना-पीटना न कर उसके समीप शान्तिपूर्ण तथा उच्च भावों से पूर्ण वातावरण बनाये रखें।

"भगवद् वाणी" नामक पुस्तक के लेखक ने इस सम्बन्ध में कहा है— "इस पृथ्वी से एक करोड़ मील की दूरी पर सात नरक लोक हैं। इनमें पापियों

को दण्ड देने की व्यवस्था है। वे साधारण नहीं है और उनमें अत्यन्त तीव्र यन्त्रणा दी जाती है। मृत्यु के बाद मनुष्य का स्थूल शरीर यहीं छूट जाता है और वह सूक्ष्म शरीर से अन्तरिक्ष में पहुँच जाता है। इस सूक्ष्म-देह में उसके तीन धड़ और तीन ही मस्तक होते हैं, पर तीनों में पैर केवल दो ही होते हैं। कर्त्तव्यनिष्ठ और पवित्रात्मा सीधे स्वर्ग को चले जाते हैं। जिन्होंने संसार में सामान्य जीवन बिताया है और कोई बड़ा पाप नहीं किया है वे पुनः पृथ्वी पर ही जन्म ग्रहण करते हैं। पापियों को प्रेत योनि में लाखों वर्ष तक लुढ़कना पड़ता है और उसके बाद भी उसको तरह-तरह की योनियों में जन्म और मृत्यु की शृङ्खला में भ्रमण करना पड़ता है।"

प्रेतों का स्वरूप और कार्य—

'गरुड पुराण' में प्रेतों के बहुत से उपाख्यान दिये गये हैं जिनमें उनके बीभत्स स्वरूप और क्रूर कर्मों का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। पर उसमें अतिशयोक्ति का विशेष पुट होने के कारण हम एक आधुनिक विद्वान प० रामदास गौड़ एम० ए० के लेख के आधार पर प्रेतों के स्वरूप का विवेचन करेंगे। पंडित जी विज्ञान के प्रोफेसर थे और बहुत वर्षों तक सुप्रसिद्ध 'विज्ञान' मासिक पत्र का सम्पादन करते रहे थे। उन्होंने अनेक प्रकार की परीक्षायें करके तथा अन्य विदेशी लेखकों के मत का विश्लेषण करके प्रेतों के विषय में कुछ मुख्य बातें प्रकट की थीं—

"स्थूल देह धारियों की भाँति सूक्ष्म देहधारी प्रेत भी शब्द उच्चारण करते हैं, पर वे हमको सुनाई नहीं पड़ते। कारण जिस तरह उनका शरीर सूक्ष्म होता है उसी प्रकार उनका वायु-मण्डल भी सूक्ष्म होता है, जिसका स्पन्दन हमारे कानों तक नहीं पहुँचता। पर किसी-किसी व्यक्ति को प्रेत का शब्द सुनने और उसका रूप देखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। उस समय उनको जो सुनाई या दिखाई देता है, वह उन्हीं के पास बैठे दूसरे मनुष्य को कुछ भी मालूम नहीं देता।

प्रेत शरीर की स्पर्श शक्ति भी हमारी स्पर्श शक्ति से भिन्न है। हम

तो स्पर्श से ठण्डे-गरम और कडे-नरम का पता लगाते हैं, पर किसी व्यक्ति पर प्रेतावेश होने की अवस्था मे देखा जाता है कि आविष्ट शरीर के पास की वायु का मारने और काटने का भी प्रभाव पडता है। इससे यह अनुमान होता है कि प्रेत शरीर के सर्वाङ्ग में समाया रहता है तब उसका कुछ अंश त्वचा के बाहर भी फैला रहता है। पर यह भी देखा जाता है कि जब प्रेतावेश होता है तब मनुष्य स्थूल शरीर के किसी एक अङ्ग में ही प्रेत शरीर संकुचित हो जाता है। इससे यह जान पडता है कि साधारणतया प्रेत शरीर स्थूल शरीर से बडा और वायु की तरह फैलने और सिकुडने वाला होता होगा। प्रेत शरीर का विवेचन करते समय यह बात हमेशा ध्यान मे रखनी चाहिए कि जिस प्रकार प्रेतावस्था का वायु मण्डल सूक्ष्म होता है उसी प्रकार उसके पृथ्वी, जल, अग्नि तथा प्रकाश आदि तत्त्व भी सूक्ष्म होते हैं।

परलोक-विज्ञान के ज्ञाताओ ने प्रेतो के रूप-दर्शन की विधि भी निकाली है और उनके फोटो लिये हैं। यातना-भोगी नीच-प्रेतो के रूप बडे भयकर होते हैं, परन्तु अच्छे प्रेत अधिक सौम्य रूप के होते हैं। यह सच है कि परलोकवादी-चक्रो मे प्रेतो का रूप देखना सम्भव होता है, पर यह हर्गिज नही कहा जा सकता कि प्रेतो का जो रूप देखने मे आता है वह उनका वास्तविक रूप ही होता है।

प्रेत अधकार और उजाला—दोनो में बराबर देख सकते हैं, क्योकि प्रेतो के विचरण का समय घनघोर अँधेरी रात्रि भी होती है और दिन की चिलचिलाती दोपहरी भी। पूर्ण और अल्प आवेश के अवसर पर प्रेतो ने यह प्रमाण दिया है कि वे मनुष्यो से कहीं अधिक देखने की शक्ति भी रखते हैं।

नीच प्रकृति के प्रेत गन्दी से गन्दी चीज खाने मे भी घृणा नहीं करते। ऊँची प्रकृति वाले प्रेत शुद्ध, सात्त्विक पदार्थ पसन्द करते हैं। परन्तु यह नियम व्यापक नही है। आवेश के रूप मे लगने वाले प्रेतो का कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। मानव ससार मे यदि झूठा प्रदर्शन करने वाले लोग मे से नब्बे होंगे तो प्रेत-ससार मे निन्यानबे से भी अधिक होंगे। जो प्रेत रक्त,

लगता है। पर जब वह नष्ट होना चरम सीमा पर पहुँच जाता है और एक साथ होता दिखलाई पडता है तब हम उसे 'मृत्यु' कह देते हैं।

कर्मों के संस्कार और प्रारब्ध—

अब हम इस बात को समझ सकते हैं कि यह संसार मूल रूप से अविनाशी है और इसमे हमको जो छोटे या बडे परिवर्तन दिखाई पडते हैं उनका आशय किसी पदार्थ या शक्ति का पूर्णतया नष्ट होना नही है, वरन् एक प्रकार का रूपान्तर होना ही है। इसके पश्चात् स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि एक शरीर के नष्ट होने पर जो आत्मा किसी अन्य शरीर मे जन्म लेती है उसका पूर्व जन्म के कर्मों से कुछ सम्बन्ध रहता है या नही ? भारतीय शास्त्रो ने 'कर्मफल' के सिद्धान्त को अटल और अकाट्य रूप से स्वीकार किया है। 'कर्म प्रधान विश्व कर राखा' की उक्ति मे यहाँ के सभी लोगो का पूर्ण विश्वास है। यहाँ के ऋषि-मुनियो ने मानव-जीवन की भली-बुरी घटनाओ को केवल एक जन्म के ही कर्मों का फल नहीं बतलाया है वरन् वे उसका सम्बन्ध अनेक जन्मो के कर्मों से जोडते हैं। 'कर्म' और प्रारब्ध की समस्या पर विचार करते हुये लोकमान्य तिलक ने अपने 'गीता रहस्य' मे हिन्दू धर्म का सिद्धान्त इस प्रकार प्रकट किया है।

"यह सच है कि कर्म-प्रवाह अनादि है और जब एक बार कर्म का चक्कर शुरू हो जाता है तब परमेश्वर भी हस्तक्षेप नही करता। तथापि अध्यात्म शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि दृश्य सृष्टि केवल नाम-रूप या, कर्म ही नहीं है, किन्तु इन 'नाम रूपात्मक' आवरण के लिये आधारभूत एक आत्म रूपी स्वतन्त्र और अविनाशी ब्रह्म सृष्टि है तथा मनुष्य की आत्मा उस नित्य एव स्वतन्त्र परब्रह्म का ही अंश है। मनुष्य जो भी अनुचित अथवा परपीडा दायक कार्य करता है उसी से वह अशुभ कर्म बन्धन मे बँधता है। मनु भगवान् ने इनके तीन भेद किये हैं—कायिक, वाचिक और मानसिक। व्यभिचार, हिंसा, चोरी को 'कायिक' पाप कहा है, कटु मिथ्या, ताना मारना और असंगत बोलना—इन चारो को वाचिक पाप बतलाया है—परद्रव्याभिलाषा, दूसरो

का अहित चिन्तन और व्यर्थ आग्रह करना—इन तीनों को मानसिक पाप कहते हैं। सब मिलाकर दस प्रकार के अशुभ या पाप कर्म बतलाये गये हैं (मनु० १२—५,७)।

"परन्तु अन्य विद्वानोंने समस्त मानवीय कर्मोंको तीन अन्य विभागोंमें बांटा है—(१) सञ्चित (२) प्रारब्ध और (३) क्रियमाण। किसी मनुष्य द्वारा इसक्षण तक किया गया जो कर्म है—चाहे वह इस जन्म में किया गया हो या पूर्व जन्म में, वह सब 'सञ्चित' अर्थात् 'एकत्रित' कर्म कहाजाता है। इसी 'सञ्चित' को कुछलोग 'अदृष्ट' भी कहते हैं। इन सब कर्मों का फल एक दम भोगना असम्भव है, क्योंकि फल की दृष्टि से ये परस्पर विरोधी अर्थात् भले और बुरे दोनों प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरणार्थ कोई सञ्चित कर्म स्वर्गप्रद और कोई नरकप्रद भी होते हैं, इसलिये इन दोनों के फलों को एक साथ ही भोगना सम्भव नहीं है—इन्हें एक के बाद एक भोगना पड़ता है। अतएव 'सञ्चित' में से जितने कर्मों का फल भोगना पहले शुरू होता है उतने ही को 'प्रारब्ध' कहते हैं। 'सञ्चित' में से जिन कर्मों का फल भोगना अभी आरम्भ नहीं हुआ है उनको 'अनारब्ध—कर्म' का नाम दिया गया है।

"सञ्चित में से जो कर्म 'प्रारब्ध' बन चुके हैं उनको भोगे बिना छुटकारा नहीं है—'प्रारब्ध कर्मणा भोगादेव क्षयः।' जब एक बार हाथ से बाण छूट जाता है, तब वह लौटकर नहीं आ सकता, अन्त तक चला ही जाता है। ठीक इसी तरह 'प्रारब्ध' कर्मों की अर्थात् जिनके फल का भोगना शुरू हो गया है, उनकी भी अवस्था होती है। जो शुरू हो गया है उसका अन्त होना ही चाहिए, इसके सिवा दूसरी गति नहीं है। परन्तु 'अनारब्ध' कार्य कर्म का ऐसा हाल नहीं है—इन सबका ज्ञान से पूर्णतया नाश किया जा सकता है।"

मीमांसा-शास्त्र वालों ने कर्मों के चार भेद माने हैं—नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध। इनमें से नित्य कर्म (सन्ध्या आदि) के न करने से आत्मा का पतन होता है और नैमित्तिक कर्म तभी करने पड़ते हैं जब उनकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिये मीमांसकों के मतानुसार इन दोनों को करना तो आवश्यक ही है। शेष रहे काम्य और निषिद्ध कर्म। इनमें से निषिद्ध कर्मों

के करने से पाप लगता है इसलिये उनको न करना चाहिए। काम्य कर्मों के करने से उनके फल भोगने के लिये फिर जन्म लेना पड़ता है, इसलिये इन्हें भी न करना चाहिए। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कर्मों के तारतम्य का विचार करके यदि मनुष्य कुछ कर्मों को छोड़ दे और कुछ को शास्त्रोक्त रीति से करता रहे, तो वह अपने आप मुक्त हो जायगा।

इस शास्त्रीय विवेचन द्वारा विदित होता है कि कर्म फल प्राकृतिक नियम के अनुसार स्वभावतः संस्कार रूप में आत्मा के साथ लिपटा रहता है और एक जन्म के कर्मों के प्रभाव से आगामी जन्म में भी नये-नये कर्म होते रहते हैं और कर्म-शृङ्खला अनन्त काल तक चलती रहती है। केवल वे थोड़े से व्यक्ति जो अनासक्त योग और ज्ञान—साधन द्वारा कर्म—बन्धन को बिल्कुल काट देते हैं वे ही कर्मों के बन्धन से छुटकारा पा सकते हैं।

इस प्रकार जब हमने कर्मफल, परलोक और पुनर्जन्म को मान लिया और यह भी मालूम हो गया कि हम जैसा कृत्य करेंगे वैसा ही अच्छा या बुरा फल प्राप्त होगा तो इस दृष्टि से सृष्टि में स्वर्ग और नरक का मानना अनुचित नहीं है, फिर चाहे उनको स्थूल अथवा सूक्ष्म लोकों के रूप में माना जाय, अथवा भली या बुरी परिस्थितियों के रूप में, अथवा आनन्द या कष्टप्रद मानसिक स्थिति के रूप में। हमने अभी तक वैज्ञानिकों के द्वारा शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति आदि ग्रहों का जो आनुमानिक वर्णन सुना है, उससे यह ख्याल किया जा सकता है कि शायद वहाँ किसी अन्य प्रकार के निकृष्ट जीवधारी हों जिनको अत्यधिक गर्मी, दम घोटने वाली विषाक्त वायु अथवा हड्डियों को कड़कड़ा देने वाली ठंड को सहन करना पड़ता हो। फिर यह भी आवश्यक नहीं कि जिन स्थानों को 'नरक' कहा गया है वे सब स्थूल रूप में ही हों। आत्मा का सूक्ष्म शरीर वायु से भी हलका होता है। वह विशाल अन्तरिक्ष के किसी भी कोने में रहता हुआ अपनी भावनानुसार तरह तरह के कष्टों और यन्त्रणाओं को अनुभव करता हो तो इसमें भी कुछ असम्भव नहीं है। यदि पृथ्वी के कुछ जीवधारियों को वहाँ जाकर ऐसे कष्टदायक वातावरण में रहना पड़े तो वह पौराणिक नरकों के वर्णन के अनुसार ही होंगे।

इसके अतिरिक्त हम पृथ्वी पर भी पागलों, उन्मादियों, महाभ्रष्ट आचरण वालों की जो दशा देखते हैं वह भी नरक वास से कम नहीं है। हमने ऐसे नरतन धारियों को गन्दी नाली का पानी पीते, वहाँ पड़े हुए रोटी के टुकड़ों आदि को खाते देखा है। 'अघोरी' नामधारी कितने ही व्यक्ति मल-मूत्र और अन्य अत्यन्त घृणित पदार्थ खा जाते हैं और असह्य गन्दगी की हालत में बने रहते हैं। अन्य ऊपर से सामान्य श्रेणी के मनुष्य जान पड़ने वालों के भी आचरण ऐसे भ्रष्ट और गन्दे होते हैं कि वे गुप्त रूप से अत्यन्त गन्दे और घृणोत्पादक पदार्थों का सेवन करने में ही तृप्ति अनुभव करते हैं। ऐसे मस्तिष्कीय अथवा मानसिक विकृति वाले व्यक्तियोंकी संख्या पृथ्वी पर करोड़ों हैं और सज्जन तथा बुद्धिमान लोगों की दृष्टि में वे नारकीय जीवन ही व्यतीत करते हैं।

काम, क्रोध, मोह, अहङ्कार आदि के कारण भी अनेक व्यक्तियों की मानसिक दशा ऐसी अस्त-व्यस्त और यन्त्रणादायक बन जाती है कि प्रत्यक्ष में वैभवपूर्ण स्थिति में रहने पर भी वे अपने अन्तः क्षेत्र में महा अशान्ति और जलन का अनुभव करते हैं। यदि आपने राज्य-परिवारों से सम्बन्धित कहानी-उपन्यास आदि के रूप में लिखे गये वर्णनों को पढ़ा हो तो आप जान सकते हैं कि ऊपर से आमोद—प्रमोद में रहते हुये इन लोगों के हृदय में कितनी भयङ्कर अग्नि जलती रहती है और अनेक बार उसका दुष्परिणाम हत्या—आत्मघात आदि कैसे भयङ्कर कृत्यों और दृश्यों के रूप में प्रकट होता है। हमने एकाध नरपति को यह कहते सुना है कि महाशय, आपकी निगाह में तो हम बड़े साधन-सम्पन्न और सुखी हैं, पर विपरीत व्यावहारिक और अन्य परिस्थितियों के कारण हमारे चित्त में तो प्रायः यह आता रहता है कि किसी प्रकार मर कर इन आपत्तियों से छुटकारा पा जायें। इस परिस्थिति का सब से प्रत्यक्ष उदाहरण अमरीका का देश है जो संसार में सब से अधिक मालदार आमोद प्रमोद के साधनों से युक्त और विषय-भोग सम्बन्धी सब प्रकार बन्धनों से मुक्त माना जाता है। वहाँ करोड़ों स्त्री-पुरुष स्वच्छन्द भाव से व्यभिचार, मद्यपान, धूम्रपान आदि दोषों में लिप्त रहते हैं, पर सरकारी रिपोर्टों के अनुसार आत्म हत्याओं की संख्या भी वहीं पर सबसे ज्यादा है।'

इस तरह हम यदि संसार नीच मनोवृत्ति और विकृत मस्तिष्क वाले व्यक्तियों के बाह्य और अन्त जीवन में झाँकें तो स्पष्ट जान पड़ेगा कि वे 'नारकीय' जीवन ही व्यतीत कर रहे हैं और मरने के पश्चात् भी उनको 'सुगति' कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। वे वास्तव में 'नरक' के ही अधिकारी हैं और मरणोपरान्त वे कहीं भी क्यों न रहें उनको नारकीय कष्ट ही सहन करने पड़ेंगे। 'गरुड़ पुराण' के लेखक ने रूपक और अलङ्कार युक्त 'नरक वर्णन' द्वारा जो चेतावनी दी है, उस पर ध्यान देकर यदि वे दुराचरणों को त्याग कर सुमार्गगामी बन सकें तो यह उनके लिये कल्याणकारी ही होगा।

